राजनीति-शास्त्र

द्वितीय भाग

डा० एडी आशीर्वादम्, पी-एच० डी०

लखनऊ
दि अपर इण्डिया पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड
१९५६

अनुवादकीय

इस ग्रन्थ का अनुवाद करना इसको पढने का सबसे उत्तम साधन सिद्ध हुआ। कही कही मुझे इतना जूझना पडा कि सिर मे दर्द होने के डर से मुझे अनुवाद कार्य स्थगित करना पडा है। भाषा के साथ इस पुस्तक के भाव भी गूढ है। मेरी समस्या यह थी कि गढ विषयो को इतने स्पष्ट और सरल शब्दो मे प्रगट करूँ कि वे सरलता से समझ मे आ जायँ। कही-कही ऐसे कथन भी आये कि जिनका सन्दर्भ जाने बिना बी० ए० का विद्यार्थी उन्हे समझ नही सकता था। ऐसे स्थानो पर कुछ ऐसे सकेत देने की मैने चेष्टा की है कि जिनसे वह बाते समझी जा सकें, जैसे पृष्ठ ६३२ के अन्तिम अनुच्छेद मे कोष्ठक मे दी गयी टिप्पणी। आशा है इस अनुवाद के कारण विद्यार्थी को राजनीति-शास्त्र का विषय सरल प्रतीत होने लगेगा। फ्रेञ्च और जर्मन भाषा के शब्दो के उच्चारण इन्ही भाषाओ के अनुसार देने का यत्न किया गया है।

सक्षेप मे, यही कह सकता हूँ कि मैने भरसक चेष्टा की है कि अनुवाद सरल और सही हो। मुझमें जो अज्ञानता है वह मेरे कार्या मे प्रतिबिम्बित होगी ही। पाठको से सविनय प्रार्थना है कि वे अपने सुझाव अवश्य भेजें ताकि अनुवाद को सुधारा जा सके। मैने बराबर इसी सिद्धान्त का पालन किया है कि जब तक मैं किसी बात को अच्छी तरह समझ न लूँ तब तक उसका अनुवाद न करूँ। किन्तु इस पर भी अनुवाद मे तीन प्रकार के दोष हो सकते है। प्रथम यह कि मैंने किसी कथन को यथार्थ मे समझा न हो और मुझे भ्रम हो गया हो कि मैने समझ लिया, दूसरे यह कि मैंने किसी कथन को गलत समझ लिया हो और तीसरे यह कि पूरा मनोबल लगाने पर भी बात पूरी तरह से समझ में न आयी हो। पहले दोनो दोषों की तरफ तो पाठक ही ध्यान आकर्षित कर सकेंगे किन्तु तीसरे का उपाय मैंने यह निकाला है कि ऐसे स्थलो पर जहाँ मुझे अनुवाद से पूर्ण सन्तोष नही है, मैने कोष्ठक मे अंग्रेजी मूल भी दे दिया है। डॉ० आशीर्वादम् के ग्रन्थ को सरल भाषा मे लिखा जा सकता है किन्तु सरल भाषा होने से ही विद्यार्थी की समझ मे सब बातें नही आतीं। आवश्यकता इस बात की है कि वह राजनीति-शास्त्र के महान् विचारको के मूल ग्रन्थो का अध्ययन करें। जितना ही विस्तृत उनका अध्ययन होगा उतना ही अधिक उनको विषय का बोध होगा। प्रत्येक अध्याय पर कम से कम एक पुस्तक, जो उस विषय पर विस्तार से प्रकाश डालती हो, पढना अत्यन्त हितकर होगा। इसके अतिरिक्त, मैं विद्वानों की इस

र्गय से पूर्णतया सहमत हूँ कि बाजारू 'भड्डजी' और अनधिकृत लेखकों की पाठ्य-पुस्तकें विद्यार्थियो को जितना भ्रष्ट कर रही है उतनी हानि उन्हे शायद ही कोई अन्य कारक पहुँचा रहा हो। ऐसी पुस्तकें परीक्षाए भले ही पास करा दें लेकिन वे विद्यार्थी को व्यावहारिक लाभ पहुँचाने मे बिल्कुल असमर्थ हैं।

—नरोत्तम भार्गव

५ दिसम्बर १९५९

विषय-सूची

विधि

(Law)

विधिका प्रश्न सम्प्रभुताके प्रत्येक विचार विमर्शमें मौजूद रहता है। सम्प्रभुता तो एक सिद्धान्त मात्र है। यदि इसकी अभिव्यक्ति विधिके रूप में न हो और इसका उपयोग विधि के द्वारा न हो तो इसका कोई विशेष मूल्य नहीं होगा।

विधिका अर्थ

अंग्रेजी भाषामें विधिका समानार्थी शब्द ला (law) है। गिलक्राइस्ट ने बताया है कि इस लॉ शब्दकी उत्पत्ति पुरानी ट्युटन (जर्मन) भाषाकी लैग (lag) धातु से हुई है। लैगका अर्थ है—वह जो स्थिर और सर्वत्र समान रहे'। अंग्रेजीमें लैगका अर्थ —'वह जो एकसा रहे'। 'विधि का यदि व्यापक अर्थ लिया जाय तो', मैकाइवर के शब्दों में, उसका शासन सर्वत्र है, विधि सर्वव्यापी है'। जहां-कहीं जीवन है वहां उसकी सर्वव्यापी विधियां हैं और प्रत्येक प्रकारके जीवनके अनुरूप उसकी अपनी विधियां भी हैं (५५ २५०)।

विधि शब्द का प्रयोग कई अर्थोंमें होता है (१) वैज्ञानिक विधि या वैज्ञानिक नियम (scientific law) जिसमें किसी कार्यका और उसके कारणका सम्बन्ध स्थापित किया जाता है उदाहरणार्थ गुरुत्वाकर्षणकी विधि (law of gravitation)। (२) सामाजिक विधियां (social laws) वे विधियां हैं जो व्यक्ति का समाजके एक सदस्यके रूपमें मार्ग प्रदर्शन करती हैं। इनका रीति-रिवाज या प्रथा कहना अधिक युक्ति संगत होगा। (३) नैतिक विधियां (moral laws) वे विधियां हैं जो सत् और असत्, सही और गलतकी मौलिक समस्याओंसे सम्बन्ध रखती हैं। नैतिक विधियोंका सीधा सम्बन्ध अन्तःकरण या विवेकसे और विभिन्न कृत्योंके मानसिक प्रेरकों (motives) से रहता है। (४) राजनीतिक विधियां जिनसे हमारा इस अध्याय में विशेष प्रयोजन है, वे विधियां हैं जो राज्यके एक सदस्यके रूपमें व्यक्तिके व्यवहारका नियन्त्रण और पथप्रदर्शन करती हैं। राजनीतिक विधि का सम्बन्ध व्यक्तिके बाहरी आचार-व्यवहार से है। अर्थात् उसके ऐसे कृत्यों से है जिनका दूसरों पर प्रभाव पड़े। और राज्य उनको जबर्दस्ती भी मनवाता है। मैकाइवर के शब्दोंमें "मनवानेका अन्तिम उपाय विधि ही है (५५ २६)।" जब हम केवल विधि शब्द का प्रयोग करेंगे तो उसका अर्थ राजनीतिक विधि होगा।

सामाजिक विधियों और राजनीतिक विधियोंमें बहुत काफी साम्य है किन्तु

मार्केकी बात यह है कि सामाजिक विधिमें उस प्रकारका जोर दबाव नहीं है जैसा कि राजनीतिक विधिमें होता है। 'प्रत्येक सघ अपने-अपने नियम या विधिया बनाता है' परन्तु मैकाइवर के शब्दोमें 'एक विकसित राज्यमें राज्यके अलावा अन्य सघोंकी विधिया अपने सदस्योंको कब तक बन्धनमें रख सकती है? तभी तक जब तक कि ये सदस्य सघकी सदस्यतासे प्राप्त लाभोको खोनेके बजाय उन बधनोको स्वीकार करना पसन्द करते हैं (५५ १७) अर्थात 'एक उन्नत समाजमें राज्यकी विधि ही अनिवार्य और दबाव पूर्ण होती है।' सामाजिक विधियोको माननेकी प्रेरणा पूर्णरूप से हमारे ही भीतर रहती है, पर राजनीतिक विधिया बाहरी होती है और व्यवस्था कायम रखनेके लिए उनका पालन करना आवश्यक कर दिया जाता है।

विधिकी परिभाषा

विधिका विश्लेषणात्मक सिद्धान्त जिसे रूढ या शास्त्रीय सिद्धान्त भी कहते है, ऑस्टिन के नामसे सम्बन्धित है (The analytical theory of law known also as the orthodox or classical theory is associated with the name of Austin)। उनका कहना है कि विधि वह आदेश है जो कि राजनीतिक दृष्टिसे अधिक शक्तिमान द्वारा राजनीतिक दृष्टिसे कम शक्तिमानको दिया जाता है। अन्तिम विश्लेषणमे विधिका एक निश्चित उच्चतर सत्ताका आदेश कहा जा सकता है।

सर हेनरी मन को इस दृष्टिकोण पर आपत्ति है। सर हेनरी मेन इस परिभाषा को अत्यन्त सकीर्ण मानते हैं, क्योकि समाजमें जो प्रचलन (usages) है वे भी विधि के अग है किन्तु उनको इस परिभाषामें कोई स्थान नही दिया गया है। न्यायशास्त्र (jurisprudence) के इस ऐतिहासिक मतके अनुसार विधि विभिन्न सामाजिक बलोका प्रतिफल है।

विधिके निम्नलिखित तीन मुख्य स्रोत है (१) सार्वजनिक स्वीकृति, (२) रीति-रिवाज तथा परम्पराए (customs and conventions), (३) और राजनीतिक अधिकार सत्ता। इनमें से प्रथम दोनो विधिके तात्त्विक स्रोत (material source) हैं और तीसरा औपचारिक (formal) स्रोत है। इस दृष्टिकोणसे विधिकी परिभाषा यह की जा सकती है कि वह समाज के भीतर काम करने वाले कुल ऐतिहासिक, नैतिक, धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक बलोका योग है।

वुड्रो विल्सन की परिभाषा उक्त दोनो, अर्थात्, विश्लेषणात्मक और ऐतिहासिक दृष्टिकोणोंका सुन्दर सामजस्य है। उनके अनुसार विधि हमारे वे आचार-विचार है जिनको सर्वत्रसमान नियमोके रूपमें निश्चित मान्यताए प्राप्त हो जाती है और जिनको सरकार की शक्ति और सत्ताका समर्थन प्राप्त है (Law is that portion of the established thought and habit which has gained distinct and formal recognition in the shape of uniform rules backed by

the authority and power of government)। (गिलक्राइस्ट द्वारा उद्धृत, २८ १६१)

हॉलैण्ड जो ऑस्टिन की परम्पराके अनुयायी मालूम पड़ते हैं, विधिकी परिभाषा इस प्रकार करते हैं 'विधि हमारे बाहरी आचरणो को नियन्त्रित करनेवाले वह सामान्य नियम है जिनका कि एक निश्चित मानवीय सत्ता लागू करती है और यह सत्ता एक राजनीतिक समाजमे उपलब्ध सभी मानवीय सत्ताओम सर्वोपरि होती है, या सक्षेपमे विधि हमारे बाहरी आचरणको नियन्त्रित करनेवाले वह सामान्य नियम है जिनका कि एक सम्प्रभु राजनीतिक सत्ता लागू करती है।' (गिलक्राइस्ट मे उद्धृत २८ १६१)

ऊपर दी गयी परिभाषाओंसे यह स्पष्ट है कि विधिके लिए एक नागरिक समाज का होना आवश्यक है। इसके अलावा, ऊपर की परिभाषाओंम विधिकी निम्नलिखित विशेषताए प्रकट होती है (१) विधि किसी राज्यकी सामाजिक दशाको प्रतिबिम्बित करती है, (२) विधि एक नियम निकाय है (law is a body of rules), (३) विधि व्यक्तिके बाहरी व्यवहारका नियन्त्रण करनेवाली शक्ति है, (४) विधिमे दबाव निहित है जो कि नैतिककी अपेक्षा भौतिक अधिक है (more physical than moral)।

विधिके स्रोत
(Sources of Law)

राज्यकी तरह विधिका विकास भी क्रमश हुआ है और वह अनेक कारको (factors) का प्रतिफल है। हॉलैण्ड विधिके निम्नलिखित स्रोत बताते है

(१) रीति-रिवाज प्रत्येक समाजमें विधिका सबसे पहला स्वरूप रीति-रिवाज है। जहा सामाजिक सगठन सरल या सीधा-सादा है वहा रीति-रिवाज बहुत महत्त्व रखते है। रीति-रिवाज ही वहा के राजा हैं। उनका पालन विविध कारणोसे किया जाता है। एक तो रीति-रिवाजोको माननेकी आदत हो जाती है। दूसरे उनके पालनसे सुरक्षा प्राप्त होती है। आज भी विधिका बहुत बडा अश रीति-रिवाज ही हैं। यह सही है कि लोग रीति-रिवाजोंका पालन आदत या अभ्यासवश ही करते हैं पर इस आदतके पीछे सामाजिक उपयोगिता है। उदाहरणार्थ रक्त सम्बन्धकी कुछ शृखलाओ तक विवाह यदि निषिद्ध है तो वह सिर्फ इसलिए नही कि आदत वश लोगोमे इस रिवाजका अन्धानुकरण हो रहा है बल्कि इस रिवाजके पीछे प्राणिशास्त्र और सन्ततिशास्त्रके गम्भीर कारण भी हैं। जब रीति-रिवाज राज्य द्वारा स्वीकृत हो जाते हैं और उन्हे जबर्दस्ती भी मनवानेका बल प्राप्त हो जाता है, तब वे विधिके पद पर प्रतिष्ठित हो जाते है। इसी सम्बन्धमे मैकाइवर लिखते हैं —
"विधिके विशाल ग्रन्थ में राज्य केवल एकाध नये वाक्य लिख देता है और/दूसर-

उधर एकाध पुराने वाक्य काट देना है। ग्रन्थका अधिकांश राज्य द्वारा कदापि नहीं लिखा गया है (५५ ४७८)'। भारतकी रीति-रिवाज मूलक विधि (customary law) और इग्लैण्डका कामन लॉ इस बातके अच्छे उदाहरण है कि विधिकी रचनामें रीति-रिवाज महत्वपूर्ण भाग लेते है।

(२) धर्म रीति-रिवाज मूलक विधि (customary law) का, विशेषकर प्रारम्भिक समाजोमें, धर्मसे घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। ऐसे समाजोंमें धार्मिक आदेशो, रीति-रिवाजो और विधिके बीच विभेद करना बडा कठिन है। आदिम जातियोंमें रीति-रिवाजोकी तरह ही धर्म भी विधि ही था। धर्माधिकारियोंके फैसलोको दैवी स्वीकृतिकी शक्ति प्राप्त थी और उन्हें न मानने वालोंको दण्ड सहना पडता था। इस प्रकार विधियां अन्धविश्वासो और रीति-रिवाजो, दोनो ही पर आधारित थीं। ये विधियां विभिन्न समाजोंमें विभिन्न माध्यमों द्वारा लागू की जाती थीं जैसे पुरोहित, धर्माध्यक्ष राजा, मुखिया या सभा-पचायत। पूरब और पश्चिमकी विधियोंके बीच मुख्य विभेदोकी चर्चा करते हुए गिलक्राइस्ट ठीक ही लिखते है कि पश्चिम मे विधि की प्रवृत्ति राजनीतिक रूप धारण करनेकी रही और पूरबमे धार्मिक रूप ग्रहण करनेकी (२८ १६७)। हिन्दुओकी विधि मनुसे और मुसलमानोकी विधि शरियत से अपनी प्रेरणा प्राप्त करती है।

(३) पचनिर्णय (Adjudication) जैसे-जैसे सामाजिक सगठन जटिल होता गया और नयी-नयी परिस्थितियां उत्पन्न होती गयीं वैसे-वैसे रीति-रिवाजोसे ही काम पूरा पडना सम्भव नहीं रहा। उनका पचनिर्णय (adjudication) तथा कानूनी फैसलोंसे समृद्ध करनेकी आवश्यकता पडी। जब विभिन्न कबीलोंने व्यापार, विवाह और इसी प्रकारके अन्य कार्योंके लिए सम्पर्क स्थापित हुए तब इन विभिन्न कबीलोके रीति-रिवाजोमें टक्कर होने लगी। इस प्रकारके मसलोंको समाजके सबसे अधिक बुद्धिमान लोगोके हाथोंमें सौपा गया। उन्होंने जो फैसले दिये उनको भविष्य में पैदा होनेवाली उसी प्रकारकी समस्याके लिए भी मान्य समझा गया। गिलक्राइस्ट का कहना है कि इस प्रकारके उदाहरण बनाने वाले निर्णय (judicial precedents) पहले मौखिक होते थे, फिर वे परम्परा द्वारा एक पीढीसे दूसरी पीढीको प्राप्त होने लगे और अन्तमें उन्हें लिखा जाना शुरू हो गया। गेटेल के शब्दोंमें 'राज्य की आवश्यकता विधि-निर्माताके रूपमें नहीं, बल्कि रीति-रिवाजोकी व्याख्या करनेवाले और उन्हे लागू करनेवाले के रूपमें हुई।' विधिकी व्याख्या करना और उसके द्वारा विधिका सशोधन करना आज भी हमें दिखाई देता है। समाजके निखरते हुए स्वरूपके साथ रीति-रिवाजो और विधियोंका सामंजस्य होता रहता है।

(४) वैज्ञानिक टीकाएं (Scientific Commentaries) ये अदालती फैसलों या पचनिर्णयसे भिन्न होती हैं। सर विलियम मार्कबी जिनको गिलक्राइस्ट ने उद्धृत किया है, लिखते हैं "पहले-पहल जब कोई टीका प्रकाशमें आती है तो उसका

उपयोग सहमत करनेके लिए तर्कके रूपमे किया जाता है, न कि अनिवार्य रूपमें लागू होने वाले अधिकारिक वक्तव्यके रूपमे (२८ १६२)" न्यायशास्त्री और बड़े लेखक अपने विचार टीकाओंके द्वारा प्रकट करते है, और जब ये विचार स्वीकार कर लिये जाते है तब उन्हे निर्णयो के समान मान लिया जाता है। इग्लैण्ड म एडवर्ड कोक, लिटिल्टन ब्लैक्स्टन आदि की सम्मतियो का बहुत आदर किया जाता है। यही बात मिताक्षरा और दायभागके सम्बन्धमे भी कही जा सकती है।

अदालती फैसलो और टीकाओमे यह अन्तर होता है कि फैसले विशिष्ट मामलोमें ही लागू होते है जब कि टीकाओका सम्बन्ध सूक्ष्म सिद्धान्तोसे रहता है। गिलक्राइस्ट के शब्दोमें, टीकाकार विधि-सिद्धान्तो, रीति-रिवाजो और फैसलोंका चयन करता है, उनकी तुलना करता है और उन्हे युक्ति पूर्वक व्यवस्थित करता है। फिर वह उनमे से ऐसे निर्देशक सिद्धान्तोंको प्रतिष्ठित करनेका प्रयत्न करता है जो भविष्यमें सम्भावित समस्याओमे पथ निर्देश कर सकें। इस प्रकार वह नयी विधियो के लिए आधार तैयार करता है, किन्तु वह स्वय विधिका निर्माण नही करता। वह कमियों (omissions) की ओर सकेत करता है और उनकी पूर्तिके लिए सिद्धान्त स्थिर करता है।

(५) **साम्याधिकार (Equity)** गिलक्राइस्ट ने साम्याधिकारकी व्याख्या इन शब्दोम की है 'सबके साथ समान व्यवहार और स्वाभाविक निष्पक्षता (equality of treatment and intrinsic fairness) के कारण साम्याधिकार (equity) अनौपचारिक तरीकेसे नयी विधियोको जन्म देता है और पुरानी विधियोम सशोधन करवाता है (२८ १६७)। मूल विधियोके साथ-साथ साम्याधिकारके कुछ नियम भी सदैवसे उपस्थित रहते हैं। ये नियम कुछ विशिष्ट सिद्धान्तो पर आधारित होते है जिनकी पवित्रताकी रक्षाके प्रयासम ये मूलविधियोका भी अवक्रमण (supercession) करनेका अधिकार जताते है।

रोमन युगका आयस जेण्टियम (ius gentium) साम्याधिकारके सिद्धान्तका ही दूसरा नाम था। जिन समस्याओम मौजूदा विधि ठीक तरह से लागू नहीं होती थी उनमे न्यायाधीशको सामान्यबुद्धि और निष्पक्ष दृष्टिकोणका उपयोग करके स्वय निर्णय करना होता था। समानता या साम्याधिकारके इस सिद्धान्तका ही, गिलक्राइस्ट के अनुसार, आयस जेण्टियम कहा जाता था। रोमन न्यायाधीश पद ग्रहण करते समय यह घोषित करता था कि उसकी पदावधिमे न्यायशासन किस प्रकार होगा। साम्याधिकार इस घोषणाका आधार होता था और वस्तुत प्रकृति की विधि (law of nature) साम्याधिकार का आधार है।

गिलक्राइस्ट साम्याधिकारको तीन वर्गोमे विभाजित करते हैं (१) बाह्य विषयक (exclusive), (२) समविषयक (concurrent), और (३) सहायक (auxiliary)। "जब साम्याधिकार उन अधिकारोको स्वीकार करता है जो सामान्य विधि (common law) मे स्वीकार नहीं किये गये है तब उसे बाह्य विषयक कहा जाता है। उस समय साम्याधिकार समविषयक कहलाता है जब सामान्य विधि अधिकारों

को स्वीकार तो करती है पर उनकी प्राप्ति या रक्षाके लिए पर्याप्त नही होती। उन समस्याओंसे सम्बन्धित साम्याधिकार सहायक कहलाता है जिनमे पर्याप्त साक्ष्य (evidence) नही प्राप्त हो सकता है (equity is auxiliary where the necessary evidence can not be procured) (२८ १९८)।

(६) **विधिनिर्माण (Legislation)** यह विधिका अन्तिम लेकिन सबसे सबल स्रोत है। यह जनताकी इच्छाकी अभिव्यक्ति है। लोकतन्त्रीय देशोमे यह अभिव्यक्ति जनता द्वारा चुनी गयी विधान सभाओ द्वारा होती है। साम्याधिकार, कानूनी फैसलो और वैज्ञानिक टीकाओ आदि का प्रभाव तो निरन्तर इस पर पडता रहता है पर यह उन सबका आत्मसात् कर लेता है।

वुड्रो विल्सन ने विधिके विकासकी सारी प्रक्रियाका निम्नलिखित शब्दोमे बडा विद्वत्तापूर्ण साराश दिया है —

रीति-रिवाज विधिका आदिम स्रोत हैं, लेकिन धर्म उसके समकालीन और उसी के समान ही सफल स्रोत है। राष्ट्रीय विकासकी एक ही अवस्थामे ये दोनो ही स्रोत प्राय. घुले-मिले रहते हैं। पचनिर्णय (adjudication) का उदय स्वय एक अधिकार सत्ताके रूपमे होता है और बहुत पुराने समयसे वह साम्याधिकारके साथ साथ चल रहा है। विधिका चेतन और सायास सगठन (conscious and deliberate organization of law) अर्थात् विधि निर्माण (legislation) एक राजनीतिक प्रौढ़ समाजमें ही सम्भव है। वैज्ञानिकविमर्श और तर्क, विधि निर्माणमे तब सक्रिय सहायता देता है जब कि समाजका काफी विकास हो जाता है।

विधिके प्रकार

(Types of Law)

मैकवाइवर ने इस प्रकार विधिका वर्गीकरण किया है —
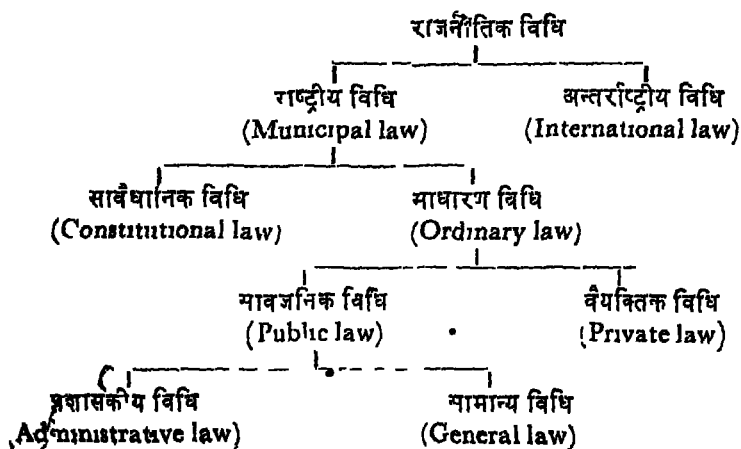
सांवैधानिक विधि (Constitutional law). जिस विधि द्वारा राज्य स्वय नियन्त्रित होता है और जिस विधि द्वारा राज्य जनता पर शासन करता है इन दोनों मे प्राय भेद किया जाता है। पहले प्रकारकी विधिका सावैधानिक विधि और दूसरे प्रकार की विधिको साधारण विधि कहते है। सावैधानिक विधि अशत लिखित और अशत अलिखित होती है। साधारण विधि ता विधि निर्माण की नियमित पद्धति द्वारा बनायी जाती है किन्तु सावैधानिक विधि विधान मण्डलकी इच्छाके भी ऊपर अन्तिम सम्प्रभुकी इच्छासे बनती है। मैकाइवर कहते हैं कि सावैधानिक विधि सरकारके विभिन्न विभागोके कर्त्तव्योका निश्चित करती है और शासको और शासितोके बीच सम्बन्ध निर्धारित करती है। इसका उदय समाजकी एकताके उत्तर मे होता है जो निश्चित और स्पष्ट रूपमे यह स्थिर करता है कि राज्यको क्या करना चाहिए और उसका सगठन कैसे होना चाहिए। सावैधानिक विधि, यह भी तय कर देती है कि कानूनकी नजरोमे सरकार (govern ment) और जनता बराबर है। सरकारको कोई कानूनी रियायत या विशेषाधिकार नहीं मिलते।

साधारण विधि (Ordinary law) मैकाइवर ने ठीक कहा है कि राज्य विधिसे बनता भी है और उसका बनाताभी है (५५ २७२)। जनकके रूपमे राज्य अपने विधान मण्डलो द्वारा विधि बनाता है। ये विधिया नागरिकोके पारस्परिक सम्बन्धो और राज्यके साथ नागरिकोके सम्बन्धोका नियमन करती है, और इन्हे साधारण विधि या लिखित विधि (statute स्टैट्यूट) कहते है। अदालते उन्हे स्वीकार करती है और उन्हे भग करने वालोको दण्ड देती हैं।

सार्वजनिक विधि और वैयक्तिक विधि (Public law and private law). साधारण विधिको सार्वजनिक और वैयक्तिक दो वर्गोमें बाँटनेका श्रेय श्री हॉलैण्ड को है। उनके अनुसार सार्वजनिक विधिका सम्बन्ध राज्यके सगठन, सरकारी कार्योके परिसीमन (limitation of govenmental functions) और राज्य तथा व्यक्तिके सम्बन्धोसे है। इसके विपरीत व्यक्तिगत विधि व्यक्तियोके पारस्परिक सम्बन्धोका नियमन करती है। यह व्यक्तियोके अधिकारो और उत्तरदायित्वोको निश्चित करती है और उनका नियमन (regulation) करती है। स्वय हॉलैण्ड के शब्दोमें वैयक्तिक विधिम सम्बन्धित उभय-पक्ष अर्थात् दोनों पक्ष नागरिक होते है, राज्य जिनके ऊपर और जिनके बीच एक निष्पक्ष पचके रूपमे विद्यमान रहता है। यद्यपि सार्वजनिक विधिमें भी राज्य एक निष्पक्ष पचके रूपमें स्थित रहता है तथापि वह सम्बन्धित पक्षोमें से एक पक्ष स्वय होता है।

राष्ट्रीय विधि (Municipal law) सार्वजनिक और वैयक्तिक विधि दोनो मिलकर राष्ट्रीय विधि कहलाती है। यह राज्यकी सीमाके अन्दर सभी व्यक्तियो और सघो पर लागू होती है और राज्यकी सर्वोच्च सत्ता द्वारा लागू की जाती है।

अन्तर्राष्ट्रीय विधि (International law) इसका विवेचन अध्यायके अन्तमे किया गया है।

प्रशासकीय विधि (Administrative law) यह राज्यका, अपने कर्मचारियोके साथ, सम्बन्ध निश्चित करती है। यह सार्वजनिक विधिका वह अंग है जो प्रशासकीय संगठन और प्रशासकीय कर्मचारियोकी अधिकार सीमाका निर्धारण करती है और नागरिकोको बताती है कि प्रशासका द्वारा उनके अधिकारोके कुचले जाने पर अपनी रक्षाके लिए उन्हे क्या करना चाहिए। फ्रांसकी न्याय-पद्धति (judicial system) की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि जब कोई राजकीय कर्मचारी उसको दिये गये अधिकारोका उल्लघन या अतिलघन करता है या उनका मनमाना उपयोग करता है तब उसके विरुद्ध आक्षेपकी सुनवाई साधारण विधिके अन्तर्गत साधारण न्यायालयोमे न होकर प्रशासकीय विधिके अन्तर्गत प्रशासकीय न्यायालयो मे होती है।

विधि और नैतिकता
(Law and Morality)

साधारणतया यह कहा जा सकता है कि विधि राजनीति-शास्त्रके विद्यार्थियोका विषय है और नैतिकता, नीतिशास्त्रके विद्यार्थियोका। फिर भी दोनोका काफी क्षेत्र एक ही है। क्योकि राजनीति-शास्त्र भी तो राज–नीति शास्त्र ही है और राजनीतिशास्त्र और नीतिशास्त्र दोनो ही मनुष्यका अध्ययन समाजमे एक नैतिक व्यक्तिके रूपमें ही करते है। किसी लेखक का कहना है कि राज्य का उद्देश्य व्यवस्था कायम करना और व्यक्तित्वका आदर करना है। मैकाइवर के अनुसार राज्य सामाजिक व्यवस्थाकी उन सर्वव्यापी बाहरी परिस्थितियोका निर्माण करता है जो स्वतन्त्र और नैतिक व्यक्तित्वके विकास और अभिव्यक्तिके लिए आवश्यक है। पर यह बात स्पष्ट है कि राज्य स्वयं नैतिकताके लक्ष्यको प्राप्त नही कर सकता क्योकि नैतिकता मनुष्यकी एक स्वयं अर्जित विभूति है। हालाकि राज्य मनुष्यको नैतिक नही बना सकता फिर भी वह उसे नैतिक बनानेके लिए प्रेरित कर सकता है या उसके चारो ओर ऐसा सामाजिक और भौतिक वातावरण उत्पन्न कर सकता है जिसमे नैतिक जीवन बिताने की स्वत प्रवृत्ति फलीभूत हो सके। विधि और नैतिकता के क्षेत्र, सामर्थ्य और निश्चिततामें अन्तर है। राजनीतिक विधि मनुष्यके चिंतन या उसकी चेतनाके आन्तरिक स्रोताको नही छूती। अर्नेस्ट बार्कर के शब्दोमे 'अन्त करण के मामलोमे किसीको मजबूर नही किया जा सकता'। विधि मानव जीवनकी परिधियोको ही छूती है पर नैतिकताका सम्बन्ध मनुष्यके समस्त जीवनसे होता है। मनुष्यके विचार, उसके प्रेरक (motives) और कृत्य सब कुछ नैतिकताके क्षेत्रमे आ जाते है। विधि बाहरी कार्योंका नियमन कर सकती है किन्तु सारी नैतिकताका नही। मनुष्यके विचार और मतव्य जब कार्य रूपमे परिणत होते है तभी वह विधिके दायरेमे आ सकते है। झूठ नीचता, ईर्ष्या, द्वेष कृतघ्नता और धूर्तता, सब नैतिक

दृष्टिसे गलत हैं पर कानूनकी दृष्टिसे वे अपराध नही है। कोई व्यक्ति अपने व्यक्तिगत जीवनमे चाहे जितना झूठा हो पर जब तक वह किसी का ठगता नही या किसी करार का तोडता नही तब तक वह विधिके फन्देमे नही आ सकता।

विधिके पालनका बहुत बडा कारण उसके पीछे होनेवाली भौतिक शक्ति है किन्तु नैतिकताके पालनका कारण मनुष्यका अन्त करण, सामाजिक रोष और परमात्माके कोपका भय है। विधिकी अवहेलना करने पर दण्डके भय और पालन करने पर लाभके विनाशके बल पर राज्य अपनी आज्ञाका पालन करवाता है, किन्तु नैतिकता तो मनुष्यके अपने, भले-बुरेके, विवेक पर टिकी हुई है और इस बात पर भी कि समाज किस बातकी प्रशसा करेगा और किस बातकी निन्दा। साराशमे कह सकते है कि नैतिकताके पीछे सार्वजनिक निन्दाका और विधिके पीछे शारीरिक दण्ड का बल रहता है। विधि और नैतिकताकी व्याप्ति (scope) और निश्चितता (definiteness) में और भी अन्तर है। विधि सबके लिए एक है (law is universal) और नैतिकताकी तुलना में यथार्थ या स्पष्ट (exact), अपरिवर्त्य (consistent) और सुनिश्चित (definite) होती है। नैतिकतामे अनिश्चितता और अस्पष्टता का काफी पुट रहता है। यह मानना ही होगा कि प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए स्वय ही यह निर्णय करता है और कर सकता है कि क्या नैतिक है और क्या अनैतिक। अत नैतिक मानदण्ड हरेकके लिए अलग-अलग होगा। इस सम्बन्धमे मैकाइवर लिखते हैं "नैतिकता और विधिका क्षेत्र पूर्णरूपेण एक नही हो सकता। नैतिकता हमेशा व्यक्तिगत होती है और उसका निर्णय किसी स्थितिकी सम्पूर्ण बातो पर गौर करके ही किया जा सकता है जब कि राजनीतिक दृष्टिकोण इस स्थितिका केवल एक पक्ष ही होता है (४५ १४६)।"

नैतिक-कर्त्तव्य और वैधिक दायित्व (obligation) हमेशा एक ही नही होते। इसलिए यह आवश्यक नही कि जो नैतिक दृष्टिसे अनुचित हो वह कानूनी दृष्टिसे भी गलत हो। अपने आपको विलासितामे लिप्त रखना नैतिक दृष्टिकोणसे निन्दनीय है पर कानूनमे वह अपराध नही है। नीतिशास्त्रका आज इतना विकास हो चुका है कि किसी कारखानेका मालिक स्वय यदि ५००० रु० मासिक खर्च करे और अपने श्रमिकको ५० रु० मासिक दे तो नैतिक दृष्टिसे यह अनुचित कहलायेगा। किन्तु विधिकी दृष्टिमे यह कोई अपराध नही है। यद्यपि लोक कल्याणकारी राज्य इस बातका प्रयत्न कर रहा है कि नैतिकता के अधिकसे अधिक प्रश्नोको विधिके क्षेत्रमे घेर ले। और आगे चलकर यह आशाकी जाती है कि मालिकका ऐसा कृत्य वैधिक दृष्टिसे भी अनुचित ठहरा दिया जायगा। यह भी जरूरी नही है कि जो राज्य द्वारा निषिद्ध हो वह सब नैतिक दृष्टिसे अनुचित हो। भारत, इग्लैण्ड और कई अन्य देशोमे सडकके बाई ओर से जाना वैधिक है पर इसमे नैतिक औचित्यका कोई विशेष प्रश्न नही है। बल्कि सयुक्त राज्य अमेरिका और योरोप के कई देशोमे तो दाहिनी ओरसे जानेका नियम है। विधि के निर्माणमे कार्यान्वित करनेकी क्षमता और सुविधाका ध्यान रखना पड़ता है जब

कि नैतिकता पूरी तौरसे यह देखती है कि क्या सही है और क्या गलत, क्या उचित है और क्या अनुचित। वह नैतिकता ही क्या जो सुविधासे समझौता (compromise) कर ले। सार्वलौकिक सत्यों (universal values) की जो धारणाएं व्यक्तिके अन्दर बन जाती है और उनके जो अर्थ वह लगाता है उन्हींसे नैतिकताका निर्माण होता है।

"सभी नैतिक दायित्वोको वैधिक दायित्व बना देना नैतिकताको नष्ट करना होगा (५५ १५७)।" इसका अर्थ यह है कि राज्य नैतिकताके आदेश नही दे सकता क्योकि नैतिकता तो वह है जो स्वत प्रेरित हो। राज्य द्वारा लादी गयी नैतिकता, जबर्दस्ती कहला सकती है, नैतिकता नही।

जैसा कि ऊपर कहा गया है नैतिकता आन्तरिक विश्वास और अत करणका विषय है और इसलिए यह आसानीसे नियन्त्रणमे नही आती।

नैतिकता और विधिमे समानता

फिर भी विधि और नैतिकतामें काफी हद तक समानता है। यदि जनता अच्छी है तो राज्य भी अच्छा होगा, और यदि राज्य अच्छा है तो जनता भी अच्छी होगी। प्लेटो के प्रसिद्ध शब्दोमे 'सबसे अच्छा वह राज्य है जिसम इतनी अच्छाइया हो जितनी कि एक व्यक्तिमे सम्भव है। यदि राज्यके किसी अगको क्षति पहुचती है तो पूरे राज्यकी हानि होती है।' या जैसा कि किसी अन्य लेखक ने कहा है "यह सही है कि आत्माका उद्धार (salvation) मनुष्यके प्रयत्नोंसे ही सम्भव है किन्तु मनुष्य तो राज्यमे ही रहता है।' दूसरे शब्दोमे व्यक्ति अपना पूण विकास राज्यकी सहायता से ही कर सकता है। उसके नैतिक जीवनकी सबसे बडी शर्त यही है। राज्य द्वारा प्रदत्त, व्यवस्था, समानता और न्यायके अभावमें आत्मा घुटने लगेगी।

राज्य एक ओर उन परिस्थितियोकी वृद्धि कर सकता है जो नैतिकताके लिए हितकर है और दूसरी ओर उन परिस्थितियोंको दूर कर सकता है जो उसके लिए अहितकर है। गिलक्राइस्ट इसी बातको इस प्रकार कहते है 'नैतिक प्रहरीके रूपमे राज्य एक ओर तो अच्छी विधिया बनाता है अर्थात् ऐसी विधिया बनाता है जो जनताके सर्वोच्च नैतिक हिताके अनुकूल होती है, और दूसरी ओर उन विधियाको रद्द करता चलता है जो जनताके लिए अहितकर हो गयी हो।' विधि और नैतिकता का इतना गहरा सम्बन्ध है कि अक्सर गैरकानूनी और अनैतिकमे अन्तर करना मुश्किल हो जाता है। क्योकि प्राय जो गैर कानूनी है वह अनैतिक भी है और जो कानूनन् ठीक है वह नैतिक भी है। किन्तु जो आज गैर कानूनी है वह कल नैतिक हो सकता है और इसलिए तब कानूनका बदलनेकी आवश्यकताका अनुभव होगा क्योकि तब वह गैर कानूनी यानी गलत लगेगा।

हर मामलेमे इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि मनुष्यके व्यक्तित्वकी समृद्धि ही विधिका उद्देश्य है। राज्यको स्वय उद्देश्य मान लेना भारी भूल होगी। क्योकि राज्य तो असली उद्देश्य पर पहुचनेका एक साधन मात्र है।

विधि और राज्य
(Law and State)

कोकर के अनुसार, राज्यकी सत्ताको सीमित करनेके प्रयत्न, तीन दृष्टिकोणोसे किये गये हैं। प्रथम तो यह कि व्यक्तिको कुछ जीवन चर्या ऐसी भी होती है जिसमे राज्य का दखल अनुचित होगा। अपने इस कार्यक्षेत्र का वह अपनी और अपने समाजकी प्रकृति और प्रवृत्तिके अनुसार और सत्-असत्के सार्वलौकिक या निर्विवाद सिद्धान्तोंके ऊपर आधारित करना चाहता है। इस दृष्टिकोणका राजनीतिशास्त्र मे आमतौर पर व्यक्तिवाद कहा जाता है और इसके साथ प्राकृतिक अधिकारो और विवेककी स्वाधीनता जैसे सहगामी विचार जुडे रहते है।

राज्यके अन्दर बहुतसे सामाजिक और आर्थिक सघ हैं जो स्थायी रूपसे क्रिया-शील हैं। कुछ लेखकोका मत है कि इनका पूर्ण आन्तरिक स्वतन्त्रता होनी चाहिए क्योंकि राज्य सघोका सघ ही तो है। यह दूसरा दृष्टिकोण है जो राज्यकी सत्ताको सीमित कर देना चाहता है। इसका बहुलवाद (pluralism) कहते है।

कुछ विचारक स्वय विधिके दृष्टिकोणसे ही राज्यके ऊपर एक तीसरे प्रकारका प्रतिबन्ध लगाना चाहते है। इन विचारकोका कहना है कि विधि केवल राज्यकी सृष्टि मात्र नही है बल्कि वह राज्यसे पूर्वकालीन और उससे उच्चतर भी है। यूनान के दार्शनिक, राजकीय आज्ञप्तियो (State decrees) और विधियोंमें अन्तर मानते थे और विधियाको उच्चतर स्थान देते थे। जहा एक ओर हर समुदायकी एक लिखित विधि होती थी जिसका उपयोग सीमित होता था और जो समयके साथ बदलती रहती थी, वहा उसके पीछे एक अलिखित विधि भी होती थी जिसे 'प्राकृतिक विधि', 'दैवी विधि' या 'सार्वलौकिक विधि' के नामोसे पुकारा जाता था और जो समयके साथ बदलती नही थी। जिस राज्यमें 'मानवीय विधि', 'दैवी विधि' के अनुरूप नही होती थी उसे भ्रष्ट राज्य कहा जाता था।

आधुनिक विधिकी नीव रखनेमे प्राकृतिक विधि (natural law) के विचार ने रोमन युग, मध्ययुग और उसके बाद भी बडा महत्त्वपूर्ण भाग लिया। इसने विधि का एक आदर्श स्तर कायम किया। विवेकके द्वारा इसकी व्याख्या की जाती थी। आधुनिक युगमे अन्तर्राष्ट्रीय विधिके जन्मदाता ह्यूगो ग्रोशियस की शिक्षाओमे भी यह दृष्टिकोण पाया जाता है।

आधुनिक राजनीतिशास्त्रके विवाद ग्रस्त प्रश्नोमे से एक प्रश्न यह भी है कि क्या विधान मण्डल और न्यायालय इस बातका निर्णय करते है कि विधि क्या है और क्या होनी चाहिए? अथवा क्या राज्यके ये संस्थान कही अन्यत्र हुए वैधिक निर्णयोको केवल अगीकार और लागू भर करते हैं? कुछ लोग विधिको समस्त राजनीतिक सत्तासे ऊँचा मानते है।

इतिहासीय मत (ऐतिहासिक नही) (Historical school) जिसको जर्मनीमें

गुस्ताव फॉन ह्यगो (१७६४—१८४४) ने प्रतिपादित किया और साविन्यी (Savigny, १७७९—१८६१) ने भी माना यह है कि प्राकृतिक या सार्वलौकिक विधि जैसी कोई चीज नहीं है। विधि तो किसी राष्ट्रके निजी अनुभवों और लक्षणों (characteristics) से तय होती है। उसकी उत्पत्ति तो उसी राष्ट्रकी विचार प्रणाली और उसकी इच्छा (will) से होती है। भौतिक बल ऐसी विधिकी वास्तविक शक्ति नहीं होता। यह शक्ति तो उनकी आदतोंमें, उनकी धारणाओं (opinions) में, उनके संवेगों (emotions) में और गलत तथा सही या पाप और पुण्यके उनके मान दण्डोंमें है।

आदेशवादियों (positivists) का कहना है कि विधि निश्चित राजनीतिक सत्ताओंके आदेश है। उपयोगितावादी विधिको, मानवकल्याण का एक साधन—मानव सुखके स्थिर लक्ष्यका एक परिवर्तनशील उपाय—मानते है। फॉन जेरिंग के अनुसार विधि लक्ष्य प्राप्तिका एक उपाय है और यह लक्ष्य व्यक्तिका अधिकार नहीं बल्कि समाजका कल्याण है

डिग्वी, क्रैब और लास्की यह स्थापित करना चाहते हैं कि विधिका असली स्रोत राज्य नहीं है। डिग्वी सामाजिक गठबन्धनके विचार (conception of social solidarity) को और क्रैब समाजके विवेक (sense of right) को विधि का स्रोत बताते है। डिग्वी के अनुसार, समाजमें रहनेवाले मनुष्योंके आचरणका नियत्रण करने वाले नियमोंको विधिकी संज्ञा दी जाती है। लोग उनका पालन आदेशके रूपमें नहीं बल्कि सामाजिक जीवनकी आवश्यकताओंके रूपमें करते है। विधि राज्य पर निर्भर नहीं है और उससे प्राचीन, उच्चतर और अधिक व्यापक है (Law is independent of, anterior to above and more comprehensive than the state)। क्रैब ने विधिकी परिभाषा यह दी है उन नियमोंकी सम्पूर्ण सहति जो सामान्य या विशिष्ट हों, लिखित या अलिखित हों, जिनका उद्भव मनुष्यके विवेक और उसकी न्याय भावनामें हुआ हो। विधि समाजका वह निरूप है जिसकी मांग समाजके सही बुद्धिवाले बहुमतकी न्याय भावना करती है। विधि इस प्रकार राज्यसे ऊपर और स्वाधीन है।

'विधिकी कसौटी क्या है?' इस प्रश्नका उत्तर देते हुए लास्की कहते हैं कि केवल कानूनी औचित्य ही सरकारको इस बातका अधिकार नहीं देता कि वह बलात् अपनी आज्ञाओंका पालन कराये, बल्कि इस अधिकारमें नैतिक औचित्य भी होना आवश्यक है। इस दृष्टिकोणको मानते हुए लास्की ने हॉब्स के परमपूर्ण सम्प्रभुताके दृष्टिकोणकी आलोचना की है। लास्की का मत है कि जिन लोगों ने चार्ल्स प्रथमके विरुद्ध, १८ वीं शतीके फ्रांसीसी नरेश के विरुद्ध और १९१७ में रूसके जार के विरुद्ध विद्रोह किया था, उन्होंने कानूनकी कोई अवज्ञा नहीं की। अपितु वे लोग उस विधि के प्रति निष्ठावान थे जो राज्यके ऊपर है। लास्की का कहना है कि विधिका स्रोत न तो राज्य है और न समुदाय। बल्कि विधिका स्रोत व्यक्ति है जो अपने अन्तःकरणके

अनुसार चलना है। विधिका स्रोत वह विचार है जिनकी कि मन गवाही देता है। इस प्रकार विधिका असली स्रोत व्यक्तिकी सहमति है। उत्तम विधि वह है जो व्यक्तिकी यथा सम्भव अधिकसे अधिक आकांक्षाओंका पूरा करे। ऐसी ही विधि पालनकी जानेकी अधिकारिणी है।

अन्तर्राष्ट्रीय विधि

अपनी प्रसिद्ध कृति 'इण्टरनेशनल पालिटिक्स' में श्री एफ० जी० शूमन ने लिखा है कि आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय समाजकी तीन आधार शिलाएं हैं—

राष्ट्रीय सम्प्रभुताकी धारणा (concept of national sovereignty), शक्ति सन्तुलनकी राजनीति (politics of balance of power) और अन्तर्राष्ट्रीय विधिके सिद्धान्त (principles of international law)।

हम यहाँ इनमें से तीसरी, अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय विधि, पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे।

अन्तर्राष्ट्रीय विधिकी प्रकृति और अर्थ (The Nature and Meaning of International law)

यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय विधिका प्रारम्भ बहुत पुराने जमानेमें हुआ था, किन्तु अधिकतम यह योरोपीय इतिहासकी पिछली तीन शताब्दियोंमें अन्तर्राष्ट्रीय मसलोंमें प्राप्त अनुभवोंकी देन है।

श्वार्जेनबर्जर (Schwarzenberger) और ब्रायर्ली (Brierly) के अनुसार निम्नलिखित कारकों (factors) ने अन्तर्राष्ट्रीय विधिके विकासमें बहुत अधिक योग दिया है।

(१) अमेरिकाकी खोज और भारतके लिए नये जलमार्ग मिलनेसे व्यापार और साहसिक अभियानोंको नई प्रेरणा और शक्ति।

(२) आधुनिक युगकी नवजागृति द्वारा निर्मित बौद्धिक पृष्ठभूमि (The common intellectual background created by the renaissance)।

(३) योरोपके विभिन्न देशोंमें रहनेवाले ईसाई धर्मावलम्बियोंमें परस्पर सहानुभूतिकी भावनाका ऐसी निष्ठाको जन्म देना जो राज्योंकी सीमाओंको पार कर गयी।

(४) आधुनिक युगके प्रारम्भमें जिस नृशंसताके साथ युद्ध लड़े गये उसके कारण सब लोगोंमें उत्पन्न युद्धके विरुद्ध घृणा और विरक्तिकी भावना। ह्यूगो ग्रोशियस ने ड्यूर बेली ए पासी (De jure belli et pacis) नामक जो ग्रन्थ रचा उसमें उसने युद्ध और शान्तिकी विधिका ऐसा विवेचन किया जिसने युद्धोंको हमेशाके लिए बन्द करनेकी नहीं तो कमसे कम उन्हें तर्कसंगत (rational) बनानेकी सफल प्रेरणा तो दी ही।

राष्ट्रीय सम्प्रभुता और अन्तर्राष्ट्रीय विधि

राष्ट्रीय सम्प्रभुताकी चरम धारणा और प्रकृतिवादियों द्वारा इस धारणाकी अस्वीकृतिके झगड़ेको ग्रोशियस ने सम्प्रभुताकी परिमार्जित परिभाषा देकर तय कर दिया है। उनके अनुसार राष्ट्रीय सम्प्रभुता बाहरी कारकोंसे सीमित होती है। उन्होंने सम्प्रभुताकी परिभाषा इस प्रकारकी "वह शक्ति जिसके कृत्य किसी दूसरी शक्तिके नियन्त्रणमें न हों ताकि उन कृत्योंको कोई दूसरी मानवीय इच्छा अपने कृत्यों द्वारा प्रभावहीन न कर सके"। ग्रोशियस सम्प्रभुता को निरंकुश नहीं मानते थे। उनका कहना था कि सम्प्रभुता दैवी विधि द्वारा, प्रकृति की विधि द्वारा, राष्ट्रोंकी विधि द्वारा तथा शासक और शासितोंके बीच हुए करार द्वारा सीमित है। ग्रोशियस के लिए महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि जहां एक ओर सम्प्रभुताको ऊपर बताये गये कारक सीमित करते हैं वहाँ दूसरी ओर यदि कोई राज्य बाहरी तौरसे किसी दूसरे राज्य के नियन्त्रणसे मुक्त है तो अन्य राज्योंके साथ अपने सम्बन्धोंमें वह सम्प्रभुतासम्पन्न है जैसा कि एक आधुनिक लेखक ने कहा है, 'आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय विधिकी पूरी इमारत इसी विचारकी नींव पर खड़ीकी गयी है"।

अन्तर्राष्ट्रीय विधिकी परिभाषाएँ

लॉरेंस अन्तर्राष्ट्रीय विधिकी परिभाषा इस प्रकार करते हैं 'वे नियम जो सभ्य राष्ट्रोंके समुदायके पारस्परिक व्यवहारोंमें उनके आचरणका निर्धारण करते हैं।' ब्रायर्ली के अनुसार, "यह आचरणके उन नियमों और सिद्धान्तोंका समूह है जो सभ्य राष्ट्रों पर उनके पारस्परिक सम्बन्धोंमें लागू होते हैं।" फेन्विक के लिए इसका अर्थ है "उन सामान्य सिद्धान्तों और निर्दिष्ट नियमोंका समूह जो अन्तर्राष्ट्रीय समाजके सदस्यों पर उनके पारस्परिक सम्बन्धोंमें लागू होते हैं। पिट कॉबट का मत है कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि 'उन नियमोंका निष्कर्ष है जो सभ्य राष्ट्रों द्वारा एक दूसरेके प्रति और एक दूसरेकी प्रजाके प्रति उनके आचरणके लिए स्वीकार किये गये हों। ओपेन-हेम इसकी परिभाषा इस प्रकार करते हैं प्रथागत और परम्परागत ऐसे नियमोंका समूह जो सभ्य राष्ट्रों द्वारा उनके पारस्परिक व्यवहारमें वैध रूपसे मान्य माने जायें।

सबसे मुख्य प्रश्न तो यह है कि विधिकी प्रकृतिको देखते हुए अन्तर्राष्ट्रीय विधिका विधि माने जानेका दावा कहाँ तक उचित है? अब हम इस प्रश्नका उत्तर देंगे।

क्या अन्तर्राष्ट्रीय विधि वास्तवमें विधि है?

यदि विधिकी व्याख्या 'सम्प्रभुताकी इच्छा' के उसी अर्थमें करनी है जिसमें हॉब्स

और ऑस्टिन ने की है तब तो अन्तर्राष्ट्रीय विधिका विधि होनेका दावा चूर-चूर हो जायगा। ओपेनहेम (इण्टर नेशनल लॉ, पृष्ठ ७) ठीक ही कहते है कि विधिकी ऐसी सकीर्ण और जकडी परिभाषा प्रथागत विधि (customary law) के अस्तित्वको भुला देती है और साथ ही यह परिभाषा यह गलत पूर्वकल्पना बना लेती है कि प्रत्येक विधिके लिए हमेशा पहले एक विधि निमात्री प्रभुता (law making authority) होनी है और विधि कहे जानेके पहले उसे अभिस्वीकृति (recognition) मिल जानी चाहिए। विधिकी जिस धारणा पर यहाँ विचार किया जा रहा है वह केवल अशत ठीक है क्योकि यह विधिके तत्व और व्याप्तिकी सम्पूर्णताकी उपेक्षा करती है। ओपनहेम विधिकी और अधिक वैज्ञानिक परिभाषा देकर इस समस्याका समाधान करते हैं। वह परिभाषा यह है 'समाजके भीतर मानव आचरण सम्बन्धी ऐसे नियमोका समूह जिन्हे समाजकी सामान्य स्वीकृतिसे बाहरी शक्ति द्वारा लागू किया जाय।" इसका अर्थ है कि विधिके निम्नलिखित तीन तात्विक अग है (१) एक समाज (२) उस समाजके भीतर मानव आचरणके लिए नियमोका एक समूह (प्रथागत और परम्परागत दोनो ही) और (३) इन नियमोका बाहरी शक्ति द्वारा लागू किया जाना। ओपेनहेम कहते हैं कि समाज ऐसे व्यक्तियोका एक समूह है जो न्यूनाधिक रूपमे सामान्य हितो द्वारा एक दूसरेसे बधे हो। ये ऐसे सामान्य हित होते है जो सदस्योके बीच एक निरन्तर और बहुमुखी सम्बन्ध बनाये रखते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि मनुष्योके अन्तर्राष्ट्रीय जन समूहमे भिन्न अन्तर्राष्ट्रीय समाज हो सकता है। जहाँ-कही भी ऐसा समाज है वही आचरणके कुछ प्रथागत और परम्परागत नियम हमे मिलते है। फिर भी उन नियमोको लागू करनेके बारेमे कठिनाई पैदा होती है। यह तो स्पष्ट है कि राष्ट्रीय विधिके कार्यान्वयकी अपेक्षा अन्तर्राष्ट्रीय विधिका कार्यान्वय शिथिल रहता है। इस शिथिलताका कारण यह है कि एक ऐसी 'स्थायी व्यवस्था' की कमी है जो अन्तर्राष्ट्रीय समाजकी सामान्य स्वीकृतिको प्रकट कर सके। पर जहाँ ऐसी सामान्य स्वीकृति मौजूद रहती है, जैसा कि प्राय होता है वहाँ अन्तर्राष्ट्रीय विधिका लागू किया जाना सम्भव हो जाता है।

जो लोग ऊपरकी इस व्याख्या पर आपत्ति करते है वे यह कह सकते हैं कि जिसे अन्तर्राष्ट्रीय विधि कहा जाता है वह अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकतासे अधिक कुछ नही है। ओपेनहेम इसका उत्तर यह देते है "कोई नियम यदि वह समाज की सामान्य स्वीकृतिसे केवल मनुष्यके विवेक पर ही लागू होता है तो वह नैतिकताका नियम है, इसके विपरीत कोई भी नियम, यदि समाजकी सामान्य स्वीकृतिसे अन्ततोगत्वा बाहरी बल द्वारा लागू किया जाता है तो वह विधिका नियम हो जाता है।"

इस प्रकार विधिके अस्तित्वके लिए न तो विधि बनानेवाली प्रभुता (authority) की और न एक न्यायालयकी अनिवार्य आवश्यकता है—अपने आपमे ये दोनो चाहे जितने महत्त्वपूर्ण हो। इस सत्यके बावजूद यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रोके बीचकी विधि राष्ट्रीय या स्थानीय विधिकी तुलनामें शिथिल रहती है। यदि यह सही भी हो

तो यह मान लनमे राष्ट्रोकी विधि अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय विधिका विश्लेषन मिट नहीं जाता है। शिथिलताका कारण यह तथ्य है कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि सम्प्रभुता सम्पन्न राष्ट्रोके बीच है, उनके ऊपर नहीं।

अन्तर्राष्ट्रीय विधिके स्रोत

राष्ट्राकी सामान्य स्वीकृति राष्ट्राके बीच विधिका आधार है, पर इसका मतलब यह नहीं है कि यह स्वीकृति एक साथ एक समय पर ही दी जाय। इसका अर्थ केवल यह है कि कोई भी राष्ट्र अकेले वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय विधिमे एक पक्षीय परिवर्तन नही कर सकता।

यह स्वीकृति घोषित या मौन दोना ही प्रकारकी हो सकती है, जिन्हे क्रमश अभिसमयगत (conventional) और प्रथागत अन्तर्राष्ट्रीय विधि कहा जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की विधि-संहिताकी ३८वी धारामे न्यायालयको निम्नलिखित उपायो (canons) का प्रयोग करनेका आदेश दिया गया है। यही उपाय राष्ट्रीय विधिका स्रोत है (देखिये ब्रायर्ली—दि ला आफ नेशन्स, पृष्ठ ५७६)।

(क) अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय चाहे वह सार्व राष्ट्रीय हो या विशिष्ट, जिनकी स्वीकृति प्रतियोगी (contesting) राष्ट्रो द्वारा घोषित की जा चुकी हो।

(ख) अन्तर्राष्ट्रीय प्रथाए। जिन रिवाजोका सामान्यतया इतना चलन है कि वह विधि समझे जाने लगे हो, उनका साक्ष्यके रूपमे प्रयोग।

(ग) विधिका सभ्य राष्ट्रो द्वारा स्वीकृत सामान्य सिद्धान्त।

(घ) ५९ वी धाराके प्रतिबन्धके साथ, न्यायाधीशोके निर्णय और विविध राष्ट्रोके सर्वोच्च योग्यता प्राप्त लेखको (publicists) के उपदेश, विधिके नियमोका निर्धारण करनेके उपसाधनोके रूपमे।

अन्तर्राष्ट्रीय विधिके स्वरूपके सम्बन्धमे वाद

(१) प्राचीनतम वादोमे से एक वाद है, प्रकृतिवादी (naturalist)। पूफेण्डॉफ इस मतके जनक हैं। उनके विचारोको १८वी शताब्दीमे रदरफोर्ड ने विकसित किया, इस वादके अनुसार प्रकृतिकी विधि ही राष्ट्रोकी विधिका एक मात्र स्रोत है। यह सिद्धान्त प्रथागत अन्तर्राष्ट्रीय विधि को विधि ही नहीं मानता। इसके अनुसार राष्ट्रोकी विधि प्रकृतिकी सर्वव्यापी विधिका ही एक अग है।

(२) दूसरा वाद अस्तिवादी (positivist) है जिसके नेता रिचार्ड ज़ूश (१५९०–१६६०) हैं और व्याख्याता श्री ओपेनहेम हैं। इस वादके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय विधि राज्योके ऊपर न होकर उनके बीच है। दूसरे शब्दोमे राष्ट्रोके बीच की विधिका मुख्य स्रोत राज्योकी स्वीकृति है और इसलिए प्राकृतिक विधिका इससे बहुत कम सम्बन्ध है।

(३) उक्त दोनो वादोके बीचका रास्ता ग्रोशियस के मतावलम्बियो ने अपनाया

है। इस मतका विकास वुल्फ (१६७९–१७५४) और वाटेल (१७१४–१७६७) ने किया। ओपनहेम के शब्दों में "जब प्रकृतिकी विधि मनुष्यों पर व्यक्तिगत रूपमें लागू होती है तो उसी प्रकार वह मनुष्योंमें सामूहिक रूपमें यानी संगठित राज्यों पर भी लागू होगी"।[1] इस प्रकार राष्ट्रीय सम्प्रभुताके दावोंका स्वीकार करते हुए भी यह मत जोरदार शब्दोंमें घोषणा करता है कि उस सम्प्रभुताको सीमित करनेवाले बाहरी तत्व भी प्रकृतिकी विधिक ही अंग है।

उक्त तीनों मतोंमेंसे प्रकृतिवादी मतका मध्ययुगके अन्त तक बोलबाला रहा। इस मतको यूनानी, रोमन और मध्ययुगके लेखकों जैसे अरस्तू, सिसरो, और एक्विनास के ग्रन्थोंमें बहुत अधिक समर्थन मिला। आधुनिक युगके प्रारम्भमें सम्प्रभुताके सिद्धान्तकी स्थापनामें अस्तिवादी मतका उत्थान हुआ। बोदाँ, हॉब्स तथा आस्टिन की रचनाओंमें उस मतको और अधिक बल मिला। बीसवीं सदीकी घटनाओंको ग्रोशियस मतका ही अधिक तर्कसंगत रूपमें पुनरुत्थान कहा जा सकता है। इस पुनरुत्थानके दो कारक हैं पहला कारक है अन्तर्राष्ट्रीय सधी व अभिसमयों (conventions) का पनपना (growth) जो राष्ट्रीय सम्प्रभुताके निरकुशताके दावा को सीमित करते हैं। उदाहरणके लिए हेग सम्मेलन (१८९९, १९०७), राष्ट्रसंघ का प्रसंविदा (covenant) (१९१९), पेरिस समझौता (१९२८), सयुक्त राष्ट्रसंघ का घोषणापत्र (१९४८), जनेवा सम्मेलन (१९४९) और पंचशील (१९५५)। दूसरा कारक है मानवतावादी दार्शनिक सिद्धान्तोंका अधिक युक्तिसंगत रूपमें उदय। श्री लास्की, रसेल और एम० एन० राय की रचनाएँ इनके उदाहरण हैं। विश्वव्यापी दृष्टिकोण पर आधारित मार्क्सवादी सिद्धान्त ने भी ऋणात्मक रूपमें अन्तर्राष्ट्रीय विधिकी पुरानी अस्तिवादी धारणाको मिटानेमें काफी योग दिया है।

इसके अलावा बीसवीं शताब्दीमें अन्तर्राष्ट्रीय विधिको संहितावद्ध किया गया है जिससे यह यथार्थ (precise) और विस्तारपूर्ण (elaborate) हो गयी है।

व्यक्तिगत अन्तर्राष्ट्रीय विधि और सार्वजनिक अन्तर्राष्ट्रीय विधि (Private International Law and Public International Law)

व्यक्तिगत अन्तर्राष्ट्रीय विधि विभिन्न देशोंकी विधियोंके उन तत्त्वोंका अध्ययन है जो उनमें समान हैं अर्थात् जिनकी व्यापकता राज्यकी सीमाओंके बाहर भी दृष्टिगत होती है। सार्वजनिक अन्तर्राष्ट्रीय विधि उस विधिका अध्ययन है जो राष्ट्रोंके बीच उनके पारस्परिक व्यवहारमें लागू होती है।

राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विधिका सम्बन्ध

अधिकांश प्रश्नोंकी भांति इस प्रश्नके सम्बन्धमें भी दो दृष्टिकोण हैं (अ)

---

[1] पृष्ठ ९३–९४

द्वैतवादी दृष्टिकोण (the dualistic point of view) और (ब) एकात्मवादी दृष्टिकोण[1] (the monistic point of view)। द्वैतवादी दृष्टिकोणके अनुसार राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विधि एक दूसरेसे भिन्न हैं क्योंकि (१) उनके उद्गम (sources) भिन्न हैं। राष्ट्रीय विधि राज्यके अन्दर प्रचलित प्रथाओंसे और लागू की गयी विधियां से बनती है और राज्यकी सम्प्रभुसत्ता द्वारा प्रतिष्ठित की जाती है, पर अन्तर्राष्ट्रीय विधि राज्योंके परिवारके भीतर जो रीति-रिवाज पनपे हैं और उस परिवारके सदस्योंके बीच जो विधि निर्माण करनेवाली संधियाँ हुई हैं, उनके द्वारा विकसित होती है।

(२) ये दोनों प्रकारकी विधियां जिन सम्बन्धोंका नियमन करती हैं उनमें भी भेद है, राष्ट्रीय विधि राज्यके अधीन व्यक्तियोंके पारस्परिक सम्बन्धोंका नियमन करती है। पर अन्तर्राष्ट्रीय विधि राष्ट्र-परिवारके सदस्य राष्ट्रोंके पारस्परिक सम्बन्धोंका नियमन करती है।

(३) दोनों विधियोंमें उनके वस्तुविषयों (substances) का भी अन्तर है। जहाँ राष्ट्रीय विधि अपने अधीन व्यक्तियोंके ऊपर सम्प्रभुताकी विधि है वहां राष्ट्रों की विधि अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय विधि सम्प्रभुता सम्पन्न राष्ट्रोंके ऊपरकी नहीं बल्कि उनके बीचकी विधि है। इन विभिन्नताओंके कारण द्वैतवाद मतके समर्थक राष्ट्रीय विधि और अन्तर्राष्ट्रीय विधिको एक दूसरेसे बिल्कुल अलग मानते हैं और कहते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय विधिको न तो पूर्ण रूपसे, और न आंशिक रूपसे ही राष्ट्रीय विधि का अंश माना जा सकता है। उनका यह भी तर्क है कि जिस प्रकार राष्ट्रीय विधि अन्तर्राष्ट्रीय विधिका निर्माण नहीं कर सकती और न उसमें किसी प्रकारका परिवर्तन ही कर सकती है, ठीक उसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय विधि भी राष्ट्रीय विधिका न तो निर्माण कर सकती है और न उसमें परिवर्तन कर सकती है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह एक अतिवादी दृष्टिकोण है और केवल आंशिक रूपमें ही ठीक है।

(ब) **एकात्मवादी दृष्टिकोण (The Monistic Point of View)** इस दृष्टिकोणके अनुसार दोनों विधियोंके वस्तुविषय तत्वतः भिन्न नहीं हैं। राष्ट्रीय विधि अपने अधीन व्यक्तियोंके आचरणका नियमन करती है, और अन्तर्राष्ट्रीय विधि राज्योंके एक दूसरेके प्रति आचरणका नियमन करती है। दूसरी बात यह है कि दोनों ही हालतोंमें विधि तत्वतः एक 'आदेश है जो उस विधिकी प्रजा पर उनकी इच्छासे स्वतंत्र लागू होता है।" तीसरी बात यह है कि एकात्मवादी दृष्टिकोणके अनुसार (जैसी उसकी व्याख्या आपनहेम ने की है) अन्तर्राष्ट्रीय विधि और राष्ट्रीय विधिको एक दूसरेसे तत्वतः भिन्न होना तो दूर रहा, ये दोनों ही 'विधिकी एक समग्र कल्पना' के मूर्त्त रूप हैं (they are manifestations of a single conception of law) अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय विधिकी धारणा एक ऐसी उच्चतर वैधिक व्यवस्थाकी कल्पना

---

[1] देखिये ओपनहेम op cit, पृष्ठ ३५-३६

किये बिना हो ही नहीं सकती जिससे राष्ट्रीय विधिकी विविध पद्धतियां निकलती है (international law cannot be comprehended without the assumption of a superior legal order from which the various systems of municipal law are in a sense derived by delegation)।[1]

यद्यपि जिस प्रकारकी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थाका वर्णन यहाँ किया गया है उस प्रकारकी व्यवस्था पूर्ण रूपसे विद्यमान नहीं है, फिर भी उसे कोरी कल्पना नहीं कहा जा सकता। नगर राज्यसे प्रारम्भ होकर बड़े-बड़े राज्यों तक की स्थिति तो आ चुकी है। क्या हम आशा करें कि अगला कदम एक विश्व राज्यकी दिशामें उठेगा? हम बरबस इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि राज्योंकी भौगोलिक या वैधिक अधिकार सीमा का नियत्रण करनेवाली अन्तर्राष्ट्रीय विधि ही है। इसके अलावा एक ऐसी सर्वोपरि विधिके सामने छोटे-बड़े सभी राज्य बराबर का दर्जा रखते है। इसके अर्थ यह हुए कि राजनीतिक इकाइयोंके रूपमें तो सम्प्रभु राष्ट्रोंका स्वतंत्र होनेका दावा मान्य है। किन्तु वैधिक इकाइयोंके रूपमें नहीं।

हम यह स्वीकार करते है कि राष्ट्रीय न्यायालय अन्तर्राष्ट्रीय विधिसे बाध्य नहीं है और वे ऐसी विधियोंको भी लागू कर सकते है जो अन्तर्राष्ट्रीय विधिके प्रतिकूल हों। पर इस बातसे केवल अन्तर्राष्ट्रीय विधि व संगठनकी शिथिलता ही प्रकट होती है। इसलिए मौलिक समस्या तो यह है कि इन दोनों विधियोंमें ऐसा युक्तिसंगत सम्बन्ध स्थापित किया जाय जिससे राष्ट्रीय विधिके निर्जीव बोझसे अन्तर्राष्ट्रीय विधिकी प्रगतिमें बाधा न पड़े।

SELECT READINGS

DICEY, A V —*The Law of the Constitution*
FINER, H —*Theory and Practice of Modern Government*—*Vol 2*
GARNER, G W —*Political Science and Government*
GETTELL, R G —*Introduction to Political Science*
GILCHRIST, R N —*Principles of Political Science*
IYENGAR, S S —*Problems of Indian Democracy*
MARRIOTT, J A R —*The Mechanism of the Modern State*—*Vol 2*
RAMAIYER—*Politics*

[1] देखिये आपनहेम, op cit , ३६–३७

१७

राजनीति में उपयोगितावाद
(Utilitarianism in Politics)

उपयोगितावाद सारत अंग्रेजी विचारधारा है। उन्नीसवीं सदीके इंग्लैण्ड में, विशेषकर पूर्वार्द्धमें, इसके प्रभावमें व्यापक सुधार हुए। आज भी यह विचारधारा निर्जीव नहीं है। जब तक समाजकी दुर्व्यवस्थामें होने वाले क्लेश रहेंगे तब तक उपयोगितावादका महत्त्व बना रहेगा। उपयोगितावाद राज्यकी अन्ध भक्ति और इसकी विरोधी भाव-सूक्ष्म प्राकृतिक अधिकारकी धारणा, इन दोनोंकी गतिविधियोंको ठीक कर, सही रास्ते पर ले जाने वाली स्वस्थ विचारधारा है। हैलोवेल (Hallowell) के अनुसार उपयोगितावादका आधार उन्नीसवीं सदीका उदारवाद था जिसमें 'स्वतन्त्रताकी कल्पना प्राकृतिक अधिकारकी अपेक्षा सामाजिक उपयोगिता के रूपमें अधिकाधिक की जाती थी।' उनके ही शब्दोंमें 'नीतिशास्त्र और राजनीति-शास्त्रको एक व्यापक वैज्ञानिक अनुभववादके आधार पर प्रतिष्ठित करनेका उपयोगितावाद एक प्रयास था (३१ १९८)।'

१. उपयोगितावाद की परिभाषा और आलोचना
(Statement and Criticism of Utilitarianism)

उपयोगितावाद मुख्यत एक नैतिक सिद्धान्त है, जिसका आधार वह मनोवैज्ञानिक मत है जिसे सुखवाद (hedonism) कहा जाता है। सुखवादी सिद्धान्तके अनुसार हर व्यक्ति सुखकी खोज करता है और दुखसे बचना चाहता है। मनुष्यके काम और भी प्रेरकों (motives) से प्रभावित रहते हैं, पर अन्तिम प्रेरक सुख बनाम दुख ही होता है। सुखवादी विचारधारा किसी प्रकार भी आधुनिक नहीं है। इसका प्रारम्भ यूनानी युगमें, विशेषतया सेरेनायक विचारधारा (Cyrenaic school) के संस्थापक एरिस्टिपस (Aristippus) की शिक्षाओंसे, और कुछ-कुछ एपीक्यूरस (Epicurus) की शिक्षाओंसे हुआ था। यद्यपि आधुनिक सुखवाद प्राचीन सुखवादसे बहुत भिन्न है फिर भी सुखकी प्राप्ति ही दोनोंका मुख्य उद्देश्य है। प्राचीन सुखवादका स्वरूप स्वार्थवादी था जबकि आधुनिक सुखवाद परोपकारीवादी है।

उपयोगितावाद परोपकारवादको ही अपना आधार बनाता है इसीलिए इसे

कभी-कभी परोपकारवाद या सार्वजनीय सुखवाद कहा जाता है। इसका लक्ष्य अधिकतम लोगोका अधिकतम सुख अथवा सार्वजनिक सुख (greatest happiness of the greatest number) है पर उपहास करने वालोंका कहना है कि अधिकतम संख्या एक है यानी अधिकतम लोगोके सुखका असली मतलब अपना सुख है।

आजकल यह साधारणतया स्वीकार कर लिया गया है कि उपयोगितावादके मनोवैज्ञानिक और नैतिक आधार स्वस्थ नहीं है। मनुष्य निस्सन्देह अपने सुखकी खोज करता है अर्थात् स्वार्थी होता है परन्तु स्वार्थ ही उसकी एकमात्र प्रवृत्ति नहीं है। सभीमें अपनी भलाई और दूसरोंकी भलाईकी भावनाए विभिन्न मात्राओमे पायी जाती है। हेनरी ड्रमण्ड के शब्दोंमें 'प्रत्येक मनुष्यके भीतर केवल अपने अस्तित्वके लिए ही नहीं बल्कि दूसरोंके अस्तित्वके लिए भी संघर्ष चलता रहता है। इसीलिए दूसरे पक्षो पर ध्यान न देकर मानव-स्वभावके केवल एक पक्षके आधार पर ही मनोवैज्ञानिक और नैतिक सिद्धान्त बनाना अत्यन्त दोषपूर्ण है। बेन्थम यह कह कर इस समस्याको टाल जाते है कि हर मनुष्य स्वार्थी तो होता है पर यह स्वार्थ दूसरोंकी भलाई करनेका रूप ग्रहण कर लेता है। यह मानना होगा कि शुद्ध परोपकारवाद मनुष्यके लिए सम्भव है।

सुखवादीके लिए इन्द्रिय-जन्य सन्तोष ही सुख है। जैसा जेम्स सेठ कहते है, इन्द्रिय-चेतना (sensibility) मानव जीवनमे एक बडा और महत्त्वपूर्ण तत्त्व है परन्तु वह अन्तिम और लाक्षणिक तत्त्व नहीं है (it is not the ultimate and characteristic element)। अनुभूति ही मनुष्यके लिए सब कुछ नहीं है। मनुष्यमें तर्कका तत्त्व भी रहता है। 'जीवनका सुखवादी सिद्धान्त अत्यधिक सरल है, पर गहराई और व्यापकता खोकर ही इस सिद्धान्तने यह सरलता मिली है। इसका सूत्र आवश्यकतासे अधिक सरल है (१७ ११५)।' इन्ही लेखकके शब्दोंमें 'सुखवाद कल्याणकी गुणमूलक व्याख्या नहीं कर सकता, वह तो केवल कल्याणकी परिमाण-मूलक व्याख्या ही कर सकता है।' वह केवल 'अधिक' और 'कम' का विभेद ही कर सकता है, 'उच्चतर' और 'निम्नतर' का नहीं। वह सर्वाधिक कल्याणकी ओर तो संकेत करता है पर सर्वोच्च कल्याणकी ओर नहीं।

उपर्युक्त आलोचनाओंका करते समय हम यह नहीं भूल सकते कि उपयोगितावाद मनुष्यकी परोपकार भावनाको सबल रूपसे आकृष्ट करनेका दावा करता है। पर हमारा कहना है कि ऐसा करके वह स्वयं अपना विरोध करता है। सार्वजनीन सुख-वाद (universalistic hedonism) आत्मविरोधी है। जो बात 'सार्वजनीन' होगी वह (आत्म) सुखवादी नहीं हो सकती और इसी प्रकार जो बात (आत्म) सुखवादी होगी, वह 'सार्वजनीन' नहीं हो सकती। सुख स्वभावत व्यक्तिगत होता है। यह आत्मगत (subjective) अनुभव है। अत उपयोगितावादियोंकी भाँति सार्वजनिक सुखमे सार्वजनिक आनन्दके अर्थ निकालना निरर्थक है। 'क' यह जानता है कि उसे किस चीज़से आनन्द मिलता है और 'ख' भी जानता है कि उसे किस बातसे आनन्द

मिलता है पर 'क' और 'ख' दोनोंमे से किसीको भी यह पता नहीं है कि सार्वजनिक आनन्द क्या है? हम दूसरोके आनन्द और पीडामे सहानुभूति कर सकते है पर स्वय उसका अनुभव नही कर सकते। आनन्द इस अर्थमे भी वैयक्तिक होता है कि हर व्यक्ति अपने सुखका निर्णायक स्वय ही है। केवल वही यह बतला सकता है कि कोई चीज उसे आनन्द प्रदान करती है अथवा नहीं। परन्तु उपयोगितावादियोका नैतिक माप दण्ड (criterion) तो सार्वजनिक सुख है। हमारा कहना है कि आनन्दके लक्ष्यको सार्वजनिक सुखके लक्ष्यमे परिणत करना युक्ति सगत नहीं है।

इस प्रकार उपयोगितावादीको अपने सिद्धान्तका विकास करनेमे इस विरोधका सामना करना पडा कि व्यक्ति सम्पूर्ण समाजके सुखकी उन्नति क्यो करे? जे० एस० मिल ने इसका उत्तर देते हुए कहा है कि प्रत्येक व्यक्तिका आनन्द दूसरोके आनन्दके साथ जुडा होता है जैसे कि माता-पिता और बच्चोका आनन्द। मिल का तर्क है कि व्यक्ति पर सदैव जोर देना आवश्यक नही है क्योकि हमारे बहुतसे आनन्द दूसरोके आनन्दके साथ घनिष्ठ रूपमे जुडे हुए है। पर बेन्थम का उत्तर भिन्न है। वह यह मानते है कि व्यक्ति बहुधा समुदायके हितोको हानि पहुचाकर अपने आनन्दकी खोजमे रहता है। फिर भी 'सार्वजनिक सुख' के लिए बेन्थम की इच्छा इतनी प्रबल है कि वह चाहते है कि व्यक्तिको कभी-कभी तो इस बातके लिए मजबूर किया जाना चाहिए कि वह समाजके सुखके लिए अपने सुखका बलिदान करे। इसके लिए वह अनुशास्तिके सिद्धान्तका सहारा लेते हैं। ये अनुशास्तिया (sanctions) चार है शारीरिक, राजनीतिक (अथवा देशका विधान), नैतिक (अथवा लोकमतका दबाव) और धार्मिक।

यद्यपि उपयोगितावाद एक दोषपूर्ण नैतिक सिद्धान्त है फिर भी इसके प्रभावसे व्यावहारिक राजनीतिमे अनेक महत्त्वपूर्ण सुधार हुए है। इस अन्तर्विरोधका क्या कारण है? इसका उत्तर यह तथ्य है कि उपयोगितावादी जब नैतिक क्षेत्रको छोडकर राजनीति के क्षेत्रमे आता है तब उसका रूप एक दम उलटा हो जाता है। एक नैतिक विचारकके रूपमे उपयोगितावादी सार्वजनिक सुखका अर्थ सार्वजनिक आनन्द समझता है। उसके विचारमे मनुष्यके व्यवहारका अन्तिम उद्देश्य यह है कि वह यथासम्भव अधिक से अधिक मनुष्योको आनन्द देनेवाले अधिक-से-अधिक काम करे। उसका विश्वास है कि चूकि आनन्दमे केवल मात्राका अन्तर होता है, गुणका नही इसलिए उसकी वृद्धि की जा सकती है (पर जे० एस० मिल के अनुसार जो उपयोगितावादके अनुयायी नही है, आनन्दमे गुण और मात्रा दोनोका अन्तर होता है)। इस विचार धाराके नेता बेन्थम का कहना है कि 'आनन्दकी मात्रा समान होनेमे बच्चोका खेल उतना ही अच्छा है जितनी अच्छी कविता होती है।" आनन्दकी वृद्धि करनेमे और सार्वजनिक आनन्द तथा सार्वजनिक सुखको एक करनेमे जो कठिनाइया होती है वे इतनी स्पष्ट है कि उनके विषयमे कुछ लिखना अनावश्यक है। उपयोगितावादी स्वय यह निराकरण प्रयत्न करनेको अत्यधिक इच्छुक नहीं है।

एक राजनीतिक विचारकके रूपमे उपयोगितावादी सार्वजनिक सुखकी व्याख्या

बड़े ढाल-ढाले तरीकेसे करता है और उसका अर्थ सार्वजनिक भलाई या सामाजिक कल्याण निकालता है। वह आनन्दकी धारणाको कमसे कम महत्त्व देता है और उपयोगिता पर ध्यान केन्द्रित करता है। यह तो स्पष्ट है कि 'सामाजिक कल्याण और उपयोगिता' जैसे शब्द इतने व्यापक और व्यावहारिक है कि जो कोई भी इन्हें अपने राजनीतिक कार्यक्रमका आधार बनायेगा वह अवश्य ही जनताका बहुत हित कर सकेगा। इस प्रकार हम देखते है कि उपयोगितावादियो द्वारा की गयी अपने उद्देश्यकी व्याख्याम जो असगति है, उसीके कारण उन्होने व्यावहारिक राजनीतिमे बडे हितकर कार्य किये। उनका राजनीति-शास्त्र, राज्य-शास्त्र (theory of state) की अपेक्षा शासन-शास्त्र (theory of government) ही अधिक था।

यदि उपयोगितावादकी आलोचना करने चलें तो हम हैलोवेल की तरह यह कह सकते है कि अधिकतम् लोगोके अधिकतम् सुखके लिए अल्पसख्यकोके बन्दी-शिविरो (concentration camps) को भी उचित ठहराया जा सकता है। इसी प्रकार निरकुशता और दासताको भी उचित कहा जा सकता है। हैलोवेलके अनुसार बेन्थमवाद एक ऐसा उदारतावाद है जो निरकुशताके लिए बहुत ही अनुकूल है (१३ २१७)। पर बेन्थम ने उपयोगितावादकी व्याख्या इस रूपमे नही की थी और न उसका यह अर्थ ही निकाला था।

२ उपयोगितावादका मूल्यांकन (१३ : अध्याय ?)
(Appreciation of Utilitarianism)

एक नैतिक सिद्धान्तके रूपमे उपयोगितावादकी इस आलोचनाका अर्थ यह नहीं है कि राजनीतिके क्षेत्रमे भी हम इसकी उचित प्रशसा न करें। उपयोगितावाद मनुष्य जातिके कल्याणमे हमारी अभिरुचिका प्रतिनिधित्व करता है। यह हमारी इस अभिरुचिके साथ तर्क-सगत सिद्धान्तोंके आधार पर मानव जीवनकी परिस्थितियोंको सुधारनेके हमारे व्यावहारिक प्रयत्नोका सयोग भी करता है। उसका विश्वास है कि प्रभावपूर्ण सरकारी विधियो द्वारा जनताका जीवन स्तर उठाया जा सकता है। सभी उपयोगितावादियोंके मनमे सार्वजनिक कल्याणकी भावना रहती है। उन्हे सबसे पहले और सबसे अधिक चिन्ता—मानव जीवन मानव कार्य-कलाप और मानव कल्याणकी रहती है। ये निरकुशता और अन्यायके प्रबल विरोधी और वैयक्तिक स्वातन्त्र्यके प्रबल समर्थक है। वे सभी प्रकारके 'कुटिल' स्वार्थोंके विरोधी है। अत उपयोगितावाद निश्चित रूपमे एक व्यावहारिक सिद्धान्त है। यह सुधारवादी है। उपयोगितावाद मानववादका ही दूसरा नाम है।

बहुधा उपयोगितावादकी अनुचित आलोचना इसे एक लाभमूलक सिद्धान्त या सुविधामूलक दर्शन कहकर की जाती है। लाभका अर्थ है किसी उद्देश्य या लक्ष्यकी सिद्धि। सामान्य बोलचालकी भाषामे इसका अर्थ बहुधा निम्नकोटिका उद्देश्य या

लक्ष्य होना है। उपयोगितावादी मनुष्यको केवल एक व्यक्तिक रूपमें ही न करके उसे एक ऐसा व्यक्ति मानते है जो स्वभावत सामाजिक होता है। उपयोगितावादी के लिए उपयोगिताका अर्थ है 'वह वस्तु जो मानव स्वभावके सभी तत्वोके लिए सबसे अधिक उपयोगी हो, जिसमे उसके पूर्ण और चरम् कल्याणके साथ ही साथ उसके साथियोंके पूर्ण और चरम् कल्याणकी सिद्धि हो सके।" उपयोगितावादके सिद्धान्तोका इन वाक्याशोमें व्यक्त किया गया है 'अधिकतम् लोगोका अधिकतम् सुख,' 'प्रबुद्ध उदारता' (enlightened benevolence) और 'सार्वजनिक सुख' (general happiness) (१३ १३)'।

उपयोगितावादको कभी-कभी निम्नतम कोटिके भौतिकवादका पर्याय माननेकी आशका रहती है। इस गलत धारणासे बचनेके लिए यह सोचा गया है कि 'उपयोगिता' और 'सुख' के स्थान पर 'कल्याण' और 'भलाई' शब्दोका प्रयोग किया जाय। 'कल्याण' मे वे सभी तत्व आ जाते है जिनसे मानव सुखी होता है। इस सुझावके विरुद्ध केवल एक यही आपत्ति है कि यह उपयोगितावादी सुखवादके प्रस्थान विन्दुसे बहुत दूर है। यदि उपयोगितावादी सुखवादके साथ अपने सम्बन्धको छोडनेको तैयार हो तो उनका सिद्धान्त स्वीकार करनेमे कोई आपत्ति नही होनी चाहिए। इस प्रकार हम देखते है कि आदर्श उपयोगितावाद सुखवादको अस्वीकार करता है और आदर्शवाद तथा उपयोगितावादके सर्वोत्तम तत्त्वोका समन्वय करता है। यह मानव व्यक्तित्वके विकासको सामाजिक कल्याणके साथ सम्बद्ध करता है। टी० एच० ग्रीन जिनमे यह प्रवृत्ति दिखलाई पडती है, और जिनके विचार अनेक प्रकार से मिल के विचारोसे मिलते-जुलते है, यह तर्क देते है कि सुखवादसे आरम्भ होनेवाले उपयोगितावादको सामाजिक कल्याणके परखनेका कोई अधिकार नही है। 'स्वार्थी आत्म सन्तोषकी सिद्धिको अपना लक्ष्य बनाते हुए ग्रीन आनन्द और पीडाका सन्तुलन करनेमे पडनेवाली कठिनाइयोका टाल जाते है।' उपयोगितावादके विषयमे ग्रीन के विवेचन पर टीका करते हुए डी० जी० रिची (D. G. Ritchie) लिखते है 'इस बातका कोई कारण नही दिखलाई पडता कि सुखवादके सम्बन्धमे अपनी आपत्तियोंको स्पष्ट कर देनेके बाद आदर्शवादी उपयोगितावादियोसे मेल क्यो न करे।' इन्ही लेखक का कहना है कि ग्रीन की नैतिक व्यवस्था मिल का उपयोगितावाद ही है। हा, उसमे मिल के उपयोगितावादके अतिरिक्त एक सुदृढ आधार और एक मापदण्ड भी है।

यदि हम उपयोगितावादके सर्वोत्तम रूप पर विचार करे तो उपयोगितावादीका कहना है कि दूसरोका ख्याल किये बिना स्वतन्त्र रूपसे सुखकी प्राप्ति नही हो सकती क्योंकि व्यक्तिको केवल एक व्यक्तिमात्र समझना भूल है। उसका विश्वास है कि व्यक्तिका सुख राज्यके अस्तित्व और सगठन पर आवश्यक तौर पर निर्भर करता है। रीति-रिवाजो, विधि और विधि-निर्माणको व्यक्तिको सुखी बनानेमे और साथ ही उसके सुखको सीमित करनेमे योग देना चाहिए। क्योकि सुख व्यक्तिका स्वार्थमूलक सन्तोष ही नही है। उपयोगितावादीके अनुसार विधायकको सामान्य जनताके

कल्याणका स्थान सबसे अधिक रखना चाहिए। उपयुक्त विधि-निर्माणके निषेधात्मक और आदेशात्मक दो पहलू होते हैं। निषेधात्मक रूपमें उसे उन परिस्थितियोंका समाप्त करना चाहिए जो पतन लानेवाली और कष्टकारक होती है। और इन परिस्थितियोंके स्थान पर राज्यका आदेशात्मक रूपमें अनुकूल प्रोत्साहनाकी व्यवस्था करनी चाहिए।

कभी-कभी यह कहा जाता है कि उपयोगितावादमें आदर्शवादिता की कमी है। यह आरोप ठीक नहीं है। 'समाजके भावी उत्थान और मानव जातिके सुधारके आदर्श स्वप्न ही उपयोगितावादीको प्रेरणा देते, उत्साहित करते और सक्रिय बनाते हैं तथा कठिनाइयों और असफलताओंके मध्य उसे स्थिर रखते हैं (१३ २६)।' उपयोगितावादीके आदर्श मूलतः व्यावहारिक और मानवीय हैं। जिन आदर्शोंको उपयोगितावादी अस्वीकार करता है वे उसकी दृष्टिमें या तो अवांछनीय या अप्राप्य या दोनों ही प्रकारके हैं। उपयोगितावादी न तो हठधर्मी होता है और न स्वप्नदर्शी। उसके पैर कठोर भूमि पर ही रहते हैं।

उपयोगितावाद अनुभव पर आधारित है। अनुभव ही इसकी अन्तिम कसौटी है। उपयोगितावादीके लिए परिणाम ही सब कुछ है। वह अनुभवको ही ज्ञानका मूल स्रोत और उद्गम तथा सत्यका अन्तिम मापदण्ड मानता है। वह कोरी कल्पना और भाव-सूक्ष्मताका विरोधी है।

इस प्रकार उपयोगितावाद एक अत्यन्त मानवीय और अत्यन्त व्यावहारिक दर्शन है। यह कोई नवीन नीतिशास्त्र नहीं है। 'यह राजनीतिके क्षेत्रमें प्रवेश करके अपनेको राज्य विधि निर्माणमें व्यक्त देखना चाहता है (१३ २९)।' लोगोंकी सक्रियता और उनकी अभिरुचियोंके साथ इसका सीधा सम्बन्ध रहता है (१३ २९)। समय ने इसमें बहुत कुछ सुधार किये हैं—इसकी बहुत-सी बातोंका तिरस्कार भी किया गया है और समय इससे बहुत आगे बढ़ गया है परन्तु अन्यायका तीव्र विरोध करना, दीनों और दलितोंकी सहायता करना और मानव कल्याणके लिए उत्साहपूर्वक प्रयत्न करना उपयोगितावादियोंकी विशेषताएँ रही हैं और स्पष्ट रूपसे अब भी हैं (१३ २४९-५८)। उपयोगितावादियोंमें कमियाँ भी रही हैं और उन्होंने असफलताएँ भी पायी हैं पर उनकी दृष्टि सदैव भविष्यकी ओर लगी रही है।

३. उपयोगितावादी विचारक (Utilitarian Thinkers)

इङ्गलैण्ड में उपयोगितावादके नेता जेरेमी बेन्थम थे। सौभाग्यवश उनके साथ योग्य और श्रद्धालु लोगोंका एक दल था। इन लोगोंने इङ्गलैण्ड के सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओंमें उपयोगितावादी सिद्धान्तोंका प्रयोग करनेमें अपनेको अर्पित कर दिया था। इनमें जेम्स मिल और उनके पुत्र जान स्टुअर्ट मिल, इतिहासकार ग्रोटे मनोवैज्ञानिक अलेक्जेण्डर बेन, विधि-वेत्ता जान आस्टिन और अर्थशास्त्री

रिकार्डो मुख्य थे। आंशिक रूपमें एक को छोड़कर शेष सब क्रान्तिकारी, दार्शनिक और व्यवहारकुशल व्यक्ति थे। तत्कालीन इंग्लैण्ड सामाजिक कुरीतियोंसे कराह रहा था और इस दुर्व्यवस्थाने उन्हें अपनी 'सुधारकी प्रबल इच्छा' को कार्यान्वित करनेका पर्याप्त अवसर दिया।

१ **जेरमी बेन्थम** (१७४८-१८३२) ने उपयोगितावादी विचारधाराकी आधारशिला रखी। उन्होंने अन्यायको दूर करने और स्थायी सुधार करानेमें बहुत महत्त्वपूर्ण भाग लिया। अपने गहरे वैधिक शिक्षण, स्वस्थ व्यावहारिक बुद्धि और पददलित तथा दुःखी लोगोंके प्रति अपनी गहरी सहानुभूतिके कारण बेन्थम अपने इस महान् कार्यके लिए विशेष तौर पर उपयुक्त थे। उनके दर्शनका सार यह है 'प्रकृतिने मनुष्यको दो सम्प्रभु अधिपतियोंके अधीन रखा है।' यह अधिपति है—दुःख (क्लेश) और सुख (आनन्द)। हम जो कुछ भी करते है, जो कुछ भी कहते है और जो कुछ भी सोचते हैं—सबमें हम इनके अधीन है और अपनी इस अधीनताको दूर करनेके लिए हम जो भी प्रयत्न करते है उनमे भी इसी तथ्यकी पुष्टि होती है और इसी बातका प्रमाण मिलता है। उनके अनुसार उपयोगिताका सिद्धान्त इस अधीनता को स्वीकार करता है क्योंकि सुखकी वृद्धि करने अथवा दुःखका विरोध करनेकी प्रवृत्तिके अनुसार ही यह प्रत्येक कार्यको स्वीकार अथवा अस्वीकार करता है। आगे चलकर वह इस सिद्धान्तको 'सर्वाधिक सुख-सिद्धान्त' (greatest happiness principle) कहते है। उनका कहना है कि सुखका बटवारा करते समय प्रत्येककी गणना 'एक और केवल एक इकाईके रूपमें' की जानी चाहिए किसी को एक इकाई से अधिक नहीं माना जाना चाहिए। दूसरे शब्दोंमें व्यक्तियोंके साथ पूर्ण निष्पक्षता का व्यवहार किया जाना चाहिए।

बेन्थम के अनुसार प्रगाढ़ता (intensity), अवधि (duration), निश्चयात्मकता (certainty) और सम्बन्ध-समीप्य (propinquity) की दृष्टिमे सुखोंमें अन्तर होता है। पर गुणकी दृष्टिसे सब एक ही है। इसका अर्थ यह हुआ कि हम एक सुख या आनन्दको दूसरेकी अपेक्षा 'उत्तम' या 'उच्चतर' नहीं मान सकते। इसके माने यह हुए कि सुखोंका जोड़ भी बताया जा सकता है।[1] यह कथन बिल्कुल अर्थहीन मालूम पड़ता है। परन्तु बेन्थम का व्यावहारिक उद्देश्य यह प्रतीत होता है कि सद्भावना-पूर्ण व्यक्ति, दूसरोंके बारेमें, यह तय करनेका ठेका स्वयं न ले लें कि उनके लिए क्या यथार्थ सुख होगा। बेन्थम का सिद्धान्त निस्सन्देह संकीर्ण और मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे गलत है। फिर भी जैसा कि आइवर ब्राउन ने कहा है, 'यह सिद्धान्त बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह इस बातको माननेसे इन्कार करता है कि वे बड़े लोग अभ्रान्त (infallible) है और कभी कोई गलती नहीं कर सकते जो नैतिकता और सुख

---

[1] उन्होंने लिखा है कि 'पूरे समुदायका हित' 'उस समुदायके सब सदस्योंके हितो का पूर्ण योग' ही है न उससे कम और न उससे अधिक।

सम्बन्धी अपनी धारणाको दूसरो पर इस विश्वासके सहारे लाद देनेका प्रयत्न करते है कि दूसरे लोग अज्ञानताके दयनीय दास है (६ ९६)।' 'अपने दोषोसे मुक्त होकर बेन्थमवाद मानववाद ही है (६ १०२)।'

बेन्थम का मूल उद्देश्य समाजका हित अथवा कल्याण था। उनका विश्वास था कि उनके उपयोगिताके सिद्धान्तका सभी सामाजिक समस्याओमे विशेषकर सावैधानिक विधि-निर्माण सम्बन्धी और विधि-सुधार सम्बन्धी प्रश्नोमे सफल और लाभप्रद प्रयोग हो सकता है। एक सजीव और व्यावहारिक हित उनका लक्ष्य था, वह एक कोरे काल्पनिक सिद्धान्त से ही सबन्धित नही थे।

जिस समय बेन्थम एक महान् सुधारक और विचारकके रूपमे आये, उस समय नैसर्गिक अधिकार-सिद्धान्तका और अग्रेजी सविधान तथा विधिकी महत्ताके बारेमे ब्लैकस्टन के भारीभरकम सिद्धान्तका बोलबाला था। बेन्थम ने इन दोनोकी खूब खिल्ली उडाई और उनकी निर्मम आलोचना की। नैसर्गिक अधिकारोको उन्होने केवल एक प्रलाप, नैसर्गिक और अविच्छेद्य अधिकारको आलकारिक प्रलाप और मूर्खताका नगा नाच बताया। नैसर्गिक अधिकार सिद्धान्तके स्थान पर बेन्थमने अपने उपयोगिता के सिद्धान्तको रखा। यद्यपि नैसर्गिक अधिकारोके प्रबल समर्थक टॉमस पेन और बेन्थम के दार्शनिक दृष्टिकोणोमे बहुत अधिक अन्तर था, फिर भी दोनोने कई उदार सुधारोका समर्थन किया। जैसा कि आइवर ब्राउन ने लिखा है, 'शायद ही कभी अन्य दो व्यक्ति इतने पृथक् मार्गोसे एक ही लक्ष्यकी ओर बढे होगे (६ ९८)।

बेन्थम ने १७७६ मे प्रकाशित अपनी पहली महत्त्वपूर्ण पुस्तक '*A Fragment on Government*' मे ब्लैकस्टन की कडी आलोचना की। ब्लैकस्टन ने अग्रेजी सविधानको दैवी इच्छाके अनुसार एक क्रमिक स्वाभाविक विकास बताते हुए उसकी बडी प्रशसा की थी। 'बेन्थम ने सिद्ध किया कि अग्रेजी विधि-व्यवस्था केवल दुर्बल और गरीबोको सताने वाली एक निर्लज्ज निरकुशता थी। यह अज्ञान तथा दलित लोगोको दबाए रखनेके लिए शिक्षित और शक्ति सम्पन्न लोगोको सहायता देनेकी एक व्यापक योजना थी (६ १०२)।' बेन्थम ने ब्लैकस्टन की आलोचना इसलिए भी की कि ब्लैकस्टन ने प्रारम्भिक सामाजिक अनुबन्धको राजनीतिक दायित्वका आधार माना था। बेन्थम का कहना था कि अतीतकालमे कभी कोई ऐसा अनुबन्ध नही हुआ और यदि हुआ भी हो तो वर्तमान पीढी उससे बाध्य नही है। आज्ञापालनका एकमात्र न्याय सगत कारण है उपयोगिता अथवा सार्वजनिक कल्याण। सरकारोका अस्तित्व इसलिए कायम है क्योकि यह विश्वास किया जाता है कि उनके द्वारा उनके अधीन लोगोकी सुख वृद्धि होती है। बेन्थम की अपनी विशिष्ट भाषामे 'आज्ञापालन मे जिन बुराइयोकी सम्भावना है वह उन बुराइयोकी अपेक्षा कम है' जो आज्ञापालन न करनेमे सम्भव है। डनिग (Dunning) कहते है—रूढिवादी इग्लैण्ड के आदरणीय सिद्धान्तो और रीतियोका परम्परा। और उनका मूल्य समझना बेन्थम के लिए उतना ही मुश्किल था जितना बन्दर के लिए अदरक का स्वाद समझना (२७ २१२)।

शासन-सिद्धान्त (Theory of Government) अपने समकालीन विचारकोंकी भांति अंग्रेजी संविधानकी अत्यधिक प्रशंसा करनेके बजाय बेन्थम ने दृढ़ता और सच्चाईके साथ उसकी आलोचना की। उन्होंने वार्षिक संसद (annual parliaments), मत पत्र द्वारा मतदान और पढ़नेकी योग्यताका प्रतिबन्ध रखते हुए बालिग पुरुष-मताधिकारका समर्थन किया। उनके सभी सुझावोंका उद्देश्य जनता का वास्तविक और प्रभावपूर्ण प्रतिनिधित्व कायम करना और राजनीतिक भ्रष्टाचार को रोकना था। यह उल्लेखनीय है कि इन सुझावोंमें से दो सुझाव तबसे अब तक विधि बन चुके हैं। वार्षिक संसदकी मांग छोड़ दी गयी है और अब यह सम्भावना नहीं है कि यह मांग फिर की जायगी। बेन्थम की कामना थी कि लोकतन्त्रका पूरा बोलबाला हो। इसी उद्देश्यसे उन्होंने निर्वाचन क्षेत्रोंकी समानता और समाचारपत्रोंकी स्वतन्त्रताकी भी सिफारिश की। उन्होंने हाउस आफ लार्ड्स और राजतन्त्रकी उपयोगिता पर भी इस आधार पर आपत्ति की कि इनके हितोंका सामान्य जनताके हितोंसे कोई मेल नहीं बैठता। उन्हें इस बातका विश्वास हो गया था कि एक सदनात्मक विधानमण्डल जिसका निर्माण प्रतिवर्ष हुआ करे, लोकतन्त्रीय सिद्धान्तोंके सबसे अधिक अनुकूल है। बेन्थम गणतन्त्र में विश्वास करते थे और उनका विचार था कि यह कार्य-निपुणता, मितव्ययिता और जनताकी सर्वोच्चताके अनुकूल स्थिति उत्पन्न करेगा।

सांवैधानिक संहिता (constitutional code) की सहायतासे जिसका उन्होंने बड़े परिश्रमसे तैयार किया था वह 'इस कुटिल ससारका गणतन्त्रोंका जाल बिछाकर' अच्छा बनानेकी आशा करते थे। उनके विचारमें न तो पूर्ण राजतन्त्र और न सीमित राजतन्त्र ही जनताको सर्वाधिक सुख प्रदान कर सकता है। 'जब लोकतन्त्रात्मक शासन होता है तभी शासक और शासितोंके हित एक हो जाते हैं क्योंकि तब अधिकतम् लोगोंका अधिकतम् सुख ही चरम् लक्ष्य होता है (१३ ७८-७९)।'

विधि-निर्माण (Legislation) इसी क्षेत्रमें बेन्थम का सबसे अधिक योगदान रहा है। अपनी पुस्तक *Principles of Morals and Legislation* के प्रकाशित होने पर वह विधि-निर्माणके एक प्रकारके नये पैगम्बर बन गये। संसारके विभिन्न देशोंके राजनीतिज्ञ व्यावहारिक पथ प्रदर्शनके लिए उनकी ओर ताकने लगे। स्नेटा की धारणाके अनुसार बेन्थम एक आदर्श विधायक होनेके लिए विशेष उपयुक्त थे, क्योंकि वह राजनीतिक दलों और व्यक्तिगत स्वार्थोंसे ऊपर उठे हुए सार्वजनिक कल्याणमें रत व्यक्ति थे। उनके अनुसार विधि-निर्माणके लक्ष्य हैं—सुरक्षा, आजीविका प्राचुर्य और समानता। सीधी-सादी भाषामें जनताका कल्याण ही उनका उद्देश्य है। बेन्थम का कथन है कि यदि विधियोंका पालन कराना है तो यह आवश्यक है कि विधिको जनताका समर्थन प्राप्त हो। बलपूर्वक कानून मनवाने और सार्वजनिक असन्तोषका परिणाम अन्ततोगत्वा क्रान्ति ही होता है। इसलिए यदि हम चाहते हैं कि जनता प्रसन्नतापूर्वक कानूनोंका पालन करे तो जनताका विधि निर्माणकी

आवश्यकता सरल और स्पष्ट शब्दोंमे समझायी जानी चाहिए। भय और पारितोषिकके द्वारा लोगोंको अपनी स्वार्थ-सिद्धिसे रत होनेमे रोकना चाहिए।

बेन्थम ने बहुत सारे व्यावहारिक सुधारोंकी सिफारिशकी थी। डैविड्सन के अनुसार उन सुधारोंमें से मुख्य ये हैं—स्पष्ट और सीमित मतदान पद्धतिका सुधार, नगरपालिकाओंका व्यापक सुधार, तत्कालीन अत्यन्त कठोर दण्ड-विधिको नरम करना, जेल और जेल-प्रबन्धमे सुधार, ऋणके लिए कारावास-दण्डका अन्त, सूदखोरी सम्बन्धी कानूनोंकी समाप्ति, धार्मिक परीक्षणका अन्त, दरिद्र-रक्षा विधि (poor law) मे सुधार, 'स्वस्थ भिखमंगों' की भिक्षा वृत्तिको रोकना, समर्थ दरिद्रोंका उपयोग, भिखमंगोंके बच्चोंका प्रशिक्षण, राष्ट्रीय शिक्षाकी एक व्यापक योजना बनाना और कार्यान्वित करना 'मितव्ययिता बैंकों' (जिन्हें आजकल बचत बैंक्स (savings banks) कहते हैं) और 'सहायता देने वाली संस्थाओं' (friendly societies) की स्थापना करना, वाणिज्य जहाजरानीके लिए विधि-संहिता बनाना, आविष्कारकों की रक्षा, स्थानीय न्यायालयोंको प्रोत्साहन देना, स्वास्थ्यके सम्बन्ध मे व्यापक विधि निर्माण, गरीबोंके लिए सरकारी अभियोक्ताओं (prosecutors) और वकीलोंकी नियुक्ति करना, वंशानुगत अधिकारोंका व्यापक संशोधन, वैज्ञानिक और दार्शनिक संस्थानोंकी देख-रेख रखना और जन-पदाधिकारियोंका प्रत्यावर्तन (recall)। यह कहनेकी जरूरत नहीं है कि जिन सुधारोंका बेन्थम ने इतनी तत्परता और लगनके साथ समर्थन किया था उनमें से अनेक सुधार आज विभिन्न देशोंमे विधिका रूप पा चुके हैं।

विधि सुधार (Law Reform) बेन्थम एक महान् विधि-सुधारक बनना चाहते थे। वह इस बात के लिए बहुत व्यग्र थे कि 'दलितों और योग्य व्यक्तियोंको न्याय और सुख मिले (१३ ९२)।' इसी उद्देश्यसे उन्होंने तत्कालीन विधियोंकी और उन विधियोंको लागू करने वाली व्यवस्थाकी आलोचना की। पर वह केवल विध्वंसक आलोचक नहीं थे। उनका उद्देश्य मौलिक रूपमें रचनात्मक था और आलोचना तो इस लक्ष्यकी प्राप्तिका साधन थी। उन्होंने न केवल विभिन्न योरोपीय देशोंकी विधियोंकी, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि की भी विवेचना की और बड़े महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त प्रतिष्ठित किये। सर हेन्री मेन ने न्यायिक-सुधारके इतिहास में बेन्थम के योग-दानकी प्रशंसा यह कह कर की है कि 'बेन्थम के समयसे लेकर आज तक ऐसा कोई भी विधि सुधार मेरी दृष्टिमें नहीं आता जिस पर उनका प्रभाव न हो।'

बेन्थम ने यह अनुभव किया कि तत्कालीन विधियाँ बहुत अस्त व्यस्त अवस्थामें थी और उन विधियोंको संहिता-बद्ध करनेकी जिम्मेदारी स्वयं उन्होंने अपने ऊपर ली। पर अपने देशमें उन्हें कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। हाँ, अन्य देशोंसे—विशेषकर फ्रांस और रूससे—उन्हें प्रोत्साहन मिला। इन देशोंकी विधि व्यवस्थामें अपने उपयोगितावादी सिद्धान्तों का प्रयोग करके बेन्थम ने यह दिखा दिया कि किस प्रकार उनका सिद्धान्त व्यावहारिक रूपसे कार्यान्वित किया जा सकता है।

विधियों का सहितावद्ध करने के अलावा उन्होंने अपना ध्यान उनके स्वरूप-संगठनकी ओर भी दिया। बेन्थम उस अनावश्यक पारिभाषिकता और प्राविधिकता (technicality), व्यर्थ के शब्दजाल और अप्रचलित शब्दावलीमें चिढ़ते थे जो विधि-निर्माताओंको बहुत प्रिय थी। उनका कहना था कि विधियोंका सीधे सादे, आसानीसे समझमें आनेवाले छोटे-छोटे वाक्यों में व्यक्त किया जाना चाहिए। विधिया उन लोगोंके लिए सुलभ और सुगम होनी चाहिए, जिन पर उनके पालन करने का उत्तरदायित्व है। बेन्थम ने विधियोंको लागू करनेकी उस पद्धतिकी कडी आलोचना की जिसमें सबसे अधिक बोझ गरीबो पर जा पडता है। न्यायाधीशोंके उन विलम्बकारी तरीकोंकी उन्होंने बडी भर्त्सना की जिनसे मुकदमेसे सम्बन्धित पक्षोंका अनावश्यक खर्च बढ जाता है और कानूनकी प्राविधिकताके कारण न्यायका उद्देश्य ही सिद्ध नहीं हो पाता है। न्यायाधीशोंके प्रति उनके हृदयमें बहुत कम सम्मान था और न्यायाधीशोंकी निरंकुशताकी रोक-थामके लिए वह जूरियोंका बहुत समर्थन करते थे। 'न्यायिक पदाधिकारियों पर व्यक्तिगत उत्तरदायित्व डालने पर वह बहुत जोर देते थे और इसीलिए वह एक न्यायाधीशकी अदालतको उस अदालतसे अच्छी मानते थे जिसमें कई न्यायाधीश एक साथ बैठकर मुकदमेका फैसला करते हैं। उनका कहना था कि मुकदमेकी सुनवाईमें अनेक न्यायाधीशोंके होनेका मतलब है हरेक न्यायाधीश के उत्तरदायित्वकी शिथिलता (१३ ९७)।'

शिक्षा (Education) मानव-जातिका सुधार करने में शिक्षाकी शक्ति पर बेन्थमका अटल विश्वास था। उन्होंने दो प्रकारकी शिक्षा-पद्धतियोंकी रूप-रेखाएं बनाई थीं—एक गरीब बालकोंके लिए और दूसरी धनी बालकोंके लिए। उनकी शिक्षा-पद्धतिका प्रस्थान-बिन्दु यह था शिक्षा उस बातसे प्रारम्भ करो जो उपयोगी है—जो आगे चलकर विद्यार्थीके, जीवनमें सबसे अधिक लाभप्रद हो सके (१३ ८९)। उन्होंने ही इस वर्तमान सिद्धान्तकी नींव डाली कि 'सबसे पहले वही चीजें सिखाओ जो सबसे अधिक सुगमतासे सीखी जा सकती है अर्थात् विद्यार्थीकी सामर्थ्यका ध्यान रखो और उसे उसकी रुझान और स्वाभाविक प्रवृत्तिके विरुद्ध विवश मत करो (१३ ९०)।'

दण्ड और कारावास सम्बन्धी सुधार (Punishment and Prison Reforms) बेन्थम का कहना था कि दण्डका प्रधान उद्देश्य अपराधोंका रोकना है। दण्ड केवल प्रतिहिंसात्मक नही होना चाहिए। बेन्थम यह मानते थे कि प्रतिहिंसा से सन्तोष मिलता है पर उनका मत था कि दण्ड देने में प्रतिहिंसाको गौण स्थान दिया जाना चाहिए। दण्ड अपने उद्देश्यके ठीक अनुकूल होना चाहिए—न उससे अधिक और न उससे कम। इस दण्डमें समाजको लाभ होना चाहिए। यदि समाज की सुरक्षा और प्रतिष्ठाके लिए मृत्यु-दण्ड आवश्यक हो तो वह उचित और न्याय-पूर्ण है, अन्यथा नहीं। हत्याके अपराधोंके अलावा अन्य अपराधोंमें मौतकी सजा दी जाय या नहीं, इसका निर्णय बेन्थम की सम्मतिसे, उपयोगिताके आधार पर यानी

इस बात पर होना चाहिए कि सार्वजनिक कल्याण पर इसका कैसा प्रभाव पड़ेगा। जहाँ तक सम्भव हो, दण्ड जनताकी आँखोंके सामने ही दिया जाय, जिससे अपराधी प्रवृत्तिवाले उसे देखकर भयभीत हों और अपराध न करें। यह मत आधुनिक विचारधाराके विपरीत है।

बेन्थम निरोधात्मक दण्ड-सिद्धान्त (deterrent theory of punishment) पर जोर देते थे। पर अपराधीका सुधार उसकी परिधिसे बाहर नहीं है। बेन्थम का कहना था कि दण्डसे होने वाले परिणामोंका अन्दाज लगाते समय अपराधीके सुधारका भी ध्यान रखा जाय (१३ १०१)। उनका विश्वास था कि अनेक अपराधी और दुर्वृत्ति वाले लोग सुधारे जा सकते हैं और समाजके उपयोगी और सम्मानित सदस्य बनाये जा सकते हैं। इसी विश्वासके बल पर उन्होंने अपराधियों के पुनर्वासके लिए अनेक महत्त्वपूर्ण सुधारोंका समर्थन किया था, जैसे कारावासमें अपराधियों को औद्योगिक शिक्षा देना। अपराधियोंके दैनिक जीवनकी व्यवस्थित देख-रेखके लिए 'उन्होंने एक योजना बनायी थी जिसका उन्होंने 'पैनोप्टिकन' (panopticon) नामकरण किया। इस योजनाके अनुसार कारागारकी इमारतें इस ढंगसे अर्द्ध-चन्द्राकार बनायी जानी चाहिए कि जेलका सुपरिन्टेन्डेन्ट अपने निवास स्थानसे जेलकी सभी कोठरियोंको देख सके। इस योजनाकी मुख्य बात थी—सावधानीपूर्वक निरीक्षण, सहानुभूतिपूर्वक अनुशासन और उत्तम वातावरण। अपराधियोंको लाभप्रद व्यवसायोंकी शिक्षाके अतिरिक्त प्रारम्भिक शिक्षा भी दी जानी चाहिए। अपराधियोंको नैतिक और धार्मिक प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए। उनके सामने आदर्श चरित्रोंको इस ढंगसे रखना चाहिए कि वे स्वयं अपने चरित्रका सुधार करने लगें। इस योजनाके अनुसार कारावाससे छूटने पर अपराधियोंके लिए तब तक रोजी की व्यवस्था करनी चाहिए जब तक उन्हें जनताका विश्वास फिरसे न मिल जाय और वे स्वयं अपने पैरों पर न खड़े हो जायँ। यद्यपि इनमें से अनेक सुधार बेन्थम के जीवन-कालमें कार्यान्वित न हो सके, फिर भी 'उनके समयसे अब तक कारागारों और अनुतापालयों (penitentiaries) में जो व्यापक सुधार हुए हैं और औद्योगिक विद्यालयों तथा सुधार-शालाओं (reformatories) की जो स्थापना हुई है उन सबकी प्रेरणा उन्हींसे प्राप्त हुई है और उनका आधार वही सिद्धान्त है जिन्हें वह प्रतिष्ठित कर गये थे (१३ १११)।'

एक और दृष्टिसे भी बेन्थम अपने समयसे आगे थे। उनका विश्वास था कि दण्ड अपराधीके अनुरूप होना चाहिए न कि अपराधी दण्डके अनुरूप बनाया जाय। उनका विश्वास था कि अपराधियोंको दण्ड देते समय इन बातों पर ध्यान देना चाहिए अपराध कैसा था, अपराध करनेसे पहले अपराधीका चरित्र कैसा रहा है, अपराधीका वंशानुक्रम, वे परिस्थितियाँ जिनमें अपराध किया गया, अपराधीका उद्देश्य क्या था और जिन्हें क्षति पहुँची है वे किस कोटिके व्यक्ति हैं। दण्ड सुनिश्चित और पक्षपात रहित होना चाहिए।

उन्नीसवी शताब्दीके प्रारम्भमें बेन्थमने समाज सुधारका जो प्रयत्न किया उसकी उपर्युक्त विस्तृत रूपरेखामें पाठकोंको यह स्पष्ट हो गया होगा कि उपयोगितावादका स्वरूप कितना अधिक व्यावहारिक और सुधारवादी है। पर यह याद रखना चाहिए कि इन सब सुधारोंका आधार 'प्राकृतिक सुख' का सिद्धान्त नहीं है, बल्कि सार्वजनिक कल्याण या सामाजिक सुविधा अथवा सार्वजनिक उपयोगिताका सिद्धान्त है। बेन्थम के सम्बन्धमें यह ठीक ही कहा जाता है कि उन्होंने सभी संस्थाओंकी परख यह रखी थी कि उनकी उपयोगितासे उनके अस्तित्वका औचित्य प्रदर्शित होता है या नहीं।

२ **जेम्स मिल** (१७७३–१८३६) आजीवन बेन्थम के श्रद्धालु अनुयायी रहे। वह 'बेन्थम के सभी शिष्यों में से सबसे अधिक उद्यमी, सम्भवत सबसे अधिक बुद्धिमान् और सहज ही में किसी बातको स्वीकार न करनेवाली प्रवृत्तिके व्यक्ति थे (१३ ११४)।' सामाजिक और राजनीतिक समस्याओंमें उनकी सबसे अधिक रुचि थी। उपयोगितावादकी प्रयोगात्मक और आगमनात्मक पद्धति पर उनकी निष्ठा थी। बेन्थम की भांति समाजके निम्न और उच्च दोनों ही वर्गोंके लिए शिक्षाकी उपयोगिता पर उनका पूरा विश्वास था। बेन्थम की तरह उनकी भी विधि और विधिके सुधारमें गहरी दिलचस्पी थी। राजतन्त्रके विरुद्ध उन्हें ज्यादा आपत्ति नहीं थी। उनका विश्वास था कि एक सुव्यवस्थित प्रतिनिधि-पद्धतिसे सरकारकी स्वार्थ-सिद्धि पर रोक लगती है। यद्यपि बेन्थम की तरह उन्होंने लार्ड-सभाके उन्मूलनका समर्थन नहीं किया फिर भी उसके अधिकारोंको कम करनेके लिए उन्होंने क्रान्तिकारी प्रस्ताव रखे और इस मानेमें इग्लैण्ड के सन् १९११ के अधिनियमकी पूर्वकल्पना उन्होंने की थी। उनका विश्वास था कि यदि देशके मध्यवर्गके हाथोंमें राजनीतिक सत्ता रहेगी तो उसमें व्यवस्था और प्रगतिको सबसे अधिक बल मिलेगा। डैविड्सन के कथनानुसार जेम्स मिल 'बेन्थम के बाद आमूल परिवर्तनवादी (radical) उपयोगितावादियोंके नेता थे और इस विचारधाराके व्यावहारिक सुधारोंको कार्यान्वित करवानेमें उनका प्रधान योग था (१३ १४२)।'

३ **जॉन स्टुअर्ट मिल** (**John Stuart Mill**, १८०६–७३) जेम्स मिल के पुत्र थे और अपने पितासे अधिक प्रसिद्ध है। उन्होंने बेन्थम की कठोर नैतिक मान्यताओंको नरम बनाया और ऐसा करके 'उन्होंने उपयोगितावादको अधिक मानवीय, पर साथ ही कम दृढ़ बना डाला (६ ११९)।' वह यह मानते थे कि सुख में केवल मात्राका ही नहीं, गुणका भी भेद होता है। उनके इन शब्दोंका बहुधा उल्लेख किया जाता है कि एक सन्तुष्ट सुअर होनेकी अपेक्षा एक असन्तुष्ट मनुष्य होना अधिक अच्छा है और एक सन्तुष्ट मूर्ख बने रहनेकी अपेक्षा असन्तुष्ट सुकरात (बुद्धिमान्) होना अधिक अच्छा है और यदि उस मूर्ख या सुअरकी राय इससे भिन्न है तो वह इसलिए कि वह प्रश्नके केवल एक पहलू—अपने पहलूको ही देखता है।

तुलनाका दूसरा पक्ष दोनों पहलुओंको देखता है।' व्यक्तिगत स्वार्थ और सार्वजनिक सुखके अन्तरका कम करनेमे भी मिल की मान्यताएं बेन्थम से भिन्न हैं। वह कहते हैं—'उपयोगितावादी मानदण्ड व्यक्तिका अधिकतम सुख न होकर अधिकतम सामूहिक सुख है।' अपने और अन्य लोगोंके सुखके बीच व्यक्तिको, उपयोगितावाद की मान्यताओंके अनुसार, एक निरपेक्ष और उदार दर्शककी तरह पक्षपातहीन होना चाहिए।' नजारथके ईसामसीह के स्वर्णिम सिद्धान्तमे हमे उपयोगिताकी पूर्ण नैतिक भावना मिलती है। 'जैसे व्यवहारकी हम दूसरोसे अभिलाषा करते हैं दूसरोके साथ वैसा ही व्यवहार करना और अपने पडोसीको आत्मवत् प्रेम-भावनासे अपनाना—इन दोनो उपदेशोमे उपयोगितावादी नैतिकताकी पूर्णता है (६१ अध्याय ११)। व्यक्तिको सार्वजनिक सुखकी अभिवृद्धिके लिए विवश करनेमे बेन्थम ने केवल बाह्य अनुशास्तियोंका ही स्वीकार किया था पर मिल ने बाह्य और आन्तरिक दोनो अनुशास्तियोको स्वीकार किया है। उनका कहना था कि प्रत्येक व्यक्तिमे 'मानव जातिके सुखकी भावना रहती है और इसीलिए उसे सार्वजनिक सुखके लिए उत्सुक होना चाहिए और उसे बढाना चाहिए। उनका तर्क यह है 'चूंकि 'क' का सुख कल्याणकारी है, 'ख', 'ग' आदिका भी सुख कल्याणकारी है, इसलिए इन सब सुखो का योग भी अवश्य कल्याणकारी होगा (६१ ११-११६)।'

मिल को समाज-सुधारमे उतनी ही रुचि थी जितनी दार्शनिक चिन्तनमे। १८५९ मे प्रकाशित अपने प्रसिद्ध निबन्ध 'स्वतन्त्रता' (*Liberty*) मे वैयक्तिक स्वतन्त्रताका उन्होने निर्भीक समर्थन किया। उनकी यह रचना बडी योग्यतासे, विचार-स्वातन्त्र्य, भाषण-स्वातन्त्र्य और कर्म-स्वातन्त्र्यका औचित्य तर्कपूर्वक सिद्ध करती है। लोकतन्त्रके प्रबल समर्थक होते हुए भी मिल को इस बातकी आशका थी कि लोकतन्त्रमें व्यक्तित्व और मौलिकताके कुचलनेकी प्रवृत्ति होती है। इसीलिए उन्होने विचार, भाषण और कर्मके क्षेत्रमे यथासम्भव अधिकसे अधिक स्वतन्त्रताका समर्थन किया। वह मतभेदको सहानुभूतिपूर्वक सहन करने मे और विचार-विमर्शकी पूर्ण स्वतन्त्रतामे विश्वास करते थे। उनका यह पक्का विश्वास था कि विचारोके सघर्षमे सत्यकी ही अन्तमे विजय होगी। वास्तवमे विचारोंके क्षेत्रमे उन्होने योग्यतमकी विजय (survival of the fittest) की शिक्षा दी है। उनका कहना था कि सामाजिक शान्तिके पहले सामाजिक चेतना का होना जरूरी है। उनका यह भी कहना था कि व्यक्तियो और सघोंका काम करने की पूरी स्वतन्त्रता तब तक दी जानी चाहिए जब तक उनके कार्योसे दूसरोंके हितो और अधिकारोमे कोई गम्भीर हस्तक्षेप नही होता।

व्यावहारिक राजनीतिमे मिल आमूल परिवर्तनवादी (radical) थे। वह स्त्रियो

---

[1] उपयोगितावादका इस प्रकार सशोधन करनेमे मिल ने एक प्रकारसे उसका खण्डन ही कर दिया। उनके विचारोके अनुसार कुछ सुख दूसरोकी अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है।

के अधिकारोंके प्रबल समर्थक थे और स्त्रियोंको पुरुषोंकी 'दासता' से 'मुक्त' कराना चाहते थे। उनका विश्वास था कि पुरुषों और महिलाओंमें असमानता मौलिक और अनिवार्य नहीं है। १८६६ से १८६८ तक ससदमें एक आमूल परिवर्तनवादीके रूपमें उन्होंने मजदूरोंके हितों, स्त्रियोंके मताधिकार, राष्ट्रीय ऋणके कम किये जाने और आयरलैण्ड में भूमि-सुधारका जोरोंसे समर्थन किया। उन्होंने सभी प्रकारके वर्ग-स्वार्थोंका और एक तरफा विधियोंके निर्माणका विरोध किया। उनका विश्वास था कि ब्रिटिश पार्लमिण्टमें अल्पसंख्यकोंको उचित प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त है। इसी कारण उन्होंने आनुपातिक प्रतिनिधित्वका, जो हेअर महोदयके नामसे सम्बन्धित है, समर्थन किया। सभी कर-दाताओंके मताधिकारका समर्थन करते हुए भी मिल उच्च चरित्र और बौद्धिक शक्तिवाले व्यक्तियोंके लिए बहुल मताधिकारके पक्षपाती थे। सरकारकी शुद्धता और दक्षताको बनाये रखनेके लिए वह संसद-सदस्योंको वेतन दिये जानेके विरोधी थे और गुप्त मतदानका विरोध इस आधार पर करते थे कि इससे स्वार्थ प्रेरित अनुत्तरदायित्वपूर्ण मतदानको प्रोत्साहन मिलता है। यद्यपि मिल कॉमन्स-सभाकी विधि-निर्माणकी उच्चतर अधिकार-शक्तिको मानते थे पर उनका विश्वास था कि संसदके सम्मुख पेश किये जानेके लिए विधेयकोंकी रचनाका काम लॉर्ड-सभाको सौंपा जाना चाहिए, क्योंकि उसमें वैधिक क्षमतावाले लोग मौजूद होते है। वह राज्य द्वारा व्यवस्थित अनिवार्य शिक्षाके पक्षपाती थे, यद्यपि उन्हें इस बातका भी भय था कि इससे सरकारी विभाग द्वारा निर्धारित एक ही साचेके ढले नागरिक निकलेंगे। वह कहते थे कि अनिवार्य शिक्षा 'लोगोंको ठीक एक दूसरेके समान बनानेका तरीका-मात्र है।'

आर्थिक क्षेत्रमें मिल कट्टर व्यक्तिवादी न होकर उससे कहीं दूर थे। समाज कल्याणके लिए उन्होंने व्यापक राजकीय कार्य-क्षेत्रका समर्थन किया। अपने जीवनके अन्तिम वर्षोंमें वह ऐसे समाजवादी आदर्शकी ओर आकृष्ट हुए जिसमें 'संसारके कच्चे माल पर सार्वजनिक प्रभुत्व होगा और सभी लोग सामूहिक श्रमसे होनेवाले फलोंके समान भागीदार होंगे।' उन्होंने राजनीतिक उदारवादके साथ आर्थिक समाजवादको जोड दिया था। जैसा कि आइवर ब्राउन कहते है 'जहाँ तक समाजवादका आधार व्यक्तिगत कल्याण है मिल के राजनीतिक आदर्शोंका समाजवादके साथ पूरा-पूरा मेल बैठ जाता है (६ १२९)।'

मिल ने जो कुछ भी लिखा है और कहा है उस सबका मुख्य लक्ष्य सामाजिक कल्याण और व्यक्तित्वकी रक्षा है। उन्होंने अपनी पूरी ताकतसे विकास और उन्नतिका समर्थन किया। उन्हें विश्वास था कि विवेकपूर्ण मानवीय प्रयासोंसे मानव-जातिका सुधार व उत्थान हो सकता है। एक सच्चे उपयोगितावादीकी तरह उन्होंने सुखको ही मानव व्यवहारका अन्तिम लक्ष्य माना और उसी पर जोर दिया। साथ ही साथ वह स्वतन्त्रताको भी अत्यन्त आवश्यक मानते थे। जिस स्वतन्त्रताका वह इतना जोरदार समर्थन करते थे वह स्त्री-पुरुषोंकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता थी, वह गुटों और

सूक्ष्म धारणाओं (abstractions) की स्वतन्त्रता नहीं थी। उनकी मुख्य विशेषता यह है कि वह सभी सामाजिक समस्याओं पर मनुष्यको सामने रखकर विचार करते थे। यद्यपि उनके सामाजिक और राजनीतिक विचारोंमें बडी आसानीसे छिद्रान्वेषण किया जा सकता है, पर इस बातसे इन्कार नहीं किया जा सकता कि उनकी विचार धारामें स्थायी महत्त्वकी बातें हैं। 'यही कारण है कि, यद्यपि उपयोगितावादी सिद्धान्त की बहुत दिनोंसे निन्दा होता आई है, फिर भी उसमें स्थायित्वकी सम्भावना है (६ १७९)।'

अन्य उपयोगितावादी विचारक हमारा अधिक समय नहीं लेते। जान आस्टिन (१७९०–१८५९) की सबसे बडी देन न्याय शास्त्रकी दृष्टिसे विधि-दर्शनका व्यापक विवेचन है। व्यावहारिक राजनीतिमे उन्हें लोकतन्त्रीय सरकारके प्रति कोई अधिक उत्साह नहीं था। वह पक्के रूढिवादी थे और १८५९ के संसदीय सुधारके विरोधी थे। जार्ज ग्रोट (१७९४–१८७१) कट्टर बेंथमवादी थे। वह व्यावहारिक राजनीतिज्ञ होनेके साथ ही राजनीतिक दार्शनिक भी थे। वह गुप्त मतदानके पक्षपाती थे। वह परिवर्धित मताधिकार (extended franchise) के उत्साही समर्थक थे (१३ २३८)। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक अलेक्जेण्डर बेन (१८१८-१९०३) ने उपयोगितावादी नीति-शास्त्रको एक वैज्ञानिक रूप दिया, जिसकी उसे आवश्यकता थी। उन्होंने अनुभव' का अपने साहचर्य-मूलक मनोविज्ञान (associationist psychology) का सकेत-सूत्र बना दिया।

ऊपर जिन आमूल परिवर्तनवादी उपयोगितावादियोंका विवेचन किया गया है उनके प्रति ब्रिटेन बहुत ऋणी है। उन्नीसवी शताब्दीके अधिकांशमे उनके विचारोंका बोलबाला रहा। उसका नतीजा यह हुआ कि व्यावहारिक राजनीति, सामाजिक सुधार और कल्याणकारी विधि-निर्माणमे जनताकी रुचि इतनी अधिक रही जिसकी पहले कभी कल्पना भी नहीं की गयी थी। उससे होने वाले लाभका आनन्द हम आज उठा रहे है। अपने सिद्धान्तोंको उन्होंने क्रमश एक-एक कदम आगे बढाया। प्रत्येक महान् विचारकने स्थायी महत्त्वकी कुछ न कुछ बात जोडी। प्रगति उनका सकेत-सूत्र था और स्वतन्त्रता तथा जन-हितके लिए उनके उत्साहने उन्हे आगे बढनेकी प्रेरणा और शक्ति मिलती थी। आधुनिक युगके लिए यही उनकी देन है। उन्होंने समाजका कोई पूर्ण दार्शनिक पद्धति नहीं दी, पर वह कुछ ऐसे सुनिश्चित सिद्धान्त दे गये है जो परिणामोंकी कसौटी पर खरे उतरे है और जिनमे भविष्यमें कल्याणकारी प्रयोग किये जानेकी अपरिमित क्षमता अब भी है (१३ २४९–५०)।'

'अधिकतम सुखका सिद्धान्त' निस्सन्देह निरर्थक है। पर उपयोगिता और उपयोगितावादके नाम पर बहुत सारे कल्याणकारी काम किये जा चुके है। उन्नीसवी सदी मे जो अंग्रेज नागरिक भारत आये थे उनमेसे अधिकांश ने सामाजिक सुधार और सामाजिक विधि निर्माणका समर्थन किया था। ऐसा करनेमें वे लोग उपयोगितावाद के आदर्शोंसे ही प्रेरित थे। उन्होंने अनेक भारतीय सुधारकों को भी प्रभावित किया था।

आज भी उपयोगितावाद या 'अधिकतम सुखका सिद्धान्त' बहुत कल्याण कर सकता है, बशर्ते कि उसकी अत्यधिक शाब्दिक व्याख्या मात्र न की जाय। उपयोगितावाद और आदर्शवादका समन्वय किया जा सकता है, जैसा कि टी० एच० ग्रीन ने, राजनीति-शास्त्रके क्षेत्रमे, किया है। व्यावहारिक राजनीतिके क्षेत्रमे इस प्रकारका समन्वय भारतमे मिश्रित अर्थ-व्यवस्थाका और कल्याणकारी-राज्यके आदर्शका पोषण कर सकता है।

SELECT READINGS

ALBEE, E —*History of English Utilitarianism*

BENTHAM, J —*An Introduction to the Study of Morals and Legislation—A Fragment on Government*

BROWN, I —*English Political Theory*—Chs VIII and X

DAVIDSON, W L —*Political Thought in England, The Utilitarians from Bentham to Mill*

DUNNING, W A —*Political Theories, from Rousseau to Spencer*—Ch VI

HALLOWELL —*Main Currents in Modern Political Thought*—Ch 7

JOAD, G E M —*Guide to the Philosophy of Morals and Politics*—pp 334-5

MACCUNN, J —*Six Radical Thinkers*—Chs I-II

MILL, J S —*Utilitarianism*

POLLOCK, F —*History of the Science of Politics*—pp 98 111

RITCHIE, D G —*Principles of State Interference*

SETH, JAMES—*Ethical Principles*—Part I, Ch I

STEPHEN, LESLIE—*The English Utilitarians*

WILLOUGHBY, W W —*Nature of the State*—Chs IX and XI

१८

राजनीतिमें आदर्शवाद
(Idealism in Politics)

१ राजनीतिमे आदर्शवादकी परम्परा (The Idealistic Tradition in Politics)

राज्यका आदर्शवादी सिद्धान्त अनेक नामोसे प्रसिद्ध है। कुछ लोग इसे परमवादी सिद्धान्त (absolutist theory) कुछ लोग इसे दार्शनिक सिद्धान्त (philosophical theory) और कुछ लोग इसे आध्यात्मिक सिद्धान्त metaphysical theory) कहते हैं। मैकाइवर तो उसे 'रहस्यवादी' (mystical) सिद्धान्त तक कह डालते हैं। नाम चाहे जो कुछ हो पर आदर्शवादी परम्पराका एक लम्बा इतिहास है, यद्यपि उसकी शृखला कही-कहीं टूटी हुई है। सबसे पहले इसके सूत्र प्लेटो और अरस्तू की रचनाओंमे मिलते हैं। यह दोनो यूनानी विचारक, अपने अनेक समकालीन विचारकोंकी तरह, राज्यको स्वाभाविक और आवश्यक मानते थे। वह राज्यको सब कुछ मानते थे। उनका कहना था कि राज्यमें अलग रह कर मनुष्य अपनी चरमपूर्णताको नही प्राप्त कर सकता। अरस्तू का मत था कि राज्यका उदय तो मानव जीवनकी आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिए ही हुआ था पर उसका अस्तित्व नैतिक जीवनकी आवश्यकताओके कारण बना रहा। प्लेटो और अरस्तू दोनो ही राज्यका उसके सर्वोच्च रूपमे एक नैतिक संस्था मानते थे। सच्चा राज्य एक सदगुण सम्पन्न जीवनकी 'साझेदारी' है।

राज्य पर इस प्रकार एक नैतिक दृष्टिसे विचार करने और नीतिशास्त्रके अनुसार राजनीतिक सिद्धान्तकी विवेचना करनेका, बादके आदर्शवादी विचारको पर, बहुत प्रभाव पडा है। यूनानी दार्शनिकोंका प्रभाव आधुनिक आदर्शवादियो पर एक और दृष्टिसे पडा है और वह है राज्य और समाजकी व्यावहारिक एकरूपता। यह प्रवृत्ति बोसाँके मे विशेष रूपमे दिखायी देती है। यूनानी चिन्तनका, विशेष कर प्लेटो के विचारोंका, तीसरा प्रभाव उत्तरकालीन आदर्शवादियों पर यह पडा है कि वे राज्यको एक जैविक इकाईके रूपम मानते हैं। आदर्शवादियोंका प्रस्थान-बिन्दु यह है कि राज्य एक केन्द्रीय सामाजिक व्यवस्था है जिसमे व्यक्तिको अपना उपयुक्त स्थान बनाना होता है। व्यक्तिका स्वय अपने आपमे न कोई महत्त्व है न मूल्य। उसका जो

कुछ भी महत्त्व है वह इसलिए है कि वह एक जैविक इकाईका अभिन्न अंग है। व्यक्ति और राज्यके बीचके जिस तीव्र विभेद (the sharp contrast between the individual and the state) से आज हम बहुत परिचित हैं वह यूनानियोंको अज्ञात था। उनकी दृष्टिमें नागरिकताका जीवन ही सामाजिक जीवन था और एक नागरिकका जीवन ही पूर्ण जीवन था। वह राज्यसे अलग व्यक्तिको एक 'अनैतिक सूक्ष्म भाव-मात्र' (unethical abstraction) मानते थे (७१ २८८)।

यूनानी युगमें भी प्लेटो और अरस्तू के राज्य सम्बन्धी महान् आदर्शको सब लोग नहीं मानते थे। जैसा कि जेम्स सेठ कहते हैं, यूनानी नीति-शास्त्र "व्यक्तिवाद और विश्वबन्धुत्वकी पुकारके साथ समाप्त होता है (७१ २८९)।" इसका आभास एपीक्यूरियन और स्टोइक-विचारकोंके उपदेशमें मिलता है। मध्ययुगमें चर्च ने राज्यको पद-च्युत करके उसका स्थान बहुत कुछ ग्रहण कर लिया और चर्च (धर्म-संघ) तथा राज्यके अधिकार-क्षेत्रके बारेमें विवाद चल पड़ा। इस युगमें एक ओर तो धर्म-संघ और राज्यमें और दूसरी ओर राजतन्त्र और सामन्तशाहीके बीच संघर्ष चला। ऐसी हालतमें यूनानी चिन्तनके सर्वोत्तम तत्त्वोंका सफलताके अनुकूल वातावरण न मिल सका। इस प्रकार लगभग एक हजार वर्ष तक यूनानी राजनीतिक दर्शन प्राय सुप्तावस्थामें रहा। पुनर्जागरण (renaissance) और सुधार (reformation) के कालमें लोगोंकी अभिरुचि फिरसे यूनानी ज्ञानकी ओर अग्रसर हुई। यूटोपिया (*Utopia*) नामक ग्रन्थ लिखनेमें सर टॉमस मूर पर प्लेटो की रचना 'रिपब्लिक' का काफी प्रभाव पड़ा। पर प्लेटो के जिन विचारों ने मूर को सबसे अधिक प्रभावित किया वह उनका साम्यवाद था न कि उनके आदर्शवादी उपदेश। व्यक्तिकी महत्ताके सुधारयुगीय सिद्धान्तने व्यक्तिको एक नयी स्वाधीनता दी और व्यक्तित्व-सिद्धान्तके लिए मार्ग प्रशस्त किया। यह सिद्धान्त ही आधुनिक आदर्शवाद की आधारशिला है। सुधार-युगके बाद व्यक्तिवाद, राष्ट्रीयता, प्रतियोगिता और वाणिज्यवादका जमाना आया। इनमें से अन्तिम दो का गठबन्धन हुआ जिससे पूंजीवादका बेरोकटोक प्रसार बढ़ा (६ २८)। इस युगमें भी आदर्शवादी परम्परा बहुत आगे न बढ़ सकी। राजाओंके दैवी अधिकार सिद्धान्तका काफी समय तक बोल-बाला रहा। इस प्रकार राज्यके दैवी अधिकार सम्बन्धी हीगेल के सिद्धान्तकी पूर्व कल्पना दो शताब्दी पहले की जा चुकी थी।

आधुनिक विचार-धारा पर यूनानी राजनीतिक चिन्तनका स्थायी और निरन्तर प्रभाव रूसो के साथ प्रारम्भ होता है। इसलिए रूसो को यह श्रेय दिया जाना ठीक ही है कि सदियों पहले यूनानी दार्शनिकों द्वारा खोजे गये महान् सत्योंको उन्होंने फिर से खोजकर हमारे सामने रखा।

रूसो के विचारों पर सबसे अधिक प्रभाव प्लेटोका पड़ा। प्लेटो की सहायतासे ही रूसो अपनेको लॉक के व्यक्तिवादी सिद्धान्तसे मुक्त कर सामाजिक अनुबन्ध (*Social Contract*) में निहित समष्टिवादी सिद्धान्त (collectivist theory) को

अपना सके। अपनी युगान्तरकारी पुस्तक 'सामाजिक अनुबन्ध' म रूसो ने राज्यकी धारणा एक नैतिक प्राणी (moral organism) के रूपमे की है और लोक-सम्मति का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। उनकी रायमे राज्य मूलत नागरिकोके कानूनी अधिकाराकी रक्षा करनेवाला कानूनी सगठन नही है। वस्तुत राज्य एक नैतिक सगठन है जिसके सामान्य जीवन-यापनमे ही मनुष्य अपनी नैतिक पूर्णताको प्राप्त करता है। राज्यका सदस्य न रहनेसे व्यक्ति मूर्ख और सकुचित जीव मात्र रह जाता है। राज्यकी सदस्यताके कारण ही वह 'एक समझदार और मानवीय प्राणी बनता है। राज्य मनुष्यकी नैसर्गिक प्रवृत्ति (instinct) के स्थान पर न्याय और क्षुधा (आकाक्षा) के स्थान पर कानूनकी प्रतिष्ठा करता है। मनुष्यके कार्योको वह ऐसी नैतिकता प्रदान करता है जो उन्हे पहले प्राप्त न थी। वह अपने नागरिकोको भौतिक परतत्रतासे मुक्त कर उनके लिए नैतिक स्वतत्रताका जीवन सम्भव बनाता है। राज्यको चाहिए कि वह मनुष्यको स्वतत्र बननेके लिए विवश करे। प्लेटा की तरह रूसो को भी राज्यसे तीव्र अनुराग था, पर राज्य सम्बन्धी उनकी धारणा कुछ मानोमे प्लेटा की धारणामे भिन्न थी। रूसो ने लोक-सम्मतिके सिद्धान्तका और इस बातका प्रतिपादन किया कि इस सम्मतिके निर्माणमे हर व्यक्तिका भाग है।

रूसो के गम्भीर उपदेशोका प्रभाव कान्ट और अन्य समकालीन जर्मन दार्शनिको के चिन्तन पर और उनके माध्यमसे अग्रेज आदर्शवादियो पर पडा। उनकी विचार-धाराकी अधिक समीक्षा इसी अध्यायमे बादमे की जायगी। इस समय हम सामान्य आदर्शवादी धारणाका सक्षिप्त विवेचन करेगे।

२. राज्यके आदर्शवादी सिद्धान्तकी व्याख्या (Statement of the Idealistic Theory of the State)

आदर्शवादियोका विश्वास है कि राज्य एक नैतिक सस्था है। बोसाके के शब्दो मे राज्य नैतिक विचारका मूर्त्त रूप है। समाजकी अन्य महत्त्वपूर्ण नैतिक सस्थाए परिवार और धर्म-सघ (church) है। इन सभी सस्थाओमे राज्य सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। एक दृष्टिसे राज्यमे अन्य सब सस्थाए सम्मिलित है। कडी निगाहसे तो राज्य एक वैधिक सगठन जरूर है पर व्यापक दृष्टिकोणसे राज्य एक नैतिक सगठन है जो करीब-करीब समाजके साथ एक रूप होता है। व्यक्तिके प्रति न्याय इस बातमे है कि समाजके जीवन और कार्य-व्यापारमे उसे अपना उपयुक्त स्थान प्राप्त हो और उस स्थानसे सम्बद्ध कर्तव्योको वह पूरा करे।

राज्यके बिना मानव-व्यक्तित्वका पूरा विकास और उत्थान सम्भव नही है। मनुष्य स्वभावत एक सामाजिक प्राणी है और राज्य नैतिक लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए समाजका प्रभावपूर्ण सगठन है। व्यक्ति और राज्यके उद्देश्योमे कोई वास्तविक विरोध नही है। दोनोका उद्देश्य व्यक्तित्वकी पूर्णता है। नैतिक दृष्टिसे राज्य स्वय

अपने आपमे उद्देश्य नही है। वह एक साधन है जिसके माध्यमसे लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है।

व्यक्ति ही नैतिक इकाई है। 'राज्य व्यक्तिके लिए है, व्यक्ति राज्यके लिए नही। राज्यका काम व्यक्तिका अवक्रमण करना नही है। राज्यका काम यह है कि वह व्यक्तिको उसके व्यक्तित्वके विकासमे सहायता पहुँचाय और उसे अवसर दे। राज्य व्यक्तिका कार्य क्षेत्र है, उसके नैतिक जीवनका माध्यम है (७१ २९३)।'

इस दृष्टिसे राज्य व्यक्तिका सबसे अच्छा मित्र है। मनुष्य और राज्यमे विरोध समझना एकदम गलत है। अराजकतावादी जो राज्यको विघ्नकारी बुराई मानते है और व्यक्तिवादी जो राज्यको एक अनिवार्य बुराई मानते है, दोनो ही राज्यके सच्चे महत्त्वको नही समझे है। अराजकतावादका दुष्परिणाम है 'भीड़शाहीकी खराबिया (evils of mob rule) और आज दिन व्यक्तिवाद तो करीब-करीब हास्यास्पद हो चुका है (७१ २९३)। यह आदर्श कि हर व्यक्तिको अपने ही लिए जीनेका अधिकार मिलना चाहिए, एक असम्भव और आत्मविरोधी आदर्श साबित हो चुका है। अतिवादी व्यक्तिवादकी प्रतिक्रियाके फलस्वरूप ही समाजवाद और आदर्शवादका उदय हुआ है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, आदर्शवादके अनुसार व्यक्ति और राज्य के सच्चे हित एक ही है। दोनो ही का लक्ष्य है मनुष्यके व्यक्तित्वका पूर्ण और स्वतत्र विकास। आदर्शवादी इस पुरानी यूनानी धारणाको मानता है कि समाज व्यक्ति पर और व्यक्ति समाज पर निर्भर है। उसका विश्वास है कि 'राज्य व्यक्ति पर बाहरसे लादी गयी शक्ति नही है। अपने वास्तविक स्वरूपमे राज्य और व्यक्ति एक रूप है (७१ २९२)।' इसलिए राज्यकी आज्ञाका पालन करना नागरिक के स्वय अपने ही उत्तम अशकी आज्ञाका पालन है।

यद्यपि व्यक्ति ही नैतिक इकाई है और राज्यका अस्तित्व व्यक्तिके लिए है फिर भी आदर्शवादियोका विश्वास है कि राज्यकी अपनी इच्छा और अपना व्यक्तित्व है। उसका अतीत इतिहास, वर्तमान जीवन और उसकी भावी सम्भावनाएँ है और इस प्रकार कुछ अर्थोमे राज्य व्यक्तियोसे भिन्न है यद्यपि उनको मिलाकर ही वह बनता है। उसके उद्देश्यमे निरन्तरता और लक्ष्यमे स्थिरता है। एक आदर्श राज्य, जिसमे युक्ति-सगत इच्छा अपने पूर्ण रूपमे व्यक्त हुई हो, कभी कोई ऐसी इच्छा नही कर सकता जो उसके व्यक्तिगत सदस्योके सर्वोच्च हितोके विरुद्ध हो। आदर्शवादी इस बात से विचलित नही हो जाते कि ऐसे राज्यका कभी कही अस्तित्व नही रहा। वे उसे एक ऐसा लक्ष्य मानते है जिसके लिए सभी राज्योको प्रयत्न करना चाहिए।

आदर्शवादीके अनुसार राज्यका आधार लोक इच्छा होती है दबाव डालनेवाली शक्ति नही। निस्सन्देह राज्य शक्तिका प्रयोग करता है, पर शक्ति राज्यकी मुख्य विशेषता नही है। राज्य सामूहिक इच्छाका मूर्तरूप है। आदर्शवादीके अनुसार हमे राज्यका आदेश इसलिए मानना चाहिए कि हम यह अनुभव करते हैं कि इस आदेश-पालन से एक ऐसे सार्वजनिक हितकी वृद्धि होती है, व्यक्तिका हित जिसका एक

अभिन्न अंग है। आदर्शवादीका विश्वास है कि मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है और उसके विवेकको लगातार उदबुद्ध करते रहनेसे स्थायी कल्याण हो सकता है। उसे विचारोंकी शक्ति पर विश्वास है।

सामान्यतः आधुनिक विचार और प्रयत्नोंकी प्रवृत्ति राज्यका प्रभाव-क्षेत्र घटानेकी ओर न होकर 'राज्यके सामाजीकरण अथवा समाजके राष्ट्रीयकरणकी ओर है (७१ २९२)। 'राज्यका सच्चा कर्त्तव्य यह है कि वह नागरिकके व्यक्तिगत जीवनको सुलझाये और उसे परिपूर्ण बनाये (७१ २९४)।' व्यावहारिक भाषामे इसका अर्थ यह हुआ कि राज्यको चाहिए कि वह सुन्दर जीवनके मार्गमे पडनेवाली बाधाओंको दूर करे। धर्म और नैतिकताको न तो राज्य बलपूर्वक लागू कर सकता है और न उसे लागू करना ही चाहिए। व्यक्ति का चरम उद्देश्य है व्यक्तित्वका विकास, जिसे आत्मानुभूति (self-realization) या आत्मतोष भी कहते है। राज्यको व्यक्तिके इस सबसे महान् उद्देश्यको निरन्तर अपने सम्मुख रखना चाहिए। निष्पक्षतामे सबके लिए समान अधिकार लागू करके उसे स्वतन्त्रताकी वह परिस्थितियाँ बनाये रखनी चाहिए जो मनुष्यके सुन्दर जीवनके लिए जरूरी हैं। और, जैसा पहले कहा गया है, अधिकार वह बाहरी परिस्थितियाँ हैं जो मनुष्यके आन्तरिक विकासके लिए आवश्यक है।

राज्यकी सेवा करनेमे हम अपने उच्चतम अंगके प्रति निष्ठाहीन नही हो जाते। हम दो स्वामियोंकी सेवा नही करते। हमारी सेवाका अधिकारी तो केवल एक ही स्वामी होता है और वह है नैतिक और वैयक्तिक आदर्श (१७ २९४)।' राज्यसे बिल्कुल अलग व्यक्तिका आदर्शवादी कोई महत्त्व नहीं देता। 'ऐसा व्यक्ति समाज-विरोधी और राज्य-विरोधी होता है (७१ २९५) उसका जीवन बे-लगाम होता है (७१ २९५)।' आदर्शवादी, व्यक्तिका 'सामाजिक और राजनीतिक तथा साथ ही वैयक्तिक मानता है (१७ २९५)।' 'व्यक्तिको अन्य व्यक्तियोसे पृथक् करनेका अर्थ होगा उसके जीवनको कुठित कर देना यदि यह कहा जाय कि राज्य वैयक्तिक जीवन मे भी हस्तक्षेप करता है तो उसका स्पष्टीकरण यह है कि वह हस्तक्षेप केवल व्यक्तिके साथ होता है, उसकी अन्तरात्माके साथ नही और राज्यके इस हस्तक्षेपका उद्देश्य अन्तरात्माको दूसरे व्यक्तियोके हस्तक्षेपसे बचाना होता है। न तो राज्य और न व्यक्ति ही सर्वोच्च नैतिक उद्देश्य और इकाई है। यह उद्देश्य और इकाई तो मनुष्य की अन्तरात्मा है (७१ ३०१)।

साधारणतया व्यक्तिको राज्यकी आज्ञाका पालन करना चाहिए। पर इसका मतलब यह नही है कि वह राजनीतिक व्यवस्थाकी आलोचना नहीं कर सकता। व्यक्ति सम्प्रभु और प्रजा दोनों ही है। पर राज्य जब उसके व्यक्तित्वके क्षेत्रका अतिक्रमण करता है तब उसे अधिकार है कि वह राज्यके विरुद्ध विद्रोह कर दे। ऐसी अवस्थामे विद्रोह करना एक सार्वजनिक कर्त्तव्य हो जाता है। विद्रोहकी अवस्थामे भी व्यक्ति को यह याद रखना चाहिए कि वह अब भी उस सर्वोत्तम तत्त्वके प्रति एक निष्ठावान

नागरिक है जिसके लिए राज्यका अस्तित्व है। जेम्स सेठ का कहना है कि निम्न-लिखित दो स्थितियोंमें व्यक्तिका विद्रोह करना उचित है (क) जब राज्य एक व्यक्तिगत नागरिक अथवा एक व्यक्ति-समूहके रूपमें काम करने लगता है, (ख) जब लोकसम्मतिका तत्कालीन स्वरूप इतना अनुपयुक्त हो जाता है कि उसके सुधारकी आवश्यकता होती है। [(a) when the State acts as a private individual or a body of individuals, (b) when the present formulation of the general will becomes so inadequate as to require reformation]

(क) इंग्लैण्ड और फ्रांसकी क्रान्तियाँ पहली स्थिति के अच्छे उदाहरण हैं। उस समय 'वास्तविक राज्य आदर्श राज्यके प्रतिकूल हो गया था। राज्य व्यक्तित्वके उन्ही अधिकारोंको समाप्त करनेकी कोशिश कर रहा था जिनका उसे संरक्षक बनना चाहिए था और जिसके सम्मुख अपनी संरक्षताका उत्तरदायित्व सिद्ध करना चाहिए था।' इसलिए क्रान्ति निस्सन्देह उचित और न्यायपूर्ण थी। सच्चे सम्प्रभुको राज्यकी किसी वस्तुको 'अपना निजी' नहीं समझना चाहिए। 'सार्वजनिक कार्योंमें उसका कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं होना चाहिए, जनताका हित ही उसका हित होना चाहिए और जनताकी इच्छा उसकी इच्छा। यदि वह इसके विरुद्ध चलता है, अपनी व्यक्तिगत इच्छा पर जोर देता है और नागरिकोंके हितोंको अपने व्यक्तिगत हितोंके आधीन बना देता है तो वह अपने ही कार्योंसे अपना सिंहासन और अपनी सम्प्रभुता खो देता है। ऐसी हालतमें उस सबसे बड़ी शक्तिको प्रयोगमें लानेकी जरूरत होती है जो जनताके ही हाथोंमें होती है (७१ ३०१)।"

(ख) सुधार कानून (Reform Bills) के पहले इंग्लैण्ड की हालत उस अवस्था का अच्छा उदाहरण है जब लोक-सम्मतिके फिरसे निश्चित किये जानेकी आवश्यकता थी। इस प्रकारकी स्थितियोंमें यह जरूरी नहीं है कि यह काम क्रान्तिके द्वारा ही हो, सुधार ही पर्याप्त होता है। एक अच्छे राज्यमें जहाँ लोकमत गतिशील और प्रबुद्ध है, ऐसा सुधार निरन्तर होता रहता है।

आदर्शवादकी बहुत अधिक अनुचित आलोचनाकी गयी है। इसका कारण यह है कि जर्मन और अंग्रेज आदर्शवादियोंकी शिक्षाओं और वैयक्तिक आदर्शवादी विचारकों की शिक्षाओंमें भेद नहीं समझा गया। उदाहरणके लिए जोड महोदय सम्पूर्ण आदर्श-वादी विचारधाराकी इस कारण निन्दा करते हैं कि हीगेल ने उसका एक अतिवादी रूप चित्रित किया है। ऐसा करना बिल्कुल अनुचित है।

३ टी० एच० ग्रीन एक गम्भीर आदर्शवादी
(T H Green as a Sober Idealist)

अब हम टी० एच० ग्रीन (१८३६-१८८२) की शिक्षाओंका विवेचन करेंगे। वह

आदर्शवादियोमे सर्वोत्तम थे। अर्नेस्ट बार्कर के शब्दोमे वह एक उच्च आदर्शवादी और एक गम्भीर यथार्थवादी थे।

(१) ग्रीन के विचारों के स्रोत (Sources of Green's Thought) ग्रीन के विचारोके स्रोत प्लेटो, अरस्तू, रूसो काण्ट और हीगेल है। यूनानी दार्शनिको से ग्रीन इस बातमे सहमत है कि राज्य स्वाभाविक और आवश्यक है और व्यक्तिका जीवन समाजके जीवनका एक अभिन्न अग है। पर वह जीवनके अभिजातवर्गीय (aristocratic) यूनानी दृष्टिकोणसे सहमत नही है। यूनानी विचारक आत्मतोष और आत्मानुभूतिका जीवन कुछ थोडे ही व्यक्तियोंके लिए सम्भव मानते थे। ग्रीन इस बारेमे यह लोकतन्त्रीय दृष्टिकोण स्वीकार करते है कि नागरिकताका जीवन उन सब व्यक्तियो द्वारा प्राप्त किया जा सकता है जो सार्वजनिक हितमे विश्वास रखते है। जहाँ तक प्लेटो और अरस्तू के तुलनात्मक प्रभावका सम्बन्ध है, ग्रीन पर प्लेटो की अपेक्षा अरस्तू का प्रभाव अधिक पडा है। अरस्तू की तरह ही ग्रीन अपने नीति-शास्त्रको राजनीति-शास्त्रमे पूरा करते है। ग्रीन का विश्वास है कि राज्यका सर्वोपरि कर्त्तव्य यह है कि वह अपने व्यक्तिगत सदस्योके लिए एक ऐसे कल्याणकी सिद्धि सम्भव बनाये जो सार्वजनिक कल्याण हो। ग्रीन अपने नीति-शास्त्रमें 'आत्मतोष' या 'आत्मानुभूति' को आचरणका लक्ष्य बनाते है और अपने राजनीति-शास्त्रम सार्वजनिक कल्याणका वह हमेशा परम कल्याण कहते है। उनकी विचार-धारामे यह सभी शब्द एक दूसरेके साथ अदले-बदले जा सकते है।

काण्ट और हीगेल की भाति ग्रीन भी रूसो की इस धारणाको मानते है कि 'नैतिक स्वाधीनता' मनुष्यका विशेष और अनुपम गुण है। वह मनुष्यकी स्वाधीन इच्छाको मान लेते है यद्यपि यह स्वीकृति सीमित है। 'ऋणात्मक' और 'धनात्मक' स्वाधीनतामे, सामान्य और विशिष्ट स्वाधीनतामे 'न्यायमूलक' स्वाधीनता तथा 'आध्यात्मिक' स्वाधीनतामे और 'भौतिक' अहं (ego) और 'शुद्ध' अहंमे अन्तर मानते है। इनमेसे ऋणात्मक, सामान्य, (generic) न्याय-मूलक और भौतिक—स्वाधीनताका सीधा-सा अर्थ है, आत्मनिर्णय या अपनी वरीयत्वकी भावनाके अनुसार काम करना [He assumes the free will of man—although within certain limits—and distinguishes between 'negative' and 'positive' freedom between freedom in the generic and freedom in the particular sense, between 'juristic' and 'spiritual' freedom and between the 'empirical' ego and the 'pure ego Freedom of the former kind—negative, generic, juristic, and empiric—means simply self-determination or acting on preference] इसका मतलब अपने मनकी मौज का अनुकरण करना भी हो सकता है। दूसरी कोटिकी—अर्थात् धनात्मक, विशिष्ट, आध्यात्मिक और शुद्ध स्वाधीनताका उद्देश्य होता है, तर्क या विवेक और इच्छाके लक्ष्योका अधिकाधिक एकरूप होना। दूसरे शब्दोंमें स्वतन्त्र कार्य विवेकशील कार्य

होते है। जैसा कि श्री रिपी कहते है, ग्रीन ने हीगेल के इस सिद्धान्तको, कि राज्यका लक्ष्य स्वाधीनता ही है इसी अर्थमे स्वीकार किया है।

सही अर्थोंमे स्वाधीनताका मतलब यह नही होता कि व्यक्तिको बिल्कुल अकेला स्वच्छन्द छोड दिया जाय। मनुष्य जिस सन्तोपकी खोज करता है वह यदि सच्चा सन्तोप नही है तो यह कहा जा सकता है कि उसकी इच्छा स्वतन्त्र नही है। ऐसी स्थितिमे कोई नैतिक स्वाधीनता नही हो सकती। ऐसा व्यक्ति दासतामे है। सच्चे सन्तोपको शान्ति या परमानन्दको स्थिति कहा जा सकता है। यह मनकी वह स्थिति है जिसमे व्यक्तिकी सम्पूर्ण इच्छाकी तृप्ति हो चुकी होती है। वह किसी विशिष्ट इच्छाकी तृप्ति-मात्र नहीं है। वह मनुष्यके सारे अहकी स्वानुभूति है। जैसा काण्ट ने कहा है 'ऐसा व्यक्ति इसलिए स्वाधीन होता है कि वह जानता है कि जिस विधिका वह पालन कर रहा है उसे उसने स्वय बनाया है।' स्वाधीनताका अर्थ है विवेकपूर्ण उद्देश्योके लिए लोक इच्छाका निश्चयन (determination)—ऐसे उद्देश्यो के लिए जो विवकपूर्ण आवश्यकताओकी पूर्ति करनेमे और पूर्णताके प्रयत्नोको सफल बनानेमे सहायक हो।

हीगेल के इस सिद्धान्तको ग्रीन ज्यादा त्या स्वीकार नही करते कि राज्य स्वाधीनताकी प्राप्ति या स्वाधीनताका मूर्तरूप है। वह इस बातको स्वीकार करते हैं कि सस्थाए व्यक्तिको बन्धनोमें जकडनेके लिए नही होती, बल्कि वह नैतिक धारणाओ की मूर्तरूप होती हैं। साथ ही वह यह भी कहते है कि किसी भी राज्यका स्वाधीनताकी पूर्ण प्राप्ति मानना विडम्बना है। आदर्श और यथार्थके बीच एक खाई रहती है और इसलिए राज्य स्वाधीनताकी जीती-जागती मूर्ति बननेकी कोशिश भर कर सकता है। ग्रीन हीगेल के इस सिद्धान्तका समर्थन नहीं करते कि 'जो यथार्थ है वह तर्क-सगत है और जो तर्क-सगत है वह यथार्थ है।' प्रचलित नैतिकताको भी वह इतना ऊँचा स्थान नही देते। ग्रीन यह स्वीकार करते है कि व्यक्तिके राजनीतिक विकासमे प्रतिष्ठित नैतिकताका बडा हाथ रहता है। पर विकासकी अन्तिम स्थिति तभी प्राप्त होती है जब व्यक्ति पूर्णताके लिए ही पूर्णताकी खोज करता है। तभी वह वास्तवमे स्वतन्त्र हो पाता है।

ग्रीन कई एक दृष्टियोंमे हीगेल के विचारोसे दूर हो जाते हैं और काण्ट के विचारो के समीप पहुँचते है, इसके उदाहरण है व्यक्तिगत स्वाधीनता, युद्ध और अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता सम्बन्धी उनके विचार। इन समस्याओके विवेचनमे हीगेल की अपेक्षा वह काण्ट के अधिक नजदीक हैं। काण्ट की भाति ग्रीन का विश्वास है कि सद्इच्छा ही एक मात्र अच्छी वस्तु है। स्वाधीनता ऋणात्मक नहीं है, वह धनात्मक है। राज्यके विरोधका औचित्य, प्रतिनिधिक-शासनका महत्त्व, सविधानमे राजाका स्थान, दण्डकी तर्क-सगति आदि प्रश्नोंके बारेमे उनके विचार काण्ट और हीगेल दोनो ही जर्मन लेखकोके विचारोंमे भिन्न है। पर साथ ही वह राज्यके गौरवकी नैतिक महत्ता पर जोर देते है और इस मानेंमें वह हीगेल के अनुयायी हैं। पर राज्यके गौरवकी महत्ता पर जोर देनेमें उन्होने 'जनताकी स्वाधीनता' का बलिदान नही किया है।

(२) **ग्रीनका राज्य-सिद्धान्त** अर्नेस्ट बार्कर का कहना है कि ग्रीन के राजनीतिक दर्शनका तीन परस्पर सम्बन्धित प्रमेयों (propositions) द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। (१) मनुष्यकी चेतनामें स्वाधीनता पूर्वकल्पित है (human consciousness postulates liberty), (२) स्वाधीनतामें अधिकार निहित है, और (३) अधिकारोंके लिए राज्यकी आवश्यकता है।

ग्रीन की स्वाधीनता-सम्बन्धी धारणा पर हम पहले ही विचार कर चुके है और अब दुबारा उस पर विचार करनेकी जरूरत नहीं है। इतना ही कहना काफी है कि स्वाधीनताके बारेमे ग्रीन का सिद्धान्त काण्ट का स्वतन्त्र नैतिक इच्छाका सिद्धान्त है जिसके बल पर मनुष्य हमेशा अपने आपको एक लक्ष्य माननेकी इच्छा करता है (३ ३२)। ग्रीन का विश्वास है कि राज्य द्वारा व्यक्तिगत सदस्योंके लिए आत्मानुभूतिका जीवन सम्भव और सुगम बनानेका सर्वोत्तम साधन यह है कि राज्य व्यक्तियोंके लिए निष्पक्ष और सब पर एक समान लागू होने वाले अधिकारोंकी व्यवस्था करे। उनका कहना है कि अधिकार मनुष्यके आन्तरिक विकासके लिए आवश्यक बाहरी परिस्थितियां है। हर विवेकशील व्यक्तिका सबसे बड़ा अधिकार यह है कि वह वैसा बन सके जैसा मनुष्यका होना चाहिए, अपने अस्तित्वकी विधिको पूरा करते हुए उसे जो कुछ होना है' वह हो सके (२९ १७)। दूसरे सभी अधिकार इसी अधिकारसे प्राप्त होते है। समाजसे पूर्व अधिकारोंके अर्थमें प्राकृतिक अधिकारोंकी कल्पना अर्थ-हीन है, पर नैतिक अथवा आदर्श अधिकारोंके रूपमे प्राकृतिक अधिकार सारपूर्ण है। 'जिस उद्देश्यकी पूर्ति मानव-समाजका लक्ष्य है, उसके लिए ये अधिकार आवश्यक है (२९ ३४)।' केवल वैधिक स्वीकृति ही अधिकारोंका आधार नहीं है। यह आधार सार्वजनिक नैतिक चेतना है। अधिकारोंका सम्बन्ध विधिसे न होकर नैतिकता से अधिक है। मनुष्यके नैतिक लक्ष्यकी सिद्धिके लिए अधिकार आवश्यक शर्तें है।

किसी भी व्यक्तिको कोई भी अधिकार तब तक प्राप्त नहीं हो सकता जब तक कि वह समाजका एक सदस्य न हो और वह सदस्य ऐसे समाजका हो जिसके सदस्य सार्वजनिक कल्याणको आदर्श कल्याण मानते हों, ऐसा कल्याण 'जो उनमेसे प्रत्येक व्यक्तिका कल्याण हो (२९ ६४)। इसका मतलब यह है कि अधिकार केवल ऐसे मनुष्योंके बीच हो सकते हैं जो नैतिक दृष्टिसे मनुष्य हों (२९ ४४)। एक सच्चा नैतिक मनुष्य अधिकारोंको पाकर सार्वजनिक कल्याणको अपना कल्याण मानता है। अधिकारोंका नियमन पारस्परिक स्वीकृतिसे होना चाहिए।

आदर्शवादी परम्पराके अनुसार ग्रीन राज्यको प्राकृतिक और आवश्यक मानते है। यह एक नैतिक सस्था है जो व्यक्तिके नैतिक विकासके लिए जरूरी है। इसका मूल उद्देश्य अधिकारोंको लागू करना है, यदि आवश्यक हो तो बल प्रयोग करके भी। राज्यको शक्तिका प्रयोग करनेका न्यायपूर्ण अधिकार है क्योंकि राज्य लोगोंकी सामान्य इच्छाको अभिव्यक्त करता है। ग्रीन सार्वजनिक उद्देश्यकी लोकचेतनाको सामान्य इच्छा मानते है। 'शक्ति नहीं वरन् इच्छा ही राज्यका आधार है।'

ग्रीन के अनुसार राज्य न तो परमपूर्ण है और न सर्वशक्तिमान। वह भीतर और बाहर दोनों ओरसे सीमित है। भीतरसे वह इस बातसे सीमित है कि विधि केवल बाहरी कामों और अभिप्रायोंसे ही सम्बन्ध रख सकती है उद्देश्योंसे नहीं। इसलिए राज्य प्रत्यक्ष रूपसे अच्छे जीवनकी उन्नति नहीं कर सकता। वह अच्छे जीवनकी बाधाओंको ही दूर कर सकता है। राज्य इस बातसे भी सीमित है कि कुछ खास परिस्थितियोंमें राज्यका प्रतिरोध करना व्यक्तिका कर्तव्य हो जाता है। ग्रीन मानते है कि राज्यके भीतर विभिन्न स्थायी संघोंकी अपनी-अपनी अधिकार-व्यवस्था होती है और उनमें केवल समन्वय कायम करना ही राज्यका अधिकार होता है। जैसा अर्नेस्ट बाकर कहते हैं 'राज्य हर संघकी आन्तरिक अधिकार-व्यवस्थाका सन्तुलन करता है और हर अधिकार-व्यवस्थाका शेष व्यवस्थाओंके साथ समन्वय करता है (३ ८३)।' ग्रीन का कहना है कि समन्वय स्थापित करनेके इस अधिकारके कारण ही राज्यको अन्तिम अधिकार-सत्ता प्राप्त है। बहुलवादी सिद्धान्तको पूरी तरहसे न अपनानेके कारण ग्रीन की आलोचना मैकाइवर इन शब्दोंमें करते है 'शुरूसे अन्त तक ग्रीन इसी बात पर विचार करते है कि जिन परिस्थितियोंमें व्यक्ति एक स्वतन्त्र नैतिक प्राणीके रूपमें कार्य कर सकता है, उन परिस्थितियोंको सुलभ बनानेके लिए राज्य क्या कर सकता है और उसे क्या करना चाहिए। उनके चिन्तनके आधार-स्तम्भ राज्य और व्यक्ति ही बने रहते है। वह इस बात पर विचार नहीं करते कि राजनीतिक विधिसे भिन्न अन्य साधनोंसे सम्पन्न जो दूसरे संघ है उनके अस्तित्वका व्यक्ति और राज्य पर कैसा प्रभाव पड़ता है। यदि उन्होंने इसका विचार किया होता तो उन्हें यह स्पष्ट हो गया होता कि प्रश्न केवल इतना ही नहीं है कि राज्यको क्या करना चाहिए, बल्कि प्रश्न यह भी है कि राज्यको क्या करनेकी अनुमति है, क्योंकि राज्य दूसरी शक्तियोंसे घिरा हुआ है, दूसरे किस्मके संगठनोंसे सीमित है जो अपने ढंगसे अपने उद्देश्योंकी प्राप्ति कर रहे हैं। ग्रीन सम्प्रभुताकी आधुनिक समस्याके छोर तक पहुँचकर—उसे छूकर ही रह जाते है, उसका हल नहीं दे पाते (५५ ४१)।'

ग्रीन के मतमें राज्य बाहरसे अन्तर्राष्ट्रीय विधिसे सीमित है। काण्ट की भाँति ग्रीन भी मानव जातिके विश्व बन्धुत्व पर विश्वास करते है और इस दृष्टिसे वह हीगेल से भिन्न है। मनुष्यके मानवकी तरह स्वतन्त्र जीवन बितानेके अधिकारमें सारी मानवताको एक माननेकी और उसे एक ही समाजका सदस्य माननेकी धारणा निहित है।

(३) **युद्ध** (२९), उपर्युक्त विचारोंके कारण युद्धके प्रति ग्रीन का दृष्टिकोण हीगेल और उनके जर्मन शिष्योंके दृष्टिकोणसे बिलकुल भिन्न है। ग्रीन का कहना है कि युद्ध कभी भी एक पूर्ण अधिकार नहीं है, अधिकसे अधिक वह एक सापेक्ष अधिकार है। वह मनुष्यके स्वाधीन जीवन बितानेके अधिकारका अतिक्रमण करता है। पहले की गयी एक बुराई या अपराधको ठीक करनेके लिए एक दूसरा अपराधके

रूपमे युद्धका औचित्य माना जा सकता है अर्थात् युद्ध एक "निर्दय आवश्यकता" है। पर फिर भी है वह एक अपराध ही। नैतिक दृष्टिसे युद्ध हत्या नही है। सैनिक हत्यारा नही है। यदि हम यह कहे कि युद्ध छेडनवाले हत्यारे है तो कठिनाई यह है कि हम पक्की तौर पर नहीं कह सकते कि युद्ध छेडनेकी जिम्मेदारी किन-किन पर हैं।[1] यदि हम यह तय भी कर ले कि युद्धकी जिम्मेदारी किन-किन लागो पर है तो भी यह इतने पक्के तौर पर तय नहीं हो सकता जितना व्यक्तिगत हत्याओके मामलो मे होता है। उनके उद्देश्य चाहे जितने स्वार्थ पूण रहे हो, पर न्यायपूर्वक यह नही कहा जा सकता कि युद्धमे मारे जानवाल व्यक्तियाके प्रति उनके हृदयमे कोई दुर्भावना थी।

फिर भी युद्ध एक नैतिक अपराध है। इस दलीलसे कि युद्धमे, मारने वालोका अभिप्राय किसी व्यक्ति विशेषकी हत्या करना नही होना, अधिकारका अतिक्रमण किसी प्रकार भी कम गम्भीर नही हा जाता। युद्धके कारण हुई मृत्युको किसी जगली जानवर द्वारा की गयी हत्या या बिजली गिरने जैसी दैवी आपत्ति द्वारा हुई मौतके समान नही कहा जा सकता। युद्धमे होनेवाली मौतें स्पष्टत मनुष्य द्वारा हाती हैं और जानबूझ कर की जाती है।

युद्धके समर्थनमे एक दूसरी दलील यह दी जाती है कि सभ्य जातियोके बीच होने वाले युद्धोमे सैनिक स्वेच्छा पूर्वक मौतका खतरा स्वीकार करते है और इसलिए, स्वतत्र जीवनके अधिकारका अतिक्रमण नही होना। ग्रीन इस दलीलका खण्डन करते हैं। ग्रीन का कहना है कि व्यक्तिको इस बातका अधिकार नहा है कि वह अपने जीवित रहनेके अधिकारको चाहे तो कायम रखे और चाहे छाड दे। (इसीलिए आ-महत्या सब कही निन्दनीय मानी गयी है)। सेनामे चाहे लोग अपने मनसे भरती हुए हो या अनिवार्य भरतीके आधार पर भरती हुए हो, पर राज्य कुछ लोगो पर जीवनका खतरा बलात् लादता है। युद्धका मतलब है, मानव जीवनका सहार जो जानबूझ कर किया जाता है।

कभी-कभी युद्धके समर्थक युद्धके पक्षमे एक तीसरी दलील यह देते है कि भौतिक-जीवनके अधिकारका अतिक्रमण नैतिक-जीवनकी आवश्यकताओसे उत्पन्न अधिकार द्वारा किया जा सकता है। दूसरे शब्दोमे कभी-कभी यह कहा जाता है कि कुछ विशेष परिस्थितियोमे युद्ध न करना युद्ध करनेसे भी बुरा होना है। ग्रीन इस तर्क पर विश्वास नहीं करते। उनका कहना है कि इस तर्क द्वारा केवल युद्धकी जिम्मेदारी उन लोगो पर लाद दी जाती है जा उन परिस्थितियोके लिए जिम्मेदार हो। पर युद्ध तो फिर भी एक वैसी ही बुराई और अपराध बना रहता है। युद्धमे मानव-जीवनका सहार करना अपराध है, अपराध करने वाले चाहे जो भी हो।

---

[1] द्वितीय विश्व-युद्ध समाप्त होनेके बाद विजयी मित्र राष्ट्रोने युद्ध-अपराधियो पर मुकदमे चलाये और उन्हे दण्ड दिया है।

कुछ लोग युद्धके समर्थनमें एक चौथी दलील यह देते हैं कि युद्धमें मनुष्यके कुछ खास गुणोंका विकास होता है जैसे वीरता और आत्मबलिदानका। यह भी कहा जाता है कि युद्धमें ही मनुष्यके नैतिक विकासके उपयुक्त सामाजिक परिस्थितियां बनायी रखी जा सकती है। इस प्रकार इन लोगोंका तर्क है कि युद्ध मानव-प्रगतिके लिए आवश्यक है। इस तर्कके बलको मानते हुए भी ग्रीन का कहना है कि युद्धमें जीवन का संहार हमेशा एक अपराध है। फ्रांसमें सीजरके विजय अभियानों और भारतमें अंग्रेजी युद्धोंके बाद अवश्य ही लाभदायक परिवर्तन हुए, पर ग्रीन का कहना है कि यह परिवर्तन अन्य साधनोंमें भी ठीक उसी रूपमें लाये जा सकते हैं जैसे युद्ध द्वारा लाये गये। युद्ध मनुष्यके अधिकारोंका अतिक्रमण करता है। यदि मनुष्यका अप्रत्यक्ष कल्याण केवल युद्ध द्वारा होता हो तो इसका कारण मनुष्य की दुष्टता ही है। ग्रीन यह बात माननेको तैयार हैं कि युद्ध द्वारा मानव-जातिका कल्याण करनेकी इच्छा युद्धके अपराध को कम कर देती है, फिर भी युद्ध अपराध ही रहता है। वह कहते हैं कि वास्तविकता तो यह है कि युद्धोंमें भाग लेनेवाले अधिकांश लोग इन प्रशंसनीय उद्देश्योंसे प्रेरित होकर युद्ध नहीं करते। बहुधा उनके उद्देश्य स्वार्थ पूर्ण होते हैं। मनुष्य जातिकी सामान्य स्वार्थ-परता ही युद्धका कारण है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसका निचोड़ यह निकलता है कि यदि राज्य अपने सिद्धान्तके प्रति सच्चा है तो वह दूसरे राज्योंके साथ संघर्ष करके मनुष्यके मनुष्य रूपमें प्राप्त अधिकारोंका उल्लंघन नहीं करेगा। राज्य की पूर्ण उत्कृष्ट स्थितिमें युद्ध उसका अनिवार्य उपकरण नहीं है। राज्यकी अपूर्ण स्थितिमें ही युद्ध उसका अनिवार्य उपकरण हो सकता है, पर जैसे-जैसे राज्य अधिकाधिक रूपमें पूर्ण होता जायगा वैसे-वैसे युद्धकी आवश्यकता कम होती जायगी।

अतः हम युद्धके समर्थकोंकी इस एक और दलीलको स्वीकार नहीं करते कि राज्योंके बीच संघर्ष अनिवार्य है। एक राज्यको होने वाले लाभसे किसी दूसरे राज्य को हानि होना जरूरी नहीं है। किसी निश्चित क्षेत्रमें रहने वाले सभी लोगोंको विकासका पूरा अवसर देनेका उद्देश्य जितना ही अधिक कोई राज्य पूरा करेगा उतना ही अधिक आसान यह काम दूसरे राज्योंके लिए होता जायगा। और जितनी मात्रामें सभी राज्य इस उद्देश्यकी पूर्ति करेंगे उसीके अनुपातसे संघर्षका खतरा समाप्त होता जायगा। युद्ध इसलिए आवश्यक नहीं कि राज्योंका अस्तित्व है, बल्कि इसलिए आवश्यक हो जाता है कि सार्वजनिक अधिकारोंके संतुलन और संरक्षणका अपना कर्तव्य राज्य पूरा नहीं करते। इस प्रकार ग्रीन इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि मनुष्य जातिके प्रति अपराध करना किसी भी राज्यके लिए पूरी तरहसे उचित नहीं हो सकता, भले ही कोई राज्य विशेष कुछ विशेष परिस्थितियोंमें कुछ अंशों तक न्याय युक्त हो। युद्धकी निन्दा इस आधार पर नहीं की जा सकती कि वह राज्योंके अस्तित्वका आवश्यक परिणाम है। इस दावेका कोई भी आधार नहीं है कि किसी राज्यको वह काम करनेका अधिकार है जो वह अपने स्वार्थोंकी सिद्धिके लिए आवश्यक

समझना है और वह भी इस बातकी परवाह किये बिना कि दूसरे लोगो पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है। युद्ध, अपने सर्वोत्तम रूपमे भी, केवल एक आपेक्षिक अधिकार है।

युद्धके समर्थनमे छठा और अन्तिम तर्क यह है कि ग्रीन का विश्व-बन्धुत्व वाला दृष्टिकोण देश प्रेम और राष्ट्रीय जीवनको नष्ट कर देगा और एक विश्व-व्यापी साम्राज्यको आवश्यक बना देगा। इस तर्कका उत्तर ग्रीन यह देते है कि शुद्ध जनभावनाको राष्ट्रीय होना ही चाहिए, पर जितना ही अधिक कोई जाति एक सच्चे राज्यका रूप धारण करती है उतने ही अधिक मार्ग उसकी राष्ट्रीय भावनाकी अभिव्यक्तिके लिए मिलते है और यह मार्ग अन्य जातियोके साथ सघर्षसे भिन्न दूसरे मार्ग होते हैं। यह कहना बिल्कुल मूर्खतापूर्ण है कि दूसरी जातियोंकी अपेक्षा अपनी जातिको अधिक प्रबल सैनिक शक्तिके रूपमे देखनेकी इच्छा ही देश-भक्तिका सच्चा स्वरूप है। जिस हद तक प्रत्येक राष्ट्रके भीतर अधिकारोकी पूर्ण व्यवस्था स्थापित हो जाती है, उसी हद तक राष्ट्रोके बीच सघर्षके कारण कम होते जाते है।

ग्रीन यह मानते है कि राष्ट्रीयता एक अच्छी चीज है। उनका विश्वास है कि जीवन और जीवनके कार्य व्यापार पर अधिकार प्राप्त करनेके लिए यह जरूरी है कि मानव-जातिके प्रेमको खासतौर पर निर्दिष्ट (particularized) किया जाय। पर इस बातका कोई कारण नहीं मालूम होता कि यह स्थानीय या राष्ट्रीय प्रेम दूसरी जातियोके प्रति द्वेषमे या उनसे स्वय या अपने प्रतिनिधियोके द्वारा युद्ध करने की इच्छामे बदल जाय। जिस हद तक राज्योका गठन ठीक प्रकार हो जाता है, उस हद तक देश-भक्तिका सैनिक रूप धारण करनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। देशभक्तिको सैनिकवाद समझना उस युगका अवशेष है जब राज्योका गठन पूर्ण नही था। देशभक्ति और सैनिकवाद किसी प्रकार भी एक नहीं है। स्थायी सेनाए इस बातका सबूत है कि मानव-जातिका राजनीतिक-जीवन अभी पूर्णरूपेण व्यवस्थित नहीं है। यह सेनाए राज्योकी किसी एक व्यवस्थाके विकासके कारण नही हैं बल्कि उन परिस्थितियोके कारण है जो उस व्यवस्थाकी त्रुटियोको प्रकट करती है।

हमने ग्रीन की युद्ध सम्बन्धी आलोचनाका विस्तारसे वर्णन इसलिए किया है कि यह आलोचना 'उनके भाषणके सर्वोत्तम अंशोमे से एक है (३ ४६)।' और हीगेल के साथ उनके विभेदको स्पष्ट करती है जिनका कहना था कि 'युद्धकी स्थिति राज्यके व्यक्तित्वकी सर्वशक्तिमत्ताको प्रकट करती है।'

(४) **राज्यका कार्य (State Action)** जैसा पहले कहा जा चुका है, ग्रीन ने राज्यके कार्यकी धारणा नकारात्मक रूपमे की है। सुन्दर जीवन अधिकाश स्वत अर्जित जीवन होता है। राज्य प्रत्यक्ष रूपमे उसकी उन्नति नही कर सकता। राज्य केवल यह कर सकता है और यही उसे करना चाहिए कि करने योग्य कामोके करनेमे जो बाधाएँ आती हो उनको दूर करे। अच्छा काम तभी अच्छा होता है जब वह अपने मनसे एक निरपेक्ष उद्देश्यसे किया जाय। दबावके कारण किये गये कार्योका नैतिक

महत्त्व नष्ट हो जाता है। इसलिए राज्यको केवल यह करना चाहिए कि वह ऐसे कार्योंको करावे जिनका किया जाना समाजके भीतर सुन्दर जीवनके लिए आवश्यक हो, वह कार्य चाहे जिस प्रेरकके कारण किये जाय।

अपने समयकी व्यावहारिक परिस्थितियो पर अपना सिद्धान्त लागू करते हुए ग्रीन अज्ञान, नशाखोरी, और भिक्षावृत्तिको मानव-व्यक्तिकी पूर्ण अभिव्यक्तिमे बाधक मानते हैं। इन बाधाओको दूर करनेके लिए वह काफी बडे क्षेत्रमे राज्यके सक्रिय होने का समर्थन करते है। प्राकृतिक अधिकारो या निहित स्वार्थो पर आधारित तर्कोके फलस्वरूप ग्रीन अपनी विचारधारासे विचलित नही होते। और न वह इस सिद्धान्त पर आधारित तर्कोंसे विचलित होते हैं कि मनुष्यकी स्वतत्र इच्छाको इस बातका पूरा अवसर मिलना चाहिए कि वह 'निरक्षरता, नशाखोरी और दरिद्रता पर विजय प्राप्त कर, अपना छुटकारा करले (२ ५१)।' ग्रीन यह समझते है कि स्वतत्र इच्छा जीवन की बाहरी परिस्थितियोमे मुक्त या उनके ऊपर नही है, और इसलिए स्वतत्र इच्छा अपनी स्वतत्रताका प्रयोग तभी कर सकती है जब इन परिस्थितियोकी समुचित व्यवस्था हो जाय। इस धारणाको अच्छी तरह बता देनेकी आवश्यकता इसलिए है क्योकि आदर्शवादकी कभी कभी यह आलोचना होती है कि वह दकियानूस रूढिवाद (hide-bound conservatism) का औचित्य सिद्ध करनेकी एक आडम्बर पूर्ण चेष्टा है। सेबाइन लिखते है "ग्रीन ने उदारवादी सिद्धान्तमे यह बढाया कि व्यक्तिगत स्वतत्रता और उत्तरदायित्वके लिए आवश्यक है कि पहले सामूहिक कल्याणका कार्य हो।

ग्रीन द्वारा दिये गये उदाहरणमे अनिवार्य शिक्षा माता-पिता पर बच्चेके कल्याण के लिए दबाव डालती है। मद्य-निषेधमे हर व्यक्ति और सब व्यक्तियो पर, हर व्यक्ति और सब व्यक्तियोके कल्याणके लिए दबाव डाला जाता है।

(५) **दण्ड (Punishment)** दण्डके बारेमे ग्रीन की विवेचना उनके राज्य कार्य सिद्धान्तका एक अभिन्न अग है। अपराधीकी इच्छा, जो समाज-विरोधी है, स्वतत्रता विरोधी शक्ति है। ऐसी हालतमे दण्ड उस शक्तिका विरोध करने वाली शक्ति बन जाता है। दण्डका सम्बन्ध अपराधीके किसी पिछले नैतिक अपराधसे नही होता और न उसका सम्बन्ध उसके भावी नैतिक सुधारसे होता है (३ ४८)। दण्डकी नाप-तौल नैतिक अपराधके अनुसार करना असम्भव है। राज्य न तो दण्ड द्वारा होनेवाले कष्टकी नाप-तौल कर सकता है और न अपराधके नैतिक दोषकी नाप-जोख हो सकती है। यदि राज्यके लिए यह सम्भव भी हो कि वह दण्डसे होने वाले क्लेश, और अपराधकी अनैतिक दुष्टताके बीच अनुपात तय कर सके तो हर अपराधके लिए भिन्न प्रकार का दण्ड देना होगा। इसका मतलब होगा दण्ड सम्बन्धी सभी सामान्य नियमोंका अन्त। इसके अतिरिक्त दण्ड और नैतिक अपराध के बीच अनुपात तय करनेका मतलब यह है कि राज्यका काम अपराधको अपराधके नाते दण्डित करना है। ग्रीन का विचार है कि यह राज्यका कार्य नहीं है। यदि राज्य

अनैतिकता (शुद्ध) को ही दण्डित करने लगे तो उमस निरपेक्ष नैतिक प्रयत्नो पर रोक लग जायगी। अपराधके लिए दण्ड 'न तो अपराधमे छिपी हुई तथा-कथित अनैतिक दुष्टताके अनुरूप होना है, न हो सकता है और न होना चाहिए (३ १९५)।'

इसी प्रकार दण्डका मुख्य उद्देश्य अपराधीका नैतिक सुधार करना नही है। सभी सच्चे सुधार मनुष्यकी अन्तरात्मामे ही होते है। अत कोई भी दण्ड अपराधी की इच्छाके विरुद्ध उसका सुधार नहीं कर सकता। राज्य अधिकसे अधिक यही कर सकता है कि वह अपराधीकी सुधारकी इच्छाको फिरसे जागृत कर दे। 'वास्तवमे दण्ड इसलिए दिया जाता है कि इच्छाके स्वतन्त्र रूपमे कार्य करनेके लिए जिन बाहरी परिस्थितियोकी जरूरत होती है वे बनी रहे। आन्तरिक इच्छाके साथ दण्डका कोई मेल नही बिठाया जाता (३ ४९)।' दण्डका अन्तिम उद्देश्य यह है कि 'समाजके हर सदस्यकी नैतिक इच्छाके लिए, काम करनेकी स्वाधीनता सुरक्षित रहे (३ ४९)।' इसका मतलब यह है कि जिस अधिकारका उल्लघन किया गया हो उसकी महत्ताके अनुसार दण्ड दिया जाना चाहिए। अप्रत्यक्ष रूपमे दण्ड अपनी दुराग्रह पूर्ण इच्छाका सुधार करनेके लिए अपराधीको प्रेरित कर सकता है। "पर इस दृष्टिमे भी दण्ड केवल 'बाधाओंका दूर करना' ही है, क्योकि जिस बाधाका विरोध अपराधी करता है वह केवल एक बल ही नही, बल्कि एक इच्छा है (३ ५०)।

ग्रीन इस नतीजे पर पहुँचते है कि दण्डका मूल उद्देश्य 'अपराधीको क्लेश पहुचाने के लिए हो दण्ड देना नहीं है, अपराधीको दुबारा अपराध करनेसे रोकना भी मुख्य उद्देश्य नही है, मुख्य उद्देश्य है अपराधके बारेमे ऐसे लोगोके दिमागोमे भय पैदा कर देना जिनमे ऐसा अपराध करनेकी प्रवृत्ति हो (३ १९२)।' इसका मतलब यह हुआ कि दण्डका प्रधान उद्देश्य, भविष्यमे अपराधको रोकना है। इस उद्देश्यकी सिद्धि का साधन है जनताके दिमागमे अपराधके बारेमे इतना भय भर देना जितना अपराधका निवारण करनेके लिए जरूरी हो।

(६) **सम्पत्ति (Property)** अन्य अनेक प्रश्नोकी तरह सम्पत्तिके प्रश्न पर भी ग्रीन अपने समयकी अपेक्षा अधिक उदारवादी है। वह व्यक्तिगत सम्पत्तिका न तो हर पहलूसे समर्थन करते है और न उसकी शुरूसे आखीर तक आलोचना ही करते है। इस प्रकार आधुनिक भाषामे न तो वह व्यक्तिवादी है और न समाजवादी। वह आमतौर पर सम्पत्तिका समर्थन इस आधार पर करते है कि मनुष्यके व्यक्तित्वकी अभिव्यक्तिके लिए सम्पत्ति अनिवार्य है। सम्पत्ति मनुष्यके स्वाधीन जीवनके अधिकारकी उपसिद्धि (corollary) है। उनका कहना है कि हर व्यक्तिको सम्पत्ति पैदा करनेका मौका मिलना चाहिए क्योकि हर व्यक्तिमे, सामान्य सामाजिक कल्याणमे भाग लेनेकी शक्ति होती है। चूँकि व्यक्तियोमे यह सामर्थ्य एक-सी नही होती, इसलिए सम्पत्ति भी असमान होनी चाहिए। विभिन्न व्यक्तियो को पूरे समाजके जीवनमे विभिन्न कर्तव्य पूरे करने होते है और सम्पत्तिकी असमानता

उसकी एक आवश्यक शर्त है। पर जब कुछ लोग सम्पत्तिका संग्रह इस ढंगसे करें कि दूसरे लोगोंकी इच्छाओंकी पूर्तिमे गम्भीर रूपमे बाधा पड़ती हो तब राज्यको दखल देना चाहिए और अवस्था सुधारनी चाहिए। इस आधार पर ग्रीन व्यक्तिगत भू-सम्पत्तिका सीमा बन्धन उचित मानते है और पारिवारिक अनुबन्धों (family settlements) का विरोध करते है। ग्रीन का आदर्श है, छोटे-छोटे भू-स्वामियोंका वर्ग जो अपने खेत स्वय जोतते हो। ग्रीन उत्तराधिकार और व्यापारकी स्वाधीनता का समर्थन करते है।

(७) **प्रतिनिधि-सरकार और व्यावहारिक राजनीति** कान्ट और हीगेल के विपरीत, ग्रीन प्रतिनिधि-सरकार पर पक्का विश्वास रखते थे और व्यापक मताधिकारके समर्थक थे। राजनीतिमे वह एक सक्रिय उदारवादी थे, केवल शास्त्रीय पण्डित नही। 'मध्य वर्ग और अल्पसंख्यक धर्मावलम्बियोंके प्रति उनकी हमेशा सक्रिय सहानुभूति रही। इसके अलावा उन्हे शिक्षा और दुराचारियोंके सुधार (licensing reform) मे बहुत अधिक रुचि थी । ऑक्सफर्डकी राजनीतिमे उन्होंने ऐसा भाग लिया था कि उनका नाम विश्वविद्यालयमे अनुकरणीय उदाहरण बन गया है। राष्ट्रीय राजनीतिमे वह जॉन ब्राइट की विचारधाराके उदारवादी थे। १८६७ के बाद वह राजनीतिमे बराबर भाग लेते रहे (३ २१)।'

(८) **आलोचना और मूल्यांकन (Criticism and Appreciation)** आदर्शवादी दृष्टिकोण अपनाने वालोंमे ग्रीन सबसे अधिक गम्भीर मालूम पड़ते है। विस्तारमे जाने पर ग्रीन से हमारा मतभेद होता है पर सामान्य रूपमे उनके सिद्धान्त आज भी खरे है। सम्भव है, पूँजी-मूलक सम्पत्तिका समर्थन, तथा दण्डके निरोधात्मक (deterrent) सिद्धान्त पर उनका जोर देना हमे आज उचित न मालूम हो 'पर किन्ही विशेष परिस्थितियोंका जो विश्लेषण उन्होने किया या किसी नीति विशेपके जो सुझाव उन्होने दिये, उन सबकी अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण वह सिद्धान्त हैं जिनकी स्थापना उन्होने की। यदि उनके सिद्धान्त सत्य है तो हर युग अपनी आवश्यकताओंके अनुसार उनकी प्रगतिशील व्याख्या कर सकता है।' व्यक्तिके महत्त्व पर उनका दृढ विश्वास, व्यक्तिकी स्वाधीनता पर उनकी गहरी आस्था, उनका यह विश्वास कि व्यक्तिका कल्याण सामाजिक कल्याणका एक अभिन्न अंग है, राज्यको रहस्यमयी उच्चता पर पदासीन करनेमे उनकी अस्वीकृति, विश्व-बन्धुत्व और अन्तर्राष्ट्रीय विधिकी स्वीकृति, नैतिक कृत्यकी आत्मप्रेरणा को जीवित रखनेके लिए राज्यकी शक्तिका परिसीमन करनेकी उनकी उत्सुकता, अधिकारों पर जोर देना, उनका यह विचार कि सम्पत्ति व्यक्तित्वकी अभिव्यक्तिका एक साधन है और उनका यह स्वीकार करना कि अतिवादी परिस्थितियोंमे व्यक्तिको प्रतिरोधका अधिकार है—यह सब आज भी उतना ही ठीक है जितना उस समय था जब ग्रीन ने अपने भाषण दिये थे (१८७९-८०)।

राज्यकी आदर्शवादी व्याख्याकी अनेक और विभिन्न आलोचनाएँ हैं। यद्यपि उनमेसे अनेक आलोचनाओमे सचाई है फिर भी हमारा विश्वास है कि आदर्शवाद इन आलोचनाओंके बावजूद अपनेको कायम रख सकता है।

आदर्शवाद आलोचना और समर्थन।

(१) आदर्शवादके आलोचकोका कहना है कि यह एक भाव-सूक्ष्म और आध्यात्मिक सिद्धान्त है और यह जीवनकी वास्तविकताओका विवेचन नही करता। जिन धारणाओको वह व्यक्त करता है वे जीवनकी वास्तविक परिस्थितियासे बहुत दूर है। इस प्रकार विलियम जेम्स आदर्शवादी सिद्धान्तको एक ऐसा बुद्धिवादी दर्शन कहते है 'जिसे निस्सन्देह धार्मिक कहा जा सकता है पर जो ठोस सत्यों, सुखो और दुखोके निश्चित सम्पर्कसे बिल्कुल अलग रहता है। यह एक शुद्ध बौद्धिक सिद्धान्त है।' आदर्शवाद व्यक्तिको 'एक विवेकशील प्राणी मानता है और मानव स्वभावके दूसरे पहलुओ पर कोई ध्यान नही देता। आदर्शवाद द्वारा, राज्यको एक चेतन विवेक (conscious reason) या इच्छा बताया गया है और अभ्यास, अनुकरण-भावना तथा लालसा आदि तत्त्वाकी बिल्कुल ही अवहेलनाकी गयी है।

यह सही है कि आदर्शवाद विचारोकी शक्तिको बहुत ऊँचा स्थान देता है। पर इसका अर्थ यह नही है कि आदर्शवादका आधार भ्रम है। मनुष्यकी बुद्धिको अस्वीकार करके केवल उसकी भावनाओं और तात्कालिक अनुभवोका सहारा लेना, जैसा कि कुछ आधुनिक लेखक करते हैं, मनुष्यको नीची श्रेणीके प्राणियाकी स्थिति मे गिरा देना है। हमे इसमे कोई आपत्ति नही है कि हमारे सामाजिक हितो और हमारी सामाजिक भावनाओ तथा अभिरुचियोका उद्गम आदिम प्रेरणाओं तक खोजा जाय। पर वही पर रुक जाना एक ऐसी नाव रखना है जिस पर कोई दीवाल न उठायी जाय। निस्सन्देह मनुष्यके महान् सामाजिक प्रश्नोंकी आधुनिक मनोवैज्ञानिक विवेचनामें बहुत कुछ प्रशसनीय हैं। पर इसका यह अर्थ नही है कि हम विवेकको तिलाजलि देकर सोलह आन भावनाओं और प्रेरणाओके अधीन होनेको तैयार हैं। हमें यह याद रखना चाहिए कि विकास क्रममें जो उच्चतर (तर्क या विवेक) है उसीको निम्नतरकी व्याख्या करनी चाहिए, न कि उसका उलटा हो। व्यवस्थित विचारोकी शक्तिका अस्वीकार करके मनोवैज्ञानिक हमे एक विचित्र 'अज्ञयतावाद (agnosticism)' की ओर ले जाता है। उसकी स्थिति तुरन्त निराशावादी हो जाती है।

हम स्वीकार करते है कि आदर्शवादियोंके सिद्धान्तका अधिकतर अश भाव-सूक्ष्म और आध्यात्मिक है। किन्तु व्यावहारिक तथ्योंके लिए उसमे एक सैद्धान्तिक आधार मिलता है। राजनीति-शास्त्र एक आदर्श-मूलक विज्ञान है और इसलिए यदि वह हमे आदर्श नीतियाँ और आदर्श मानदण्ड नही देता तो अपने कर्तव्य को पूरा नही करता। वह केवल एक व्याख्यामूलक विज्ञान नही है। इस बारेमें गार्नर लिखते हैं 'नीति-शास्त्रकी तरह राजनीति-शास्त्र भी इस प्रश्न पर विचार करता है कि क्या होता

है और क्या होना चाहिए। किसी वस्तुका असली स्वरूप तो वह है जो उसके पूर्ण विकासके बाद होता है, इसलिए राजनीतिका दार्शनिक राज्यके आदर्श रूप पर भली प्रकार प्रकाश डालकर उसकी काल्पनिक महिमा और पूर्णताकी विवेचना कर सकता है (२३ २३८)।' तथाकथित यथार्थवादी बहुधा अपने संकुचित दायरेके बाहर देख ही नहीं पाता। आदर्शवादके आलोचक वर्तमान अपूर्ण राज्य पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करते है। आदर्शवादीमे इतना विश्वास और इतनी कल्पना-शक्ति होती है कि वह भविष्यमे एक आदर्श राज्यकी भी आशा कर सकता है। उसका आदर्श जड आदर्श न होकर सजीव, सक्रिय आदर्श है और उसमे परिवर्तनशील परिस्थितियोके अनुकूल बननेकी क्षमता है। 'विचारोके हाथ-पैर होते हैं।' उनमे जीवन होता है, प्राण-शक्ति होती है।

यथार्थवादी अधिकतर केवल आदर्शवादीकी आलोचना ही करता है। उसकी रचनात्मक देन बहुत कम है। एक राजनीतिक दार्शनिकका काम केवल यह बतलाना नहीं है कि व्यवस्थित समाजके सदस्योके रूपमे मनुष्य एक दूसरेके साथ कैसा व्यवहार करते है। उसे यह भी बतलाना चाहिए कि उन्हे किस प्रकारका व्यवहार करना चाहिए। यथार्थवादियोकी आलोचना करते हुए हेनरी जोन्स ठीक ही कहते हैं, 'वे अपना कोई सिद्धान्त नहीं प्रतिष्ठित करते। वे केवल आदर्शवादमे त्रुटियाँ और कमियाँ गिनाकर और यह दिखा कर कि आदर्शवादने कौन-कौन समस्याए हल नही की—जो कोई बहुत कठिन काम नहीं है—अपनी डावाडोल स्थिति बनाये रहते है (४२ १३)।'

आदर्शवादी जब यह कहता है कि राज्य विवेक और तर्कपूर्ण इच्छाकी उत्पत्ति है तब वह यह दावा नही करता कि राजनीतिक जीवन और राजनीतिक सस्थाए सावधानीसे सोच-विचार कर बनती है। उसके कहनेका मतलब केवल इतना है कि 'युगोके इस विकासको देखते हुए यह स्पष्ट है कि मनुष्यका विवेक सदा सक्रिय रहा है, भले ही वह अप्रत्यक्ष और छिपे हुए रूपमे सक्रिय रहा हो।' 'यदि विवेक सक्रिय न रहा होता तो विकासका अन्त सगठित जीवनकी एक तर्क सगत व्यवस्थाके स्थान पर स्वाभाविक प्रेरणाओ, अभ्यासो और निषेधोका एक ऐसा गडबड घोटाला सम्मिश्रण तैयार हुआ होता जिसका न कोई अर्थ होता, न कोई सम्बन्ध होता और न कोई कारण होता (३ ८३)।'

आदर्शवादी यह स्वीकार करता है कि विभिन्न दिशाओमे इतनी अधिक प्रगति कर लेनेके बाद आज भी मनुष्य अपने काम बहुधा चैतन्य विवेक द्वारा प्रेरित हो कर नही करता। उसके काम बहुधा अभ्यासवश या अनायास किये जाते हैं। फिर भी आदर्शवादीका कहना है कि तर्क-बुद्धि द्वारा उनकी व्याख्याकी जा सकती है। आदर्शवादी चाहता है कि अभ्यास और अनुकरण को विवेकका सहायक बनाया जाय, क्योंकि वे विवेकके दास है, उसके स्वामी नही।

(२) जो लोग राज्यके जीवनकी विवेचना करनेमें विवेक और इच्छाके महत्व

को स्वीकार करते है वे कभी-कभी ऐसा अनुभव करते है कि आदर्शवाद आदर्शोको वास्तविक तथ्य मान लेनेकी भूल करता है। आदर्शोंको यथार्थ बनानेके बजाय वह यथार्थको ही आदर्श बना देता है। रूसो और हीगेल मे यह प्रवृत्ति विशेष तौरसे पायी जाती है। हॉब्सन तो आदर्शवादको "रूढ़वादिताकी एक चाल" तक बताते हैं। समाज-सुधारक इससे हताश होता है, क्योंकि ऐसा लगता है कि आदर्शवाद 'यथातथ्य स्थितिके दैवी अधिकार' का उपदेश देता मालूम पड़ता है।

यह आलोचना बहुत गलत नहीं है। अरस्तू दास-प्रथाका आदर्श बनाते है, हीगेल युद्धको गौरव प्रदान करते हैं और ग्रीन अपनी उदार प्रवृत्तियोंके साथ पूँजीके व्यक्तिगत स्वामित्वका मेल बिठाते हैं। हमारा केवल यह कहना है कि आदर्शवाद और रूढ़िवाद (conservatism) मे कोई आवश्यक सम्बन्ध नहीं है। आदर्शवादके आधार पर एक क्रान्तिकारी सामाजिक सुधार योजनाका समर्थन भी उसी प्रकार किया जा सकता है जिस प्रकार रूढ़िवादका। 'सुन्दर जीवनकी बाधाओंको दूर करना' एक इतना व्यापक उद्देश्य है कि उसमें राज्यका विस्तृत कार्य-क्षेत्र समा जाता है। हाँ, यह जरूर है कि यह कुछ बाहरी परिस्थितियों और आदर्शवादी सिद्धान्तका उपयोग करने वाले व्यक्तियोंके राग द्वेष पर निर्भर करता है।

(३) उपर्युक्त आलोचनासे घनिष्ठ रूपसे सम्बन्धित एक दूसरी आलोचना यह है कि आदर्शवादी सिद्धान्तका स्वरूप अत्यधिक नकारात्मक है—विशेषकर राजकीय कार्य-क्षेत्रके सम्बन्धमे। आदर्शवादियोंका कहना है कि राज्य केवल बाहरी कार्योंसे सम्बन्ध रख सकता है, क्योंकि वह दबाव डालनेकी शक्तिका उपयोग करता है। वह मन्तव्यों (motives) के सम्बन्धमें कुछ नहीं कर सकता। ऐसा कोई साधन नहीं है जिससे राज्य प्रत्यक्ष रूपमें नैतिक महत्ताकी उन्नति कर सके। समस्याके इस पहलूका विवेचन करते हुए बोसांके लिखते हैं 'आध्यात्मिक रूपमे आध्यात्मिक प्रभावोंका उपयोग राज्यके लिए संयोगवश ही प्राप्त हो सकता है, पर बाहरी साधनों द्वारा—खास कर ऐसे बाहरी साधनों द्वारा जिनमे दबाव डाला जाता हो—आध्यात्मिक उद्देश्योंकी उन्नति करना केवल नम्र और अप्रत्यक्ष साधनों द्वारा ही सम्भव है (५ ३२)।'

आदर्शवादके समर्थनमे यह कहा जा सकता है कि यद्यपि राज्यके कार्य-क्षेत्रका सिद्धान्त ऋणात्मक या नकारात्मक शब्दोमे व्यक्त किया गया है, पर परिणाम धनात्मक है। राज्यके कार्य-व्यापारके ऋणात्मक स्वरूप पर अधिक जोर देनेका मुख्य कारण है उस आत्म-प्रेरणा या निरपेक्षताको सुरक्षित रखना जिसके द्वारा ही नैतिक कार्य किये जाने चाहिए। यदि राज्य मनुष्यके सुन्दर जीवनके हितमे प्रत्यक्ष रूपमे कार्य करना शुरू कर दे तो उसका नतीजा यह होगा कि लोग राज्य पर अनुचित रूप से निर्भर रहने लगेंगे और अपनेको असहाय समझेंगे। फलत राज्यके कार्योंका उद्देश्य ही विफल हो जायगा। व्यक्तिवाद व्यक्तिके गौरव-गीत गाता है। वह व्यक्तिको एक ऐसा उद्देश्य मानता है, समाज जिसकी सिद्धिका केवल एक साधन है।

समाजवाद और हीगेलवाद बिल्कुल दूसरे छोर पर है और राज्यको 'वह रहस्यात्मक महत्त्व देते है जो उच्चतम आत्माभिव्यक्तिकी वस्तु है और जिसके द्वारा मनुष्य अपने पृथक् एकाकीपनसे ऊपर उठ जाता है (५ ३३)। इसके विपरीत अंग्रेज आदर्श-वादियोने बीचका मार्ग अपनाया है, यद्यपि हमें यह मानना पडता है कि ग्रीन और बोसांके दोनोने ही राजकीय कार्य-व्यापारके शुद्ध नकारात्मक पक्षको बढा-चढाकर कहा है। निम्न कोटिका व्यक्ति और समाज एक उच्च कोटिके व्यक्ति और समाजके लिए साधनमात्र है।

(४) बोसाके का कहना है कि आदर्शवादी सिद्धान्तका बहुत सकीर्ण और कठोर बताया जाता है। आलोचकाका कहना है कि यह सिद्धान्त प्राचीन यूनानके सीधे-सादे नगर राज्यो पर लागू हो सकता था। क्योकि उनमे राज्य और समाजके बीच कोई विभेद नही किया जाता था। पर आधुनिक युगकी बदली हुई परिस्थितियामें राज्य और समाजके बीच सावधानीसे विभेद किया जाना चाहिए और समाजके भीतर स्थायी सघोको परम्परागत एकात्मवादी सिद्धान्त (monistic theory) मे जो स्थान अब तक प्राप्त रहा है उसकी अपेक्षा अधिक उचित स्थान दिया जाना चाहिए।

हम यह मानते है कि अनेक आदर्शवादी राज्य और समाजके बीच विभेद नही कर पाते और उनकी इस असफलताका परिणाम समाजके लिए व्यक्तिका बलिदान होता है। साथ ही हम बहुलवादी सिद्धान्तको भी माननेको तैयार नही है, जो राज्य को समाजके अन्य सघाके बिल्कुल समान मानता है। आजकी परिवर्तित परिस्थितियोमें भी, बोसांके के शब्दोमे, राज्य 'एक व्यापक सन्तुलन और सहयोगका स्रोत है, विभिन्न सघो और समुदायोको एक शृखलामे बाँध देनेवाली शक्ति है, और स्वय राजा या सरकार या स्थानीय सस्थाओकी भाँति—जिनके साथ हम उसे एकरूप करना चाहते है—वह विभाज्य नही है (५ २८ २९)।'

एक और दृष्टिसे आदर्शवादको बहुत सकीर्ण कहा जाता है। आदर्शवादके विरुद्ध यह आरोप लगाया जाता है कि वह भौतिक कल्याणको भुलाकर मनुष्यके नैतिक और आध्यात्मिक हितो पर बहुत अधिक ज़ोर देता है। राज्यका उद्देश्य निस्सन्देह सुन्दर जीवन या आत्माओकी श्रेष्ठता है। पर इसका मतलब यह नही है कि आदर्शवादी इस बातका समर्थन करता है कि राज्य प्रत्यक्ष रूपसे सुन्दर जीवनकी वृद्धि करे। और न इसका यही अर्थ है कि वह व्यक्तिकी भौतिक आवश्यकताओकी ओरसे बिल्कुल ही आँखें मूद ले। उदाहरणके लिए ग्रीन का अध्ययन करनेसे स्पष्ट हो जायगा कि यह लेखक सामाजिक जीवनके ठोस तथ्योके कितना निकट है।

सार्वजनिक इच्छाको निर्धारित कर सकनेकी कठिनाईके कारण आदर्शवादको बहुत कठोर कहा जाता है। बहुलवादी या तो सार्वजनिक इच्छाका अस्तित्व अस्वीकार करते है या यह दावा करते हैं कि समाजके भीतर हर स्थायी सघकी सार्वजनिक इच्छा और अपना व्यक्तित्व होता है। आदर्शवादी यह माननेसे इन्कार नहीं करता कि राज्यके अलावा अन्य सघो या समुदायोकी अपनी इच्छा या अपना

व्यक्तित्व हो सकता है। पर वह इतना जरूर चाहता है कि राज्यको समाजमे अद्वितीय स्थान मिलना चाहिए क्योंकि उसे विशेष प्रकारके कर्त्तव्य पूरे करने होते हैं।

(५) ऊपर जो कुछ कहा गया है उसे देखते हुए यह जरूरी नही जान पड़ता कि जोड और मैकाइवर जैसे सहानुभूतिहीन लेखकोकी आलोचनाओ पर बहुत अधिक ध्यान दिया जाय।

जोड आदर्शवादको सिद्धान्तत असिद्ध और तथ्यत असत्य बताते हैं और कहते हैं कि इससे वर्तमान राज्य को वैदेशिक मामलोमे और अधिक अनैतिक और अविचार पूर्ण कार्य करनेका खतरनाक अधिकार मिल जायगा।

(क) जोड और मैकाइवर दोनोका कहना है कि आदर्शवादी सिद्धान्तकी एक बहुत बडी भूल यह है कि इसमे राज्य और समाजको एकरूप माना जाता है। जर्मन आदर्शवादियो और ब्रेडले जैसे अंग्रेज आदर्शवादियो पर यह आलोचना जरूर लागू होती है, पर ग्रीन जैसे गम्भीर आदर्शवादियो पर यह आलोचना लागू नही होती। मैकाइवर का तर्क है कि समाजका तो 'स्थायी बुद्धि (enduring mind)' (५५ ४५१) सम्पन्न माना जा सकता है पर राज्यको नही। हम इस तर्कको स्वीकार करनेमे असमर्थ हैं।

(ख) हम जोड के इस तर्कसे सहमत है कि व्यक्तिका पूरा विकास राज्यसे पृथक् रहकर नही हो सकता—इस कथन का यह अर्थ नहीं है कि राज्य सर्वशक्तिमान है, पर इनका यह मान लेना भारी गलती है कि सभी आदर्शवादी राज्यकी सब-कुछ कर सकनेकी शक्ति पर विश्वास करते हैं। हम यह पहले ही देख चुके है कि ग्रीन और बोसाके राज्यके कार्य-क्षेत्रको कितना सकुचित कर देते है। जोड यह कहकर कि 'राज्यका अस्तित्व व्यक्तियोके लिए है, व्यक्तियोंका अस्तित्व राज्यके लिए नही है,' व्यक्ति और राज्यके बीच एक गलत विभेद करते है। उद्देश्य और साधनका सम्बन्ध व्यक्ति और राज्यके बीच लागू नही किया जा सकता। हीगेल के अतिरिक्त कोई भी अन्य आदर्शवादी राज्यके कल्याणको व्यक्तियोके कल्याणसे पृथक् और श्रेष्ठ नही मानता। पर फिर भी जोड सभी आदर्शवादियोको एक ही तराजूसे तोलते है।

(ग) जोड और मैकाइवर दोनो ही 'यथार्थ' और 'वास्तविक' इच्छाओके विभेद को सिद्धान्तत असिद्ध और व्यवहारत अयथार्थ मानते है। इस आलोचनाके विरुद्ध हम आदर्शवादका समर्थन पहले ही कर चुके है। जोड 'यथार्थ इच्छाकी व्याख्या इस प्रकार करते है "जिस सघका मै सदस्य हूँ उसके बहुमत द्वारा किये गये सभी निर्णयोको कार्यान्वित करनेकी इच्छा (४१ १९)।" यह तो 'यथार्थ इच्छा' का मजाक है। यह कहना भी अत्युक्ति है कि जब कभी व्यक्ति और राज्यके बीच सघर्ष होता है तब "आदर्शवाद राज्यको ही अनिवार्यत सही मानता है (४१ १९)।"

(घ) मैकाइवर खास तौरसे राज्यके व्यक्तित्व-सम्बन्धी आदर्शवादी सिद्धान्त की आलोचना करते है। उनका कहना है कि यह सही है कि 'राज्यका निर्माण

व्यक्तियोसे होना है, पर उसका यह अर्थ नही कि राज्य एक व्यक्ति है, ठीक वैसे ही जैसे वृक्षोका मिलाकर बनने वाला बाग स्वयं कोई वृक्ष नही है या जानवरकी कोई बस्ती स्वयं एक जानवर नही है। इस तुलनामे भूल यह की गयी है कि भौतिक सम्बन्धो को मानसिक सम्बन्ध माना गया है। भौतिक जगत्मे हम सब पृथक्-पृथक् व्यक्ति है। पर मानसिक और नैतिक जगत्मे एक व्यक्तित्वका दूसरे व्यक्तित्वके साथ सम्पर्क होता है और यह सम्भव है कि एक यूथ-मनोवृत्ति (group-mind) और यूथ-नैतिकता (group-morality) का विकास किया जाय। एक ही खूँटी पर एक दर्जन कोट टाँग देनेसे एक कोट नहीं बन जाता। पर जब ऐसे लोग जिन्होने एक प्रश्न पर पहलेसे ही अपना मन निश्चित नहीं कर लिया है, एक स्थान पर एक साथ मिलकर इस प्रश्न पर विचार करते है, तब विचार विमर्शके परिणाम स्वरूप एक सार्वजनिक इच्छा और एक सामान्य मतकी उत्पत्ति होती है।

इस सबका मतलब यह नहीं है कि राज्य एक 'उच्चतर बुद्धि है, या एक अतिमानव है, जिसका उद्देश्य या जिसकी इच्छा उन सब व्यक्तियोकी इच्छाओसे उच्चतर होती है जो उसका निर्माण करते है (५५ ४८९-९०)।' इसका अर्थ केवल इतना है कि राज्यकी अपनी एक इच्छा होती है, उसकी अपनी एकता होती है और ये दोनो चीजें किसी भी एक व्यक्तिमे किसी एक समय पर नही पायी जाती है। राज्य एक सजीव व्यक्ति है।

मैकाइवर तथा आदर्शवादके अन्य विरोधियोकी अनेक आलोचनाए व्यक्तिगत सरकारो पर अलग-अलग लागू हो सकती है पर वे राज्य पर राज्यके रूपमे नही लागू होती। कुछ आदर्शवादियोने अपने समयकी वास्तविक सरकारको अपने आदर्श राज्यके साथ एकरूप करने की भूल की है।

हम आदर्शवादके अतिवादी स्वरूपोकी वकालत नहीं करते—ऐसे स्वरूपोकी, जो हम हीगेल के सिद्धान्तमे मिलते है। पर हमारा विश्वास है कि ग्रीन के गम्भीर आदर्शवादमे बहुत कुछ अपनाने योग्य और प्रशंसनीय है।

आदर्शवादका मूल्यांकन (Appreciation of Idealism)

(१) आदर्शवाद नीति शास्त्र और राजनीतिके बीच एक घनिष्ठ सम्बन्ध बनाये रखता है। आदर्शवादका यह दावा बिल्कुल ठीक है कि व्यक्तिगत और सामाजिक जीवनमे उच्चतम् नैतिक सिद्धान्तोका उपयोग किये बिना किसी प्रकार भी राजनीतिक उन्नति सम्भव नही है। राजनीतिको नीति-शास्त्रसे पृथक् करना दोनो के लिए विनाशकारी है।

(२) आदर्शवाद समाजके तादात्म्य (organic unity) पर जोर देता है और स्पष्ट रूपसे बताता है कि किस प्रकार समाज राज्य द्वारा एक सूत्रमे बधा रहता है। एकाकीपनमे व्यक्तिगत उन्नति असम्भव है, व्यक्तिका सच्चा कल्याण समाजके सार्वजनिक जीवनमे अपना उचित स्थान प्राप्त करनेमें है।

(३) आदर्शवाद मानता है कि आत्मार्जित कल्याण ही सर्वोच्च कल्याण है। यदि राज्यका कोई कार्य आत्मप्रेरित नैतिक कार्योंमें बाधा डालता है, तो राज्यका वह कार्य निन्दनीय है। हर सुव्यवस्थित समाजमें व्यक्तिगत उपक्रम (initiative) उद्योग और मौलिकताको पूरा-पूरा अवसर मिलना चाहिए।

(४) आदर्शवादी हमारे सामने एक ऐसा लक्ष्य रखते हैं जहाँ तक पहुँचनेके लिए हम प्रयत्न कर सकें, और यह उचित ही है। यदि यह आदर्श केवल एक काल्पनिक स्वर्ग या किसी एक व्यक्तिकी कल्पना-मात्र है, तो व्यर्थ है। पर जिस हद तक यह आदर्श मानव स्वभाव और सामाजिक जीवनकी व्यावहारिक परिस्थितियोंके सम्बन्धमें हमारे ज्ञान और अनुभव पर आधारित है उस हद तक यह महत्त्वपूर्ण है। आदर्शवादियोंने जो आदर्श उपस्थित किया है वह प्राप्त किया जा सकता है। यह बेकार स्वप्न-मात्र नहीं है।

(५) आदर्शवादियोंका यह कहना ठीक है कि मनुष्यके सर्वोच्च गुण वे हैं जिनका सम्बन्ध बुद्धि और आत्मासे होता है। आदिम प्रेरणाओं और प्रवृत्तियोंको मनुष्यके विवेकका उद्गम माननेमें आदर्शवादको कोई आपत्ति नहीं है। पर जिस बात पर आदर्शवाद जोर देता है वह यह है कि जो विवेक विकास-क्रममें उच्चतर स्तर पर है निम्नतरकी व्याख्या करे, न कि उसका उल्टा हो।

(६) यदि गुस्ताखी माफ हो तो हम यही कहेंगे कि आदर्शवाद उसके विरुद्ध एक अभिनन्दनीय प्रतिक्रिया है जिसे, 'उपयोगितावाद का शूकर-वृत्ति' दर्शन कहा जा सकता है (It is a welcome reaction against what may be called without disrespect, 'the pig-trough philosophy of utilitarianism') नैतिकता संस्कृति और आध्यात्मिकता मनुष्यके उच्चतम ध्येय हैं। भौतिक लालसाओंको इनका दास होना चाहिए स्वामी नहीं।

आदर्शवादके पक्षमें गार्नर लिखते हैं 'आदर्शवादके विरुद्ध जो आलोचनाएं की गयी हैं उनमेंसे अनेकके बारेमें यह कहा जा सकता है कि वे अनुचित, अत्युक्तिपूर्ण और इस सिद्धान्तके गलत समझने पर आधारित हैं। आदर्शवादियोंकी निम्नलिखित मान्यताओंका जहाँ तक सम्बन्ध है, वहाँ तक वे बिल्कुल सही और निर्दोष हैं—राज्यको अन्य समस्त मानव-संघोंसे उच्चतर मानना, सुन्दर जीवनके लिए राज्यको अनिवार्य मानना, और इसलिए नागरिकों की निष्ठाका और अपना अस्तित्व बनाये रखनेके लिए नागरिकोंसे बलिदान मांगनेका अधिकारी मानना, राज्यको विधि और अधिकारोंका एकमात्र उद्गम मानना, यह मानना कि राज्यमें ही व्यक्ति अपने अस्तित्व या जीवन का उद्देश्य पूर्ण रूपसे प्राप्त कर सकता है और यह मानना कि बिना राज्यके मानव-प्रगति और मानव-सभ्यता असम्भव है (२३ २३८)।'

SELECT READINGS

BARKER, E —*Political Thought in England from Spencer to Today*—Chs I-III
BOSANQUET, B —*The Philosophical Theory of the State*
BRADLEY, F H —*Ethical Studies, esp Ch on 'My Station and its Duties*
BROWN, I —*English Political Theory*—Ch XI
DEWEY, J —*German Philosophy and Politics*
DUNNING, W A —*Political Theories from Spencer to Rousseau*—Ch. IV
ELLIOT, C Y —*The Pragmatic Revolt in Politics*
FOLLETT, M P —*The New State*
GREEN, T H —*Lectures on the Principles of Political Obligation*
HEGEL—*The Philosophy of Right*
HALLOWELL, J H —*Main Currents in Modern Political Thought*—Ch 8
HOBHOUSE, L T —*The Metaphysical Theory of the State*
HOCKING, W E —*Man and the State*
JOAD, C E M —*Modern Political Theory*—Ch I
JOAD, C E M —*Guide to the Philosophy of Morals and Politics*
JONES, SIR H —*Idealism as a Practical Creed*
JONES, SIR H —*The Working Faith of the Social Reformer*
KANT, I —*Critique of Pure Reason*
,, —*Critique of Practical Reason*
,, —*Principles of Politics*
,, —*Perpetual Peace*
LASKI, H J —*Authority in the Modern State*
LORD, A R —*Principles of Politics*—Ch XI
MACCUNN J —*Six Radical Thinkers*—Ch VI
MACKENZIE J S —*An Introduction to Social Philosophy*
MERRIAM, C E —*New Aspects of Politics*
MUIRHEAD J H —*The Service of the State*
RITCHIE D G —*The Principles of State Interference*
ROCKOW J —*Contemporary Political Thought in England*
SABINE, G H —*A History of Political Theory*
SETH, J —*Ethical Principles*—pp 287-320
VAUGHAN, C E —*Studies in the History of Political Philosophy*—Vol II
WALLAS, G —*Human Nature in Politics*
WILDE, N —*The Ethical Basis of the State*

१६

राष्ट्रीयतावाद, साम्राज्यवाद और अन्तर्राष्ट्रीयतावाद

(Nationalism, Imperialism and Internationalism)

राष्ट्र और राष्ट्रीयताकी परिभाषा

(Definition of Terms—Nation and Nationality)

राजनीति-शास्त्रके लेखक 'राष्ट्र', 'राष्ट्रीयता' और 'राष्ट्रीयतावाद' शब्दोंके सटीक अर्थोंके सम्बन्धमें एकमत नहीं है। अंग्रेजीके 'नेशन' (nation) शब्दकी उत्पत्ति लेटिनके नासियो (natio) शब्दसे हुई है जिसका अर्थ है 'जन्म' या जाति'। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि राष्ट्रीयता और जातीयताकी धारणाए एक है। मत्रहवी शताब्दीमे 'नेशन' (राष्ट्र) शब्दका प्रयोग किसी राज्यकी उस आबादीको व्यक्त करनेके लिए किया जाता था जिसमे जातीय एकता पायी जाती थी। बर्नर्ड जाजेफ का कहना है कि यह अर्थ अधिकाश रूपमे आज भी कायम है। फ्रासकी राज्य क्रान्ति के जमानेमें 'नेशन' शब्द बहुत लोकप्रिय हो गया और उसका प्रयोग देशभक्ति (patriotism) के अर्थमे किया गया। "राष्ट्रीयता उन दिनो एक सामूहिक भावना थी (४३ २०)।"

पर उन्नीसवी शताब्दीसे 'नेशन' (राष्ट्र) और 'नेशनेलिटी (राष्ट्रीयता)' शब्दोंके निश्चित अर्थ हो गये है। नेशन या राष्ट्र शब्द द्वारा राजनीतिक स्वाधीनता अथवा प्रभुताका आदर्श—चाहे वह प्राप्त हो या इच्छित—प्रकट होता है। इसके विपरीत राष्ट्रीयता (nationality) अधिकतर एक अराजनीतिक धारणा है और विदेशी शासनमे भी उसका अस्तित्व रह सकता है। राष्ट्रीयता एक मनोवैज्ञानिक गुण है। यद्यपि उसका प्रयोग बहुधा नैतिक और सास्कृतिक धारणाको भी व्यक्त करनेके लिए किया जाता है। इस अर्थमें व्याख्या करने पर राष्ट्र' और 'राष्ट्रीयता' दोनो एक रूप धारणाए नही है। स्वय अपना शासन करनेवाले एक राज्यकी जनता के अर्थमे 'राष्ट्र' के भीतर अनेक राष्ट्रीयताओंका समावेश हो सकता है। इस प्रकार यद्यपि इग्लैण्ड एक राष्ट्र है फिर भी उसमे चार विभिन्न राष्ट्रीयताए या जातिया—अंग्रेजी, स्कॉच, वेल्श और उत्तरी आयरिश सम्मिलित है। जैसे ही किसी एक राष्ट्रीयता या जातिको राजनीतिक एकता और सम्प्रभुता सम्पन्न स्वतत्रता मिल जाती है वैसे ही वह राष्ट्रीयता या जाति एक राष्ट्र बन जाती है। लॉर्ड ब्राइस का

कहना है कि राष्ट्रीयताकी भावना उस अनुभूति या अनुभूतियोंका सकलन है जो एक व्यक्ति समूहको उन बन्धनोंके प्रति सजग बनाता है जो पूरी तरहसे न तो राजनीतिक होते है, न धार्मिक और जो उन व्यक्तियोको ऐसे समाजक रूपमे सगठित कर देते है जो या तो वास्तवमे या बीज रूपम एक राष्ट्र होता है (७ ११८)। 'राष्ट्रीय यूथ (national group)' शब्दका प्रयोग एक ऐसे समाजको व्यक्त करनेके लिए किया जाता है जिसमे राष्ट्रीयताका अभी निर्माण ही हो रहा हो और जिसमे एक राष्ट्रकी तरह रहनेकी इच्छाकी कमी हो।

जिन दो शब्दोंके सम्बन्धमे बहुत अधिक भ्रम होता है वे हे 'राष्ट्रीयता' और 'राष्ट्रीयतावाद'। राष्ट्रीयतावादका प्रयोग कभी-कभी एक ऐसी अत्युक्ति पूर्ण राष्ट्रीयताकी भावनामे किया जाता है जो आक्रामक रूप धारण करनेवाली होती है। यह दूषित भावना जो अपने राष्ट्रमे और अपने राष्ट्रके कार्यम अच्छाईके अतिरिक्त और कुछ नही देखती। यह सच्ची राष्ट्रीयतावादकी भावना नही है। ठीक-ठीक समझने पर राष्ट्रीयतावाद वह ऐतिहासिक पद्धति है जिसके द्वारा राष्ट्रीयताए या जातिया राजनीतिक इकाइयोमे बदल जाया करती है। सच्चा राष्ट्रीयतावाद ऐसे लोगोके उचित अधिकारोका समर्थक होता है जो एक अलग बलवान जाति या राष्ट्रका निर्माण धरती पर अपना स्थान प्राप्त करनेके लिए करते है। जैसा जोजेफ कहते है, जो भावना राष्ट्रीयताका आधार है उसे राष्ट्रीयताकी भावना कह सकते है, पर राष्ट्रीयतावाद नही कह सकते।

राष्ट्रीयताका अर्थ (The Meaning of Nationality) आजकल विचारक इस बात पर आमतौर पर एक मत हैं कि राष्ट्रीयता मूलत एक मानसिक प्रवृत्ति या भावना है। श्री ए० इ० जिमन लिखते है "धर्मकी भांति राष्ट्रीयता भी आत्मपरक (subjective) है मनोवैज्ञानिक है मनकी एक स्थिति है, एक आध्यात्मिक सम्पत्ति है, भावनाकी, विचारकी और जीवनकी एकपद्धति है"। इन्ही लेखक का कहना है कि राष्ट्रीयता एक राजनीतिक धारणा न होकर शिक्षा-सम्बन्धी धारणा है। मोटेतौर पर यदि जनता अपनेको एक राष्ट्रीयता या जातिके रूपमे मानती है तो वह राष्ट्रीयता है। राष्ट्रीयताका एक राजनीतिक प्रश्न बन जाना तो आकस्मिक है, मूल रूपमे राष्ट्रीयता एक आध्यात्मिक और शिक्षा-सम्बन्धी प्रश्न है।

इसी विचारको दूसरे शब्दोमें प्रकट करते हुए कुछ लेखक कहते हैं कि राष्ट्रीयता एक सहज वृत्ति या स्वाभाविक प्रेरणा है। श्री जे० एच० रोज राष्ट्रीयताकी परिभाषा इस प्रकार करते हैं ' दिलोकी एक ऐसी एकता जो एक बार बनकर कभी न बिगडे। राष्ट्रीय या जातीय राज्य और राष्ट्रीयताके अन्तरको स्पष्ट करते हुए श्री सी० जे० एच० हेज लिखते हैं "एक राष्ट्रीय राज्य हमेशा राष्ट्रीयता पर आधारित रहता है पर राष्ट्रीयताका अस्तित्व राष्ट्रीय राज्यके बगैर भी हो सकता है। राज्य तत्वत राजनीतिक होता है, राष्ट्रीयता प्रधान रूपसे सास्कृतिक होती है और केवल सयोगवश राजनीतिक हो जाती है (२३ ५)"।

जाकर बसनेवालोके सिरकी आकृतिमे एक या दो पीढी बाद रहस्यमय परिवर्तन हो जाता है।

दूसरी बात यह है कि मनुष्यकी सहानभूति सीमित होती है और मनुष्यके विकासकी वर्तमान स्थितिमे राष्ट्रीय जन्मभूमि ही वह उपयुक्त भौगालिक इकाई है जिसमे मनुष्यकी पारमार्थिक भावनाए और प्रेरणाए सक्रिय और सफल बनाई जा सकती है। एक समय था जब यह भावनाए अपने गाव या अपने कबीले तक ही सीमित थी पर सभी प्रगतिशील देशोम इन सकीर्ण निष्ठाओका स्थान राष्ट्रीय निष्ठा ने ले लिया है। भारतके एक निवासीके लिए अपने एक पडोसी व्यक्तिकी भावनाओकी स्पष्ट कल्पना कर सकना आसान है, पर लेब्राडार या ग्रीनलैण्डमे रहनेवाले व्यक्तिकी भावनाओकी कल्पना उसके लिए उतनी आसान नही है। साधारणतया 'एक विश्व नागरिक' की सहानुभूति या निष्ठा बहुत गहरी नही होती। वह बहुत छिछली होती है।

राष्ट्रीयताके एक महत्त्वपूर्ण तत्वके रूपमे प्रकृति द्वारा भली-भाति अलग किये गये एक प्रदेशके महत्व पर जोर देनेका तीसरा कारण यह है कि पशुओकी भाति मनुष्योमे भी अपने निवास स्थानके प्रति प्रेम होता है। हर मानवके हृदयमे अपनी जन्मभूमिके प्रति अगाध प्रेम होता है। देशसे निकाले जाने पर देशका प्रेम और भी गहरा हो जाता है। प्राचीन इजराईल वासियोने किरा विदेशमे अपने बन्दी जीवनमे अपनी इस भावनाको इस प्रकार प्रकट किया है "ओ! जेरूसलम यदि मै तुझे भूल जाऊँ तो मेरा दाहिना हाथ अपने कौशलको भूल जाय। यदि मै तेरा स्मरण न करूँ तो मेरी जीभ तालूमे चिपक जाय, मैं जेरूसलम को अपने सर्वप्रधान सुखसे भी उच्चतर समझूँ"[१]। आधुनिक राष्ट्रीयतावादके आध्यात्मिक जन्मदाता मैजिनी ने लिखा है "हमारा देश हमारा घर है, वह घर जो परमात्मा ने हमे दिया है, जिसमे उसने अनेक परिवार रखे है, जो परिवार हमे प्यार करते है और जिन परिवारोको हम प्यार करते है। एक ऐसा परिवार जिसके साथ दूसरोकी अपेक्षा हम अधिक तत्परतासे सहानुभूति रखते है और जिसे हम दूसरोकी अपेक्षा अधिक आसानीसे समझ पाते है, और जो परिवार एक निश्चित प्रदेशमे इकट्ठा रहनेके कारण और अपने तत्वोकी सजातीय प्रगतिके कारण एक विशेष प्रकारकी क्रियाशीलताके लिए उपयुक्त है"।

"हमारा देश हमारी कार्यशाला (workshop) है जहासे हमारे श्रमका उत्पादन पूरे ससारके लाभ के लिए बाहर भेजा जाता है, और जहा वे सभी उपकरण-औजार इकट्ठे किये गये है जिनका हम बहुत अधिक सफलताके साथ उपयोग कर सकते है (५९ खण्ड ४, पृष्ठ २७६)।'

यद्यपि ऊपर के विचारोसे एक राष्ट्रीय जन्मभूमिका महत्व सिद्ध होता है फिर

---

[१] स्तोत्र १३७, पद्य ५ और ६।

मानते हैं। दूसरी ओर मैजिनी का कहना है कि राष्ट्रीयताके लिए जाति आवश्यक नही है। श्री रेनन का कहना है कि "जाति एक ऐसी चीज है जो स्वय ही बनती-बिगडती रहती है और राजनीतिमे इसका कोई प्रयोजन नही है"। श्री जे० एच० रोज का कहना है कि राष्ट्रीयता बहुत अविकसित रूपमे ही जाति पर निर्भर रहती है। श्री हेज कहते है "शुद्धता यदि कही है तो आजकल असभ्य कबायली लोगोमे ही है।" श्री पिल्जबरी लिखते हैं, "साधारणतया राष्ट्रीयताके निर्माणमे जातिका अब कोई महत्व नही है। किसी भी राष्ट्रमे कोई भी शुद्ध जाति नही है। मनुष्य सब कही वर्ण सकर है।" मुसोलिनी तक ने एक बार कहा था, "जाति एक भावना है, वास्तविकता नही। कोई भी बात मुझे विश्वास नही दिला सकती कि जीवशास्त्रकी दृष्टिसे आज शुद्ध जातियोका अस्तित्व है।"

इस प्रकार शास्त्रीय सम्मतिका पल्ला उन लोगोके पक्षमे भारी है जो जातिका अपेक्षाकृत निम्न स्थान देते है। स्विट्जरलैण्ड और कैनाडा ऐसे उदाहरण है जहा विभिन्न जातिके लोग एक साथ रहते है और एक सुदृढ राष्ट्रीयताका निर्माण कर चुके है। कई पीढ़िया तक सयुक्त राष्ट्र अमेरिका "जातियोका सगम" रहा है। जहा तक हमारा सम्बन्ध है हम विश्वास करते है कि जातीय एकता से राष्ट्रीयता सुदृढ़ होती है पर वह अनिवार्य नही है। राष्ट्रीयताकी प्रारम्भिक अवस्थामे जातीय एकता अधिक महत्वपूर्ण है, बादकी अवस्थामे कम। सयुक्त राष्ट्र अमेरिकामे जातीय वर्गोकी बहुत अधिक विभिन्नता है, पर साथ ही साथ वहा एक प्रभावशाली प्रधान जातीयसमूह भी है जिसमे पुराने प्रवासियोके वशज है और वे देशके राष्ट्रीय जीवनको एक निश्चित रूप देनेमें समर्थ हैं।

साधारणतया यह कहा जा सकता है कि जातीय एकरूपताकी एक निश्चित मात्रा राष्ट्रीयताके लिए सहायक होती है। जब तक जातीय भेदोकी अनेकरूपता से साधारण विभेद ही उत्पन्न होते हैं तब तक कोई बडी कठिनाई नही पडती। पर यह समझनेमे कठिनाई होती है कि आग्ल-सैक्सनी, चीनी और नीग्रो लोग अपने बीच वर्तमान सामाजिक विभेदोंके कायम रहते हुए किस प्रकार एक राष्ट्रीयताका निर्माण कर सकते हैं। कोई भी राष्ट्रीयता अधिक समय तक नही टिक सकती यदि उसके जातीय वर्गोमें तीव्र विभेद हो। ससारके इतिहास पर दृष्टिपात करिए तो यह स्पष्ट हो जायगा कि किसी जमानेमे भी ऐसा नही हुआ कि एक पूरी जाति ने एक ही राष्ट्रीयता कबूलकी हो। फिन (Finns) लोगोको एक जाति माना जा सकता है पर वह विभिन्न राष्ट्रीयताओमे बटे हुए हैं। जाति और राष्ट्रीयता कही भी एक-रूप नही है। जोजेफ का कहना है, "राष्ट्रीयता वास्तवमे जातियोके आरपार निकल जाती है।" कुछ लोग तो यहा तक कहते हैं कि राष्ट्रीयता ही जातिकी सृष्टि करती है, जाति राष्ट्रीयताकी सृष्टि नही करती। हमारे देशमे जातीय अनेकरूपता बहुत स्पष्ट है, पर यह नही कहा जा सकता है कि भारतके विभिन्न सम्प्रदाय पूरी

तरहसे एक दूसरसे अलग जातीय समुदाय है। उदाहरणके लिए पजाबी मुसलमान मे बगाली या मद्रासी मुसलमानकी अपक्षा पजाबी हिन्दूसे अधिक जातीय समानता है। इस सम्बन्धमे धार्मिक या साम्प्रदायिक वर्गीकरणको अपेक्षा प्रादेशिक वर्गीकरण अधिक सहायक हो सकता है।

(३) **विचारों और आदर्शोंकी एकता या सामान्य सस्कृति (Unity of Ideas and Ideals or a Common Culture)** यदि राष्ट्रीयता मूलरूपमे सास्कृतिक धारणा है तो विचारो और आदर्शोंकी एकता अवश्य ही उसके लिए जरूरी है। सस्कृतिकी एकतामे सामान्य रीतिया और व्यवहार, सामान्य परम्पराए और साहित्य, सामान्य ग्रामगीत, काव्य और कला भी शामिल है। सस्कृतिकी एकता जीवनका एक विशिष्ट दृष्टिकोण प्रदान करती है, जिसमे 'जीवनके सामान्य मानदण्ड, कर्तव्य और निषेध मौजूद होते है।' विचारो और आदर्शोकी एकता लोगोको परस्पर समीप खीच लाती है और उनमे सहयोगकी एक ऐसी भावना पैदा कर देती है जो आसानीसे नष्ट नही की जा सकती।

राष्ट्रीय साहित्य, शिक्षा, सस्कृति और कला, राष्ट्रीयताके कारण और परिणाम दोनों ही हो सकते है। यद्यपि राष्ट्रीय साहित्य स्वय राष्ट्रीयताका निर्माण नही करता, फिर भी वह राष्ट्रीयताकी भावनाको मजबूत अवश्य ही बना सकता है। आधुनिक कालमे बोहेमिया और सर्बियाकी राष्ट्रीयताओंका फिरसे जीवित करनेमे राष्ट्रीय साहित्य ने महत्त्वपूण काम किया है। "राष्ट्रीय साहित्य राष्ट्रीय परम्पराओ का सृजन करता है और उन्हें जीवित रखता है। इसके अलावा राष्ट्रीय इतिहासमे राष्ट्रका अनुराग भर देता है। इस प्रकार राष्ट्रीय साहित्य राष्ट्रीयताकी भावनाके विकासमे महत्त्वपूर्ण योग देता है। राष्ट्रीय साहित्य राष्ट्रीय परम्पराओके प्रसारका माध्यम है (४३ ११४)।" राष्ट्रीय साहित्य किसी राष्ट्रीयताके सदस्योके लिए गौरव और श्रद्धाका विषय होती है। वॉल्टेयर ने गर्वके साथ कहा था "हमारी भाषा और हमारे साहित्य ने शार्लमान्य (Charlemagne) (एक प्रसिद्ध विजेता) की अपक्षा अधिक प्रदेश जीते है।"

जीवनके दृष्टिकोणमे समानता लाने तथा एक ही मानदण्ड कायम करनेमे राष्ट्रीय शिक्षा महत्त्वपूण भाग ले सकती है। "सयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे विभिन्न जातियो और सास्कृतिक यूथोको एक शक्ति सम्पन्न राष्ट्रीयताका रूप देनेमे अमेरिकीकरण" के रूपमे नागरिकताकी शिक्षा ने बहुत बडा काम किया है। पर जब राष्ट्रीय शिक्षाका दुरुपयोग किया जाता है जैसा कि नार्जी जर्मनीमें हुआ था, तब राष्ट्रीय शिक्षासे राष्ट्रीय अन्धभक्ति और पूर्व द्वेष (prejudice) बडी आसानीसे उत्पन्न हो जाते है। यदि राष्ट्रीय शिक्षाका उचित उपयोग किया जाय तो वह नैतिक एकता, सत-असतका सामान्य विवेक, तथा अधिकाश विषयोमे विचारोको एकता उत्पन्न करनेका आवश्यक उद्देश्य पूरा कर सकती है (४३ ११८)।

राष्ट्रीय इतिहास और परम्पराए राष्ट्रीय सस्कृतिके विकासमे आवश्यक तत्व

हैं। रैम्जे म्योर का कहना है कि "वीरताके कार्य, धैयपूर्वक झेले गये कष्ट, ही तो वे सुन्दर तत्व है जिनसे राष्ट्रीयताकी भावनाका पोषण होता है। अपने अतीत पर उचित गर्व, वर्तमान पर स्वस्थ विश्वास और भविष्यकी जिन्दादिल मे आशा— यह सभी राष्ट्रीय भावनाको सजीव और सबल बनाते है। श्री बी० जोसेफ का कहना है कि खेल, राष्ट्रीय नौसेना (navy) पर गर्व और चाय पीने जैसी आदतोका भी अंग्रेजी राष्ट्रीयताको सुदृढ बनानेमें हाथ है। यद्यपि यह बात देखनेम अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं मालूम पडती। श्री जे० एस० मिल ने ठीक कहा है कि "पूर्वकालीन राजनीतिक घटनाओसे उत्पन्न एकता सबसे अधिक शक्तिमान तत्व है। एक राष्ट्रीय इतिहास के फलस्वरूप अतीतकी घटनाओसे सम्बन्धित सामान्य स्मृतिया, सामूहिक गर्व, सामूहिक लज्जा, आनन्द और पश्चाताप होता है।

यदि हम चाहते है कि भारतीय राष्ट्रीयता सबल और ओजपूर्ण बने तो हमें विचारों और आदर्शोकी उस एकता पर जोर देना चाहिए जो भारतीय सस्कृतिके मूलमें है। हिन्दू और मुस्लिम सस्कृतियोने एक दूसरे पर इतना अधिक प्रभाव डाला है कि भारतीय और पाकिस्तानी इस्लाम आज अरब या पडोस के किसी दूसरे मुस्लिम देशका इस्लाम नहीं है। इसलिए हमारे सास्कृतिक विभेदोको बढा-चढाकर नही कहना चाहिए और यदि यह दोनो बडे सम्प्रदाय एक दूसरेको समझनेका यत्न करें और सहिष्णुतासे काम लें तो ये विभेद धुधले पड जायगे। आज सबसे बडी आवश्यकता एक राष्ट्रीय शिक्षा पद्धतिकी है। हमारा इतिहास एक बार फिरसे इस ढगसे लिखा जाय कि दोनो सम्प्रदायोके बीच होने वाले रक्तरजित युद्धो और अत्याचारोके अत्युक्तिपूर्ण उल्लेख निकाल दिये जाय। इस सम्बन्धमे हमें यह न भूलना चाहिए कि योरोपके कुछ देशोमें कैथोलिको और प्रोटेस्टेण्टोके बीच जितनी भयावह लडाइयाँ हुई हैं उतनी भारतमें हिन्दुओं और मुसलमानोके बीच नहीं हुई है।

(४) भाषा की एकता (Unity of Language) राष्ट्रीयताका सबसे अधिक स्पष्ट तत्व भाषा है। रैम्जे म्योर का विश्वास है कि राष्ट्रके निर्माणमें जाति की अपेक्षा भाषाका महत्व कही अधिक है। 'सामान्य भाषाका अर्थ एक सामान्य साहित्य, महान् विचारोकी एक सामान्य प्रेरणा और गीतो तथा ग्राम्य-गाथाओंकी एक सामान्य पैतृक सम्पत्ति भी है।' श्री रोज का कहना है कि सामान्य भाषाका सबसे अधिक शक्तिपूर्ण राजनीतिक प्रभाव होता है। जोजेफ का कहना है कि एक सामान्य भाषा लोगोको एक ही प्रकारके विचारो और भावोको प्रगट करनेकी शक्ति देती है। नैतिकता, आचार और न्यायके सामान्य मानदण्ड स्थिर करती है, सामान्य ऐतिहासिक परम्पराओंको प्रतिष्ठित रखती है (preserves) और एक सामान्य राष्ट्रीय मनोवृत्तिको उत्पन्न करती है। वर्तमान समयमें दूसरे लोगोकी अपेक्षा पोल (people of Poland) लोगोंने राष्ट्रीय भावनाको जीवित रखनेमे सामान्य भाषाके महत्वको अधिक प्रदर्शित किया है। जहाँ लोगोमें अपनी सास्कृतिक और सामाजिक एकता बनाये रखनेका निश्चय हो वहा भाषाकी एकता बहुत अधिक उपयोगी होती

है। सामान्य भाषाके अनेक लाभोंके बावजूद अनेक ऐसे राष्ट्र हैं जिनकी एक सामान्य भाषा नहीं है। स्विट्जरलैण्ड मे कमसे कम तीन भिन्न भाषाए बोली जाती हैं। यदि राष्ट्रीयताके अन्य तत्व सुदृढ़ हों तो सामान्य भाषाके बिना भी काम चल सकता है। अलास्का की जर्मन भाषा बोलनेवाली जनता जर्मनीकी अपेक्षा फ्रासमे अधिक प्रेम रखती है। अमेरिका और केनाडाके नागरिक एक ही भाषा बोलते है और एक दूसरे के पडोसी भी हैं। फिर भी इन दोनो देशोके लोग आपसमे मिलकर एक राष्ट्र बनने को तैयार नहीं है।

भारतमे भाषाका विभेद राष्ट्रीय एकतामे बाधक रहा है। हिन्दीको राष्ट्र-भाषा बना देनेसे यथासमय हालत सुधर जायगी। एक राष्ट्र भाषा का विकास करनेकी प्रवृत्ति होना चाहिए। स्कूलोंमे और मोहल्लोमे उसका प्रयोग हो, सस्कृतिके विकास और विस्तारमे उसको काममे लाया जाय और उसे न केवल परम्परागत और आधुनिक साहित्य तथा कला का, बल्कि आधुनिक टैक्निकल और वैज्ञानिक विचारो का भी सुबोध माध्यम बनाया जाय। पर इसका मतलब यह नहीं है कि हिन्दीके अतिरिक्त तामिल, तैलगू आदि अन्य प्रादेशिक भाषाओंको नष्ट कर दिया जाय। ब्रिटिश शासनमे अग्रेजी भाषा कुछ लोगोके विचार विमर्शका माध्यम बन गयी पर वह स्वभावत जनता की भाषा नहीं बन सकी। फिर भी उच्चशिक्षा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियोके लिए अग्रेजीका एक अच्छा काम लायक ज्ञान लाभप्रद होगा। बडे पैमाने पर अग्रेजीके साहित्यिक अध्ययनकी अपेक्षा जरूरत इस बातकी है कि अग्रेजी भाषा के अध्ययन द्वारा उसमे उपलब्ध टैक्निकल, सामाजिक तथा अन्य व्यावहारिक विषयोंके साहित्यका अध्ययन किया जाय ताकि व्यावहारिक ज्ञानमे भारतवासी वचित न रह जाय।

(५) **धर्मकी एकता (Unity of Religion)** राष्ट्रोंके इतिहाससे पता चलता है कि प्रारम्भिक अवस्थाओमे धर्मका प्रमुख स्थान रहा है। प्रारम्भिक सामाजिक जीवनका केन्द्र धर्म, रीति रिवाज और आचार व्यवहार ही रहा है। यहूदियोमे धर्म ही उनके राष्ट्रीय जीवनका मुख्य आधार था। धर्म ही उनके सामान्य जीवनका ताना-बाना था। यही बात आजकल जापानियों, पोलो और आयरिश लोगोंके बारेमे कही जा सकती है। सदियोंके अत्याचारमे यूनानका कैथोलिक धर्म-सघ ही एक जातिके रूपमे यूनानियोको जीवित रख सका। स्कॉटलैण्ड के बारेमे विचार करने पर हमे मालूम होता है कि जॉन नॉक्स और प्रोटेस्टेण्ट धर्म-सुधार ने स्कॉटिश राष्ट्रीयताकी उत्पत्ति और उसके स्थायित्वमे महत्त्वपूर्ण भाग लिया था।

धर्मकी एकता अब कोई महत्त्वपूर्ण तत्व नहीं रह गया है, यद्यपि ऐसे भी उदाहरण है जिनमे विशेष इतिहासके कारण अब भी धर्म राष्ट्रीयताका आधार बना हुआ है। श्री हेज कहते है कि अधिकाश रूपमे आधुनिक राष्ट्रीयता धार्मिक विश्वास या धार्मिक वृत्तियोंकी एकरूपता पर जोर दिये बिना ही फूल-फल रही है। आजकल अधिकाश राज्य धार्मिक सहिष्णुता का व्यवहार करते है। धार्मिक विभेद उनके

राष्ट्रीय जीवनमे हस्तक्षेप नही कर पाता। सभी प्रगतिशील देशोमें धर्म दिन प्रति दिन अधिकाधिक रूपमे व्यक्तिगत प्रश्न बनता जाता है। सयुक्तराष्ट्र अमेरिका मे धर्म जनता के राष्ट्रीय जीवनमे प्रवेश ही नही कर पाया है। पर इसके विपरीत भारतमे स्वार्थी दलो द्वारा अपने लाभके लिए धार्मिक विभेदो पर बहुत जोर दिया जाता है। धार्मिक कट्टरपन और धर्मान्धता कभी किसी जातिको महान् नही बना सकती। किन्तु हमारे यहाँ इस तथ्यको व्यापक रूपसे नही स्वीकार किया जाता। 'धर्म खतरेमे है" एक अर्थहीन नारा है। अब समय आ गया है कि भारतके शिक्षित लोगोका यह समझ लेना चाहिए कि राष्ट्रीय एकताके हितमे सहानुभूति और ज्ञानसे उत्पन्न होनेवाली सच्ची धार्मिक सहिष्णुता की आवश्यकता है, केवल इस प्रश्नकी ओर से एक ढुलमुल उदासीनतासे काम नही चलेगा। कम-से-कम पढे-लिखे लोगोको तो एक दूसरेके धार्मिक विश्वास और भावनाओके प्रति गम्भीर सम्मान पैदा करना चाहिए। राजनीति को धर्म निरपेक्ष बनाना चाहिए। हमारे कहनेका मतलब यह नही है कि धर्म और नैतिकता के उच्चतम सिद्धान्त राजनीतिका निर्देश और नियत्रण न करे। राजनीतिको एक आदर्शवादकी आवश्यकता है। यह आदर्शवाद राजनीति नही दे सकती, धर्म और नैतिक सिद्धान्त ही दे सकते हैं। पर हम सकीर्ण साम्प्रदायिकता के दृष्टिकोणमे राजनीतिको नही देखना चाहते।

(६) **सामान्य आर्थिक हित (Common Economic Interest)** जापान और ऑस्ट्रेलिया की राष्ट्रीयताका सबसे प्रमुख कारण सामान्य आर्थिक हित रहा है। यह आर्थिक उद्देश्य अन्य तत्वोके साथ जातिमे एकताकी भावना पैदा करता है। ऑस्ट्रेलिया के राजनीतिज्ञों ने युद्धके दौरानमे "श्वेत ऑस्ट्रेलिया-नीति" का जोरदार समर्थन इस भय के कारण किया था कि यदि प्रवासियोके बारेमे लगे हुए प्रतिबन्ध हटा दिये गये या ढीले कर दिये गये तो ऑस्ट्रेलिया मे मगोल और भारतीय आकर भर जायगे और आस्ट्रेलियन लोगोंके आर्थिक जीवनको सकटमें डाल देंगे।

किसी जातिको एक सूत्रमे बाँध रखनेमें सामान्य आर्थिक हितोंका चाहे कितना ही महत्व हो, पर हम यह नही मानते कि केवल आर्थिक हितमे ही राष्ट्रीयताकी भावना पैदा हो सकती है। यदि केवल आर्थिक हित ही राष्ट्रीयताके निर्माणके लिए पर्याप्त होते तो हम मजदूरोकी राष्ट्रीयता और पूजीपतियोकी राष्ट्रीयता देखने को मिलती। युद्धके समय राष्ट्रीयताकी भावना आर्थिक विभेदोको पार करके विभिन्न आर्थिक हितोवाले लोगोको एकतामे बाध देती है। रेनन का यह कहना ठीक है कि आर्थिक हितोकी एकता एक आगम-सघ (customs union)[1] का निर्माण करती है, एक राष्ट्रका नही।

---

[1] A territory treated as if one state for purposes of custom duties—Chambers's XX Century Dictionary—translator

(७) सामान्य अधीनता (Common Subjection) कभी-कभी मजबूत और सुव्यवस्थित सरकारकी अधीनता भी राष्ट्रीयताका सबल कारण होती है। अंग्रेजो के सुदृढ़ शासन ने कुछ हद तक भारतीय राष्ट्रीयताका विकास किया है। इसी प्रकार दूसरे देशामे एक शासनकी आज्ञानुवर्तिता ने भी राष्ट्रीय भावना उत्पन्न की है, यद्यपि यह राष्ट्रीयता बडी भयावह हुई है, जैसे हिटलर के अधीन जर्मनीमे और मुसोलिनी के अधीन इटलीमे। राष्ट्रीयताके लिए सुदृढ सरकार चाहे जितनी महत्वपूर्ण हो, पर वह स्वय राष्ट्रीयता उत्पन्न नहीं कर सकती। रैम्जे म्यार का यह कहना बिलकुल ठीक है कि 'शासनकी एकता-मात्र, वह चाहे जितनी सुन्दर ढगकी हो, कभी स्वत राष्ट्रीयताकी उत्पत्ति नही कर सकती'।

(८) सामान्य कष्ट (Common Suffering) कभी-कभी सामान्य मुसीबतोंने राष्ट्रीयतामे बडा शक्तिशाली योग दिया है। इतिहासमे इस बातके उदाहरण है कि अत्याचारोंने राष्ट्रीयताको सुदृढ कर दिया है। श्री जिमर्न का कहना है कि "योरोपमे राष्ट्रीयता एक भावना है जो राजनीतिक अत्याचारो द्वारा निर्दयता-पूर्वक सजग हो उठी है (८८ ७४)"। फ्रास और प्रशियाके बीच होनेवाली १८७० की लडाईके बाद फ्रासकी राष्ट्रीय भावना बडी तीव्र हो उठी। मूरो के अत्याचार और नेपालियन के युद्धोने स्पेन वासियोमे राष्ट्रीय भावना पैदा कर दी थी। पोलैण्डके विभाजनने राष्ट्रीय भावनाको तीव्र बना दिया और अत्यन्त विरोधी परिस्थितियोमे भी उसे जीवित रखा। अंग्रेजो द्वारा अत्याचार किये जाने पर आयरलैण्डकी राष्ट्रीयताने अत्यधिक उग्र और अवाछनीय रूप तक ग्रहण कर लिया। इन उदाहरणों के होते हुए भी, जैसा जाजेफ ने कहा है "किसी एक वर्ग पर होनेवाला अत्याचार स्वत उस वर्गको राष्ट्र या जाति नही बना देता। उसमे एक जाति अनेक स्वार्थी सम्प्रदायोमे बँट भी सकती है जिसमे से प्रत्येक सम्प्रदाय अत्याचारीका कृपा-पात्र बननेकी कोशिश करता है जैसा कि प्राय भारतीय इतिहासमे होता आया है।

(९) राजनीतिक सम्प्रभुता (Political Sovereignty) कभी-कभी यह दलील दी जाती है कि राज्यसे राष्ट्रीयता बनती है, राष्ट्रीयतासे राज्य नही बनता। इस दावेको सिद्ध करना कठिन है। यूनाइटेड किंगडम का एक राजनीतिक सम्प्रभुता के अधीन होने पर भी उसमे चार पृथक राष्ट्रीयताए या जातिया सम्मिलित है। आमतौर पर यह कहा जा सकता है कि यद्यपि आधुनिक राज्योके स्थायी रूप धारण करनेके पहले भी राष्ट्रीयताओं या जातियोका अस्तित्व रहा है फिर भी राजनीतिक सम्प्रभुता ने विकासशील राष्ट्रीयताको सुदृढ बनानेमे सहायता दी है। स्विट्जरलैण्ड जैसे अपवादोको छोडकर, जहा सम्भवत सामान्य राजनीतिक सम्प्रभुताने राष्ट्रीयता को जन्म दिया है, राजनीतिक सम्प्रभुता अधिक-से-अधिक यही कर सकती है कि वर्तमान राष्ट्रीय चेतनाको सर्वमान्य विधियो और राजनीतिक सस्थाओ द्वारा और अधिक दृढ बनाये। राष्ट्रीयताकी जैसी परिभाषा हमने की है वैसी राष्ट्रीयता राजनीतिक सम्प्रभुता द्वारा उत्पन्न नही की जा सकती।

(१०) **सार्वजनिक इच्छा (Popular Will)** सहयोग करनेकी इच्छा और 'एक राष्ट्र बननेकी इच्छा" के महत्वकी हम सरलतासे उपेक्षा नही कर सकते। इन दानो पर डा० अम्बेदकर भारतीय राष्ट्रीयताके सिलसिलेमें बहुत जोर देते थे। उनके शब्दामे, "यह एकताकी एक सुसगठित भावना है। जिन लोगोंमे यह भावना होती है वे सब अपनेको एक दूसरेसे सम्बन्धित समझते हैं।" टॉएन्बी "एक राष्ट्र बननेकी इच्छाको ' राष्ट्रीयताका प्रधान तत्व मानते हैं। इमी प्रकार मैजिनी सावजनिक इच्छाको राष्ट्रीयताका आधार मानते है।

राष्ट्रीयताका आत्मनिर्णय (The Self-determination of Nationality) क्या प्रत्येक जाति या राष्ट्रीयताको स्वशासित सम्प्रभुता सम्पन्न राज्य बननेका अन्तर्निहित अधिकार है? यह एक ऐसा प्रश्न है'जिसमे राजनीति-शास्त्रके विद्यार्थी और व्यावहारिक राजनीतिज्ञ, दोनोको रुचि है। वियना काग्रेस (१८१५) से शुरू होकर पूरी १९वी सदी भर यारोपीय राजनीति पर 'एक राष्ट्रीयता, एक राज्य' का सिद्धान्त छाया रहा। १९१४–१८ के युद्धमे इस सिद्धान्तको उस समय और अधिक बल मिला जब जातियोके आत्मनिर्णयका सिद्धान्त सामने आया। आशका यह रही है कि विभिन्न राष्ट्रीयताके लागोको एक साथ एक राज्यमे रख देनेस देशभक्तिकी भावना नष्ट हो जाती है और आन्तरिक विवाद पैदा हो जाते हैं। यह भी कहा जाना है कि यदि एक राष्ट्रीयता विभिन्न राज्योमें बिखरी हो तो कदापि सुखी और सम्पन्न नही रह सकती और ऐसी राष्ट्रीयता एक विकलाग सामाजिक सगठन (dismembered social organism) के समान है। ये बातें अब स्वीकार नही की जाती हैं। अनेक लोग यह स्वीकार करते हैं कि और सब बातोके समान होने पर राजनीतिक सीमाए वही होनी चाहिए जहा राष्ट्रीय सीमाए हो। श्री जे० एस० मिल अपनी पुस्तक "प्रतिनिधि सरकार" में लिखते हैं "सामान्यत स्वतत्र देशोंकी यह एक आवश्यक शर्त है कि सरकारकी सीमाए और राष्ट्रीयताकी सीमाए एक ही हो।"

लॉर्ड एक्टन और अन्य अनेक विचारकोंका दृष्टिकोण इसके विपरीत है। लॉर्ड एक्टन का कहना है कि राष्ट्रीयताका सिद्धान्त {अर्थात् एक राष्ट्रीयता (जाति) एक राज्य} समाजवादके सिद्धान्तसे भी अधिक अर्थहीन और अपराध मूलक है। जिमर्न लिखते है कि अन्ततोगत्वा राष्ट्रीय राज्यके सिद्धान्तकी वही गति होगी जो आठवें हेनरी और लूथर के राष्ट्रीय धर्म-सघवाले सिद्धान्तकी हुई थी। बर्नर्ड जोजेफ का कहना है कि 'एक-राष्ट्रीयता, एकराज्य' का सिद्धान्त एक खतरनाक सिद्धान्त है और विश्वके विकासमे प्रधान बाधा है। उनका कहना है कि राष्ट्रीयता और राज्य दो भिन्न धारणाए है और राष्ट्रीयताका अस्तित्व राज्यका अस्तित्व समाप्त हो जाने पर भी बना रह सकता है। या तो एक राज्यमें एकसे अधिक राष्ट्रीयताओ और जातियो का समावेश रहता है अथवा एक राष्ट्रीयता या जाति एक से अधिक राज्योंमे बिखरी रहती है। राष्ट्रीय निष्ठा और राज्यकी निष्ठा दो भिन्न वस्तुए हैं और जोजेफ के अनुसार दोनोंका अस्तित्व एक साथ रह सकता है क्योंकि राष्ट्रीयता केवल इतना

चाहती है कि सांस्कृतिक और सामाजिक जीवनके लिए स्वाधीनता हो और कुछ हद तक यूथ-स्वायत्तता (group autonomy) हो—खासकर साम्प्रदायिक मामलोमे। उनका विश्वास है कि ससारमे शान्ति और व्यवस्थाकी आशा इस सिद्धान्तके माने जानेमें ही है कि अनेक राष्ट्रीयताए या जातिया एक ही राज्यके भीतर सहयोग और शान्तिके साथ रह सकती हैं और उनमेंसे प्रत्येक अपने राष्ट्रीय जीवनका अनुगमन कर सकती हैं (४३ ३३१)।

हम प्रो० हॉकिंग के इस विचारसे सहमत हैं कि किसी भी राष्ट्रीयता या जाति को एक राज्य बननेका जन्मसिद्ध अधिकार नहीं प्राप्त है। हमारे सभी अधिकार शर्तों सहित (conditional) अथवा आनुमानिक (presumptive) होते है। रैम्जे म्योर के शब्दोमे 'मोटे तौर पर ही यह बात सही है कि प्रत्येक जातिका स्वाधीनता और एकताका अधिकार होता है। व्यक्तियोकी भाति राष्ट्रो या जातियोको भी अपने अधिकारोका अर्जन करना होता है।' किसी जातिको तभी जीवित रहनेका अधिकार है जब इस अधिकारके प्रयोगसे स्वय उसका और समाजका लाभ हो।' किसी खास जाति या राष्ट्रीयताको राज्यका पद मिलना चाहिए या नही, इसका निर्णय उस जातिकी परिपक्वता पर, और कुछ अशोमे उसके आकार तथा उसकी दृढता पर निर्भर करता है।

किसी राष्ट्रके स्वतत्र और सप्रभु बन सकने से पहले उसमे निम्नलिखित बातो का होना जरूरी है (क) उसमे अपनी सम्पत्तिकी व्यवस्था करने और अपने प्राकृतिक साधनो तथा अपनी पूजीका विकास कर सकनेकी क्षमता होनी चाहिए। (ख) उसे अच्छे कानून बनाने चाहिए और न्यायकी उचित व्यवस्था करनी चाहिए। सीमा बाह्य न्यायालयो (extra-territorial courts) की आवश्यकता नही होनी चाहिए। (ग) उसे एक उपयुक्त ढगकी सरकार स्थापित करनी चाहिए। (घ) उसे व्यापार करने देने, कर्ज अदा करने और यात्राकी अनुमति देनेका अपना कर्तव्य स्वीकार करना चाहिए। (च) उसे अन्तर्राष्ट्रीय मामलोमे अपनी जिम्मेदारी स्वीकार करनी चाहिए। राजदूतोको अपने यहा आमन्त्रित करना, विवादोमे मध्यस्थता स्वीकार करना और सन्धिया करनी चाहिए, आदि आदि। उसके पास ऐसे नागरिक होने चाहिए जो गौरवके साथ उचित ढगसे अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनोमे उसका प्रतिनिधित्व कर सकें। (छ) जब तक युद्धोका होना जारी है तब तक उसे विदेशी आक्रमणोसे अपनी रक्षा करनेमें समर्थ होना चाहिए।

क्या राष्ट्रीयता एक वरदान है? (Is Nationalism a Blessing?) अनेक विचारक मानते हैं कि राष्ट्रीयतावाद एक आदर्श है जिसमे सद्गुणोके अतिरिक्त और कुछ नही है। पर अन्य लोग राष्ट्रीयतावादमे अनेक बुराइया देखते है। इन लोगो का कहना है कि आजकलकी राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सद्भावनाका सबसे बडा शत्रु है। राष्ट्रीयतावाद पर अपने निबन्धमे श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने निस्सकोच राष्ट्रीयतावादको बुरा कहा

है। वह उसे 'एक जातिका सामूहिक और सगठित स्वार्थ', 'आत्मप्रशसा' 'स्वार्थी उद्देश्योकी सिद्धिके लिए राजनीति और व्यवसायका सगठन', शोषण के लिए सगठित शक्ति' आदि कहते हैं। राष्ट्रीयता देशोके पारम्परिक सम्बन्धोका इतना कटु बना देती है कि एक दूसरेकी सस्कृति और सभ्यताका ठीक-ठीक अध्ययन प्राय असम्भव हो जाता है। हेज ऐसी राष्ट्रीयताकी निन्दा करते है जिसमे अपनी जाति या राष्ट्रके बारेमे तो अभिमान और गर्व रहता है और अन्य राष्ट्राके प्रति तुच्छता और विद्वेषके भाव रहते है। उनका कहना है कि १९वी और २०वी शताब्दीमे राष्ट्रीयतावादका इतिहास गोरवपूर्ण नही रहा है। श्री शिलिटा के शब्दोमे राष्ट्रीयता 'मनुष्यका दूसरा धर्म' बन गयी है। वह भावनात्मक (sentimental), सवेगात्मक (emotional)और प्रेरणा-मूलक(inspirational)है। शायद किसी भी धर्मकी अपेक्षा इसके कही अधिक कट्टर अनुयायी हैं। यह ससारके लिए एक सन्देश रखनेका दावा करती है। आधुनिक समयमे राष्ट्रीय अधिकारो, राष्ट्रीय गौरव और राष्ट्रीय नीति के नाम पर लाखो व्यक्तियोका जीवन और करोडोकी सम्पत्ति बर्बादकी जा चुकी है। राष्ट्रीयतावाद विदेशोसे घृणा करना सिखाता है। इस प्रकारकी आक्रामक राष्ट्रीयताको 'भेडियोकी आक्रामक राष्ट्रीयता' ठीक ही कहा गया है। और यही राष्ट्रीयता युद्धके बीज बोती है और निम्नतम कोटिके साम्राज्यवादमे बदल जाती है। इस प्रकारकी 'भेडिया-सी आक्रामक राष्ट्रीयता' के उदाहरण सैनिकवादी जापान, फासिस्ट इटली और नाजी जर्मनी मे मिलते है।

हम राष्ट्रीयताका पूरा-पूरा अर्थ तब तक नही समझ सकते जब तक सास्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रोमे भी उसकी व्याख्या न की जाय। सास्कृतिक क्षेत्र मे तो राष्ट्रीयता एकता बढानेवाली शक्ति रही है, पर आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रो मे वह विभेद उत्पन्न करनेवाली शक्ति ही रही है। अतिवादी आर्थिक राष्ट्रीयताका {जिसे आर्थिक आत्मनिर्भरताका नाम दिया गया है (Autarchy)} उद्देश्य पूर्ण आर्थिक आत्मनिर्भरता है। आर्थिक राष्ट्रीयता एक निश्चित सीमासे आगे बढते ही युद्धका कारण बन जाती है। यह एक ऐसा हथियार है जो लौटकर, चलानेवालेके सिर पर ही घातक चोट करता है। आर्थिक आत्मनिर्भरता मूर्खता है। पिछले वर्षोमे कैनाडामें गेहूके जलाये जाने, अमेरिका मे सेब और दूधके नदियोमे बहाये जाने और ब्राजीलमे कॉफी समुद्रमे फेंके जानेके दृश्य हमने उस समय देखे है, जब कि लाखो व्यक्ति भूखसे मर रहे थे। आर्थिक आत्मनिर्भरताकी इस आलोचनाका मतलब यह नही है कि हम चाहते हैं कि राष्ट्रोको अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक मामलोमे पूरी छूट रहे। हम चाहते है कि प्रत्येक राष्ट्रके भीतर भी और राष्ट्रोके बीच भी आयोजित अर्थ-नीति बरती जाय।

हमे ऊपर बतायी गयी आक्रामक राष्ट्रीयता और आत्मशोधक राष्ट्रीयतामे अन्तर पहचानना होगा। आत्मशोधक राष्ट्रीयताका आदर्श है 'जियो और दूसरोंको जीनेमे सहायता दो'। ऐसी राष्ट्रीयता अपने पडोसी देशों, राष्ट्रो, सुदूर अफ्रीका या एशियाके पिछड़े प्रदेशो अथवा समुद्रके द्वीपोंको हड़पनेकी नीयत नही रखती। यह राष्ट्रीयता

राष्ट्रीय आत्मसम्मानका पर्याय है। कभी-कभी इसे 'भेड़ोंकी आत्मरक्षा-मूलक राष्ट्रीयता' कहते हैं।

जहा तक भारतका सम्बन्ध है राष्ट्रीयता हमारे लिए जरूरी है। हमारा अस्तित्व ही राष्ट्रीयता पर निर्भर है यह हमारे जीवन मरणका प्रश्न है। यद्यपि अपने सारे दुर्भाग्योंके लिए विदेशियोंको जिम्मेदार ठहराना मूर्खता है, फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि अंग्रेजोंकी लम्बी गुलामीने हममें काफी बुराइयाँ पैदा कर दी है जिनका वास्तविक प्रतिकार आत्मनिर्णय (self-determination) है। भय, कायरता और छलछन्द जैसी बुराइयोंको राजनीतिक राष्ट्रीयता ही दूर कर सकती है।

राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्त हो जाने पर अब भारत को सांस्कृतिक और मानवतावादी राष्ट्रीयताकी ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। मानवताका आदर्श, एक लक्ष्य और पथ-प्रदर्शकके रूपमें समस्त राष्ट्रोंसे ऊंचा है (हैलोवेल)।' आर्थिक दृष्टिकोणसे पिछड़े होनेके कारण भारत को विवश हो कर अगले कुछ वर्षों तक अपने उद्योगोंके विकासमें लगना होगा, पर हमारा लक्ष्य एक ऐसी सुविचारित राष्ट्रीय योजना होना चाहिए जो संसारकी योजनाका एक अभिन्न अंग हो।

राष्ट्रीयता एक लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया है जिसे मिटाया नहीं जा सकता। यह प्रेरणा-मूलक है। इसका कारण है मनुष्यकी सामाजिक भावना और कबायली-मनोवृत्ति। एक यहूदी अमेरिकी लेखकका कहना है कि 'लोग अपनी राजनीतिको, अपनी पत्नियोंको, अपने धर्मोंको और अपने दार्शनिक सिद्धान्तको बदल सकते हैं पर वे अपने पूर्वजोंको नहीं बदल सकते (३२ १०८)। पर राष्ट्रीयता नामकी चीज आजकल अक्सर एक 'जंगलीपने की देश-भक्ति' से अधिक कुछ और नहीं है, यह एक दूसरे पर आक्रमण करनेवाला कट्टर-पंथी साम्राज्यवाद है। इसलिए यदि हम फ्रैंज ग्रिलपार्जर द्वारा बताये गये 'मानवतासे राष्ट्रीयता और राष्ट्रीयतासे पाशविकता' वाले क्रमसे अपनेको बचाना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि संसारके राष्ट्र 'एक अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोणका, सक्रिय अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावनाका और मैत्रीका विकास करें।' यह तभी किया जा सकता है जब उपयुक्त सार्वजनिक शिक्षा हो, संस्कृतियोंका अन्तर्मिलन और उनका विकास हो, जातीय असहिष्णुता दूर की जाय, दूसरोंको परेशान करनेवाले आयात-निर्यात सम्बन्धी कानूनों और प्रवास-सम्बन्धी प्रतिबन्धोंको हटाया जाय, निश्शस्त्रीकरण हो और चरम सम्प्रभुताके पिटे-पिटाये सिद्धान्तका परित्याग किया जाय। हेज़ के शब्दोंमें 'राष्ट्रीयता जब विशुद्ध देश-भक्तिका पर्याय बन जायगी तब वह मानवता और समस्त संसारके लिए एक अनुपम वरदान सिद्ध होगी (३२ २७५)।'

ऐसी ही राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयताका साधन बन सकती है। 'एक आदर्श अन्तर्राष्ट्रीय समाजका अर्थ, एक ऐसा संसार है, जिसमें सभी राष्ट्र अपनी श्रेष्ठतम स्थितिमें हों (४३ ३३८)।' विश्वके भावी कल्याणके लिए यह आवश्यक है कि अन्तर्राष्ट्रीयताके हितमें न केवल हमारे दिमागको शिक्षित किया जाय, बल्कि हमारी

इच्छाओं और हमारी भावनाओंका भी सत्कार किया जाय। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो अलगपनकी प्रवृत्तिको दूर करे और पारस्परिक सहयोग और समझौतेकी भावनाको बढ़ावा दे—ऐसी शिक्षा जो हमारी दास वृत्तिको समाप्त कर सके, हमारे भीतर विवेक-बुद्धि जाग्रत् कर सके और स्वतन्त्र निर्णय लेनेकी शक्ति दे सके (३२ २७२)।' अपनेको दूसरोंसे अलग रखनेवाली राष्ट्रीयताका और जातीय उच्चताका सिद्धान्त आधुनिक संसारके अभिशाप हैं।

साम्राज्यवाद (Imperialism)

साम्राज्यवादका अर्थ (The Meaning of Imperialism) कुछ लोगोंकी रायमें साम्राज्यवादका अर्थ है, शुद्ध भौतिक लाभके लिए कमजोर जातियोंका आर्थिक शोषण और उन पर राजनीतिक प्रभुत्व। दूसरे लोग उसे पिछड़े हुए देशोंके प्रति प्रगतिशील देशोंका ऐसा पावन कर्तव्य मानते हैं जिसे पूरा करनेमें प्रगतिशील देशोंको हिचकना नहीं चाहिए। ये दोनों ही दृष्टिकोण अतिवादी हैं। पिछड़े हुए देशोंका निर्दयतापूर्वक शोषण करनेकी एक सावधानीपूर्वक सुविचारित कार्य योजना साम्राज्यवादके इतिहाससे उतनी ही परे है, जितना परे दूसरोंको सभ्य बनानेका सुविचारित पवित्र ध्येय है जिसे श्वेतांगोंका भार (white man's burden) कहकर इन शब्दोंका बहुत अधिक दुरुपयोग किया गया है।

साम्राज्यवादकी एक ऐसी परिभाषा दे सकना बहुत कठिन है जो प्राचीन और आधुनिक दोनों प्रकारके साम्राज्यों पर सटीक लागू हो सके। आधुनिक युगमें ही साम्राज्यवादने अनेक रूप धारण किये हैं। ऐसा कोई स्वतः सिद्ध प्रमेय नहीं है जिसके द्वारा यह निश्चय किया जा सके कि 'साम्राज्यवादका झण्डा व्यापारका अनुगमन करता है या व्यापार झण्डेका अनुगमन करता है।' कुछ साम्राज्योंका जन्म तो आकस्मिक घटनाओंके रूपमें हुआ है और कुछ साम्राज्य, योजनाओंके परिणाम हैं। प्राचीन साम्राज्य अधिकतर कर वसूल करने और सैनिक भरती करनेका काम करते थे। हारे हुए राज्यों पर विजयी राष्ट्रोंके उच्चतर सैनिक बलका प्रदर्शन इन साम्राज्योंके रूपमें होता था। आधुनिक साम्राज्य अधिकतर आर्थिक और सामरिक उद्देश्योंके लिए होते हैं।

सी० डी० बर्न्स का कहना है कि 'साम्राज्यवाद अनेक विभिन्न देशों और जातियोंकी विधि और शासनकी एक ही पद्धति' को प्रकट करनेवाला नाम-मात्र है जो अन्तर्राष्ट्रीयताके लक्ष्यका केन्द्र बिन्दु है और जिसके द्वारा प्रान्तीय राष्ट्रीयताका प्रतिकार होता है। इस परिभाषाका बाद वाला अंश निश्चय ही यथार्थ नहीं है। यह परिभाषा उस नीतिके अन्तर्गत आती है जिसे प्रो० हार्किंग 'वाक्छलकी नीति' कहते हैं और 'यथार्थताकी नीति' के साथ जिसका विरोध बताते हैं। प्रो० शूमन का कहना है कि चाहे जितने बहाने किये जायँ और नैतिकताका चाहे जितना ढिंढोरा पीटा जाय,

यथार्थता यह है कि अधीन देशों पर शक्ति और हिंसाके बल पर, विदेशी राज्य स्थापित रखना ही साम्राज्यवाद है।

सामाजिक विज्ञानोंके विश्व-कोषमे साम्राज्यवादकी जो काम चलाऊ परिभाषा दी गयी है वह यह है कि साम्राज्यवाद एक नीति है जिसका उद्देश्य एक साम्राज्यकी रचना, व्यवस्था और प्रतिष्ठा करना है। वह एक ऐसा राज्य है जिसका आकार बहुत बडा होता है जिनमे अनेक पृथक राष्ट्रीय इकाइयाँ शामिल रहती हैं और जो एक केन्द्रीय इच्छाके अधीन रहता है।' इस परिभाषाका हम यदि अंग्रेजी साम्राज्य पर लागू करते हैं तो हम देखते है कि जहाँ तक साम्राज्यके स्वशासित भागोका सम्बन्ध है, उनमे यद्यपि कुछ 'विशिष्ट आत्मिक सम्बन्ध' है, फिर भी कोई एक केन्द्रीय इच्छा नहीं है क्योकि प्रत्येक उपनिवेशको पूर्ण स्वायत्त अधिकार प्राप्त है जिसे कुछ लोगोने औपनिवेशिक सम्प्रभुता (Dominion Sovereignty) कहा है। जहाँ तक शेष साम्राज्यका सम्बन्ध है, केन्द्रीय इच्छा विभिन्न मात्राओ और रूपोमे अपनेको व्यक्त करती है।

आधुनिक साम्राज्यवादका अध्ययन करनेसे पता चलता है कि उपनिवेशीकरण उसका उतना महत्त्वपूर्ण अग नहीं है जितना ससारके पिछडे हुए भागोका आर्थिक और राजनीतिक नियत्रण है। इसलिए व्यापार, अतिरिक्त पूजीके विनियोग (investment of surplus capital) और राजनीतिक नियत्रण पर अधिकाधिक ध्यान दिया जाता है। दूसरे शब्दोमे जिन उपनिवेशोमे आबादी बसाई जा सकती है उनकी अपेक्षा उन उपनिवेशोका मूल्य अधिक है जिनका शोषण किया जा सकता है।

साम्राज्यवाद के कारण (Causes of Imperialism) साम्राज्यवाद के कारण विभिन्न है। अपने प्रारम्भिक और आदिम रूपमे साम्राज्यवाद मनुष्यकी लुटेरी वृत्तिका मूर्तरूप था और इस प्रकारके साम्राज्यवादका आज भी अभाव नही है। निम्नकोटिके जीवोमें भी हम देखते है कि बडी मछलियाँ छोटी मछलियोका निगल जाती है और बन्दरोकी एक जाति दूसरी जातिका नया आश्रय खोजनेके लिए खदेड देती है। यही प्रवृत्ति हमे मनुष्योमे भी दिखाई देती है। चरागाहों, भोजन और अन्य ऐसी ही वस्तुओकी खोजमे जातियोंके ससारके एक भागसे दूसरे भागको जानेमे तथा एक कबीले द्वारा दूसरे कबीलेके जीते जानेमें मनुष्यकी इस लुटेरी प्रवृत्तिका परिचय हमे पर्याप्त मात्रामे किसी न किसी रूपमे मिलता है। कही-कही यह प्रवृत्ति निर्दय आक्रमण और रक्तपात-पूर्ण युद्धोके रूपमे व्यक्त होती है और कभी उच्चतर कौशल और चतुराई द्वारा क्रमिक ढगसे दूसरोका उनके स्थानसे हटाये जानेका रूप धारण करती है।

जब हम प्रारम्भिक साम्राज्योको छोडकर उत्तरकालीन साम्राज्यो पर विचार करते है तो हमे उनके विकासमे विजय-लालसा और शक्तिके लिए प्रतियोगिता मूलक सघर्ष महत्त्वपूर्ण काम करता दिखाई पडता है। आधुनिक साम्राज्योके निर्माण मे ससारके मानचित्रको लाल या किसी और रगमे रग देने की इच्छा ने निस्सन्देह

एक सबल उत्तेजनाका काम किया है। सेसिल राड्स (Cecil Rhodes) को इस बातका अभिमान था कि वह महाद्वीपोको बाने सोचता था। उपनिवेशों और सैनिक सफलताओंको प्राय राष्ट्रीय शक्ति और गौरव माना जाता है। प्रो० शूमन का विश्वास है कि आधुनिक साम्राज्यवाद शक्ति-प्राप्ति की इच्छा और विजय-लालसा की एक नयी अभिव्यक्ति है। १९३२ मे मुसोलिनी ने इस आदर्शको बडे स्पष्ट शब्दोमे व्यक्त किया था 'फासिस्ट राज्य, शक्ति और साम्राज्य प्राप्तिकी एक इच्छा है। शक्तिका विचार ही रोमन परम्परा है। फासिस्ट सिद्धान्तमे साम्राज्यवादी विचार एक प्रादेशिक सैनिक और व्यावसायिक अभिव्यक्ति मात्र न होकर आत्मिक और नैतिक प्रसारका भी विचार है। फासिस्टवादकी दृष्टिमे साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का अर्थ है, राष्ट्रका विस्तार और राष्ट्रीय ओजकी अभिव्यक्ति। साम्राज्यवादका अर्थ है विस्तार।

देशकी बढी हुई आबादीका स्थान देनके लिए भी औपनिवेशिक प्रदेशोकी इच्छाकी जाती है। १९४१ तक जापानकी यही दलील थी। लेकिन उसके बाद दूसरे देशो पर अधिकार करने की अभिलाषा भी उसमे आ गयी। इटली भी वर्षो तक यही कहता रहा कि उसका सकीर्ण, पर सुन्दर प्रायद्वीप' उसके दसियो लाख निवासियोके लिए काफी नही पडता और इसलिए उसे नये उपनिवेशोकी खोज करनी है। साम्राज्यवादको अधिक आबादीका प्रतिकार बताने वाले तर्कके बारेमे एक विशेष बात यह है कि व्यवहारमे यह तर्क इसी रूपमे कार्यान्वित नही होता। बहुत थोडे ही जापानी कोरिया, फॉरमोसा और मन्चूरियामे बसने गये। लीबिया और इटेलियन सोमालीलैण्डमे बसनेके लिए इटलीको छोडकर जाने वालोकी सख्या नगण्य थी। इसके अतिरिक्त, जैसा कि किसी ने हँसीमे कहा है, 'किसी देशको छोडकर जाने वालोके बदले उस देशमे प्राय स्वर्गसे नये प्रवासी आकर बस जाते है।'

आधुनिक साम्राज्यवादके सबसे अधिक मौलिक कारणोमे से एक कारण आर्थिक है। ससारके अधिकाश साम्राज्यवादी राष्ट्र अत्यधिक उद्योगी राष्ट्र हैं जो कच्चे मालके लिए पिछडे हुए देशो पर निर्भर करते है। डॉ० शाल्ट कहते है कि "कच्चे मालके लिए होने वाला सघर्ष ससारकी राजनीतिमे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भाग लेता है। प्रथम महायुद्धके बाद तो इस बातका महत्त्व और बढ गया है। पर आकडोंसे यह पता चलता है कि सम्भवत ब्रिटेनको छोडकर अन्य कोई भी साम्राज्यवादी देश अधिकाश कच्चे मालके लिए अपने औपनिवेशिक प्रदेशो पर ही निर्भर नही रह सकता। पार्कर मून का कहना है कि इस सामान्य धारणामे कोई सच्चाई नही है कि एक साम्राज्यवादी देशका अपने उपनिवेशोमे पैदा होने वाले कच्चे मालका अधिकाश भाग मिल जाता है। वह लिखते है कि साधारणतया कच्चे माल रगान्ध होते है। वे किसी राष्ट्रीय झण्डेको नही पहचान पाते, वे माग और पूर्तिके नियमका पालन करते हैं, दूरी और यातायातके व्ययसे प्रभावित रहते है, राजनीतिक नियत्रणके बजाय वे आर्थिक नियत्रणके अधिक आज्ञानुवर्ती होते है।'

उपनिवेशोका मूल्य कच्चे मालके उत्पादका की अपेक्षा तैयार मालके बाजारोंके रूपमे अधिक होता है। जाजेफ चेम्बरलेन का कहना है कि साम्राज्यका मतलब है वाणिज्य। रियायती चुंगीपद्धति (preferential tariffs) और वाणिज्यका भेद भाव का सहारा प्राय अपने देशके तैयार मालको सुविधा देनेके लिए लिया जाता है। पर ये तरीके पूरी तरह सफल नही रहे हैं। ऐंड्रयू कारनेगी के कथनानुसार व्यापार किसी झण्डेके पीछे नही चलता, वह प्रचलित निम्नतम मूल्यके पीछे चलता है। आर० एल० ब्युएल का अनुमान है कि 'ससारके व्यापारका केवल पाचवा भाग उन देशोके साथ होता है जो साम्राज्यवादी आधिपत्य मे आते है, शेष ⅘ व्यापार स्वतन्त्र देशोके साथ होता है। फिर भी साम्राज्यवाद से एक औद्योगिक राष्ट्रके तैयार मालकी बिक्रीके लिए अतिरिक्त बाजार तो प्राप्त होते ही है (६३ ३५१)।' सबसे अधिक ध्यान देनेकी बात यह है कि सामान्य जनताको साम्राज्यवादसे कोई लाभ नही होता। थोडेसे उद्योगो का ही साम्राज्यवादसे लाभ होता है। इन उद्योगो मे रूई, लोहा, इस्पात और तेलके उद्योग प्रमुख हैं। ईरान की वर्तमान विस्फोटक स्थिति मनोरजक अध्ययनकी वस्तु है। जिसमे साम्राज्यवाद और समाजवादका सघर्ष है, और एक दरिद्र बनाया गया राष्ट्र अपनी सम्प्रभुताके लिए और अपने प्राकृतिक साधनो यानी तेलका लाभ स्वय पानेके लिए संघर्ष करता है।

साम्राज्यकी उपयोगिता और उसका मूल्य केवल यह नही है कि वह अतिरिक्त वस्तुओंकी बिक्रीके लिए बाजारका काम देता है, बल्कि उसकी उपयोगिता और महत्त्व इस बातमे भी है कि वहाँ अतिरिक्त पूजी लगायी जा सकती है। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका मध्य और दक्षिणी अमेरिकामे तथा ससारके दूसरे भागोमे बडी-बडी पूँजी लगाकर उनकी आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियोका प्रभावित करता है। इसे 'डालर-कटनीति (Dollar diplomacy)' कहते है और यह उतनी ही प्रभावशालिनी होती है जितनी अधिकार करने वाली विदेशी सेना। सरकारी और कूटनीतिक साधनोका प्रयोग पिछडे हुए देशोको उन्नतिशील देशोंसे धन उधार लेनेके लिए मजबूर करनेमे न सही पर फुसलानेमे तो किया ही जाता है।

केवल साम्राज्यवादी देशोंकी सरकार द्वारा ही नही, बल्कि उन देशोके व्यक्तिगत नागरिको और गैर-सरकारी कम्पनियो द्वारा भी पूँजी उधार दी जा सकती है। यह बात उन देशोमे खास तौरसे पायी जाती है जहाँ मजदूरी सस्ती होती है, मजदूर बहुत अधिक होते हैं और वे अपनी रक्षा करनेमे समर्थ नही होते। इस प्रकारके साम्राज्यवाद के समर्थनमे बहुधा यह कहा जाता है कि यदि कोई देश अपने प्राकृतिक साधनोका पूरा उपयोग नही कर सकता है तो किसी भी दूसरे प्रगतिशील देशको इस बातका प्राकृतिक अधिकार है कि वह उस देशके प्राकृतिक साधनोका उपयोग करे क्योकि ससारके साधन उन लोगोकी सम्पत्ति है जो उनका सबसे अच्छा उपयोग कर सकें। पर यह तर्क सबल राष्ट्रो द्वारा दुर्बल राष्ट्रोके पक्षमे कभी नही स्वीकार किया जाता। यदि यह स्वीकार किया जाय तो केनाडा, आस्ट्रेलिया और अफ्रीकाके कुछ हिस्सोमे जो बडे-बडे

भू-प्रदेश ऐसे पड़े हैं जिनमे कोई खेती-बारी नही की जाती है उनको अपनी सम्पत्ति बनानेका सहज अधिकार जापान, चीन और भारतके लाखो गरीब, पर मेहनती लोगो को मिल जाय। पर यह आशा करना व्यर्थ है कि साम्राज्यवादी दूसरोका शोषण करते समय जो तर्क दूसरो पर लागू करते है वही तर्क अपने ऊपर भी लागू करेंगे।

साम्राज्यवाद कुछ चुने हुए थोड़ेसे लोगोको अनेक प्रकारकी सुविधाएँ देता है। वह विदेशी पूँजी लगानेका, विदेशी उप-वाणिज्य दूतो (pro-consuls), कूटनीतिज्ञो और विदेशी असैनिक प्रशासन-सेवको (civil servants) का जगह देनेका, तथा विदेशी सेनाके भरण-पोषणका बहुत बड़ा अवसर उत्पन्न करता है और इन सबका बर्दाश्तके बाहर भारी खर्च आश्रित देशके निवासियोके मत्थे मढ़ दिया जाता है। एमरी महोदय भले ही रोषके साथ कहे कि 'भारत इग्लैण्डको कोई कर नही देता' पर वह भूल जाते है कि इग्लैण्ड के अर्धसरकारी इन्स्टिट्यूट ऑफ इन्टरनेशनल अफेयर्स (Institute of International Affairs) ने अपने वक्तव्यमे कहा है कि प्रत्येक चार अग्रेजोमे से एककी जीविका भारत पर सीधे निर्भर करती है। जो देश विदेशी आधिपत्यके अधीन होता है उसकी नागरिक और सुरक्षा-सम्बन्धी अधिसेवाए निश्चित रूपसे सीमित रहती है। और विदेशी व्यापारी, सौदागर, बगीचे लगानेवाले (चाय आदिके) और सयुक्त पूजीवाली कम्पनियाँ (joint stock companies) सभी उस देशके स्वशासन प्राप्त करनेके प्रत्येक प्रयत्नका विरोध करनेकी एक दृढ़ दीवार बन जाते हैं।[1] इनके अतिरिक्त जो दूसरे लोग साम्राज्यवादसे लाभ उठाते है और जिनसे निहित स्वार्थो का एक वर्ग बनता है वे है जहाजोके मालिक, शस्त्रास्त्रो और सैनिक सामानोके निर्माता, सैनिको और रेल्वे कर्मचारियोकी वर्दियो और रेल्वे तथा समुद्री तार सम्बन्धी वस्तुओके उत्पादक।

आधुनिक युगमे साम्राज्यवादका दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण कूटनीति है। साम्राज्य-वादसे साम्राज्यवादका जन्म होता है। स्वेज नहरमे ब्रिटेन के स्वार्थ, मिस्र पर उसका अप्रत्यक्ष नियन्त्रण, निकट पूर्वमे किसी न किसी रूपमे अपनी अधिकार सत्ता और मैत्री पूर्ण सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए उसके प्रयत्न और ईरान पर उसका आंशिक आधिपत्य आदि सबका रहस्य और महत्व भारत पर उसके भूतपूर्व आधिपत्यकी भूमिकामे ही समझमे आता है[2]। सिंगापुरका अग्रेजी जहाजी बेडा जापानको यह चेतावनी

[1] अल्जीरियामे जो कुछ हो रहा है उस पर दृष्टिपात करिये। अल्जीरियाको फ्रास का एक भाग बताया जा रहा है और वहाके फ्रासीसी प्रवासी अल्जीरिया-वासियोको स्व-शासन दिये जानेके हर प्रयत्नका विरोध कर रहे है।

[2] आज परिस्थिति बदल गयी है। मिस्र आज स्वतन्त्र है और स्वेज नहर मिस्रके अधिकारमे है। ईरान भी अपना शासन करनेके लिए और एक अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रणमे अपने तैल-साधनोमे लाभ उठानेके लिए स्वतन्त्र है। इस सारी हानिको पूरा करनेके लिए ब्रिटेनने बगदाद-सन्धिकी है जिसमें तुर्की, ईराक, पाकिस्तान और स्वय वह शामिल है।

देनेके लिए था कि वह ऑस्ट्रेलिया तथा पूर्वमें ब्रिटिश साम्राज्यके और किसी हिस्से पर कदम रखनेका साहस न करे। ऐसे ही सैनिक और समुद्री कारणोंसे फ्रान्स ने कुछ समय तक जिबूटी (Jibuti, Somaliland protectorate) पर अपना नियन्त्रण रखा था। अफ्रीकाके अधीन प्रदेशोंको वह अपने लिए फौजोंकी खान समझता था। दूसरे प्रदेशोंका हथियानेके प्रधान कारणोंमे से एक कारण अपनी सैनिक शक्तिको बढाना है।

साम्राज्यवादियोंकी श्रेणीमे शामिल होनेवाले दो नये राष्ट्र हैं—सोवियत रूस और संयुक्तराष्ट्र अमेरिका। यद्यपि दोनोंका साम्राज्यवाद एक ही प्रकारका नहीं है। सोवियत रूसका प्रारम्भ बडे ही सुन्दर ढगसे साम्राज्यवाद विरोधी शक्तिके रूपमे हुआ। पर रूस जल्दी ही राष्ट्रीयतावादी हो गया और फिर आगे चलकर १९३९ के बादमे वह साम्राज्यवादी और सैनिकवादी हो गया। उसका साम्राज्यवाद सैद्धान्तिक साम्राज्यवाद है जिसमे सोवियत रूस अपने पिछलग्गू राष्ट्रोंकी नकेल अपने हाथमे रखता है। उसका प्रिय तरीका यह रहा है कि जो देश उसके प्रभावमे आ चुके होते है या जो देश उसके प्रभावमे आ रहे है उन सब देशोंकी कम्यूनिस्ट पार्टियोंको अपना साधन बनाकर अपना काम निकाला जाय। ये राज्य सोवियत रूसको कोई राज्य-कर नही देते। पर रूस द्वारा उनकी अर्थनीति और राजनीतिका यदि नियन्त्रण नहीं तो सूक्ष्म निरीक्षण अवश्य होता रहता है। इनमे से कुछका प्रयोग कभी-कभी रूसकी उद्देश्य-सिद्धिके लिए साधन रूपमे भी होता है। स्तालिन की मृत्युके बादमे परिस्थितियोंका बदलना आरम्भ हो गया है। रूस अपने कुछ पडोसी और पिछलग्गू राष्ट्रो पर अपना नियन्त्रण अब ढीला कर रहा है। पर हालमें उसने हगरीको अपने नगुलमे कर लिया है।

संयुक्त राज्य अमेरिकाने द्वितीय विश्व-युद्धके बादमे खास कर, अप्रत्यक्ष तौर पर साम्राज्यवादी-नीति अपनाई है। उसका प्रधान उद्देश्य ससार भरमे सामरिक महत्वके समुद्री और हवाई अड्डाको प्राप्त करना तथा राष्ट्रोंमे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना है ताकि साम्यवादको सीमित रखा जा सके जिससे अमेरिका बहुत ही भयभीत है। अमेरिका साम्राज्यका प्रतिनिधि साम्राज्यवाद (Imperialism by proxy) या अप्रत्यक्ष साम्राज्यवाद कहा जा सकता है जैसा कि हिन्दचीनमें था। यदि नेदरलैण्डकी सरकारको अमेरिकी सहायता न मिली होती तो हिन्देशिया बहुत पहले स्वाधीन हो गया होता। अमेरिका हिन्देशियामें जो कुछ करनेमे असफल रहा है वही काम उसने हिन्दचीन, मलाया और फॉरमोसामे तथा प्रशान्त महासागरके कुछ सैनिक महत्वके द्वीपोमे सफलतापूर्वक कर दिखाया है। अमेरिकाने पश्चिमी योरोपके साथ सैनिक सन्धि की है जो 'नाटो' (NATO) के नामसे प्रसिद्ध है। वह जापान, फिलिपाइन्स, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड और पाकिस्तानके साथ सैनिक सम्बन्ध जोड रहा है। योरोप और एशियाके अनेक देश, जैसे फिलिपाइन्स दक्षिणी वियतनाम, थाईलैण्ड और पाकिस्तान प्रधानत सैनिक सहायता द्वारा और दूसरे आर्थिक सहायता द्वारा

अमेरिकाके प्रभावमें लाये जा चुके हैं। उधार पट्टा करार (Lend-lease Agreement) इस प्रकारके नियन्त्रण स्थापित करनेमें महत्त्वपूर्ण साधन रहा है। भारतने अब तक अमरिकी प्रभुत्वका सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया है, यद्यपि उसने अमरिकी गेहूं खरीदनेके लिए कर्ज और काफी मात्रामें मुफ्त आर्थिक सहायता को कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार कर लिया है। संयुक्त राष्ट्रसंघका संचालन कुछ इस ढंगसे किया जाता है कि उसमें अमेरिकी वैदेशिक नीतिको ही बढ़ावा मिलता है। इंग्लैण्ड एक प्रकारसे अमरिकाका नवीनतम "औपनिवेशिक प्रदेश" बन चुका है।

अमरिकी लोग अब भी साम्राज्यवादका पाप समझते हैं। उन्हें अब भी याद है कि इंग्लैण्डके जार्ज तृतीयके समयमें अमेरिका उपनिवेशोंकी क्या दुर्गति हुई थी। पर वह यह अनुभव नहीं कर रहे हैं कि आधिपत्य जमानेकी वर्तमान होड़में, राष्ट्रीय आकांक्षाओंके कुचलनेमें वे अप्रत्यक्ष रूपसे सहायक हो रहे हैं—विशेषकर एशियामें—तथा अन्य लोगोंके हित या अहितके एकमात्र निर्णायक बन रहे हैं जैसा कि आज चीन और जापानमें हो रहा है। पाकिस्तानको हथियारोंसे लैस करके और पाकिस्तानी सैनिकोंको प्रशिक्षित करके वर्तमान अमेरिकी नीति शीत-युद्धको भारतके दरवाजे तक ले आयी है। अमेरिकासे प्राप्त सैनिक शक्तिका एहसास करते हुए पाकिस्तान भारत पाक सीमा पर जान-बूझकर आक्रामक कार्यवाइयां कर रहा है और कोशिश कर रहा है कि काश्मीरकी समस्याका पाकिस्तानी हल मानने के लिए वह भारतको मजबूर कर दे।

साम्राज्यवादके समर्थनमें कभी-कभी धार्मिक और मानवतावादी तर्क भी दिये जाते हैं। १७वीं शताब्दीमें धर्म प्रचार साम्राज्यवादका एक महत्त्वपूर्ण कारण था। उस समय फ्रांस द्वारा श्यामका हस्तगत किया जाना अधिकतर जेसुइट (Jesuit) धर्म प्रचारकोंका काम था। धर्म प्रचारक साम्राज्य निर्माताओंमें से अफ्रीकाके डेविड लिविंगस्टन का नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध है। अफ्रीकामें ब्रिटिश साम्राज्यवादके विस्तारके साथ लन्दनकी धर्म प्रचार समिति (Missionary Society) का नाम घनिष्ठताके साथ जुड़ा हुआ है। अमेरिकाके भूतपूर्व राष्ट्रपति कॉल्विन कूलिज का भी कहना था कि "जो सेनाएं अमेरिका बाहर भेजता है वह तलवारके बजाय क्रॉस (ईसाइयों के धर्म-चिह्न) से लैस होकर जाती है"। १९४५ में जापानकी पराजयके बाद जनरल मैकआर्थर ने जापानके साथ भी ऐसी ही नीतिके बरते जानेका समर्थन किया था। आजकल साम्राज्यवाद पिछड़े हुए देशोंके निवासियोंको ईसाई बनानेकी ओरसे उदासीन है। कभी-कभी तो धर्म प्रचारकोंके कार्योंका विरोध भी किया जाता है, क्योंकि धर्म प्रचारकोंके कार्योंके फलस्वरूप अधीन देशोंके निवासियोंमें नवीन प्रतिष्ठा और स्वाधीनता प्राप्त कर लेनेकी भावनाके उदय होनेकी आशंका रहती है। जहां-कहीं ईसाई धर्म प्रचारकोंके साथ साम्राज्यवादियोंकी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सांठ-गांठ रही, जैसा कि पिछले दिनों था, वहां साम्राज्य निर्माता उनका खुले दिलसे

स्वागत करते थे। इस बातके अनेक उदाहरण है कि धर्म प्रचारक व्यापारियो और शासकोके अग्रदूत थे।

श्वेतागोंके बोझा[1] (the white mens burden) के पिट-पिटाये नारे द्वारा एक विशेष प्रकारका मानवतावादी उद्देश्य व्यक्त किया जाता है। इसे 'उत्तरदायित्व का साम्राज्यवाद' (imperialism of responsibility) भी कहते है। इसमें जातीय उच्चता और गौरवकी भावना सूक्ष्म रूपसे छिपी रहती है। अपने सुन्दरतम रूपमे यह साम्राज्यवाद अज्ञान के स्थान पर ज्ञान, अविकसित शासनके स्थान पर व्यवस्थित और प्रगतिशील शासन और न्याय सम्बन्धी आदिम धारणाओके स्थान पर आधुनिक विचारोंका प्रतिष्ठित करनेका प्रयत्न करता है। इसका उद्देश्य मनुष्य भक्षण, दासता, अर्थ-दासता और सूदखोरीका विनाश करना है। आज हालत चाहे जो कुछ हो, पर मानवतावाद निश्चित रूपसे साम्राज्यवादका मूल कारण नही था। यह तो बादमे गाढी हुई बात है। आजकल साम्राज्यवादके इस पहलू पर बहुत जोर दिया जा रहा है, यद्यपि यह सब केवल जबानी जमा-खर्च है। जो लोग बडे उत्साहके साथ इसका चर्चा करते है, वे भूल जाते है कि यदि "श्वेतागोका बोझ" सही सिद्धान्त है तो भी अश्वेतागोका बोझ तो कठोर वास्तविकता है और इसके लिए काले लोगोको अपनी स्वावलम्बन शक्ति, अपनी प्रतिष्ठा तथा राष्ट्रीय आत्म-सम्मानकी हानि सहनी पडती है।

मानवतावादी उद्देश्योकी डीग हाकने पर भी सार्वजनिक शिक्षा सफाई और जनताके उत्थान पर व्यय किया गया धन बहुत कम होता है। श्री जूलियन हृक्स्ले के कथनानुसार अफ्रीकामे बच्चोका मृत्यु संख्या २५ से लेकर ५० प्रतिशत तक है, प्रत्येक बालिग अफ्रीकी एक या एकसे अधिक प्रकारके कृमियो (worms) का शिकार रहता है जिनमे अंकुशकृमि (hook worms) भी हैं और प्राय मलेरिया भी उन्हे रहता है। कुछ क्षेत्रोमे ९० प्रतिशत लोगोको रति रोग (venereal disease) रहता है जिसे श्वेतागो ने ही वहां ले जाकर फैलाया है। उसके साथ-साथ पौष्टिक भोजन और विटामिनकी कमी रहती है। अफ्रीकामे एक प्रतिशत बच्चे भी स्कूल नही जाते। इन सब बातोको देखते हुए श्री शूमन के इस कथनको स्वीकार करना पडता है कि "साम्राज्यका उद्देश्य अपने देशवासियोंके कल्याण और समृद्धिकी तरह अपने जालमें फसे लोगोकी भलाई करना बिल्कुल नही है (७० २६)"।

आधुनिक साम्राज्यवाद (Modern Imperialism) साम्राज्यवाद ने २०वी शतीमें पहलेकी अपेक्षा अधिक अप्रत्यक्ष रूप धारण किये है। अब तलवारकी अपेक्षा कूटनीति और अन्तर्राष्ट्रीय करारो पर अधिक भरोसा किया जाता है, यद्यपि प्रदेशोको बिना बात छीन लेना और हडप लेना आधुनिक युगमे भी अनोखी बात नहीं है। जैसा कि एक लेखक ने कहा है आजकल व्यापार, उद्योग, रेलो, बन्दरगाहो,

[1] इसका प्रचलित अमेरिकी समानार्थक वाक्य है 'संसारका नैतिक नेतृत्व।'

महत्त्वपूर्ण अड्डों, कच्चेमाल और तैयार माल तथा पूंजीके लिए बाजारों पर दाँव लगाये जाते हैं।

आजकल संसारके अनेक भागोंमें साम्राज्यवादके निम्नलिखित रूप पाये जाते हैं —

(१) पट्टा (Leasehold) कमजोर और पिछड़े हुए देशोंको अपने देशके कुछ हिस्सों पर से प्राय ९९ वर्षोंके लिए अपना आधिपत्य हटा लेनेके लिए तैयार या विवश किया जाता है। ऐसा व्यावसायिक अथवा सैनिक कारणोंसे किया जाता है। राष्ट्रीय सम्प्रभुता तो नाममात्रके लिए पट्टा देनेवाले देशके हाथोंमें रहती है पर वास्तविक अधिकार पट्टेदारका हो जाता है। "पट्टे द्वारा प्राप्त भूमि पट्टेकी अवधि समाप्त होने तक पूरी तरहसे उपनिवेश ही रहती है (८ ६६३)"। पट्टे द्वारा भूमिके हस्तान्तरणके उदाहरण है, चीन द्वारा १८९८ में २५ वर्ष के लिए रूस को दिये गये मन्चूरियाके बन्दरगाह, चीनके पोर्ट आर्थर और डायेरन बन्दरगाह जिन पर जापानका अधिकार रह चुका है और इंग्लैण्डके आधिपत्यमें वीहाइवी (wei-hai-wei, China 37 25 N, 122 13 E)। संयुक्त राज्य अमेरिकाके पास पनामा नहरका पट्टा है और इस पट्टेमें नहरके दोनों तरफ पांच-पाँच मील तक की भूमि शामिल है। इस पट्टेके बल पर संयुक्त राज्य अमेरिकाने पनामाके गणराज्यको व्यवहारत अपना एक अर्ध-रक्षित राज्य (semi-protectorate) बना रखा है।

(२) रक्षित राज्य और अर्धरक्षित राज्य (**Protectorates and Semi-protectorates**) ये कई प्रकारके होते हैं। सभी रक्षित राज्योंके वैदेशिक सम्बन्धों और सुरक्षा पर साम्राज्यवादी शक्तिका नियंत्रण रहता है। कभी-कभी तो आन्तरिक प्रशासनके मामलोंके साथ-साथ आर्थिक मामलों पर भी साम्राज्यवादी शक्तिका नियंत्रण रहता है। अंग्रेजी साम्राज्यमें एक रक्षित राज्यकी स्थिति करीब-करीब वही होती है जो कि एक उपनिवेश (crown colony) की होती है, यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय विधिकी दृष्टिसे ये दोनों एक दूसरेसे बिल्कुल भिन्न हैं। रक्षित राज्योंके सम्बन्धमें विदेशी शक्तियोंके साथ की गयी पुरानी सन्धियाँ कायम रहती हैं, पर उपनिवेशोंके मामलोंमें ऐसा नहीं होता। प्राय रक्षित राज्योंकी समाप्ति उनको अपनेमें मिला लेनेमें (annexation) अथवा उनको स्वाधीनता देनेमें होती है।

रक्षित राज्यका सबसे अच्छा उदाहरण कुछ समय पूर्व तक मिस्र था। वैसे तो मिस्र की 'स्वाधीनता' की घोषणा २८ फरवरी, १९२२ को कर दी गई थी, फिर भी १९३६ में इंग्लैण्ड और मिस्र के बीच सहयोग सन्धि होने तक वह स्वाधीनता इतनी कटी-छँटी रही कि मिस्र सभी प्रकारसे रक्षित राज्य ही बना रहा। १९२२ की घोषणाके अनुसार अंग्रेजोंने अपने लिए निम्नलिखित चार बातें सुरक्षित कर ली थी मिस्र में अंग्रेजी साम्राज्यके संचार (communication) की सुरक्षा, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष विदेशी आक्रमण या हस्तक्षेपसे मिस्र की रक्षा, मिस्र में विदेशी स्वार्थोंकी तथा अल्पसंख्यकोंकी रक्षा, और सूडान। कुछ लेखक मिस्र को अर्धरक्षित राज्य ही मानना अधिक पसन्द करते थे। आज मिस्र पूर्ण स्वतंत्र है।

अर्धरक्षित राज्योंके उदाहरण क्यूबा और हेटी हैं जो अपने नामसे कुछ सन्धियाँ कर सकते हैं पर विदेशी शक्ति जिन पर रोक लगा सकती है। रक्षित राज्योंका एक दूसरा प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय रक्षित राज्य है जिसका एक उदाहरण कुछ समय पूर्ण अबीसीनिया था। १९०६ में ब्रिटेन, फ़ान्स और इटली में हुए क़रारके अनुसार इन तीनों देशोंने अबीसीनिया की एकताकी रक्षा करना और वहांसे सुविधाएं प्राप्त करने में एक दूसरेसे होड़ न करना स्वीकार किया। पर यह क़रार रद्दी काग़ज़का टुकड़ा ही साबित हुआ।

(३) **प्रभाव-क्षेत्र (Spheres of Influence).** प्रभाव-क्षेत्रका मतलब यह होता है कि जिस शक्तिके हाथोंमें प्रदेश होता है उसे 'कर्ज़ देने, रेलें निकालने, खानोंके खोदने, अथवा सार्वजनिक कार्योंका विकास करनेके लिए वरीय (preferential) अधिकार और एकाधिकार दे दिया जाता है (८ : ४४७)।' प्रायः प्रभाव-क्षेत्र अन्ततोगत्वा या तो रक्षित राज्य बना दिये जाते हैं या एकदम अपनेमें मिला लिए जाते हैं। यद्यपि वे न तो उपनिवेश होते हैं और न आश्रित राज्य होते हैं। कभी-कभी तो सम्बन्धित पिछड़े राज्योंकी सहमतिके बिना भी ये प्रदेश अलग कर लिए जाते हैं। श्री ब्युएल का कहना है कि "इस प्रकारके नियंत्रणने झगड़े कम करनेके बजाय बढ़ा दिये हैं (८ : ४४८)।" आधुनिक युगमेंए शिया, अफ़्रीका तथा प्रशान्त महासागर में प्रभाव-क्षेत्र साम्राज्यवादके सुविधाजनक साधन रहे हैं। इंग्लैण्ड और फ़ान्स के प्रभाव-क्षेत्र श्याम में थे।

कभी-कभी "प्रभाव-क्षेत्र" और "रुचि-क्षेत्र" (sphere of interest) में अन्तर किया जाता है। 'रुचि-क्षेत्र' शुद्ध अर्थोंमें आर्थिक होता है जब कि प्रभाव-क्षेत्रमें, एक रक्षित राज्यसे कुछ कम राजनीतिक सुविधाएं भी रह सकती हैं। एशिया की अपेक्षा अफ़्रीका में प्रभाव-क्षेत्र अधिक रहे हैं।

(४) किसी प्रदेश पर दो या दोसे अधिक देशोंकी संयुक्त प्रभुता या संयुक्त शासन (condominium) का मतलब है किसी विवाद ग्रस्त प्रदेश पर औपनिवेशिक होड़ बचानेके लिए दो या अधिक राज्योंका नियंत्रण। ऐसा नियंत्रण ब्रिटेन और मिस्र का सूडान में नील नदीके पानी पर, मोरक्को के टैंजियर शहर पर फ़ान्स, स्पेन और इंग्लैण्ड का और न्यू हैब्रिडीज़ पर फ़ान्स और इंग्लैण्ड का रहा है। इस प्रकारका नियंत्रण न तो उन विदेशी राष्ट्रोंको ही सन्तुष्ट कर पाता है जिनका नियंत्रण होता है और न उन देशवासियोंको ही जो उस नियंत्रणमें रहते हैं। इस प्रकारका अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण प्रायः सर्वदा असन्तोषजनक रहता है और आगे चलकर हमेशा असफल सिद्ध होता है। इसका अर्थ होता है विभाजित उत्तरदायित्व।

(५) **आर्थिक नियंत्रण (Financial Control).** "ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनमें पूंजीपति देश सरकारी कर्मचारियों या बैंकोंके प्रतिनिधियोंके माध्यमसे पिछड़े हुए देशोंकी सरकारोंकी आय और व्ययका नियंत्रण करते हैं, यद्यपि अन्य अर्थोंमें ये देश स्वतंत्र होते हैं (८ : ४५८)।" इस प्रकारका नियंत्रण कई राज्यों द्वारा मिल-जुल

कर अथवा एक ही राज्य द्वारा किया जा सकता है। एक ही राज्य द्वारा किये जाने वाले नियन्त्रणका उदाहरण है कैरीबियन और मध्य अमेरीकी राज्यों तथा लाइबीरिया और ईरान पर संयुक्त राज्य अमेरिका का आर्थिक नियन्त्रण।

(६) चुंगी नियन्त्रण (Tariff Control) स्वयं लाभ उठानेके लिए पश्चिमी शक्तियोंने प्रायः पिछड़े हुए देशोंको इस बातके लिए विवश किया है कि वे विदेशी वस्तुओं पर अपनी चुंगी एक निश्चित सीमासे अधिक न बढ़ायें। इस प्रकारका नियन्त्रण जापान पर १९११ तक रहा। चीन, तुर्की, मोरक्को, श्याम और ईरान पर भी इस प्रकारका नियन्त्रण रह चुका है। इस नियन्त्रणका उद्देश्य यह रहा है कि पश्चिमी राज्योंको अपना माल पिछड़े हुए देशोंमें पाट देने और इस प्रकार उनके अपने देशी उद्योग-धन्धोंके विकासको रोकनेका अवसर मिले।

(७) बहिर्देशिता (Extra-territoriality) इसका मतलब है कि विदेशी सरकार द्वारा पिछड़े हुए देशोंमें रहनेवाले अपने देशवासियोंके लिए अपनी अदालतें स्थापित करनेका अधिकार। इस अधिकारका आधार यह बतलाया जाता है कि पिछड़े देशकी अपनी ऐसी कोई विवेकपूर्ण न्याय प्रणाली नहीं है जो सब पर लागू की जा सके। इस प्रकारके बहिर्देशीय अधिकारकी माँग प्रायः सभी मुसलमान देशोंमें, जहाँ ईसाइयोंको बहुत कम अधिकार दिये जाते है और जापान, श्याम, कोरिया तथा चीनमें की गयी, और सभी जगह यह दावा स्वीकार कराया गया। जब ये देश न्यायके पश्चिमी मान-दण्डोंको स्वीकार कर लेते है तब धीरे-धीरे ये विदेशी शक्तियाँ अपने बहिर्देशीय दावोंको छोड देती है। इस प्रकार १८९४ में संयुक्त राज्य अमेरिकाने जापान पर से और १९२४ मे सोवियत संघ ने चीन पर से अपने दावोंका समाप्त कर दिया। तुर्की ने सभी बहिर्देशीय अधिकारोंको समाप्त कर दिया है। द्वितीय विश्व-युद्ध प्रारम्भ हो जानेके बाद ब्रिटेन और अमेरिका ने चीनमें अपने बहिर्देशीय दावोंको छोड दिया। प्रायः इन अधिकारोंका प्रयोग प्राडूनिक न्यायालयों (consular courts) अथवा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयों द्वारा किया जाता है, और जैसी आशा की जानी चाहिए, प्रायः उनका बहुत दुरुपयोग हो होता है। बहिर्देशीयताका अर्थ स्थानीय करोंसे मुक्ति भी लगाया जा सकता है। कभी-कभी विदेशियों द्वारा अपने आश्रित बना लिये गये देशी लोगोंको भी बहिर्देशीयताके अधिकार दिलाये जाते है।

(८) अविधिक नियन्त्रण (Informal Control) कभी-कभी कुछ विदेशी देश मिलकर किसी पिछड़े हुए राज्यकी सरकारको स्वीकार करनेसे तब तक के लिए इन्कार कर देते है जब तक उनके कूटनीतिज्ञों द्वारा रखी गयी कुछ शर्तोंको वह राज्य पूरा न कर दे। श्री ब्युएल इस प्रकारके नियन्त्रणको वाह्यवैधिक (extra legal) या चोर सीढ़ी (back stairs) वाला अथवा अप्रत्यक्ष नियन्त्रण कहते है। इस प्रकारका नियन्त्रण अनेक ढंगोसे किया जाता है। निकारागुआ, सान्टो डोमिंगो तथा कैरीबियन आदिमें संयुक्त राज्य अमेरिकाने अपनी जलसेनाका उपयोग

किया है। ईरान, मिस्र और ईराकमें इग्लैण्डने अपने देशवासियोंको सलाहकारोंके रूपमें—विशेषकर आर्थिक मामलोंमें—रखनेका तरीका अपनाया था।

खुला द्वार और बन्द द्वार (The Open Door and Closed Door) पिछली शताब्दीमें चीन पर खुला द्वार नीति लादनेके लिए उसे कई बार युद्धमें घसीटा गया। इस नीतिका मतलब है व्यापारकी इच्छुक सभी विदेशी शक्तियोंको पिछड़े हुए देशमें व्यापार करनेकी सामान्य सुविधाओंका दिया जाना। इस नीतिके अनुसार किसी भी विदेशी राष्ट्रके माल या नागरिकोंके साथ किसी भी प्रकारका विभेद नहीं किया जा सकता। कभी-कभी खुले द्वार नीतिको जहाजरानी और बस्ती के सम्बन्धमें भी लागू किया जाता है। इस सिलसिलेमें इस नीतिका मतलब होता है, साम्राज्यवादी राष्ट्र तथा अन्य विदेशी राष्ट्रोंके लिए अवसरकी समानता। अंग्रेजी साम्राज्यमें यही नीति बरती जाती रही है, पर आजकल उसमें काफी संशोधन हो गये हैं। समादेशित प्रणाली (mandatory system) के अनुसार प्रथम और द्वितीय श्रेणीके समादेशित प्रदेशोंमें खुला द्वार नीतिका अपनाया जाना जरूरी था। इन क्षेत्रोंमें राष्ट्र संघके हर सदस्यको पूर्ण आर्थिक, व्यावसायिक और औद्योगिक समानता प्राप्त हो सकती थी। बहुधा खुला द्वार नीतिका परिणाम यह होता है कि विदेशी शक्तियोंमें घातक प्रतियोगिताएं होने लगती हैं। इसलिए इस प्रतियोगितासे बचनेके लिए कभी-कभी अन्तर्राष्ट्रीय सहयोगका रास्ता अपनाया जाता है। नवीन सरकारकी स्थापनाके पहले चीनमें किसी भी एक राज्य या राज्योंके गुटको कर्ज देकर राजनीतिक सुविधाएं हासिल करनेकी आज्ञा नहीं थी।

बन्द द्वार नीति खुला द्वार नीतिकी उल्टी है। इसका अर्थ है न केवल व्यापार व्यवसायके क्षेत्रमें बल्कि जहाजरानी, पूंजी लगाने (investment) और बस्ती बसानेमें भी विशेष सुविधाएं और एकाधिकार देना तथा विदेशी राष्ट्रोंके बीच विभेद करना। उपनिवेश और मातृ देशके बीच आर्थिक सम्बन्ध मजबूत करना और विदेशियोंको लाभ न उठाने देना, उसका उद्देश्य होता है। संयुक्तराज्य अमरिकाने फिलिपाइन द्वीपोंमें कई वर्षों तक यही नीति बरती। श्री शूमन का कहना है कि यह नीति पुरानी व्यापार-पद्धति (mercantalistic system) का शेषांश है। तृतीय श्रेणीके समादेशित प्रदेशोंमें खुला द्वार नीति अपनाना आवश्यक नहीं था।

बन्द द्वार नीति प्रायः इन तीन रूपोंमें बरती जाती है (क) चुंगी (tariffs), (ख) जहाजरानी, (ग) रियायतें। कुछ देश चुंगी स्वीकरण (tariff assimilation) की नीति अपनाते हैं, जिसके द्वारा मातृ-देश और उपनिवेशके बीच मुक्त व्यापार होता है अर्थात् आपसमें चुंगी नहीं ली-दी जाती और दोनों ही देश अन्य देशोंके लिए एक ही चुंगीकी दर अपनाते हैं। कुछ दूसरे देश चुंगी तरजीह (tariff preference) की नीति अपनाते हैं। इसके द्वारा मातृ देश और उपनिवेशकी चुंगी प्रणालियाँ भिन्न होती हैं, पर दोनों ही देश एक दूसरेके मालके लिए विशेष रियायतें देते हैं।

ब्युएल का यह कहना सही है कि 'उपभोक्ताके लिए बन्द द्वार नीतिका मतलब

बढ़ी हुई कीमतें है। एक दर्शकार्मीके दृष्टिकोणसे यह आपणकी नीतिका दूसरा रूप है। समस्त समाजके लिए इसका मतलब निम्नतम् कोटिके राष्ट्रीयतावादी —साम्राज्यवाद (nationalistic imperialism) का स्थायी बनाना है (पृ० ४२६)।"

सैनिक गठबन्धन (Military Alliances) वैसे तो सैनिक गठबन्धन हमेशा रहे है पर आज वे नया महत्त्व ग्रहण कर रहे है। इन गठबन्धनोमें शामिल होनेवाले राष्ट्र प्राय अपनी सम्प्रभुता बनाये रहते है पर वे एक सामान्य सैनिक नीति बरतते है, बहुधा ऐसा किसी शक्तिशाली राष्ट्रके संरक्षणमें किया जाता है। ऐसे गठबन्धनोंके उदाहरण हैं अमेरिकी देशोंके बीच शस्त्रास्त्रोंका एक स्तर पर लाया जाना और एक सामान्य सैनिक नीतिका बरता जाना, नाटो, सीटो, और बगदाद समझौतेमे शामिल राष्ट्रोंके बीच पारस्परिक सैनिक सहायता आदि।

समादेश (The Mandates) प्रथम विश्व-युद्धके दौरानमें श्री वुड्रो विल्सन ने जिस आदर्शवादका नीव डाली थी उसीका मूलरूप समाज्ञापित प्रणाली हुई जिसकी व्यवस्था राष्ट्रसंघके प्रसंविदा (covenant) की २२वीं धारामें की गयी थी। योरोपीय देशोंमें पहले जो युद्ध होते थे उनका नतीजा यह होता था कि विजयी देश पराजित देशोंके औपनिवेशिक प्रदेशोंको हड़प लेते थे। वारसाईके शान्ति-सम्मेलनमें यह कहा गया कि पिछड़ी हुई जातियोंके अधिकारोंकी रक्षा मित्र-राष्ट्रोंका प्रधान कर्तव्य होना चाहिए और किसी भी मित्रराष्ट्रको पराजित शत्रु देशोंके किसी भी औपनिवेशिक प्रदेशका एकमात्र स्वामी बननेका अधिकार नहीं दिया जाना चाहिए। इसी उद्देश्यसे समाज्ञापित प्रणाली (mandatory system) की व्यवस्था की गयी। इस प्रणालीके निम्नलिखित उद्देश्य थे (क) उपनिवेशोंके मूलनिवासियोंके हितोंकी रक्षा करना और (ख) साम्राज्यवादी शक्तियोंके बीच परस्पर संघर्ष और प्रतियोगिताका अवसर न आने देना, क्योंकि यदि संघर्ष और प्रतियोगिताको रोका न गया तो भविष्य में युद्ध अनिवार्य हो जायगे। अपने पैरों पर खड़े होनेमें असमर्थ लोगोंके लिए न्यासधारी (trustee) नियुक्त करनेके विचार पर विशेष तौर पर जोर दिया गया। राष्ट्रपति विल्सन की इच्छाके बिल्कुल विरुद्ध समाज्ञापित प्रदेशोंको प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणियोंमें बांटा गया। इसके लिए दलील यह दी गयी कि भूतपूर्व शत्रु देशोंसे लिये गये सभी प्रदेश विकासकी एक ही स्थितिमें नहीं है। इसलिए उनकी अलग-अलग आवश्यकताओंके अनुकूल विभिन्न शासन-प्रणालियां आवश्यक है। प्रथम श्रेणीके समाज्ञापित प्रदेशोंको निकट भविष्यमें स्वशासन प्राप्त करनेके लिए सबसे अधिक योग्य और तृतीय श्रेणीके प्रदेशोंको सबसे अधिक अयोग्य समझा गया। द्वितीय श्रेणीके प्रदेशोंको इन दोनोंके मध्यमें रखा गया। इन समाज्ञापित प्रदेशोंका रक्षण (tutelage) उन्नत राष्ट्रोंको सौंपा गया और इन राष्ट्रोंके लिए यह आवश्यक कर दिया गया कि वे अपने कार्यकी वार्षिक रिपोर्ट हर साल राष्ट्र-संघकी कौंसिलके सामने पेश किया करें। राष्ट्रसंघकी कौंसिल एक स्थायी समाज्ञा आयोग (permanent Mandates Commission) के माध्यमसे कार्य कर रही थी।

यद्यपि समाज्ञापित प्रणालीका निर्माण शुद्ध हृदयसे किया गया था पर जो उच्च आशाए इसमे की गयी थी वे पूरी नहीं हुई। समाज्ञापी शक्तियो (mandatory powers) ने समाज्ञापित प्रदेशोको जबरदस्ती लादी गयी 'सभ्यता प्रसारकी जिम्मेवारी (Trusts of civilisation) माननेके बजाय उन्हे अपने विजित प्रदेश (annexations) समझना शुरू कर दिया। श्री शूमन लिखते है "तृतीय कोटिके समाज्ञापित प्रदेश तो करीब करीब विजित प्रदेश ही समझे जा रहे है और द्वितीय कोटिके समाज्ञापित प्रदेशोका शासन उस शासनसे शायद ही भिन्न कहा जा सके जो सीधे सीधे युद्धमें जीते गये प्रदेशो पर लादा जाता है। प्रथम श्रेणीके समाज्ञापित प्रदेशो पर भी समाज्ञापी राष्ट्रोका प्रभावपूर्ण नियत्रण रहता है (द ६१७)। केवल ईराक को छोडकर सभी समाज्ञापित प्रदेशोमे जनताकी स्वतत्रता और स्वशासनकी वैध इच्छाओको निर्दयतापूर्वक कुचला गया। अपना समाज्ञापी चुननेके मामलेमे भी समाज्ञापित प्रदेशोकी इच्छाको ठुकरा दिया गया, जैसा कि सीरिया के मामलेमे किया गया। अपने समाज्ञापी राष्ट्रकी हैसियतके लिए सीरिया ने सयुक्त राज्य अमरिका का प्रथम और इग्लैण्ड को दूसरे विकल्पमे चुना था। पर फिर भी उसे फ्रान्स के हाथोमे सौप दिया गया। १९३२ मे ईराक का एक स्वतत्र अग्रेजो रक्षित राज्य घोषित किया गया, पर उसकी "स्वाधीनता" मिस्र की स्वाधीनतासे अधिक वास्तविक नही थी। सीरिया की परिस्थिति और भी अधिक शोचनीय थी। ऐसा लगता था कि फ्रान्स और सीरिया के लोग एक दूसरेको समझने और एक दूसरेसे सहयोग करनेमे स्वभावत असमर्थ थे।

समाज्ञापित प्रणालीमे एक अच्छाई यह थी कि उसमे बहुत कुछ प्रभावपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय निरीक्षण की व्यवस्था थी। पर, जैसा प्रोफेसर शूमन ने कहा है, "समाज्ञापी आयोग (Mandates Commission) ने एक स्वतत्र और साहसी सस्था के रूपमे ओजके साथ काम नहीं किया।" उसके सुझाव केवल परामर्शके रूपमे होते थे और कोई भी उन्हें माननेके लिए मजबूर नहीं था। समाज्ञापित प्रदेशोको जनता की पहुच समाज्ञापी आयोग तक उतनी नहीं थी जितनी समाज्ञापी राष्ट्र शक्तियोकी थी। यदि समाज्ञापित प्रदेशोकी जनता समाज्ञापी आयोगको कोई प्रार्थनापत्र देना चाहती थी तो वह प्रार्थनापत्र समाज्ञापी सरकारके माध्यमसे ही आयोग तक पहुच सकता था। १९२७ के बाद राष्ट्र-सघकी कौंसिल ने प्रार्थियोको मौखिक साक्ष्य (oral evidence) की सुविधा भी अस्वीकार कर दी। आयोग ने समाज्ञापित प्रदेशो म जाकर स्वय यह कभी नहीं देखा कि समाज्ञापी शक्तियो ने अपने अधीन रक्षित जनताको सभ्य बनाने और उनमेसे जो अधिक उन्नत थे उन्हे सुशासनके योग्य बनाने का कार्य कहाँ तक पूरा किया है। उसने समाज्ञा प्रथाके खुले आम दुरुपयोगोकी जाँच करनेके लिए कोई समिति भी कही नहीं भेजी। इस प्रकार समाज्ञापित प्रदेशोकी जनताके विरुद्ध पलड़ा बहुत भारी रहा।

इन बुराइयोके बावजूद समाज्ञा प्रणाली उपनिवेशीय प्रणालीसे निश्चित तौर

पर अच्छी थी। यह ठीक दिशामें उठाया गया एक कदम था, यद्यपि कदम बहुत छोटा था। उपनिवेशोंकी जनता के हितोंकी अपेक्षा समादेशापित प्रदेशोंकी जनताके हितोंकी रक्षा अधिक हो सकी। जनताको अन्त करण और धर्मकी स्वाधीनता मिली और दास व्यापार (slave trade), शस्त्रास्त्रों तथा शराबका क्रय विक्रय बन्द कर दिया गया। आवश्यक सार्वजनिक कार्योंको छोड़कर अन्य कार्योंमें बेगार (forced labour) से और मजदूरोंके ठेकोंमें बेईमानीसे जनताकी रक्षा की गयी। सरकारकी स्पष्ट मन्जूरीके बिना समादेशापित प्रदेशोंकी जनताको अपनी भूमि विदेशियोंको हस्तान्तरित करनेसे रोक दिया गया।

इनमेंसे अधिकांश संरक्षण केवल कागज पर ही रहे। पर उसमें एक अच्छाई यह थी कि समादेश आयोगकी रिपोर्टका राष्ट्रसंघकी असेम्बलीमें पहुँचने पर, प्रचार हो जाता था। साम्राज्यवादी देश जो काम किसी समय बिना किसी भय या हानिके कर सकते थे वही काम अब संसारके जनमतकी कठोर आलोचनाका खतरा उठाये बिना नहीं किया जा सकता था। दक्षिणी-पूर्वी अफ्रीकाके बाण्डेलज्वार्ट्स मामलेमें जिसमें समादेशापी शक्ति ने अत्याचार किये थे अपनी सम्मति देते हुए समादेशापी आयोगके अध्यक्ष ने साहसपूर्वक कहा था, 'सबसे पहले देशवासियोंके हितोंको महत्त्व दिया जाना चाहिए। उसके बाद ही श्वेतांगोंके हितोंकी बारी आती है। श्वेतांगोंके हितों पर विचार केवल उसी सीमा तक किया जाना चाहिए जहाँ तक मूल निवासियोंकी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रक्षासे उनका सम्बन्ध हो'।

दोनों विश्व युद्धोंके बीचकी अवधिमें संसारका जनमत अधिकाधिक उन पिछड़े हुए प्रदेशों पर प्रभावपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय निरीक्षण और नियंत्रण रखनेके पक्षमें होता गया जो स्वयं अपने पैरों पर खड़े होनेमें असमर्थ थे। कुछ विचारकोंका कहना था कि वास्तवमें पिछड़े हुए देशोंको एक निश्चित उद्देश्य और निर्धारित अवधिके लिए ही अन्तर्राष्ट्रीय समादेशके अन्तर्गत रखना चाहिए। इसके विपरीत लार्ड लुगार्ड जैसे अनुभवी औपनिवेशिक राजनीतिज्ञका कहना था कि "राष्ट्रीय भावनासे विहीन और देश-प्रेमका गला घोंटनेवाले कर्मचारीतन्त्र (bureaucracy) के कारण इस पद्धतिमें सारे उपक्रमका लकवा मार जायगा। और यह पद्धति सम्बन्धित देशोंके लिए बहुत ही हानिप्रद होगी।" कुछ दूसरे लोगोंका कहना था कि जब तक सरकारका संगठन राष्ट्रीय आधार पर होता है तब तक अन्तर्राष्ट्रीय समादेश सम्भव नहीं है।

क्या साम्राज्यवाद उचित है? (Is Imperialism Justified?) घुमा-फिराकर बात बनानेवाले तर्कोंसे साम्राज्यवाद उचित सिद्ध करनेका समय अब नहीं रहा। अब शायद ही कुछ ऐसे लोग हों जिन्हें सी० डी० बर्न्सके इस कथन पर विश्वास हो कि साम्राज्यवादका काम छोटी-छोटी स्तरकी संकीर्ण राजनीतिको समाप्त करना है और उसके स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीयतावाद और विश्व-बन्धुत्वको प्रेरणा देना है। इस विषयमें ठीक इसका उल्टा सच है। शोषण और आधिपत्य साम्राज्यवादका

मूल तत्व[1] है। यह कहना नास्तिकता नहीं है कि साम्राज्यवादका इतिहास आदरणीय नहीं रहा, यद्यपि उसके विकासके इतिहासमें एक ऐसी अवस्था भी आती है जब शोषणको 'न्यास (trusteeship)' का और पश्चिम द्वारा पूर्वी देशोंको सभ्य और सद्मानव बनानेके पवित्र उद्देश्यका जामा पहनाया जाता है। अनेक आधुनिक साम्राज्योंकी उत्पत्ति समुद्री लूट और दास व्यापारसे हुई है। बार्न्स् का कहना है कि अंग्रेजी साम्राज्य भी इस परम्पराका अपवाद नहीं है (४ ११)।

साम्राज्यवादके औचित्य-अनौचित्य पर विचार करते समय निम्नलिखित चार प्रश्नोंको ध्यानमें रखना होगा

(क) जिन लोगों पर साम्राज्यवाद लादा जाता है क्या उनकी भौतिक और नैतिक अवस्थामें इससे कोई सुधार होता है?

(ख) क्या इससे राजा देशकी जनताकी भौतिक और नैतिक स्थितिमें सुधार होता है?

(ग) क्या इससे संसारके विभिन्न देशोंके बीच संघर्षकी स्थितियां कम होती हैं और विश्व-शान्ति तथा समृद्धिके लिए प्रेरणा तथा सहायता मिलती है?

(घ) क्या साम्राज्यवादका कोई ऐसा विकल्प (alternative) नहीं है जो संसारको और अधिक सुन्दर और सुखी बना सके?

(१) क्या साम्राज्यवाद औपनिवेशिक जनताके लिए लाभप्रद है? (Does Imperialism Benefit the Colonial People?) साम्राज्यवादी शासन में वास्तविक मानवतावादी कार्योंके उदाहरण तो थोड़ेसे ही मिलते हैं पर निर्मम शोषणके उदाहरण बहुत अधिक दिखाई देते हैं। श्री लियोनार्ड बार्न्स् का यह कहना बिल्कुल ठीक है कि "अंग्रेजी साम्राज्य भानमती का पिटारा है, जो कहीं-कहीं जीर्ण है, कहीं-कहीं अत्याचारी है, अधिकांश भागोंमें लक्ष्यहीन है और बहुत थोड़े स्थानोंमें लाभदायक है (४ २१)"। यह तथ्य अंग्रेजी साम्राज्यके इस परिचित चित्रके विपरीत है कि "अंग्रेजी साम्राज्य विश्व व्यापी न्याय और उदारताका चिरन्तन स्रोत (perennial spring) है जिस पर सूर्य कभी अस्त नहीं होता (८ २०)"। यह सही है कि अफ्रीका के आन्तरिक प्रदेशोंमें साम्राज्यवाद ने मनुष्य भक्षण, दासता और न्याय तथा शासनके अविकसित रूपोंको समाप्त कर दिया है। पर इन इने-गिने लाभोंकी तुलनामें हमें इन अनेक बातों पर भी विचार करना होगा कि डच ईस्ट इन्डीज में हॉलैण्ड ने अपनी संस्कृति थोपनेकी नीति अपनाई थी, बेल्जियम वालों ने कांगों में भीषण अत्याचार किये थे। उष्ण प्रदेशीय साम्राज्य (Tropical Empire)

---

[1] उदाहरणके लिए, आज साइप्रसमें बरती जानेवाली दमन-नीतिका देखिये। इस सबके बावजूद यह कहा जा सकता है कि कोई भी दूसरा आधुनिक साम्राज्य शासितोंकी भावनाओंके प्रति इतना विचारशील नहीं रहा जितना अंग्रेजी साम्राज्य रहा है। इसके उदाहरण है, भारत, पाकिस्तान बर्मा लंका, मलाया तथा गोल्ड कोस्ट (घाना) को दी गयी स्वाधीनता। इनके बाद नाइजीरियाका नम्बर है।

के अनेक भागोंमे प्रतिज्ञाबद्ध कुलीगीरी और दासता की प्रथाए प्रचलित है और दक्षिण अफ्रीका तथा केनियामे मुट्ठी भर श्वेतांगो ने विस्तृत भूखण्ड हड़प लिए है। दक्षिण अफ्रीकामे १५ लाख श्वेतांगो ने २८ करोड़ एकड़ भूमि हड़प रखी है। जबकि ५५ लाख हब्शियो के पास केवल २ करोड़ ७० लाख एकड़ जमीन है।

जातीय विलगाव (apartheid) की नीतिका कार्यान्वित करनेमे हब्शियो, भारतीयो और अन्य रगीन चमड़ीवाले लागोको पृथक्कृत भूखण्डो (ghettoes) मे खदेड़ा जा रहा है। द्वितीय विश्व-युद्धके बादमे हालत और भी बिगड़ गई है।

बार्न्स का कहना है कि अफ्रीका के खानवाले जिलोंमे "दासताकी सी स्थिति" है। देशी मजदूरोंका अधिकतर धोखा देकर भरती किया जाता है और उनमेसे अधिकाश ऐसे अहातोमे रहते है जो स्वास्थ्य, नैतिकता और आर्थिक उन्नतिके लिए घातक है। बार्न्स उन अहातोका जेल व बैरकके बीचकी चीज बताते है। अफ्रीका मे खेतिहरोकी हालत भी अधिक अच्छी नही है। जैसा कि बार्नस् कहते हैं दक्षिण अफ्रीका क सरम मूलनिवासियोंके प्रति एक ऐसी नीति अपनाई गयी है जो न्याय और ईमानदारीकी प्रत्येक परम्पराको जानबूझकर नष्ट करनेका प्रयत्न करती है। ट्रान्सवाल और नेटाल मे "किसी भी देशी पुरुषको जिस खेत या फॉर्ममे वह रहता और काम करता है उसके बाहर तब तक कोई नौकरी नही दी जा सकती जब तक उस फॉर्मका मालिक उसे नौकरी तलाश करनेकी लिखित अनुमति न देदे (४ २५६)।" अत्याचारमे बर्बरताका पुट दे दिया गया है।

यह तो सभी जानते है कि साम्राज्यवादी देश उन देशोकी जनताकी हालत सुधारने मे बहुत ही कम पैसा खर्च करते है जिनका स्वामधारी उन्होने अपनेको बना लिया है। लियोनड वूल्फ का कहना है कि केनिया की सरकारने १९२४ मे २० लाख पौडकी आयमें से ६८ हजार पौड जेलो पर और सिर्फ ३६ हजार पौंड शिक्षा पर खर्च किया। सरकारकी नीति यह है कि २३ लाख अफ्रीका वासियो और ३६ हजार एशियाई लोगोंके हिताका बलिदान करके लगभग १० हजार योरोपीय लोगोका भला किया जाय। देशकी सम्पूर्ण उपयोगी भूमि इन योरोपीय लोगोके लिए सुरक्षित रख ली गई है। और "मूलदेशवासियोको गरीबीकी राह भटकनेके लिए आज़ाद छोड़ दिया गया है (८३ ८६)।"[1] दक्षिणी या पूर्वी अफ्रीका की परिस्थितियाँ यह साबित करती हैं कि यदि देशी जनताका भाग्य उस देशमे बस जानेवाले श्वेतांग प्रवासियोके हाथोमे छोड़ दिया जाता है तो उनकी हालत मातृ देशके औपनिवेशिक विभाग (colonial office of the mother country) के अधीन रहनेकी अपेक्षा और भी अधिक बुरी हो जाती है। उत्तरी और दक्षिणी रोडेशिया और न्यासालैण्डके मूल

---

[1] माऊ माऊ सगठनका उदय इसीका परिणाम है। यह एक आतकवादी सगठन है। यह सगठन किकियू कबीलेमे है और श्वेतागो, तथा उनके साथ सहानुभूति रखने वालो और भेदियाकी हत्या करता है।

वासी इन प्रदेशोको मिलाकर एक स्वशासन युक्त केन्द्रीय अफ्रीकी संघ बनानेका जो जोरदार विरोध करते थे उसका मुख्य कारण यही है। साधारणतया साम्राज्यवादी देशोका दृष्टिकोण सकीर्ण होता है। उन्हें इस बातकी बहुत जल्दी रहती है कि मुर्गी का चीरकर जितनी जल्दी हो सके सोनेके कुल अण्डे निकाल लिये जाय। वे यह नही सोच पाते कि यह उन्हीके हितमे है कि उपनिवेशोकी जनता सुखी रहे, उसके जीवनका स्तर ऊचा हो और उसकी क्रय शक्ति अच्छी हो।

अफ्रीका को छोडकर जब हम भारत पर दृष्टि डालते है तो हम देखते है कि यहा भी हालत अंग्रेजोके अधीन बहुत अच्छी नही थी, यद्यपि ब्रिटेन अन्य साम्राज्यवादी देशोसे अच्छा रहा है। आर्थिक शोषण तथा देशके धनका देशसे बाहर जाना बेरोक-टोक जारी रहा। पार्कर मून ने लिखा है "अंग्रेज पहले-पहल भारत क्यो आये और आकर क्यो भारत मे बने रहे इसका प्रधान कारण यह नहा है कि वे भारत की भलाई चाहते थे, बल्कि यह है कि वे इग्लैण्डका भला चाहते थे (६३ २९०)।" १७५ वर्षसे अधिक अंग्रेजी शासनके बाद भी इस शासनके समाप्त होने पर भारतके मजदूरकी औसत मजदूरी लगभग ६ आना प्रतिदिन थी। आज भी जनताकी दयनीय दरिद्रता एक ऐसा दुखदायी तथ्य है, जिस पर किसी भी पर्यवेक्षककी दृष्टि तुरन्त जाती है। महात्मा गाधी के शब्दोमे "अंग्रेजी भारत मे कानून द्वारा स्थापित सरकार जनताके इसी शोषणके लिए चल रही है। चाहे कितनी ही बातें बनाई जाय, आकडोको लेकर चाहे जैसे करिश्मे दिखाये जाय पर अनेक गावोमे जो हड्डीके ढाचे नजर आते है उनके कारण सत्यता पर धूल नहीं डाली जा सकती।"[1] गरीबीके अलावा देशमे निम्नतम् कोटिका अज्ञान छाया है। १९४० मे ८७ प्रतिशत व्यक्ति निरक्षर थे, यद्यपि अब स्वतन्त्र भारत की सरकार अपनी जनताको शिक्षित करनेका हर सम्भव प्रयत्न कर रही है। सार्वजनिक स्वास्थ्य बहुत ही बुरा था। जन्म और मृत्युकी सख्या बहुत ऊची थी। हम मानते है कि साम्राज्यवादी शक्ति पर ही इस सबका सारा दोष नही मढा जा सकता। देशकी आमदनीका बहुत अधिक भाग खर्चीली सेना पर खर्च किया जाता था और उतना ही अधिक भार एक बडी महँगी असैनिक अधिसेवा (civil service) और पेन्शन पानेवालो पर खर्च हो जाता था। इसका परिणाम यह होता था कि शिक्षा और सार्वजनिक स्वास्थ्य जैसे राष्ट्र निर्माणके विभागोको एन-केन-प्रकारेण जीवित रहना पडता था। पूजीके रूपमे इग्लैण्ड से आनेवाली सम्पत्तिके प्रवाहसे जनताका कोई कल्याण नही हो पाता था। जैसा कि बार्न्स् ने कहा है 'इस सम्पत्ति से धनी लोगोका शिकजा गरीबो पर तथा इग्लैण्ड का शिकजा भारत पर और अधिक मजबूत हो गया था।"

मुद्रा प्रणाली और सैनिक बजट पर तथा कुछ सीमा तक सीमान्त चुगी (tariff) और वित्त नीति (fiscal policy) पर अपना नियन्त्रण रखनेके कारण इग्लैण्ड भारत

---

[1] भाषण, पृष्ठ ७५३-७५४।

की दरिद्र जनताके हितोका बलिदान करके अपने देशवासियोका कल्याण करनेमे समर्थ होता था। भारत के कुटीर तथा गृह-उद्योगोको जो हजारो व्यक्तिया की जीविकाके साधन थे और जिनमे लोगोका रचनात्मक कार्यो द्वारा अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्तिका अवसर मिलता था साम्राज्यवादी प्रतियोगिताकी होडमे करीब-करीब समाप्त कर डाला गया। यह सबको मालूम है कि भारत के व्यापक वस्त्र व्यवसायका पिछली शतीके प्रारम्भमे इग्लैण्ड म, भारत के बढिया कपडो पर बहुत अधिक आयात चुगी लगाकर तथा अन्य तरीकोम समाप्त कर दिया गया। इन सब चीजोको देखते हुए साम्राज्यवादको मानवतावादी कर्तव्य बताना ढोग मालूम होता है। सेसिल राडस् का यह कथन सत्यके अधिक निकट है कि 'शुद्ध लोकोपकार अपने आपम बहुत अच्छा है, पर लोकोपकारके साथ ५ प्रतिशतका लाभ भी हो तो और भी अच्छा है।" शूमन का कहना है कि 'मानवतावाद, सभ्य बनानेका उद्देश्य, धर्म परिवर्तन और पिछडे हुए लोगोका भौतिक कल्याण आदि ऐसे शब्द हैं, जिनके पीछे लाभ उठानेके उद्देश्य, शक्ति प्राप्त करनेकी लालसा और आत्म प्रतिष्ठाको बडी चतुराईसे छिपाया गया है (७० ४२२)।" इसी लेखकका कहना है कि जो देश साम्राज्यके जुएके नीचे है उनम निरक्षरता दूर करने पर और शिक्षाके विकास पर बहुत कम धन व्यय किया जाता है। इसके विपरीत सैनिक कार्यो पर, प्रशासन पर और रेल निर्माणमे बहुत अधिक धन व्यय किया जाता है। स्वतास प्रवासियोको सबसे अधिक भाग मिलता है। सब कहीं भिखमगापन, भूखसे मौते और सामाजिक विशृखलता दिखाई देती है। अफ्रीका के लोगोके सिरा पर और झोपडियो पर कर लगाये जाते है जिनका उद्देश्य इनके राजस्वको बढाना उतना नहीं होता है, जितना कि मूल देश वासियोका सफेद चमडीवाले मालिकोकी सेवाके लिए मजबूर करना होता है।

यदि यह भी मान लिया जाय, जैसा कि है भी, कि साम्राज्यवादके नीचे पिसने वाले देशोकी जनताका कुछ अप्रत्यक्ष आर्थिक लाभ हो जाया करते है तो भी यह कहना ही पडेगा कि इस लाभके लिए उन्हे अपनी राजनीतिक स्वाधीनता, आत्म-सम्मान और आत्मगौरवको खोना पडता है। राजनीतिक दासता साम्राज्यवादका उतना ही अभिन्न अग है जितना आर्थिक शोषण। शक्तिकी प्रकृति कुछ ऐसी होती हैं कि जो लोग बहुत अधिक समय तक उसके अधीन रहते ह उन्हे अपनी बेडियाँ ही पसन्द आने लगती है। जैसा कि रूसो ने कहा है 'यदि ऐसे लोग है जो अपनी प्रकृतिसे ही दास है तो इसका कारण यह है कि पहले प्रकृतिके विरुद्ध लोगोको दास बनाया गया है। "मिस्र, सीरिया, पेलेस्टाइन, भारत, बर्मा और लका का आधुनिक इतिहास यह साबित करता है कि साम्राज्यवादी शक्तियाँ अधिकार छोडनेके लिए कभी तैयार नहीं होती और जनताको स्वशासनके योग्य बनानेम जितनी भी बाधाए सम्भव है उतनी बाधाए ये शक्तिया पैदा करती है। साम्राज्यवादी देशोने अभी इस सत्यको स्वीकार नहीं किया है कि "कोई भी व्यक्ति इतना अच्छा नहीं होता कि वह दूसरोका मालिक बन जाय।"

जब अधीन देशकी जनताका स्वशासन और स्वाधीनताका आन्दोलन प्रबल हो जाता है तब साम्राज्यवादी शक्ति निम्नलिखित उपायोंमें से एक या अधिक उपायोंका सहारा लेती है (७० पृष्ठ ६२४—२९)

(क) जनताके प्रतिरोधकी शक्तिको ताकतसे कुचल दिया जाता है और उसे कमजोर कर देनेके उपाय किये जाते हैं।

(ख) जनताको साम्राज्यके प्रति वफादार बनानेके लिए साम, दाम, दण्ड, भेद और शिक्षा आदिका सहारा लिया जाता है।

(ग) देशी भाषा और संस्कृतिको हटाकर उसके स्थान पर विजेताओंकी भाषा और संस्कृति जनता पर लादी जाती है।

(घ) "राष्ट्रीय सरकारमें उपनिवेशकी प्रजाका प्रतिनिधित्व बनाकर इस व्यवस्थाको राष्ट्रीय आत्मनिर्णयके स्थान पर लागू किया जाता है।

(ङ) स्वायत्त शासन, सुरक्षा और स्थानीय शासनमें देशवासियोंके सहयोगके अनेक रूप और प्रकार खोज निकाले जाते हैं पर इस बातका ध्यान रखा जाता है कि असली शक्ति साम्राज्यवादी देशके ही हाथमें रहे।

(च) देशी राजाओं (princes) और अन्य निहित स्वार्थोंका उपयोग औपनिवेशिक सरकारके मददगारोंके रूपमें किया जाता है।

(छ) इस बातका सावधानीसे ध्यान रखा जाता है कि कार्यपालिका (executive) पर व्यवस्थापिका (legislature) का नियन्त्रण न होने पावे।

(ज) विरले उदाहरणोंमें ऐसा भी होता है कि साम्राज्यवादी शक्ति बिना युद्ध के ही अपना अधिकार छोड देती है जैसा कि अंग्रेजी उपनिवेशोंके और भारत के सम्बन्धमें हुआ।

विदेशी शासनका विरोध करनेवालोंकी शक्ति जब तक विजेताओंकी शक्तिसे कमजोर रहती है तब तक विदेशी अत्याचार और विदेशी तानाशाही बढ़ती ही जाती है (७० ६२९)।" सार्वजनिक अव्यवस्था, साम्प्रदायिक तनातनी और संघर्ष, निरक्षरता, निम्न नैतिक स्तर आदिका बहाना लेकर स्वशासनको अनिश्चित काल तकके लिए स्थगित रखनेका प्रयत्न किया जाता है और इन बाधाओंको दूर करनेका प्रयत्न नहीं किया जाता। पिछडे हुए देशोंको आत्मविकास करने और गलती करके सीखनेका कोई अवसर नहीं दिया जाता। इस दृष्टिसे अफ्रीका वासी सम्भवत सबसे अधिक अभागे रहे है।

साम्राज्यवादके तथाकथित लाभोंके प्रसंगमें शूमन ने हमें इस तथ्यकी ओर याद दिलायी है कि पश्चिमी सभ्यता शुद्ध वरदान ही नही है। ऐसे उदाहरण कम नही है जिनमें सफेद चमडीवालोंके धर्म, नैतिक आदर्श, भाषा और सामाजिक व्यवस्थाओंका परिणाम देशवासियोंकी संस्कृतिके विनाश, सामाजिक अव्यवस्था और नैतिक पतनमें हुआ है। हमें यह बताया गया है कि साउथ सीजके मूलनिवासी पश्चिमके साथ अपने सम्पर्कके कारण या तो मर चुके हैं या मर रहे है, क्योंकि शराब खोरी, बन्दूकबाजी

और उपदंश रोग इस सम्पर्कके निकृष्टतम परिणाम हुए हैं। संसारके अन्य भागोंमें साम्राज्यवादी शासनके अधीन रहनेवाले लोगोंने अपना धर्म, अपनी कलाएं, अपने नैतिक आदर्श और अपनी ग्राम्य परम्पराओंको खो दिया है और वे पश्चिमी सफेद चमड़ीवालोंके भ्रष्ट और पतित उपहास्य नमूने (caricature) बन गये हैं (७० ५०२)।" प्राचीन साम्राज्यवाद अपने अधीन लोगोंके जीवन पर बहुत थोड़ा प्रभाव डालता था। अधिकतर वह उन्हें अपनी मौलिक प्रतिभाके विकासके लिए स्वतंत्र छोड़ देता था। पर आधुनिक साम्राज्यवाद लोगोंके जीवन पर व्यापक प्रभाव डालता है और उनकी संस्कृति और सभ्यतामें जो कुछ भी श्रेष्ठ और सुन्दरतम् होता है उन सबका विनाश कर देता है। अपने अधीन लोगोंको वह "तुच्छ और निम्न कोटिके विधि हीन व्यक्ति समझता है और अपनी सैनिक श्रेष्ठता तथा उच्च शिल्प विज्ञानको सांस्कृतिक श्रेष्ठता मानता है।"

जातीय सम्बन्धोंके विषयमें साम्राज्यवादका दायित्व बहुत अधिक है। एशिया और अफ्रीका में जातियोंके सम्बन्धोंको बिगाड़नेवाला जातीय संघर्ष साम्राज्यवादकी विरासत है। सी० एफ० एण्ड्रूज पूछते हैं "आप एक ऐसे व्यक्तिके मित्र कैसे बन सकते हैं जो हमेशा आपको अपनेसे निम्नतर स्थिति में रखनेके लिए बाध्य करता है?" वॉर्सेस्टर के प्रधानाचार्य ने भारत पर भाषण देते हुए कहा था "हमें भारत के क्लेशों का मूल कारण खोजना चाहिए। उस देश पर हमारे शासनसे निस्सन्देह उस देशके वासियोंको बहुत लाभ हुआ है। आपसमें लड़नेवाले समुदायोंके बीच हमने बहुत समय तक शान्ति कायम रखी है। हमने रेलें बिछाई हैं, अकालसे युद्ध किया है, लोगोंका स्वास्थ्य सुधारा है और देशकी उपज बढ़ाई है। हमने भारतकी भौतिक आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिए बहुत कुछ किया है लेकिन फिर भी हमें भारत वासियोंका प्रेम नहीं प्राप्त हो सका। ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि हमने उनकी आत्मा को चोट पहुंचाई है।" एच० जी० वैल्स का कहना है कि साम्राज्यवादका मतलब है "हेकड़ी-शेखी, विश्वबन्धुत्व का उलटा।" संयुक्त राज्य अमेरिकाके प्रसिद्ध समाजवादी नेता नॉर्मन टॉमस व्यंग पूर्वक कहते हैं "अनेक ऐसे लोग हैं जिनके पास दफनाये जाने के लिए ६ फुट जमीन नहीं है पर वे इस गर्वसे फूले नहीं समाते कि उनका देश एक साम्राज्यका स्वामी है।" हमें बताया गया है कि प्रथम विश्व-युद्धके पहले जर्मनीके उपनिवेशोंमें 'गोरे लोग अपने साथ कोड़ा लेकर उसी प्रकार चलते थे, जिस प्रकार कोई रूमाल लेकर चलेगा।

जैसा कि प्रो० हॉकिंग ने कहा है, पश्चिमवाले यह मान बैठे हैं कि जो कुछ उनके लिए अच्छा है वह सबके लिए अच्छा है। "वह बहुत सी अच्छी बातोंका विनाश कर रहे हैं—यह जाने बिना कि वह ऐसा कर रहे हैं। इसका एक उदाहरण, अरब संस्कृतिका विनाश है। पश्चिम यह नहीं समझता कि जीवनके सौंदर्य, विचार और भाषाकी महत्ता, शिष्टता, आतिथ्य, सम्भाषण, अन्तःप्रेरणा, काव्य और दार्शनिक ज्ञानके क्षेत्रमें पूर्वीय देश पश्चिमकी अपेक्षा कहीं अधिक आगे बढ़े हुए हैं।" (हॉकिंग)

इससे भी बड़ी दूसरी बुराई यह है कि युद्ध साम्राज्यवादका आवश्यक अंग है। युद्ध पहले पिछड़े हुए देशोंके साथ होता है और बादमें दूसरे साम्राज्यवादी देशोंके साथ। ऐसा एक भी उपनिवेश नहीं है जो बिना किसी रक्तपातके जीता गया हो। एक आधुनिक लेखकने लिखा है कि साम्राज्यका भाग उसके अधीन आ पड़नेवाले लोगोंके खूनसे लाल रंगा हुआ है। एक दूसरे लेखकने लिखा है कि कूटनीति, दबाव और सैनिक शक्ति साम्राज्यवादके आवश्यक उपकरण हैं। पिछड़े हुए देशोंको अपने अधीन कर लेनेके बाद भी साम्राज्यवादी देशोंको एक बहुत बड़ी सेना रखनी पड़ती है। यह सेना तीन कारणोंसे रखी जाती है: अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखनेके लिए, देशवासियोंके सम्भावित विद्रोहके भयके कारण और इस आशंकाके कारण कि कहीं कोई प्रतिस्पर्धी साम्राज्यवादी देश लूटके मालको हड़प न ले। एक साम्राज्यवादी देश हमेशा काँटों पर रहता है और उसकी मनोवृत्ति साधारण स्वस्थ मानव सम्बन्धोंके प्रतिकूल रहती है।

इन सब बुराइयोंके होते हुए भी साम्राज्यवादके समर्थक उसके पक्षमें निम्न-लिखित दलीलें देते हैं: साम्राज्यवाद अराजकता और अव्यवस्थाको समाप्त करके शान्ति और व्यवस्था स्थापित करता है, पिछड़े हुए समाजके आपसमें लड़नेवाले विभिन्न समुदायोंमें साम्राज्यवाद पंचका काम करता है। वह जनताको देशवासियोंके शोषणसे बचाता है, साम्राज्यवाद देशोंके उन प्राकृतिक साधनोंको संसार भरके लिए सुलभ बनाता है जिनका उपयोग पहले नहीं हुआ होता, विस्तृत प्रदेशों पर साम्राज्यवाद सामान्य विधि लागू करता है। आजकल जब तैयार माल और कच्चे मालके बाजारोंके लिए भयानक प्रतियोगिता चल रही है, अपने पैरों पर न खड़े हो सकनेवाले देशोंके लिए यह निश्चित रूपसे लाभदायक है कि वे एक ऐसे बड़े साम्राज्यके अंग बन जायँ जो उन्हें व्यवस्थित जीवन और सुरक्षाकी सुविधा दे सके। हम मानते हैं कि इन सब तर्कोंके पीछे काफी बल है पर हमें यह मानना ही होगा कि ये सब बातें साम्राज्यवादकी बुराइयोंको केवल कम कर देती हैं वे किसी प्रकार भी साम्राज्यवादका औचित्य सिद्ध नहीं करतीं। साम्राज्यवादका औचित्य तभी सिद्ध किया जा सकता है जब उसका उपयोग सबसे पहले और सबसे अधिक शासित लोगोंके कल्याणके लिए किया जाय और उन्हें जल्दीसे जल्दी स्वशासन और स्वाधीनताके योग्य बनाया जाय। ईमानदारी हमें यह कहनेके लिए मजबूर करती है कि इनमेंसे कोई भी बात उचित मात्रामें आजकल साम्राज्यवादी संसारमें कहीं भी पूरी होती नहीं दिखाई देती है। विदेशी शासन पुरुषत्व और आत्म-सम्मानकी हानिके रूपमें शासितोंसे जो कीमत लेता है वह ऐसे शासनके लाभोंसे कहीं अधिक होती है।

(७) क्या साम्राज्यवाद मातृदेशकी जनताके लिए लाभप्रद है? (Does Imperialism Benefit the People of the Mother Country?) बहुधा यह मान लिया जाता है कि साम्राज्यवाद मातृदेशकी जनताको बहुत अधिक भौतिक लाभ पहुँचाता है। पर ध्यान पूर्वक विचार करनेसे यह कल्पना सही नहीं

साबित होती। जहाँ तक भावनाका सम्बन्ध है निस्सन्देह देश मनोवृत्ति वाले लोगोके लिए साम्राज्यवाद एक सुन्दर रसायन है। पर इससे जनताको कोई भौतिक लाभ नहीं होता। लीबियाके बारेमे इस तथ्यकी सत्यता सिद्ध करते हुए शूमन ने कहा है "लीबिया एक ऐसे औपनिवेशिक प्रदेशका अच्छा उदाहरण है जिसे मातृदेशकी जनता का काफी हानि पहुंचाकर प्राप्त किया गया है और कूटनीतिक शक्ति तथा प्रतिष्ठाके कारण मातृदेशके कर दाताओंको भारी हानि पहुंचाकर उसे अधिकारमे बनाये रखा जा रहा है। जो कुछ थोडा बहुत लाभ होता भी है वह पूंजी लगाने वाले और कुछ थोडेसे सुविधा प्राप्त लोगोको ही होता है। समूचे राष्ट्रको कोई भी आर्थिक लाभ नही होता (७० ४०६)।"

आमतौर पर साम्राज्यवादी अभियानोसे जो कुछ आर्थिक लाभ होता है, वह राज्यानुग्रह प्राप्त थोडेसे लोगोको ही होता है। समूचे राष्ट्रको तो 'गुनाह बेलज्जत' ही बनना पडता है। उदाहरणके लिए इगलैण्डकी आम जनताको भारत पर इग्लैण्ड के अधिकारसे होनेवाला प्रत्यक्ष लाभ सम्भवत बहुत ही कम था, यद्यपि यह सही है कि "एक उपनिवेशके रूपमे किसी भी औद्योगिक साम्राज्यको कभी भी प्राप्त होने वाले बाजारोमे भारत सबसे बड़ा बाजार है (६३ ५२०)"। वस्त्र और लोहे आदि के कुछ खास उद्योगोको लाभ हो सकता है, पर सम्पूर्ण उद्योगको लाभ नही होता। यदि भारत और अन्य औपनिवेशिक प्रदेशोमे लगी हुई कुल पूंजी इग्लैण्डमे ही लगी होती तो इगलैण्डके मजदूरोकी हालत उनकी आजकी हालतकी अपेक्षा बहुत अधिक अच्छी होती। लियोनर्ड वार्नस् लिखते है "उपनिवेश विशेष तौर पर कुछ वर्गोके लिए लाभप्रद होते है। वे पूंजी लगाने वाला और उत्पादकोके लिए लाभप्रद होते है, पर वेतन भोगी मजदूरोके लिए हानिकारक होते हैं (४ २१)।"

साम्राज्यवादके समर्थकोका प्राय यह कहना है कि साम्राज्यवादी देशको अपने उपनिवेशोमें पैदा होनेवाला कच्चा माल बहुतायतसे मिल जाता है। पर वास्तविक तथ्योसे इस दावेकी पुष्टि नही होती। जैसा कि पाकर मून ने कहा है, कच्चे माल रंगभेदको नहीं पहचानते। कच्चे माल राजनीतिक नियमोकी अपेक्षा आर्थिक नियमो का अनुगमन करते है। यह सोचना मूर्खता है कि साम्राज्यवादी देश द्वारा अपने उपनिवेशोमे लगाई गई पूंजी हमेशा प्रत्यक्ष लाभ देती है। यह विचार भी बिल्कुल गलत मालूम पडता है कि एक साम्राज्य कच्चे मालके मामलेमे आत्म-निर्भर बन सकता है विशेषकर युद्धके समयमे। इस उद्देश्यकी सिद्धि जो बलिदान चाहती है वह उद्देश्यके लाभसे कही अधिक है। एक ही साम्राज्यके भीतरके देश अपनत्वके जोशमे आकर इस बातके लिए तैयार हो सकते है कि वे पर्याप्त आर्थिक हानि उठाकर भी आपसमे ही एक दूसरेसे क्रय-विक्रय करे। पर यह जोश बहुत जल्दी ठण्डा हो जाता है। व्यापार साधारणतया कमसे कम मूल्यका अनुगमन करता है, अपनत्वकी दलीलोका नही।

प्रथम विश्वयुद्धके बाद अंग्रेजी साम्राज्यमे साम्राज्यिक रियायती चुंगी (imperial prefernce) के विचार ने जोर पकडा। यह विचार १९३२ में

ऑटवा समझौतेमें अपनी चरम सीमा पर पहुंचा। पर इससे साम्राज्यका अधिक लाभ नहीं हुआ। 'टाइम्स' नामक समाचार-पत्र ने लिखा था 'आटवा (Ottawa Canada) और विश्व-युद्धके बीचके सात वर्षोंमें ब्रिटेन और उसके उपनिवेशों ने एक साथ ही यह सबक सीखा कि उनकी सबसे अधिक जटिल आर्थिक समस्याएं और उनका हल करनेकी आशाएं उनके पारस्परिक व्यापार पर नहीं बल्कि शेष संसारके साथ उनके व्यापार पर निर्भर करती हैं।

ऊपरके तर्कोंके बावजूद मातृदेशके निम्न वर्गोंको अप्रत्यक्ष लाभ होता है। विदेशी व्यापार और सस्ते कच्चे मालके आयातसे सार्वजनिक समृद्धि और क्रय शक्तिमें वृद्धि होती है। यह बात संयुक्त राज्य अमेरिकाके बारेमें सही है, यद्यपि अमरिका उन अर्थोंमें साम्राज्यवादी नहीं है, जिन अर्थोंमें ब्रिटेन, फ्रान्स, बेल्जियम और पुर्तगाल हैं।

लम्बे चौड़े साम्राज्यकी रक्षाके लिए इंग्लैण्ड को एक बहुत बड़ी जल, थल और नभ सेना रखनी पड़ती थी। और अंग्रेज करदाताओंको इनका बोझ उठाना पड़ता था। ब्रिटेन के साम्राज्यवादी विचारोंको जो कुछ भी अप्रत्यक्ष लाभ इससे होता था, वह इतना नहीं था कि उसके कारण करों का बोझ न खले। सम्भवतः यह आर्थिक बोझ ही एक कारण था कि द्वितीय विश्व-युद्धके बादसे ब्रिटेन अपने अधीनस्थ विविध देशों को स्वाधीनता या स्वशासन देनेमें जुट गया।

यह तर्क कि साम्राज्यवाद अधिक आबादीका एक प्रतिकार है, तथ्यों द्वारा सिद्ध नहीं होता। इटली और जापान हमेशा अपनी बढ़ती हुई आबादीका रोना रोते रहे, पर उपनिवेशोंसे उनकी यह समस्या हल नहीं हुई। उद्योग, कृषि और अर्थ-नीतिके समन्वयपूर्ण व्यवस्थापन और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा यह समस्या अधिक अच्छे ढंगसे हल हो सकती है।

साम्राज्यवादका एक परिणाम यह होता है कि साम्राज्यवादी देशकी जनताका जीवनस्तर और मजदूरी कम हो जाती है। जब पूंजीपति यह देखता है कि पिछड़े हुए देशोंमें, जहां मजदूर सस्ते और काफी तादादमें मिल जाते हैं, अपनी पूंजी लगानेसे उसे शीघ्र लाभ हो सकता है, तब वह अपनी पूंजी मातृ-देशमें न लगा कर पिछड़े हुए देशोंमें लगाता है। बहुत ही जल्दी उसे मालूम हो जाता है कि अपने देशकी अपेक्षा पिछड़े हुए देशमें अनेक प्रकारकी वस्तुएं बहुत कम लागतमें तैयार की जा सकती हैं। इस सबका नतीजा यह होता है कि उसके मातृ-देशमें मजदूरोंकी मजदूरी कम हो जाती है और उन्हें बेकारीका भी सामना करना पड़ता है।

विजेताओं पर साम्राज्यवादका नैतिक प्रभाव निस्सन्देह बड़ा गम्भीर होता है। प्रो० हॉकिंग का यह कहना बिल्कुल सत्य है कि "किसी भी जातिके लिए एक लम्बी अवधि तक ऐसी जनताके बीच रहना जिसे वह हेय दृष्टिसे देखती हो, विशेष रूपसे घातक होता है।" इससे नैतिकताका स्तर गिर जाता है और अन्तःकरण अशुद्ध हो जाता है। यह बात असाधारण नहीं है कि श्वेतांग लोग अपने लिए और काले लोगों

के लिए भिन्न-भिन्न मानदण्ड रखते हैं। देशकी विविधताका रंग भ्रष्ट दशाका समर्थन करनेके लिए विवश किया जाता है। सफेद चमड़ीवाले अपने अन्तःकरण को धोखा देकर यह विश्वास करने लगते हैं कि हम लोग एक निम्न जातिके हैं, काले लोगोंकी उन मुख्य सुविधाओंकी कोई जरूरत नहीं है, जिन्हें श्वेत लोग अपने लिए आवश्यक मानते हैं, काले लोग बिना कुछ रोग-शिये भी जीवित रह सकते हैं, उनके आचार व्यवहार और आदर्श इस योग्य नहीं हैं कि उन पर ध्यान दिया जाय, और उनकी भावनाओं और उनके विचारों पर विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं है आदि आदि। इस प्रकारकी आन्तरिक घृणा ही इस बातका मुख्य कारण है कि भारतमें शायद ही कुछ अंग्रेज लोग भारतीय संस्कृति और सभ्यताका वास्तविक अर्थ और महत्त्व समझ पाये हों। वे यहाँके हाथियों, सोना, माया, मनोरंजनके स्थलों और राजमहलोंके बारेमें तो बहुत कुछ जानते हैं पर जनताके आन्तरिक जीवन और उसकी प्रतिभाके बारेमें उन्हें बहुत कम ज्ञान है। भारतीय दर्शन, काव्य, साहित्य और कलाके सौन्दर्यसे उनमेंसे अनेक बिल्कुल अनभिज्ञ रहे हैं।

जहाँ तक तथाकथित पिछड़े हुए प्रदेशोंका सम्बन्ध है, साम्राज्यवाद अपने सबसे उत्तम रूपमें एक उदार तानाशाही कहा जा सकता है। दमन तो साम्राज्यवादकी रोटी-दाल है। अनुभव यह बताता है कि उपनिवेशोंमें कायम किया जानेवाला दमन मातृ-देशमें भी अपनी जड़ें जमा लेता है। स्वाधीनताके प्रति स्वाधीनता प्रेमी अंग्रेजोंका मौलिक उत्साह बहुत कुछ कम हो गया है। इसका कारण सम्भवतः यह है कि विदेशोंमें उनके देश वासियोंने जो सैनिक अत्याचार किये और उनके आश्रित साम्राज्यके विभिन्न भागोंमें स्वाधीनता पर जो कड़े प्रतिबन्ध लगाये गये उनसे अंग्रेजोंकी मनोवृत्ति बदल गयी है।

साम्राज्यवादी देश और उसके अधीनस्थ देशोंके बीच जो अस्वाभाविक सम्बन्ध होता है, उससे यह बिल्कुल असम्भव हो जाता है कि दोनों एक दूसरेसे कुछ सीख सकें। जब तक दो जातियोंके बीच स्वामी और दासका सम्बन्ध रहता है तब तक नये विचारों और सुझावोंका स्वीकार किया जाना और शिक्षार्थीकी आन्तरिक शक्ति-सामर्थ्यका उपयोग असम्भव है। एक अच्छा गुरु अपने शिष्यकी सब समस्याएँ हल करके दे देना पसन्द नहीं करता बल्कि जहाँ तक हो उसे स्वावलम्बनके योग्य बनानेका प्रयत्न करता है। वह किसी कार्यके सम्पादनको उतना महत्त्व नहीं देता जितना शिष्यकी आन्तरिक शक्तियोंके विकसित करनेको, ताकि शिष्य कार्य-सम्पादनके योग्य हो जाय। समस्या का हल भीख बाँटना नहीं, बल्कि भिक्षुओंको आजीविका कमानेकी शिक्षा और प्रेरणा देना है।

(३) क्या साम्राज्यवाद राष्ट्रोंके बीच संघर्षके कारण समाप्त करके विश्व-शान्ति में सहायता देता है? **(Does Imperialism Help to Avoid Friction Points Among Nations and Make for World Peace?)** इस प्रश्न का उत्तर अधिकतर नकारात्मक ही है। साम्राज्यवादका अर्थ है अन्तर्राष्ट्रीय होड़ और

प्रतियोगिता। इसका अर्थ है बाजारोंके लिए, कच्चे मालके लिए और पूंजी लगानेके स्थानोंके लिए संघर्ष।[1] जब तक अफ्रीका और एशियामें, बसने और शोषण करनेके लिए, काफी क्षेत्र थे तब तक पश्चिमी राष्ट्र आपसमें लड़े बिना उन्हें परस्पर बाँटते रहे। आज प्रायः समस्त प्राप्य भूमि हड़पी जा चुकी है और भविष्यमें साम्राज्यवादी शक्तियोंके बीच उपनिवेशों और बाजारोंके लिए संघर्ष होनेकी पूरी आशंका है। द्वितीय विश्व-युद्धमें जर्मनी और जापानने युद्ध सम्बन्धी अपनी जिम्मेदारीको यह कहकर उचित साबित करनेकी कोशिश की थी कि वे साम्राज्यवादी संसारमें समानता कायम करना चाहते थे। युद्धके प्रारम्भके पहले ही लियोनार्ड बार्नस् ने लिखा था "यह बिल्कुल सत्य और उचित कथन है कि वर्तमान एकाधिकारी स्वत्वोंके साथ ब्रिटेनका इतने बड़े साम्राज्यका स्वामी बने रहना विश्वशान्तिके साथ मेल नहीं खाता (८ २१-२२)।"

अंग्रेज लेखक आमतौर पर बार्नस् की उक्त रायसे सहमत नहीं हैं। वे अंग्रेजी साम्राज्यको विश्व-शान्तिका सबसे बड़ा रक्षक मानते है। प्रो० बार्कर का कहना है कि यद्यपि मूल रूपमे अंग्रेजी साम्राज्यका अभिप्राय बस्ती बसाने और व्यापार करने के लिए समुद्रके पार देशोंमें अपना विस्तार करना था पर अब उसने अपनी पूर्णताको एक ऐसी प्रणाली प्रकटकी है जिससे वह पूरी तरहसे स्वशासनयुक्त राष्ट्रोंके स्वेच्छाजन्य संगठित समाजके नवीन आदर्शरूपमें बदलता जा रहा है। यह संगठन विधान और स्वाधीनता सम्बन्धी अंग्रेजी विचारोंकी स्वेच्छाजन्य स्वीकृतिके आधार पर ही है। यह कहनेकी तो कोई आवश्यकता नहीं है कि स्वशासनयुक्त राष्ट्रोंके स्वतन्त्र संघका यह दावा वहां तक ठीक है जहाँ तक अधि-राज्यों (Dominions) का सम्बन्ध है। उपनिवेशों और आश्रित प्रदेशोंके सम्बन्धमें यह कथन लागू नहीं होता। पूरे अंग्रेजी साम्राज्यका ६/७ भाग कुछ समय पहले तक उपनिवेश और आश्रित प्रदेश ही था।

बार्नस् के अनुसार अंग्रेजी साम्राज्यके निम्नलिखित तथाकथित उद्देश्य है —

(क) साम्राज्यके समस्त सदस्योंके बीच शान्ति,

(ख) बाहरी आक्रमणके विरुद्ध सुरक्षाकी एक सहयोगी व्यवस्था,

(ग) उसके सभी सदस्योंके लिए (१) व्यक्तिगत, (२) आर्थिक अर्थात् जीवनके सुन्दर और निरन्तर उन्नतिशील मानदण्ड, और (३) राष्ट्रीय स्वाधीनता।

बार्नस् स्वयं इस बातको स्वीकार करते है कि यह सब केवल स्वशासन युक्त अधिराज्योंके सम्बन्धमें ही सत्य है।

अगर दलीलके लिए यह मान भी लिया जाय कि अंग्रेजी साम्राज्यसे लम्बे-चौड़े प्रदेशोंमें शान्ति कायम हो जाती है तो भी इसका यह अर्थ नहीं होता कि उससे विश्वशान्ति भी प्राप्त हो जाती है। युद्धोंमें कभी भाग न लेने, कभी आक्रमण न

---

[1] यह संघर्ष आजकलके शीत युद्धमें सम्भावित साथियोंके लिए किया जाता है। उदाहरणके लिए अमेरिका और रूसके बीच यूगोस्लावियाकी मैत्रीके लिए—और जहाँ तक रूसका सम्बन्ध है यूगोस्लाविया पर हावी होनेके लिए चलनेवाली होड़को देखें।

करने और अपने उपनिवेशों तथा आश्रित देशों को यथासम्भव शीघ्र स्वशासनके उपयुक्त बनानेकी इंग्लैण्डकी इच्छामें ईमानदारी हो सकती है पर जब तक इंग्लैण्ड के अलावा संसारके अन्य पूंजीवादी देशोंका यह शिकायत बनी रहती है कि संसारके व्यापार और भू-प्रदेशोंमें उन्हें उपयुक्त भाग नहीं मिला है तब तक विश्वशान्ति कच्चे धागे पर ही झूलती है। इसलिए हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि व्यावहारिक साम्राज्यवाद—दार्शनिक साम्राज्यवाद नहीं—शान्तिके लिए हितकर नहीं है। साम्राज्यवाद अपने सर्वोत्तम रूपमें एक सशस्त्र तटस्थता ही कहा जा सकता है।

(८) **क्या साम्राज्यवाद का कोई विकल्प है? (Is there an Alternative to Imperialism?)** हमारा विश्वास है कि साम्राज्यवाद स्थायी नहीं हो सकता। शूमन का विश्वास है कि साम्राज्योंके दिन अब गिने हुए ही हैं, यद्यपि उनका पतन बहुत धीरे-धीरे और क्रमशः होगा। पार्करमून का कहना है कि साम्राज्यवाद मध्य विक्टोरियनयुगका बचा-खुचा अंश है जो एक नितान्त गैरविक्टोरियनयुगमें कायम है। यदि संक्रमण कालमें साम्राज्यवाद अपना औचित्य सिद्ध करना चाहता है तो उसे शोषण-मूलक न होकर उत्तरदायित्व मूलक होना होगा। प्रो० हाकिंग का कहना है कि केवल साम्राज्यवादी संगठनमें कुछ परिवर्तन कर देनेसे काम नहीं चलेगा। आवश्यकता है एक नयी मनोवृत्ति की। साम्राज्यवादी प्रश्नोंका सहानुभूतिपूर्वक हल करनेमें पुरानी औपनिवेशिक और सैनिक मनोवृत्तिसे सहायता नहीं मिलती। इन प्रश्नोंका निपटारा मनुष्य जातिकी सुख-समृद्धि और कल्याणके आधार पर होना चाहिए। समस्याका हल अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण और 'अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग' में मिल सकता है। इन प्रश्नोंका हल करनेके लिए संयुक्तराष्ट्र संघ बहुत अधिक उपयोगी संस्था है पर अभी तक यह उपयोगिता अप्रगट रूपमें ही है।

बार्न्स् का कहना है कि सम्पूर्ण औपनिवेशिक साम्राज्यमें खुला द्वार नीतिके प्रयोगसे ही साम्राज्यवाद आधुनिक युगमें सह्य हो सकता है। उनका कहना है कि यदि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारका गला नहीं घोटना है तो इंग्लैण्डको अपनी परम्परागत मुक्त व्यापार नीति (free trade policy) अपनानी होगी। उनकी राय है कि कच्चा माल सभी खरीदारोंको एक ही भाव बेचा जाना चाहिए। अपवाद तभी होना चाहिए जब किसी प्रकारके अपराधी राष्ट्रोंके विरुद्ध आर्थिक अनुशासनिका (economic sanctions) लागू करनी हो। "यदि कच्चे मालकी पूर्तिको किसी और प्रकारसे नियन्त्रित करना हो तो उपभोक्ताओंके हितोंकी रक्षा सार्वजनिक नियन्त्रण द्वारा की जानी चाहिए और उपभोक्ता देशको उस नियन्त्रणमें शामिल कर लिया जाना चाहिए (४ १७)"।

उपनिवेशों और संरक्षित प्रदेशोंके शासनके बारेमें बार्न्स् बहुत ही ठीक कहते हैं कि चूंकि ये प्रदेश वहांके निवासियोंके हैं, इसलिए उनके हितोंका ध्यान सबसे पहले किया जाना चाहिए। यदि किसी प्रदेशका हस्तान्तरण जरूरी हो तो यह काम वहांके निवासियोंकी पूर्ण और स्वेच्छाजन्य स्वीकृतिसे ही किया जाना चाहिए।

करे। वित्तीय और प्रशासकीय आवश्यकताओंको ध्यानमें रखते हुए जहाँ तक सम्भव हो, विकास योजनाओंके लिए व्यक्तिगत सम्पत्ति विनियोग (private investment) पर रोक लगनी चाहिए (४:३४)।"

(ग) पिछड़े हुए देशोंको उनकी मूल परम्पराओंके आधार पर यथासम्भव शीघ्र स्वशासनके योग्य बनाया जाना चाहिए। बार्न्स् का विश्वास है कि भारतमें अंग्रेजी शासन यद्यपि कुशल था पर साथ ही हृदयहीन था। इसका कारण वह यह बताते हैं कि देशी संगठनोंकी उपेक्षाकी गई थी। "भारत वासियोंकी दृष्टिसे सरकारका समूचा ढाँचा उन पर ऊपरसे लादा गया था, वह उनके आह्वानका फल नहीं था।" वूल्फ़ ने लिखा था यदि "संघर्ष और आन्दोलनके बिना ही एशियाको साम्राज्यवादी दासतासे छुटकारा दिलाकर योरोपवाले, एशियाको पूर्णस्वाधीन नहीं कर देते तो फ़साद और राष्ट्रीयताका गुबार इतनी जोरोंसे फूटेंगे कि उसके सामने महायुद्धकी विभीषिका फीकी जान पड़ेगी (८३:७०)।" आगे चलकर यही हालत हुई।

(घ) जब तक बाहरी नियंत्रण जरूरी हो तब तक पूर्ण नियंत्रणकी अपेक्षा आंशिक नियंत्रण, प्रत्यक्ष नियंत्रणकी अपेक्षा देशी परम्पराओं और संस्कृति पर आधारित अप्रत्यक्ष नियंत्रण तथा एक राष्ट्रके नियंत्रणकी अपेक्षा अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण अच्छा होगा।

(ङ) बार्न्स् ने एक बड़ा उपयोगी सुझाव दिया कि चूँकि साम्राज्यवाद और पूँजीवादका एक दूसरेसे घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिए साम्राज्यवादमें व्यापक "सुधार करनेके लिए यह आवश्यक है कि मातृदेशमें" पूँजीवादको हटाकर समाजवाद क़ायम किया जाय। बार्न्स् के ही शब्दोंमें: "साम्राज्यवादी व्यवस्थाका रूप ऐसा हो जाय कि सहन किया जा सके; इसके लिए इंग्लैण्डमें एक समाजवादी क्रान्ति होना अनिवार्य है"। "उपनिवेशोंकी स्वाधीनता और उनका विकास तथा इंग्लैण्ड के सामाजीकरण एक दूसरे पर आश्रित हैं। एकके बिना दूसरा नहीं हो सकता। वे एक ही अन्त-र्सम्बद्ध प्रक्रियाके दो पहलू हैं"। आर० फ़ॉक्स का कहना है कि इंग्लैण्डके मजदूर वर्गके संघर्ष और इंग्लैण्डके सामाजीकरणके प्रश्नों को अँग्रेजी साम्राज्यके लोगोंकी आज़ादीके प्रश्नसे अलग रखकर विचार नहीं किया जा सकता। बार्न्स् और फ़ॉक्स के कथनकी सत्यता आजके इंग्लैण्डके समाजवादसे सिद्ध हो गयी है। यद्यपि ईरान द्वारा अपने तेल उद्योगके सामाजीकरणका इंग्लैण्ड जबरदस्त विरोधी भी है।

मिस्रके श्री इस्माइल ने पिछड़े हुए देशोंमें विदेशियोंके कर्तव्योंकी एक तालिका बनाई है जो साम्राज्यवादी शासकों और राजनीतिज्ञों पर भली-भाँति लागू होती है। वह तालिका यह है—

"शासन भार तभी स्वीकार करो जब उसे स्वीकार करके तुम उस जातिका कल्याण कर सको जिस पर शासन करो"

"जनताको एक उच्च सभ्यता तक उसका नेतृत्व कर ले जाओ, उसे खदेड़ कर नहीं। अपनी मातृ-भूमिसे अपने सम्बन्ध तोड़ दो;"

'अन्य सरकारोंका मुकाबला करो और जिस राज्यका नमक खाओ उसकी सम्प्रभुताको अखण्ड रखो",

"किसी भी ऐसे प्रश्न पर सम्मति देनेमें जिसे स्वयं तुम्हारी या कोई विदेशी सरकार हल करना चाहती हो देशवासियोंका प्रतिनिधित्व करो और ऐसा करनेमें"—

'अपना आधार और अपना निर्देशक आदर्श वही रखो जो पूरे संसारमें सबके लिए न्याय संगत और उचित हो, और जो उस देशके निवासियोंके लिए सबसे अधिक कल्याणप्रद हो, जिसकी सेवा तुम कर रहे हो"।

अन्तर्राष्ट्रीयतावाद (Internationalism)

सभी देशोंके विचारशील लोग अब इस बातकी आवश्यकता अनुभव करने लगे है कि अन्तर्राष्ट्रीय अराजकताको समाप्त करके उसके स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था कायम की जानी चाहिए। संसार अब उतना लम्बा-चौड़ा नहीं रह गया है जितना पहले हमारी कल्पनामें था। परिवहन (transport) और संचार (communication) के द्रुतगामी साधनों ने दूरीकी समस्या हल कर दी है। आर्थिक दृष्टिसे संसार एक इकाई है। देश (space) की दूरी और उससे पैदा होनेवाले रहस्यमय भयको रेडियोने समाप्त कर दिया है। जैसा कि सदारयासा ने कहा है 'वहीं खबरें और बातें आज सारे संसारमें ऐसी फैल जाती है जैसे कि संसार एक मोहल्ला ही हो। आज वास्तवमें हम ऐसे संसारमें रह रहे हैं जिसमें एक देशके लोगोंकी समस्याओंका प्रभाव आगे-पीछे सभी देशों पर पड़ता है। यदि मानव-जातिको उस दुर्भाग्यसे बचना है, जो उसकी प्रतीक्षा कर रहा है तो उसे राष्ट्रीय अलगावकी भावनाको छोड़कर अन्तर्राष्ट्रीय ऐक्यकी भावनाको अपनाना होगा और राष्ट्रीय सम्प्रभुताके सिद्धान्तके स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय एकताके सिद्धान्त को कायम करना होगा।

अन्तर्राष्ट्रीयतावादका ध्येय आत्मसम्मान और स्वशासन पूर्ण राष्ट्रोंका एक ऐसा परिवार है जो समानता शांति और पारस्परिक सहयोग के सम्बन्ध सूत्रोंसे एकतामें बंधा हो। मानव विकासकी वर्तमान स्थितिमें तो अवश्य ही एक स्वस्थ राष्ट्रीयतावाद, स्वस्थ अन्तर्राष्ट्रीयतावादकी भूमिका बन सकता है। जिमर्फ के शब्दोंमें 'राष्ट्रीयता मनुष्य और मनुष्य-जातिके बीच एक आवश्यक कड़ी है। सैनिकवाद तथा कट्टरपन और युद्ध प्रियता अथवा वह जिसे पहले "भेड़िया की सी आक्रामक राष्ट्रीयता" कहा गया है, अन्तर्राष्ट्रीयतावादका निश्चित शत्रु है। अपने वर्गके प्रति निष्ठा रखनेके मतलब किसी प्रकार भी यह नहीं है कि दूसरे वर्गसे घृणाकी जाय। सांस्कृतिक नैतिक, और आध्यात्मिक राष्ट्रीयतावाद, अन्तर्राष्ट्रीयतावादका मित्र है। विलियम लॉयड गैरीसन का कहना है कि पूरा संसार हमारा देश है, मानवमात्र हमारे देशवासी है। हम दूसरे देशोंकी धरती को उतना ही प्यार करते हैं जितना अपनी राष्ट्रीयता की धरती को।

१९वीं शताब्दीके पहले योरोप की जातियोंको एक दूसरेके समीप लानेके और

एक दूसरेके बीच स्थायी शान्ति कायम करनेके लिए अनेक प्रयत्न किये गये। पर वे सब प्रयत्न असफल रहे, क्योंकि उनका उद्देश्य यथास्थिति कायम रखना था। इन योजनाओंमें से एक योजना एक महान् फ्रांसीसी राजनीतिज्ञ ड्यूक डु सली (Duc de Sully) ने की थी। उसने अपनी योजना १७वीं शताके प्रारम्भमें सम्राट् हेनरी चतुर्थ के नामसे प्रकाशित की थी। इस योजनाकी प्रधान विशेषता यह थी कि उसने एक विश्व राज्यकी मध्यकालीन कल्पनाका त्याग और तत्कालीन राज्योंकी स्वायत्तताका स्वीकार किया था। चाहे कितने अस्पष्ट रूपमें हो, पर सली ने विश्व-शान्ति की किसी भी योजनामें राष्ट्रीय स्वाधीनताकी आवश्यकता पहले ही समझ ली थी। उन्होंने मध्यकालीन विश्व-आदर्शकी अव्यावहारिकता भली-भाँति समझ ली थी। उनकी योजनाको महान् योजना (Grand design) कहा जाता है। इस योजनाके अनुसार योरोप एक ईसाई गणतन्त्र बनता जिसमें रूस बहिष्कृत रहता और तुर्की साम्राज्य (Ottomon Empire) सबका शत्रु समझा जाता। इस गणराज्यमें ६ वंशानुगत राजतन्त्र, पाँच निर्वाचित राज्यतन्त्र और चार गणतन्त्र सम्मिलित होते और रोमन-जर्मन सम्राट उसका अध्यक्ष होता। सम्राटकी सहायताके लिए जो स्थायी समिति बनती उसमें ६४ सदस्य होते। ये लोग सार्वजनिक हितके प्रश्नोंका विवेचन करने और राष्ट्रोंके बीच होने वाले झगड़ोंका फैसला करके शान्ति स्थापित रखते। इस समितिके पास एक अन्तर्राष्ट्रीय स्थल और जल सेना होती। इस सुझावको फ्रांस के प्रधान मन्त्री तार्द्यू और हेरियो (Tardieu and Harriot) ने १९३२ के निश्शस्त्रीकरण सम्मेलनमें फिरसे पेश किया था।

दूसरी महत्त्वपूर्ण योजना आब्बे दु सा पीर (Abbe de St Pierre) ने उपस्थित की थी। यह योजना उत्रेष्ट (Utrecht) सम्मेलन (१७१३) के बाद तुरन्त पेश की गई थी। पीर ने इस सम्मेलनमें भाग लिया था। नेपोलियनके युद्धोंके समाप्त हो जानेके बाद भी यह योजना योरोपके राजनीतिज्ञोंकी विचारधाराको प्रभावित करती रही। इस योजनाका मौलिक सिद्धान्त यह था कि सम्पूर्ण योरोप एक समाज है और किसी भी एक राज्यको इतना शक्तिशाली नहीं होना चाहिए कि वह शेष योरोप पर हावी हो जाय। योरोपके सभी राजाओंका एक ऐसे समझौतेमें सम्मिलित होना था जिसके अनुसार वे यह शपथ लेते कि वे एक दूसरेकी क्षेत्रीय अखण्डताको कायम रखेंगे, क्रान्तियोंको कुचलेंगे और राजाओंको उनके सिंहासनों पर बनाये रखेंगे। यदि कोई राज्य उस समझौतेको तोड़नेकी कोशिश करता तो उसके विरुद्ध शक्तिका प्रयोग किया जाता। राज्योंके बीच होनेवाले मतभेदोंका पंचायत द्वारा सुलझाया जाता। उत्रेष्ट शान्ति नगर बनाया जाता। वहाँ राज्योंके प्रतिनिधि मिलकर 'एक ऐसी सभा बनाते जिसे शान्ति कायम रखने और बहुमतकी मंजूरीसे सन्धिके उद्देश्योंको पूरा करने तथा सभाके निश्चयोंको कार्यान्वित करनेके लिए आवश्यक और उपयुक्त कानून बनानेका अधिकार प्राप्त होता (७० २३५-३६)"। यह योजना इसलिए असफल हो गई कि इसमें सन्धियोंकी अभंगुरता पहले ही से मान ली गई थी। इसका

उद्देश्य केवल यथास्थिति कायम रखना था। दूसरी बात यह थी कि यह सन्धि तानाशाही राजाओंके बीच होनको थी न कि देशोंकी जनताके बीच और इसलिए यह एक ऐसी व्यवस्थाको स्थायी बना देना चाहती थी जिसका कोई औचित्य नहीं था। एक अन्तिम कारण यह था कि पीर इस राष्ट्रीय भावनाके महत्वको नहीं समझ सके कि जहाँ तक सम्भव हो, राजनीतिक और राष्ट्रीय सीमाए एक ही होनी चाहिए।

पीर की योजना रूसो के चिन्तनका आधार बनी। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अन्तर्राष्ट्रीय सघर्ष और युद्ध स्वतन्त्र राज्योके सम्बन्धोमे पैदा होते है। इसलिए उन्होने सघीय योरोपकी योजना प्रस्तुत की, जिसका सगठन विधि शासनके रूपमे होना। राज्योंको एक अविखण्डनीय गठबन्धन (irrevocable alliance) मे शामिल होना था। झगडे, पञ्च निर्णयसे तय किये जाते। सब अपने सदस्य राज्योंका प्रादेशिक अखण्डताकी तथा उनकी तत्कालीन शासन पद्धतिकी गारण्टी कर देना। राज्योंके आकारका विचार किये बिना सभी राज्योका काग्रेस या प्रतिनिधि सभामे समान मतदानका अधिकार और सदस्य राज्योंका बारी-बारीसे अध्यक्षीय पद पर आसीन होना इस योजनाके अन्य सिद्धान्त थे। यदि कोई सदस्य राज्य समझौतेकी शर्तोंको तोडता तो उसे सार्वजनिक शत्रु घोषित किया जाता और उसके विरुद्ध सैनिक कार्रवाई की जाती। प्रतिनिधि सभाके पूर्णाधिकार प्राप्त प्रतिनिधियोंको तीन-चौथाई मतसे ऐसे नियम बनानेका अधिकार था जो सभी सदस्योंके ऊपर लागू किये जा सकते थे।

जेरमी बेन्थम ने अपनी पुस्तक "प्रिन्सिपल्स् आफ इन्टरनेशनल लॉ" मे रूसो के कार्य को पूरा किया। बेन्थम को अग्रेजी भाषामे सबसे पहले 'इन्टरनेशनल' (अन्तर्राष्ट्रीय) शब्द का प्रयोग करनेका श्रेय है। उन्होने युद्धको "बडीसे बडी शैतानी" बताया था। उनका विश्वास था कि रक्षात्मक सन्धियां, सार्वजनिक गारण्टियों, निरस्त्रीकरण और औपनिवेशिक साम्राज्यके त्यागसे युद्धको दूर किया जा सकता है। उन्हे विश्वास हो गया था कि गुप्त कूटनीति, चुगी प्रणालियां (tariffs), सरकारी सहायता और उपनिवेश, ये सब विश्व-शान्तिमे घातक है और इसलिए इन सबका उन्मूलन किया जाना चाहिए। विभिन्न देशोंकी विधियों को सहिता-बद्ध (codify) करके बेन्थम ने अन्तर्राष्ट्रीयतावादकी और अधिक सेवाकी है।

१८वीं शतीके अन्तिम महान् दार्शनिक जिन्होने विश्वशान्तिकी समस्याका विवेचन किया, इमैनुअल काण्ट थे। अपने प्रसिद्ध निबन्ध *Towards Eternal Peace* मे उन्होने शान्ति कायम रखनेके लिए एक सघीय योजना बनायी थी। काण्ट द्वारा निर्धारित सिद्धान्त ये है "सभी राज्योंकी स्वाधीनताकी प्रतिष्ठा, तटस्थताके सिद्धान्तकी स्वीकृति और स्थायी सेनाका क्रमिक उन्मूलन।" उन्होने सभी राज्योंके लिए गणतन्त्रीय सविधानोंका और विश्व नागरिकताका समर्थन किया। पर उनकी शिक्षाओंका घटनाचक्र पर बहुत ही कम प्रभाव पडा।

१९वीं शतीके प्रारम्भमें नैपोलियन ने विश्व-शान्तिकी समस्या पर कुछ ध्यान दिया। यदि हम "लेकास" (*Les Cases*) के अभिलेखों पर विश्वास करें तो, राष्ट्रीयताके आधार पर यूरोपका मानचित्र नये सिरसे बनाना और इन नव निर्मित राज्योंका फ्रांसके नेतृत्वमें एक संघमें शामिल करना ही नेपोलियनके युद्धोंका उद्देश्य था।

२०वीं शती में अन्तर्राष्ट्रीयतावाद राष्ट्र संघ (Internationalism in the 20th Century The League of Nations) अन्तर्राष्ट्रीयताके क्षेत्रमें सबसे अधिक प्रगति २०वीं शतीके प्रथम चरणमें हुई—कमसे कम उपकरण (machinery) की दृष्टिसे। यदि कमी थी तो अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग भावनाकी और अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण की। फिर भी जनमत धीरे धीरे अन्तर्राष्ट्रीयतावादकी ओर झुक रहा था और यह आशा करना युक्ति-संगत हो गया था कि राष्ट्रीयतावाद और साम्राज्यवादकी भांति अब अन्तर्राष्ट्रीयतावादको मनुष्यकी विचार-धाराका एक स्वाभाविक अंग बन जानेमें अधिक समय नहीं लगेगा।

राष्ट्र-संघ (League of Nations) का जन्म १ जनवरी सन् १९२० को हुआ। यद्यपि वह किसी एक अकेले व्यक्ति या किसी एक अकेली पीढ़ीका कार्य नहीं था, फिर भी राष्ट्र संघको एक व्यावहारिक वास्तविकताका रूप देनेमें अन्य किसी भी राजनीतिज्ञकी अपेक्षा बूड्रो विल्सन ने अधिक सहायता दी थी। विल्सन द्वारा घोषित प्रसिद्ध १४ सूत्रोंमें से अन्तिम सूत्रको व्यावहारिक रूप देनेके लिए राष्ट्र संघ की स्थापना हुई थी। इस सूत्रमें उन्होंने घोषित किया था कि सरकारों तथा छोटे राज्योंकी स्वाधीनता तथा प्रादेशिक अखण्डताकी पारस्परिक गारण्टी देनेके उद्देश्यसे निश्चित प्रसंविदाओं (covenants) के अनुसार राज्योंका एक सामान्य संगठन बनाया जाना चाहिए। राष्ट्र संघका श्रीगणेश बुरे ढंगसे हुआ क्योंकि योरोपीय राजनीतिज्ञों का समर्थन प्राप्त करनेके लिए (और इन राजनीतिज्ञोंमें राष्ट्र संघके प्रति केवल मौखिक उत्साह था) विल्सन को उन शान्ति समझौतोंसे राष्ट्र संघको बाँध देना पड़ा जिनमें अनेक अन्यायपूर्ण और अव्यावहारिक शर्तें जुड़ी हुई थीं और जो अशान्त शान्तिकाल (uneasy piece) (१९१९-३९) में उत्पन्न होनेवाली अनेक कठिनाइयों के लिए जिम्मेदार थीं।

राष्ट्रसंघके उद्देश्य प्रसंविदा (covenant) की प्रस्तावनामें इस प्रकार घोषित किये गये हैं —

'इस संघमें शामिल होनेवाले राष्ट्र

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोगका विकास करने और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षाकी सिद्धिके उद्देश्य से,

युद्धका मार्ग न अपनानेका दायित्व स्वीकार करके

राष्ट्रोंके बीच मुक्त न्यायपूर्ण और सम्मानपूर्ण सम्बन्धोंको स्थापित करके,

सरकारोंके बीच पारस्परिक व्यवहारके निमित्त अन्तर्राष्ट्रीय विधिकी धाराओंके उपयोगको दृढ़ता-पूर्वक स्थापित करके,

और सुसगठित राष्ट्रोके बीच पारस्परिक व्यवहारमे न्याय कायम रखकर और जितने भी सधिजन्य दायित्व हो उन सबका पूरी निष्ठासे आदर करते हुए राष्ट्र सघके इस प्रसविदाका स्वीकार करते है"।

प्रसविदाकी धाराओका ध्यानपूर्वक अध्ययन करनेसे राष्ट्र सघके निम्नलिखित उद्देश्य जान पडते है

(क) शान्ति सम्मेलन द्वारा स्थापित यथास्थिति (*status quo*) को स्थायी रूपसे कायम रखना,

(ख) कुछ निश्चित प्रशासकीय और निरीक्षणिक कर्तव्योका पूरा करना, जैसे राष्ट्रोके अल्प सख्यकोकी रक्षा, डैन्जिगके स्वतन्त्र शहरकी देख-रेख, सारघाटीका प्रशासन और समाज्ञापित प्रणाली (mandates system) का कार्यान्वय,

(ग) जन-स्वास्थ्यकी समस्याए, सामाजिक समस्याए, वित्त समस्याए (finances), आवागमन, सचार (communication) तथा तत्प्रकारकी अन्य समस्याओ पर ध्यान देना,

(घ) युद्धोका निवारण (prevention) और झगडोका शान्ति-पूर्ण निपटारा।

राष्ट्र-सघ—सदस्यता और निस्सृति (Membership in the League and Withdrawal) राष्ट्रसघ का प्रारम्भ ४२ प्रारम्भिक सदस्योमे हुआ। प्रसविदाकी धाराओके अनुसार नये सदस्योके प्रवेशके लिए सभाके दो तिहाई सदस्यो की स्वीकृति जरूरी थी। सदस्यताकी शर्त यह थी कि सदस्य बननेवाले राष्ट्रको सघ द्वारा निर्धारित अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वका निभाने और निश्शस्त्रीकरण सम्बन्धी नियमोको पालन करनेका वचन देना पडता था। सैन मैरीनो और आर्मीनिया जैसे बहुत छोटे राष्ट्रोको सदस्यतासे वचित रखा गया था। स्विट्जरलैण्ड को सदस्य बना लिया गया था। यद्यपि उसने यह स्पष्ट कर दिया था कि वह अपनी तटस्थ स्थितिके कारण अपने सैनिक दायित्वोको पूरा नहीं करेगा। सयुक्तराज्य अमरिका सघका कभी सदस्य नही बना क्योकि अमेरिका की सीनेट ने प्रसविदाका स्वीकार नहीं किया। पर अमेरिका ने सघकी अनेक कार्रवाइयामे सहयोग दिया। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायके स्थायी न्यायालयमे कुछ विख्यात अमेरिकियान न्यायाधीशोके पद पर काम किया और हारे हुए देशोसे जो रकमे जीते हुए देशोको युद्धकी क्षतिपूर्तिके लिए देनेके लिए निर्धारित हुई थी (reparations) उनको कम करवा देनेमे कुछ अमेरिकियो का महत्त्वपूर्ण योग था।

राष्ट्र-सघकी सदस्यता छोडनेके लिए दो वर्षकी अग्रिम सूचना आवश्यक थी। पर यदि प्रसविदामे किया गया कोई सशोधन किसी सदस्यका अस्वीकार हो तो सदस्यता से अलग होनेके लिए यह सूचना आवश्यक न थी। अलग होनेके पूर्व अपने सभी दायित्व पूरे कर देना सदस्यके लिए जरूरी था। प्रसविदाका उल्लघन करनेवाले सदस्यको निकाला जा सकता था। द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ होनेसे पूर्व जर्मनी, जापान और इटली, इन तीन राष्ट्रोका, राष्ट्रसघसे अलग होना महत्त्वपूर्ण था।

राष्ट्र-संघके विभाग (The Organs of the League)

(क) असेम्बली या सभा (Assembly) प्रत्येक सदस्यको एक वोट प्राप्त था। सिद्धान्तत इसका मतलब यह था कि राष्ट्रसघका नियत्रण छोटे राज्योंके हाथमे था, क्योंकि बहुमत उन्हीका था। प्रत्येक सदस्य-राष्ट्रको तीन प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार था, पर उनका वोट एक ही होता था। इस सम्बन्धमे भारत और ब्रिटिश साम्राज्यके स्वशासित उपनिवेशोकी गणना पृथक राज्योंके रूपमे होती थी। प्रतिनिधियोंका चयन प्रत्येक देशकी सरकारें करती थी, और इस प्रकार प्रतिनिधि जनताके प्रतिनिधि न होकर सरकारोंके प्रतिनिधि होते थे।

द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ होने तक इस सभाकी बैठक जेनेवामे प्रतिवर्ष एक बार होती थी। विशेष अधिवेशन करनेकी भी व्यवस्था थी। कार्यवाही अंग्रेजी और फ्रान्सीसी भाषामे होती थी। बहुत-सा कार्य समितियोंके द्वारा होता था। राष्ट्र-सघके महत्वपूर्ण कार्योंको करनेके लिए ६ स्थायी समितियां थीं। निर्णायक विवाद (final debates) सभाके पूरे अधिवेशनमे होते थे। सभाकी कार्य-सूची (agenda) सघका महामन्त्री परिषद्के अध्यक्षके परामर्शसे तैयार करता था। पिछले अधिवेशन द्वारा अथवा परिषद् द्वारा या सघके किसी सदस्य द्वारा उठाये गये प्रश्न कार्य-सूचीमे शामिल कर लिये जाते थे। सभाका सभापतित्व एक निर्वाचित सभापति करता था। सभापतिकी सहायताके लिए बारह उपसभापति होते थे जिनमे से ६ उपसभापति स्थायी समितियोंके अध्यक्ष होते थे।

सभाके कार्योंमे से एक कार्य दो तिहाई बहुमतसे नये सदस्योका भरती करना था। परिषदके नौ अस्थायी सदस्योंमसे तीनका निर्वाचन भी प्रतिवर्ष सभा बहुमतसे करती थी। ९ वर्षोंमे एक बार यह सभा, परिषदके सहयोगसे, स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयके पन्द्रह न्यायाधीशो और ४ उपन्यायाधीशोका निर्वाचन भी बहुमतसे करती थी। परिषद द्वारा महामन्त्रीके पदके लिए मनोनीत व्यक्तिकी स्वीकृति भी यह सभा बहुमतसे देती थी। प्रसंविदामे धारा २६ के अनुसार संशोधन करनेका अधिकार भी इस सभाको था।

इस सभाका कार्य क्षेत्र एक विचारक संस्थाके रूपमे बहुत विस्तृत था। राष्ट्रसघ की कार्य परिधिके भीतर आनेवाले और संसारकी शान्तिको संकटमे डालनेवाले किसी भी प्रश्न पर विचार करनेका अधिकार सभाको था। राष्ट्रसघका कोई भी सदस्य सभा या परिषदका ध्यान किसी ऐसे मसलेकी ओर आकर्षित कर सकता था जिससे अन्तर्राष्ट्रीय शान्तिको या राष्ट्रोंके बीच स्थापित सद्भावनाको—जिस पर विश्व शान्ति टिकी थी—खतरा हो रहा हो। सभाको अधिकार था कि सदस्योको ऐसी सन्धियों पर फिरसे विचार करनेकी सलाह दे जो अव्यावहारिक हो चुकी हो।

वार्षिक बजटको स्वीकार करना सभाका विशेष काम था। यह बजट एक आधुनिक युद्ध पोतकी लागतका लगभग पाँचवा भाग ही होता था। सदस्योंके

अनुसार १९३६ मे समारने शस्त्रीकरण पर १ पदम (10 billion) डॉलर खर्च किये थे। पर राष्ट्र सघका औसत बजट ८० लाख (8 million) डालरका ही था अर्थात् शस्त्रीकरण पर खर्च होनेवाली रकमका १/१२५० वा भाग ही होता था। बजट राष्ट्र सघका सचिवालय तैयार करता था। सभा बजटमे सशोधन कर सकती थी और वही तय करती थी कि बजटको पूरा करनेके लिए किस सदस्य राष्ट्रको कितनी रकम देनी चाहिए। समूचे बजटकी रकमको एक हजार इकाइयोमे बाटा जाता था। हर सदस्यके नाम उसके आकार, उसकी जन सख्या और उसके राजनीतिक महत्त्वके अनुसार इकाइयो की कुछ सख्या निश्चित कर दी जाती थी। सम्पूर्ण आयका लगभग आधा भाग सचिवालय पर, तिहाई भाग अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय पर और दसवॉ भाग न्यायालय पर व्यय होता था।

सभाका सगठन ही कुछ ऐसा था कि उसका कार्य सामान्य प्रकृति (general nature) का ही रहा। उसके आकार और उसकी महत्ताने उसके लिए परिषदकी भाँति तेजीसे काम कर सकना कठिन कर दिया। फिर भी सभा परिषदके कार्योका सामान्य निरीक्षण करती थी।

कई एक प्राविधिक सगठन (technical organisations) सभा तथा परिषद की सहायता करते थे। सभाके कार्यामे एक बाधा यह थी कि वह अधिवेशनमे उपस्थित सदस्योकी सर्वसम्मतिके बिना कोई भी निर्णय नहीं कर सकती थी। पर चूँकि उसके अधिकाश कार्य सुझाव या सिफारिशोके रूपमे होते थे इसलिए बहुमत ही काफी समझा जाता था। सभामे भाग लेनवाले प्रतिनिधि अपनी-अपनी सरकारोका प्रतिनिधित्व करते थे, इसलिए वे लोग स्वतन्त्र रूपसे अपना मत नहीं दे सकते थे। उन्हें अपने-अपने देशके वैदेशिक विभागके निर्देशोके अनुसार मत देना होता था।

इन प्रतिबन्धोके बावजूद सभा एक बहुत उपयोगी सस्था थी। अन्तर्राष्ट्रीय शिकायतों और झगडो पर विचार विमर्श करनेके लिए वह एक अच्छे मचका काम करती थी। किसी देशके ऐसे आन्तरिक मसलो पर भी, जिनके सम्बन्धमे राष्ट्र सघ की कोई भी सस्था पचायतका काम नहीं कर सकती थी, सभा द्वारा ग्यारहवीं धाराके अन्तर्गत विचार किया जा सकता था, और यदि ऐसे मसलेका कोई अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व होता था तो उसके बारेमे ऐसी सन्धि कराई जा सकती थी जो उस सन्धिका स्वीकार करनेवाले राष्ट्रो पर लागू होती थी। यद्यपि परिषद अधिक प्रभावपूर्ण थी पर जापान द्वारा मचूरियाको हडपनेके मामलेमे तो सभा परिस्थितिका निराकरण बहुत अधिक प्रभावपूर्ण ढगसे कर सकनेमे समर्थ हुई।

(ख) **परिषद (The Council)** परिषदके सदस्य तीन कोटिके होते थे। (१) स्थायी (२) अस्थायी और (३) विशेष। स्थायी सदस्य वे मित्र राष्ट्र थे जिन्होंने १९१८ में युद्ध जीता था। जर्मनीको १९२६ मे परिषदका स्थायी सदस्य बनाया गया पर राष्ट्र सघको छोडने पर उसने यह सदस्यता भी खो दी।

प्रतिवर्ष परिषदकी चार नियमित बैठकें होती थीं। विशेष अधिवेशनोंके लिए भी व्यवस्था थी। प्रत्येक अधिवेशनके आरम्भमें राष्ट्रसंघका महामंत्री बतलाता था कि परिषदके पिछले निर्णयोंको कार्यान्वित करनेके लिए क्या-क्या किया गया। परिषद के अध्यक्ष और उपाध्यक्षका निर्वाचन प्रतिवर्ष बहुमत द्वारा होता था। एक ही व्यक्ति पुनः दूसरे वर्षके लिए नहीं चुना जा सकता था।

अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ोंको निपटाना परिषदका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था। जिन झगड़ोंमें दोनों पक्ष पंचायत अथवा अदालतमें फैसला करवाना अस्वीकार कर देते थे और जो झगड़े इन तरीकोंसे नहीं निपटाये जा सकते थे उनके लिए प्रसंविदामें यह व्यवस्था थी कि उन्हें परिषदके पास उचित कार्रवाईके लिए भेजा जाय। इसका मतलब यह था कि वे झगड़े जिनका अदालती फैसला नहीं हो सकता था अथवा 'राजनीतिक' झगड़े परिषदकी अधिकार सीमाके अन्दर आते थे। जब तक कोई भी विवाद परिषद या सभाके विचाराधीन होता था तब तक सम्बन्धित पक्षोंके लिए यह आवश्यक था कि वे युद्ध न करें।

परिषदकी शक्तिका सदस्य राष्ट्रोंके बीच सन्धियों द्वारा बढाया जा सकता था। परिषदको प्रसंविदा भंग करनेवाले राज्यके विरुद्ध अनुशास्तिमूलक कदम उठानेका अधिकार था। परिषद और सभा दोनों मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयके न्यायाधीशों का निर्वाचन और महामंत्रीकी नियुक्ति करती तथा परिषदके सदस्योंकी संख्या बढाती थीं। सभाकी तरह परिषदमें भी सभी निर्णयों और निश्चयोंके लिए सर्वसम्मतिसे स्वीकृति आवश्यक थी। पर कार्यविधि (procedure) तथा इसी प्रकारके अन्य मामलों में बहुमत ही काफी होता था। प्रसंविदाने सभा और परिषदके पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट तौर पर निश्चित नहीं किये थे। कुछ लोगोंने इन दोनों संस्थाओंकी तुलना आधुनिक व्यवस्थापिकाके दो सदनोंसे की है और कुछ लोगोंने सभाकी तुलना संसद से और परिषदकी तुलना मन्त्रिमण्डलसे की है। ये दोनों ही तुलनाएं भ्रामक हैं। सभाका कार्य अधिकांश रूपमें विधायी (legislative) नीतिमें रहता था और परिषद का कार्य अधिकांश रूपमें अर्ध-न्यायिक (semi-judicial) और प्रशासकीय (administrative) होता था।

(ग) **सचिवालय (The Secretariat)** सचिवालय राष्ट्र संघका स्थायी प्रशासकीय विभाग था। इसे अन्तर्राष्ट्रीय प्रशासकीय अधिसेवा (civil service) कहा जा सकता है। कार्यपालिका न होते हुए भी इसे प्रशासकीय अधिकार प्राप्त थे। इसका प्रधान राष्ट्रसंघका महामंत्री होता था, जिसकी नियुक्ति सभाके बहुमतके अनुमोदनसे परिषद करती थी। अन्य मन्त्रियों और सदस्योंकी नियुक्ति परिषदके अनुमोदनसे महामंत्री स्वयं करता था। सचिवालयमें नियुक्त किये जानेके लिए कोई प्रतियोगी परीक्षा नहीं होती थी, पर नियुक्ति करनेमें इस बातका ध्यान रखा जाता था कि व्यक्तिमें अपने पदके अनुकूल योग्यता हो और सचिवालयके पदोंके वितरणका अनुपात राष्ट्र संघके सदस्य राष्ट्रोंके बीच उचित रूपमें बना रहे।

नियुक्ति हो जाने पर नियुक्त किये गये व्यक्तिका अपनेको राष्ट्र सघका सेवक मानना होता था, न कि उस राष्ट्रका जिसका वह नागरिक होता था। सचिवालयके सदस्योंके कर्तव्य राष्ट्रीय न होकर अन्तर्राष्ट्रीय होते थे। सचिवालयके सदस्योंको अपने कार्यकालमें अपनी सरकारोंसे किसी प्रकार का सम्मान या पदवी आदि प्राप्त करनेकी आज्ञा नहीं थी।

सचिवालयका काम था आकड़े एकत्र करना, परिषद और सभाके अधिवेशनोंके लिए कार्यसूची बनाना, अधिवेशन सम्बन्धी रिकार्ड रखना, सदस्य राष्ट्रोंका उनकी मजूरीके लिए निर्णयों और प्रबन्धों (arrangements) की सूचना देना, सूचना और कार्रवाईके लिए लिये गये सुझावोंको भेजना। रिपोर्ट तैयार करना और तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओंको सुलझानेके लिए सुझाव देना। सचिवालय राष्ट्र सघका अधिकारिक-पत्र (official journal) प्रकाशित करता था जिसमें सभा तथा परिषदकी कार्यवाही छपती थी। अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंमें सचिवालय एक स्थायी सलाहकारका काम करता था।

(घ) **अन्तर्राष्ट्रीय न्यायका स्थायी न्यायालय (The Permanent Court of International Justice)** १९२० में इस न्यायालयकी स्थापनासे पहले सही मानेमें कोई अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय था ही नहीं स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की बात तो दूर है। इस न्यायालयको उन सभी अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर निर्णय देने का अधिकार प्राप्त था जो सम्बन्धित पक्षों द्वारा निर्णयके लिए उसके सामने पेश किये जाते थे। परिषद अथवा सभा द्वारा भेजे गये सभी मामलों पर न्यायालय परामर्शमूलक सम्मत्ति भी देता था। यद्यपि इस सम्मत्तिका मान लिया जाना अनिवार्य नहीं था पर वह प्रायः स्वीकार कर ली जाती थी। राष्ट्र सघ के प्रसविदाकी व्याख्या करना न्यायालयके कार्यक्षेत्रसे बाहर था। यह काम सदस्य राष्ट्र करते थे।

इस न्यायालयके अधिकार पूर्ववर्ती हेग न्यायालयकी अपेक्षा बहुत अधिक व्यापक थे। न्यायालयको सन्धियों और अन्तर्राष्ट्रीय विधि सम्बन्धी प्रश्नोंकी व्याख्या करने, अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व भग करनेके दण्ड रूप मुआवजेकी रकम और उसका स्वरूप तय करने और यह निर्णय करनेका अधिकार था कि ऐसी कोई स्थिति है या नहीं जिसके प्रतिष्ठित हो जाने पर अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व भग हो जाय। पर इन मामलोंमें न्यायालयका अधिकार-क्षेत्र केवल उन्हीं सदस्य राष्ट्रों पर लागू होता था जो "वैकल्पिक धारा (optional clause)" पर हस्ताक्षर कर देते थे। न्यायालय द्वारा तय न किये जा सकने वाले मामलोंको राष्ट्र सघके सदस्य परिषदके सम्मुख जॉच-पड़ताल अथवा पचायती फैसलोंके लिए पेश करते थे। बन्दरगाहों, जल मार्गों, रेलों तथा अन्य ऐसे ही मामलों पर न्यायालयका पचायती फैसला अनिवार्य होता था।

निर्णय बहुमत द्वारा किये जाते थे और उनके विरुद्ध कोई अपील नहीं होती थी। पर यदि मामलेसे सम्बन्धित किसी पक्षको कोई ऐसा नया तथ्य मालूम हो जाय, जिसका इस मामलेसे सम्बन्ध हो तो वह निर्णय पर फिरसे विचार करनेकी माँग

"तथ्य ज्ञात होनेसे ६ महीनके भीतर और निर्णयके १० वर्षके भीतर कर सकता था (द ४८८)"। निर्णय देनेमें न्यायालय अन्तर्राष्ट्रीय परम्पराओंका और इन परम्पराओंके अन्तर्गत उन नियमोंका उपयोग करता था जो संविदा करनेवाले राज्यों की स्वीकृतिसे बनते थे। अन्तर्राष्ट्रीय प्रथाओं, सभ्य राज्यों द्वारा स्वीकृत विधिके सामान्य सिद्धान्तों और विगत न्याय शास्त्रियोंके निर्णयों तथा प्रसिद्ध विधि लेखकों की सम्मतियोंका भी उपयोग किया जाता था।

१९३० में न्यायाधीशोंकी गणना १५ और उनकी कार्यावधि ९ वर्ष थी। न्यायाधीशोंके निर्वाचनकी प्रथा कुछ ऐसी थी कि न्यायालयकी बेन्चमें छोटे और बड़े सभी राष्ट्रोंके प्रतिनिधि बैठते थे। यदि किसी मामलेके पक्ष या विपक्षके किसी राष्ट्रका नागरिक न्यायाधीशके रूपमें बेन्चमें नहीं होता था तो वह एक न्यायाधीश चुन सकता था। नियुक्तिकी शर्तोंको पूरा न करने पर अपने सहयोगियोंकी सर्वसम्मति से किसी भी न्यायाधीशको उसके पदसे हटाया जा सकता था।

(ङ) **अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन (The International Labour Organisation)** अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठनमें, (१) सार्वजनिक अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सम्मेलन, (२) शासिका परिषद और (३) अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक कार्यालय शामिल थे। जनरल अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सम्मेलनमें प्रत्येक सहयोग करनेवाली सरकारके चार प्रतिनिधि होते थे। इनमेंसे दो सरकारके, एक पूंजीपति वर्गका और एक मजदूर वर्गका प्रतिनिधि होता था। यद्यपि पूंजीपति और मजदूर वर्गके प्रतिनिधियों का चुनाव भी प्रत्येक देशकी सरकार ही करती थी फिर भी यह चुनाव सम्बन्धित औद्योगिक संगठनके परामर्शसे होता था। प्रतिनिधियोंको व्यक्तिगत रूपसे अपना मत देनेका अधिकार प्राप्त था। इससे यह सम्भव था कि सम्मेलनके सभी श्रमिक वर्गके प्रतिनिधि पूंजीपतियोंके प्रतिनिधियोंके विरुद्ध वोट दे। जो राज्य राष्ट्र संघ के सदस्य नहीं थे उन्हें भी प्रतिनिधि भेजनेकी अनुमति थी।

सम्मेलन दो तिहाई मतोंसे प्रस्तावोंको स्वीकार करता था। ये प्रस्ताव सिफारिशों अथवा अभिसमयों (conventions) के रूपमें होते थे। दोनों ही अवस्थाओंमें उन्हें लागू करनेके लिए सम्बन्धित सरकारोंकी स्वीकृति आवश्यक थी। सरकारों द्वारा स्वीकार कर लिये जाने पर वे देशकी विधियोंकी भांति ही शक्तिमान हो जाते थे। सभी सिफारिशों या अभिसमयोंको सम्बन्धित देशोंके राष्ट्रीय विधान मण्डलों अथवा अन्य उपयुक्त संस्थाओंके समक्ष कार्रवाईके लिए एक वर्षके भीतर ही पेश करना होता था। भले ही उस देशके प्रतिनिधियोंने सम्मेलनमें उसके विरुद्ध ही अपना मत दिया हो। इस धाराका दृढता पूर्वक पालन नहीं किया गया।

शासिका परिषदमें २४ सदस्य होते थे। बारह सरकारी प्रतिनिधि, छः मजदूर वर्गके प्रतिनिधि और छः पूंजीपतियोंके प्रतिनिधि। इनका कार्यकाल तीन वर्षका होता था। बारह सरकारी प्रतिनिधियोंमें से आठकी नियुक्ति संसारके प्रधान औद्योगिक देशों द्वारा की जाती थी और चार सम्मेलन द्वारा चुने जाते थे। पूंजी-

पतियों और श्रमिकोंके प्रतिनिधियोंका चुनाव सम्मेलनमें पूँजीपतियों तथा श्रमिकोंके प्रतिनिधि करते थे।

शासिका-परिषद्का अधिवेशन हर तीसरे महीने होता था। परिषद् सम्मेलनकी कार्यावलि (agenda) तैयार करती थी, अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक कार्यालयके सचालककी नियुक्ति और कार्यालयके कामका निरीक्षण करती थी। सचालककी देख-रेखमें अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक कार्यालय 'अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्बन्धी सूचनाएं एकत्र करता है और उन्हें अनेक रूपोंमें प्रकाशित करता है, वार्षिक सम्मेलनोंके लिए कार्यावलि तैयार करता है, श्रमिक सन्धियोंका स्वीकार करनेकी राज्योंसे माँग करता है और उनके कार्यान्वयका निरीक्षण करता है (८ १५९)। इसने बड़ा महत्त्वपूर्ण सहायक कार्य किया है और ऐसी कठिनाइयोंको हटानेमें सहायता की है जिनके हटनेसे श्रमिक सन्धियां स्वीकार की जा सके।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सगठनका प्रधान उद्देश्य सारे ससारमें एक सी श्रमिक विधि लागू करनेका था यद्यपि जापान, चीन और भारतके मामलोंमें भिन्न जलवायु तथा परिस्थितियोंके कारण कुछ अपवाद भी किये गये। जो उपयोगी परम्पराएं मजूरकी गई उनमेंसे एक, आठ घण्टे प्रतिदिन और अड़तालिस घण्टे प्रति सप्ताह कार्यका निश्चय है। ऐसी ही एक दूसरी परम्परा थी —१४ वर्षसे कम उम्रके बच्चोंको नौकर रखने पर निषेध। जहाँ तक भारतका सम्बन्ध है, १४ वर्षसे कम उम्रके बच्चों को केवल खानों, फैक्टरियों तथा यातायातमें काम करनेसे रोका गया।

जिन राष्ट्रोंने इन अभिसमयों (conventions) को स्वीकार कर लिया था वह हमेशा इनका पालन नहीं करते थे। शासिका परिषद्को इस बातका अधिकार था कि वह इस तरहके उल्लघनोंका प्रकाशन करे और राष्ट्रसघके महामत्रीसे कहे कि वह ऐसे उल्लघनोंका जाच करनेके लिए आयोग नियुक्त करे। यदि आयोगकी रिपोर्टसे कोई पक्ष असन्तुष्ट होता था तो उसे स्थायी न्यायालयमें अपील करनेका अधिकार था। और इस न्यायालयका निर्णय अन्तिम होता था। न्यायालय अथवा जाँच-पड़ताल करनेवाला आयोग अपराधी राष्ट्रके विरुद्ध आर्थिक कारवाईका आदेश दे सकता था। यद्यपि ऐसा कभी किया नहीं गया।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सगठन अपनी अक्षमताओं और सीमाओंके बावजूद उपयोगी सस्था थी। यह सगठन राष्ट्रसघके कार्योंमें एक प्रशसनीय कार्य था। श्री लास्की ने इन श्रम सम्बन्धी अभिसमयोंका महत्त्व इस प्रकार आका है—(क) ये अभिसमय ससारके सम्मुख औद्योगिक जीवनके उस न्यूनतम मानदण्डकी घोषणा करती हैं जो आधुनिक राज्योंकी सामान्य चेतना (common consciousness) का स्वीकार होता है। (ख) प्रत्येक सम्बन्धित राष्ट्रके मजदूर और दोनोंके हाथोंमें वह एक यथार्थ शक्ति है। (ग) सारे ससारमें गरीब लोगोंके कल्याणके लिए विधि निर्माणका जो मानदण्ड आवश्यक है उसे स्वीकार करवानेके लिए राज्यों पर दबाव डालनेका यह साधन है।

राष्ट्र-सघका मूल्यांकन (Appraisal of the League of Nations).

राष्ट्रसंघके बड़ेसे बड़े समर्थक भी यह दावा नहीं कर सकते कि उसे पूर्ण सफलता मिली। यद्यपि राष्ट्रसंघने बहुत भलाई की पर अनेक मामलोंमें वह युद्ध और अन्याय को रोक नहीं सका, विशेषकर चीन, अबीसीनिया और स्पेन में। फिर भी यह ठीक दिशामें उठाया गया कदम था। उसकी असफलता अधिकतर 'उच्च राजनीति' में रही। गैर राजनीतिक मामलोंमें अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग स्थापित करनेमें उसे काफी सफलता मिली, विशेषकर श्रम सम्बन्धी मामलोंमें। वह सम्प्रभु राज्योंका संगठन था। आवश्यकता है जनताके संगठनकी। केवल ऐसी सरकारोंका संगठन कभी सफल नहीं हो सकता जिनमेंसे प्रत्येक सरकार अपना उल्लू सीधा करनेकी ताकमें हो रहे।

जिन लोगोंने राष्ट्रसंघका महत्व आंकनेका प्रयत्न किया है उनमेंसे अधिकांशने अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ोंको शान्तिमय साधनोंसे सुलझाने और युद्ध रोकनेकी उसकी सामर्थ्य के आधार पर उसका मूल्य आंका है। इस दृष्टिकोणसे राष्ट्रसंघ अधिकतर विफल रहा है। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि राष्ट्रसंघ वरसाईकी सन्धिके साथ जुड़ा हुआ था, जिसकी एक धाराके अनुसार जर्मनीको "युद्धका दोषी" ठहराया गया था और उसे युद्धकी तमाम लागतका उत्तरदायी बताया गया था। क्षतिपूर्तियोंकी कानूनी कहानी ने और रूर (Ruhr) प्रान्त पर अधिकार करनेकी कथा ने राष्ट्रसंघको बहुत बदनाम कर दिया था। राष्ट्रसंघको बदनाम करने वाले कुछ अन्य कारण यह हैं फ्रान्सके हितमें सार-घाटी पर राष्ट्रसंघकी न्यासधारिता (Trusteeship) स्थापित करना, डैन्जिगको राष्ट्रसंघ और पोलैण्डका सम्मिलित रक्षित राज्य बनाना, मेमेल बन्दरगाह पर, जो लिथुआनिया को दिया गया था, राष्ट्रसंघका शासन कायम करना।

राष्ट्रसंघके प्रसंविदा (covenant) का एक दोष यह है कि उसमें इस बातकी कोई व्यवस्था नहीं की गई कि सन्धियों पर फिरसे शान्तिमय उपायोंसे विचार किया जा सके। उसकी उन्नीसवीं धारा प्रारम्भसे ही निर्जीव बनी रही। अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ोंको शान्ति पूर्वक सुलझानेके लिए बड़ी सावधानीसे व्यवस्था की गयी पर सदस्य राज्योंने उसके प्रति कोई उत्साह नहीं दिखाया। झगड़ोंको दो भागोंमें बांटा गया (१) अन्तर्राष्ट्रीय और (२) घरेलू। और फिर अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंके भी दो भाग किये गये (१) वैधिक और (२) राजनीतिक। वैधिक झगड़े पंचनिर्णयके लिए होते थे और राजनीतिक या न्यायाधिकरणके क्षेत्रमें न आने वाले मामले, जिनका सम्बन्ध देशोंके राष्ट्रीय सम्मान, महत्त्वपूर्ण स्वार्थों आदिसे होता था, जांच-पड़ताल तथा पारस्परिक समझौते या अन्य किसी कार्रवाईके लिए परिषद्के पास और कभी-कभी सभाके पास भेजे जाते थे।

प्रसंविदाके अनुसार यदि कोई झगड़ा परिषद् या सभा अथवा समझौता आयोग (commission of conciliation) के विचाराधीन होता था तो उस समय दोनों पक्षोंको युद्ध बन्द रखना पड़ता था। परिषद् उचित जांच-पड़ताल करनेके बाद दोनों पक्षोंमें समझौता करानेकी कोशिश करती थी। यदि वह समझौता करानेमें असफल होती थी तो झगड़ा पेश किये जानेके ६ महीनेके अन्दर ही वह अपनी रिपोर्ट और

सुझाव प्रकाशित कर देती थी। यदि यह रिपोर्ट झगड़ेसे सम्बन्धित राष्ट्रोंके अतिरिक्त अन्य सदस्य राष्ट्रोंकी सर्वसम्मतिसे होती थी और यदि झगड़ेमें सम्बन्धित एक राष्ट्र भी उसे स्वीकार कर लेता था तो दूसरे राष्ट्रके लिए यह आवश्यक था कि वह युद्धका सहारा न ले। हर हालतमें परिषदके निर्णय अथवा रिपोर्टके बाद तीन महीने तक दोनों ही पक्षोंके लिए यह आवश्यक था कि वे युद्ध न आरम्भ करें।

राष्ट्र संघको छोटे छोटे मामलोंके सुलझाने में सफलता मिली। राष्ट्र संघ आलैंण्ड (Aaland) द्वीपों और १९२५ के ग्रीस बलगेरियाके सीमाके झगड़ोंको सुलझानेमें सफल हुआ। पर वह १९३१–३२ के चीन जापानके युद्धको न रोक सका। इस मामलेमें राष्ट्र संघने हीलेहवाले का मार्ग अपनाया और लिटन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट तब प्रकाशित की जब चिड़िया खेत चुग चुकी थी। रिपोर्टने जापानके विरुद्ध किसी प्रकारकी अनुशास्ति (sanction) की सिफारिश नहीं की।

इटली और अबीसीनियाके युद्धके प्रश्न पर राष्ट्र संघको सबसे अधिक दुखदायी असफलता मिली। बहुत लम्बे विलम्बके बाद इटलीके विरुद्ध आर्थिक अनुशास्तियां (economic sanctions) लागू की गई पर तेलके बारेमें फिर भी नहीं की गई। इस मामलेमें फ्रान्स अपनी जिम्मेदारी पूरी नहीं करना चाहता था। इसका कारण यह था कि फ्रान्स चाहता था कि जर्मनीके विरुद्ध किसी भी भावी संघर्षमें इटली फ्रान्सका शक्तिशाली मित्र बना रहे। इंग्लैण्डने अनुशास्तियोंका प्रयोग आधे मनसे किया और उसने यह स्पष्ट कर दिया कि वह इटलीसे युद्ध मोल लेनेको तैयार नहीं है। अमरिका राष्ट्र संघका सदस्य नहीं था पर वह इटलीके विरुद्ध अनुशास्तियां लागू करनेके लिए तैयार था और उसने लागू की भी। पर अमेरिकाके तत्कालीन राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने यह घोषणा कर दी थी कि यदि व्यक्तिगत अमेरिकी व्यापारी स्वयं अपने खतरे पर इटलीको तेल भेजना चाहें तो अमरिकी सरकार उसमें बाधा नहीं डालेगी। अनुशास्तियों के इस प्रकार बेमन और अनुत्तेजक ढंगसे लागू किये जानेका परिणाम यह हुआ कि अबीसीनियाको आंशिक सहायता भी न मिल सकी, पर इटलीने शीघ्र विजय प्राप्त करनेके उद्देश्यसे क्रुद्ध होकर युद्धको और भी बर्बर बना दिया। इस प्रकार 'सामूहिक सुरक्षा' 'सामूहिक संकट' बन गई।

युद्धका उदवंध करना (The Outlawry of War) राष्ट्रसंघके सदस्य राष्ट्रों और बाहरी राष्ट्रों द्वारा युद्धका परित्याग करने और रक्षात्मक सन्धियां करनेके अनेक प्रयत्न किये गये। पर ऐसे एकसे अधिक प्रयत्न राष्ट्र संघके सदस्योंका समर्थन प्राप्त करनेमें असफल रहे। उदाहरणके लिए पारस्परिक सहायताकी सन्धिका प्रारूप (Draft Treaty of Mutual Assistance 1923) और जेनेवा पूर्वपत्र, १९२४ (Geneva Protocol, 1924), लोकार्नो सन्धियां जो इंग्लैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, इटली, बेल्जियम, पोलैण्ड और जैकोस्लोवाकियाके बीच १९२४ में हुईं पारस्परिक गारण्टीकी सन्धियां थीं। पर जेनेवा पूर्वपत्रकी तरह इन सन्धियोंके बारेमें भी कठिनाई यह थी कि यथास्थितिको बदलनेके लिए किसी शान्तिपूर्ण साधनकी व्यवस्था नहीं

की गई थी। अमेरिका और फ्रान्स द्वारा प्रारम्भ किये गये १९२८ के केलाग ब्रायण्ड समझौतेमे राष्ट्रीय नीतिके रूपमे युद्धका त्यागने और समझौतेके शान्तिपूर्ण उपायो को ही अपनानेका उपक्रम किया गया। इसमे हस्ताक्षर करनेवालोने हमेशाके लिए युद्ध त्यागनेकी शपथ ली थी।

इस समझौतेमे बडे-बडे सिद्धान्त तो बना दिये गये किन्तु कोई ऐसे उपकरणका प्रबन्ध नही किया गया जिससे समझौतेको लागू किया जा सके। इसका स्वरूप नकारात्मक ही रहा। (The pact was too sweeping and general in its nature It was also negative and did not provide machinery for its enforcement)। हमारा पिछला अनुभव बताता है कि दीर्घकालीन मैत्रीकी शपथे और युद्ध न करनेके समझौते असफल रहे है। जब राज्यकी सुरक्षा खतरेमे पडती है तब अनेक राष्ट्र अपनी शपथोको तोड देते है और सन्धियोको रद्दी कागजका टुकडा समझते है। इसके अलावा, आत्मरक्षा या पारस्परिक सहायता जिनका कि लोकार्नो की सन्धियोमे इजाजत मिली हुई थी, पहलेके समझौतोमे संरक्षणोके रूपमे जायज थीं (Besides, the reservations incorporated in the past were such as not to exclude the right of self defence or mutual assistance promised in the Locarno Treaties)। सभी आधुनिक युद्धोमे, लडनेवाले दोनो पक्ष, 'रक्षात्मक' ही बताते है। उदाहरणके लिए जापानका यह कहना था कि मञ्चूरियामे उसकी सैनिक कारवाई और न तो उसका आयोजन (annexation) न तो लीगके प्रसविदाका उल्लंघन था और न केलाग-ब्रायण्ड समझौतेका, जिन दोनो पर जापान अपने हस्ताक्षर कर चुका था। जापानका कहना था कि न तो मञ्चूरियाने और न स्वयं जापानने वैधिक युद्ध स्थिति घोषित की थी। और जापान अपने हितोकी रक्षाके लिए कारवाई कर रहा था। इसलिए "केलाग-ब्रायण्ड समझौतेका महत्त्व युद्धका बहिष्कार करनेके अस्त्रके रूपमे केवल प्रतीकात्मक, नैतिक, शिक्षात्मक और प्रचारात्मक ही था (७० ६६७)।" उसने व्यावहारिक राजनीति की कठोर वास्तविकताका स्पर्श तक नही किया था।

निश्शस्त्रीकरण (Disarmament) युद्धका बहिष्कार करनेके प्रयत्नके समान ही निश्शस्त्रीकरणके प्रयत्नमे भी अधिक सफलता नही मिली। वॉशिंगटन सम्मेलनसे कुछ परिणाम अवश्य निकला यद्यपि उसका आयोजन संयुक्तराज्य अमेरिकाकी सरकारने किया था, राष्ट्रसंघने नही। राष्ट्रसंघने स्थायी सलाहकार समिति और अस्थायी मिश्रित आयोगके माध्यमसे निश्शस्त्रीकरणके लिए प्रयत्न किया पर दोनो ही प्रयत्न असफल रहे। १९३२ मे राष्ट्रसंघके तत्त्वावधानमे निश्शस्त्रीकरण सम्मेलन जेनेवामे हुआ। सम्मेलनमे विचार तो बहुतसे प्रस्तावो पर किया पर नतीजा कुछ भी नही निकला। रूसने एक बार सम्मेलनमे तात्कालिक पूर्ण निश्शस्त्रीकरणका प्रस्ताव रखा पर अन्य सदस्योने यह प्रस्ताव स्वीकार नही किया।

अनुशास्तियां (Sanctions) राष्ट्रसंघके प्रसविदामे आर्थिक, सैनिक और

राजनीतिक अनुशासनिकी व्यवस्थाकी गई थी। इटली और अबीसीनियाके युद्धके दौरानमे अनेक राज्योने अनेक वस्तुओंके बारेमे आर्थिक अनुशासनका प्रयोग किया था पर इसका प्रयोग तेलके बारेमे नहीं किया गया जो इटलीके लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु थी। राष्ट्रसघ अपने किसी भी सदस्यको अनुशासनिया लागू करनेके लिए मजबूर नहीं कर सकता था। सैनिक अनुशासनियाका कभी प्रयोग नहीं किया गया। इसके अनुसार परिषद्के सुझाव पर राष्ट्र सघके सदस्य-राष्ट्रोंकी सैनिक शक्तिका प्रयोग किया जा सकता था। राजनीतिक अनुशासनिका मतलब था राष्ट्रसंघके प्रसंविदाका भग करने पर सघकी सदस्यतासे बहिष्कृत किया जाना। १९३९ मे रूस के साथ ऐसा ही किया गया था।

राष्ट्रसघके सफल कृत्य (Successful Activities of the League) यद्यपि राष्ट्रसघको न तो युद्ध रोकने मे, न बड़े राष्ट्रोंको छोटे या अव्यवस्थित राज्योंके भू प्रदेश हड़पना रोकनेमें और न सुरक्षाकी व्यवस्थाके लिए अनुशासनिया लागू करनेमें सफलता मिली, फिर भी अन्य क्षेत्रोंमें उसे काफी सफलता प्राप्त हुई।

(१) **अल्प-सख्यकोंका सरक्षण (Protection of Minorities)** अल्प-सख्यक आयोग और परिषदके माध्यमसे अल्प सख्यकोंके अधिकारोंकी रक्षा करनेमे राष्ट्र सघने सफल काय किये। जिन अधिकारोंकी रक्षाकी गई वे ये थे (क) समान राजनीतिक और नागरिक अधिकार, (ख) अपने देशके सरकारी पदों पर नियुक्ति, (ग) गैर सरकारी कार्यों (private intercourse) मे, व्यवसायमे, धार्मिक कायोमे और समाचार-पत्रोंमे तथा प्रकाशनोंमे उनकी मातृभाषाका प्रयोग, (घ) जिन जिलों मे अल्पसख्यक अधिक सख्यामे हो उनमे उनकी भाषाके माध्यमसे पढ़ाईकी व्यवस्था।

अल्प-सख्यकोंके अधिकारोंके अतिक्रमण या अतिलघन (infringement), की धमकी या आशकाकी सूचना परिषदको उसका कोई सदस्य दे सकता था। परिषद को इन मसलोमे बड़ी सावधानीसे काम करना पड़ता था ताकि सरकारोंकी भावना को ठेस न पहुचने पाये। अल्प-सख्यकोंके प्रार्थना-पत्रोंको शिकायतोंके रूपमे न लेकर सूचना सूत्रोंके रूपमे लिया जाता था। सभी प्रार्थना पत्रों पर हस्ताक्षर होने आवश्यक थे। प्रार्थना पत्रकी भाषा कड़ी नहीं हो सकती थी। महासचिव इस बातका निर्णय करता था कि कोई प्रार्थना पत्र स्वीकार किये जाने योग्य है या नहीं।

(२) **वैधिक-कार्य-कलाप (Legal Activities)** अनेक महत्त्वपूर्ण और उपयोगी अन्तर्राष्ट्रीय सधियों और समझौतों तथा कायक्रमोंके मसविदे तैयार करने का श्रेय राष्ट्र सघको है। यदि वे सब राष्ट्रों द्वारा स्वीकार नहीं की गई तो इससे उनके महत्त्वमे कोई कमी नहीं आती। राष्ट्रीयताके प्रश्न पर समुद्री जल प्रागणो (territorial waters) के प्रश्न पर और राजकीय उत्तरदायित्वके प्रश्न पर सहिता-करण (codification) का भी प्रयत्न किया गया। राष्ट्र सघने सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण वैधिक कार्य स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयके जरिये किया।

(३) **प्राविधिक कार्य-कलाप (Technical Activities)** (क) **आर्थिक तथा वित्तीय (Economic and Financial)** १९२१ २२ मे जब ऑस्ट्रिया का आर्थिक पतन होनेवाला था तब राष्ट्र सघने उसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय ऋणकी व्यवस्थाकी और उसे अपने पैरो पर खडे होनेमे सहायता दी। इसी प्रकारकी सहायता हगरी, ग्रीस और बल्गेरिया को दी गई। यह सहायता उन शरणार्थियोंको बसानेके लिए दी गई थी जो युद्धके बाद, ग्रीस और बल्गेरिया की सीमाओमे परिवर्तन होनेके कारण बे-घर बार हो गये थे। १९२० के ब्रसेल्स सम्मेलनको, १९२७ के जेनेवा सम्मेलनको और १९३३ के लन्दन सम्मेलनको राष्ट्र सघने महत्व-पूर्ण वित्त-सम्बन्धी परामर्श दिये थे। ये तीनो ही सम्मेलन अन्तर्राष्ट्रीय थे। "राष्ट्रीय समस्याओ पर अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोणसे विचार करने" मे राष्ट्र सघने सहायता दी (८५ १३८)। सीमा शुल्क (customs), कुछ खास वस्तुओंके निर्यात तथा जाली सिक्कोकी रोकथाम करने आदिके सम्बन्धमे राष्ट्र सघने कुछ अन्तर्राष्ट्रीय प्रथाएँ कायम की।

(ख) **सचार और पारगमन (Communications and Transit)** राष्ट्र सघने प्रशासकीय औपचारिकताओं (administrative formalities) को इसलिए बहुत सरल बना दिया कि यात्रियो और मालके यातायातमे सुविधा हो जाय। १९२० मे सार्वजनिक उपयोगके लिए एक आदर्श पारपत्र (passport) स्वीकार किया गया और पारपत्रो और प्रवेश-पत्रो (visa) के सम्बन्धमे प्रचलित कठोर नियमोंको हटानेकी माँग की गई। अन्तर्राष्ट्रीय नदियोंमे यातायात सामुद्रिक सकेत (maritime signals), उत्प्लावन दिग्दर्शक (buoyage), समुद्री तटो पर प्रकाश तथा सडकोंके यातायात आदिके सम्बन्धमे कुछ परम्पराओंकी स्थापना की गई। इन सब मामलोमे राष्ट्र सघका उद्देश्य यह था कि विभिन्न देशोकी पृथक पृथक रीतियो और नियमोंको एकरूप और सरल बना दिया जाय जिससे सभी देशोंके नागरिको का लाभ हो। अन्तर्देशीय जहाजरानी सम्बन्धी कुछ प्रश्नोको सुलझानेके लिए पोलैण्डकी सरकार को तथा सडको और कुछ अन्य मार्गोंके सुधार और विकासके बारेमे चीनकी सरकार को विशेषज्ञोंकी सहायता दी गई।

(ग) **स्वास्थ्य (Health)** प्रथम विश्व-युद्ध समाप्त होते ही राष्ट्र सघको पूर्वी योरोपमे टाइफस ज्वर और हैजेके प्रकोपका सामना करना पडा और एशिया माइनर से लौटे हुए ग्रीक शरणार्थियोमे फैली हुई चेचककी बीमारीसे उन्हे बचानेका प्रयत्न भी करना पडा। उस समय तक राष्ट्र सघकी स्वास्थ्य सगठनकी शाखाकी स्थापना भी न हो पाई थी फिर भी उसने इन विपत्ति ग्रस्त लोगोका सुधार किया, उन्हे साज सामान की तथा डॉक्टरी सहायता पहुँचाई। सिंगापुरका पतन होनेसे पहले ही राष्ट्र सघने वहाँ पर एक महामारी शोधक स्थायी सूचना अधिकोष की स्थापना कर दी थी। यह लोग बीमारियोंको फैलने और उनसे होनेवाली घटनाओंके आँकडे एकत्र करके उनकी सूचना राष्ट्र सघके सचिवालयको भेजते थे जहाँ उनका

सकलन होता था और उन्हें साप्ताहिक तथा त्रैमासिक स्वास्थ्यसमाचारोंके रूपमे प्रकाशित किया जाता था।

स्वास्थ्य सगठनने खासखास सीरमो, विटामिनो लैगिक हारमोनो (sex harmones) और ग्रन्थि निस्सारो (gland extracts) आदिके सम्बन्धमे अन्तर्राष्ट्रीय मापदण्डो और इकाइयोंको निर्धारित किया। अनेक रोगोके बारेमे शोध कार्य किया गया। खासकर मलेरियाके बारेमे। तपेदिक, कोढ और उपदश जैसे अगरोगो तथा ग्रामीण क्षेत्रोकी स्वच्छता, सार्वजनिक पोषाहार (nutrition) और शहरी और ग्रामीण गृह निर्माण पर भी स्वास्थ्य सगठनने ध्यान दिया। राष्ट्र सघके प्राविधिक कार्योके बारेमे साराश यह है कि "अन्य किसी क्षेत्रमे राष्ट्र सघके प्रयत्नोका परिणाम इतना सफल नही रहा जितना इस नितान्त प्राविधिक क्षेत्रमे, जो सभी प्रकारके राजनीतिक दाँव पेंचमे आवश्यक तौर पर अलग है और जिसमे मानव एकताके लक्ष्यकी ओर प्रेरित और प्रगतिशील होनेमे कोई बाधा नही है (८५ : ५१)।"

(४) **बौद्धिक सहयोग (Intellectual Co-operation)** राष्ट्र सघ ने १९२८ मे बौद्धिक सहयोग समिति कायम की थी। इस समितिने शान्ति स्थापित करने मे, बौद्धिक विषयोका निरपक्ष विवेचन प्रोत्साहित करनेमे, और राज्योकी शिक्षा व्यवस्थाके सुधार और सगठनमे सहायता द्वारा बहुत अधिक उपयोगी कार्य किया। इस समितिने राष्ट्रोको इस बातके लिए तैयार किया कि उनके देशकी पाठ्य पुस्तकोमे यदि कोई ऐसी बाते हो जिनसे विदेशियो और पडोसी देशोके प्रति उपेक्षा और तिरस्कार प्रकट होता हो तो उन्हे पुस्तकोमे निकाल दिया जाय। इस समितिने नवयुवको और नवयुवतियोको विदेशोका भ्रमण करनेके लिए उत्साहित किया ताकि वे विदेशोमे जाकर विभिन्न सस्कृतियो और सभ्यताओका समझे और उनमे जो अच्छाइयाँ हो उन्हे ग्रहण करे। इस समिति द्वारा तैयार किया गया रेडियो भाषण और शान्ति सम्बन्धी कार्यक्रम का प्रारूप अनेक सरकारोने स्वीकार किया। इस बातकी व्यवस्था की गई कि अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओका वैज्ञानिक अध्ययन किया जा सके। कलाकृतियो और ऐतिहासिक स्मारकोकी सुरक्षाके लिए सुझाव दिये गये। समय-समय पर दार्शनिको और वैज्ञानिकोके सम्मेलनोको प्रोत्साहित किया गया।

(५) **समाजसेवी और मानवता प्रेरित कार्य (Social and Humanitarian Works)** राष्ट्र सघ ने डाक्टर नैन्सेन के निर्देशनमे युद्धके बादके वर्षोमे पाँच लाख युद्ध बन्दियोको उनके पितृ देशमे पहुँचाकर बडा प्रशसनीय कार्य किया। शरणार्थियो की भी ऐसी ही सेवा की गई। १९२६ मे राष्ट्र सघ ने दास प्रथाके सम्बन्धमे किये गये पूर्ववर्ती समझौतोको और अधिक दृढतासे लागू करनेका एक इकरारनामा स्वीकृत किया। दासता की परिभाषा इतनी व्यापक थी कि उसमे अर्ध-दासता बेगार, नौकरी, बलात्श्रम और लडकियोके क्रय आदि भी सम्मिलित हो गये। दासताकी परिभाषा इस प्रकारकी गई "एक व्यक्तिकी ऐसी दशा जिसमे उसके ऊपर स्वामित्वके अधिकारकी किसी एक या समस्त शक्तियोका उपयोग किया जा रहा हो"। जिन

देशोंने दास व्यापारको समाप्त करनेका निश्चय किया था उनके लिए यह आवश्यक था कि "क्रमिक रूपमें और यथासम्भव शीघ्र दासताका पूर्ण विनाश उसके सभी रूपोंमें कर दें"। सार्वजनिक उद्देश्योंके कुछ कार्योंको छोडकर अन्य सभी कार्योंमें दासतासे मिलते-जुलते सभी प्रकारके बलातश्रमको निषेध कर दिया गया था। राष्ट्रसंघकी एक स्थायी सलाहकार समितिने १९३३ में अपना काम शुरू किया। इस समितिका उद्देश्य दासताके अन्तिम गढ़ोंको तोड़ना था।

राष्ट्र संघने एक और गम्भीर सामाजिक समस्या हल की। यह समस्या थी बच्चों और स्त्रियोंका क्रय-विक्रय। १९२१ में यह निश्चय किया गया कि कोई भी २०, २१ वर्षसे कम आयुकी स्त्री अपनेको बिकवानेकी अनुमति नहीं दे सकती। इससे कम उम्रमें ऐसा कार्य कानूनन दण्डनीय था। स्त्रियोंका व्यापारके लिए सुलभ बनाना और उन्हें प्राप्त करनेका प्रयत्न करना दोनों ही दण्डनीय घोषित किये गये। जिन सरकारोंने इकरारनामा स्वीकार किया था उनसे कहा गया कि वे राष्ट्र संघको हर साल एक रिपोर्ट भेजकर बताया करें कि यह इकरारनामा उनके देशमें किस प्रकार कार्यान्वित किया जा रहा है।

स्त्रियों, और बच्चोंके क्रय-विक्रयकी समस्याके बारेमें राष्ट्र संघकी परिषदको परामर्श देनेके लिए, एक समिति बनाई गई। दो बार संसारके विभिन्न भागोंमें जांच पड़ताल करके इस क्रय-विक्रयका स्वरूप और व्यापकताकी जानकारी की गई। १९३३ में स्वीकार किये गये एक इकरारनामेमें तय हुआ कि "दूसरे देशोंमें अनैतिक कार्योंके लिए वयस्क स्त्रियोंका अन्तर्राष्ट्रीय क्रय-विक्रय दण्डनीय होगा भले ही यह काम उनकी स्वीकृतिसे ही हो रहा हो"। राष्ट्रसंघ ने वेश्यावृत्तिके उन अड्डोंकी समस्या पर भी ध्यान दिया जिनका अस्तित्व समाज बर्दाश्त कर रहा था और उन्हें समाप्त करनेके लिए सरकारों पर जोर दिया।

राष्ट्र संघने अश्लील साहित्यकी समस्या पर भी ध्यान दिया। १९२३ में एक इकरारनामे पर हस्ताक्षर किये गये जिसके अनुसार अश्लील प्रकाशनोंके क्रय-विक्रय और प्रचार पर रोक लगानेका निश्चय किया गया। इस इकरारनामे पर ४० से अधिक राष्ट्रोंने हस्ताक्षर किये। अश्लील साहित्यका प्रकाशन, व्यावसायिक उद्देश्यसे उसका रखना, उसका आयात निर्यात आदि, सभी कानूनमें दण्डनीय घोषित किये गये।

राष्ट्र संघने 'एक शिशु कल्याण समिति'की स्थापना की। इस समितिने एक आदर्श समझौतेका स्वरूप निश्चित किया जिसके अनुसार मार्ग विपथ बच्चों युवकों, तथा युवतियोंको उनके घरोंमें वापस पहुँचाना स्वीकार किया गया। इस समितिके प्रयत्नों से एक ऐसे इकरारनामे पर हस्ताक्षर किये गये जिसके अनुसार विदेशी बच्चोंको स्वदेशके बच्चोंके समान ही व्यवहार मिलने लगा। राष्ट्रीय व्यवस्था द्वारा विवाहकी आयुको बढ़ाने, जारज (illegitimate) सन्तानोंकी वैधिक स्थिति सुधारने और उनके लिए अनिवार्य संरक्षणकी व्यवस्था करने, अन्धे बालकोंकी शिक्षा तथा उनकी रक्षा करने के सफल प्रयत्न किये गये।

समाजसेवी और मानवता प्रेरित कार्य-क्षेत्रोंमे राष्ट्र संघका सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण कार्य अफीम तथा अन्य घातक औषधियोके क्रय-विक्रयका निरीक्षण था। १९२१ के समझौतेके बावजूद घातक औषधियाँ बड़ी आसानीसे एक देशसे दूसरे देशको भेजी जाती थीं। १९२३ मे राष्ट्र संघ ने निश्चय किया कि उपयुक्त प्रमाण-पत्रके बिना औषधियोका आयात नही हो सकता। औषधियोके निर्माणका भी नियत्रण किया गया और औषधियोके राष्ट्रीय क्रय-विक्रयके कठोर निरीक्षणकी व्यवस्था की गई। केवल अफीमके व्यापारका ही नियत्रण और निषेध नहीं किया गया बल्कि मॉर्फीन से बनाये गये नये-नये रस द्रव्योके व्यापार पर भी रोक लगायी गयी। एक स्थायी केन्द्रीय अफीम बोर्ड कायम किया गया। इसमे राष्ट्रोंको हर तीसरे महीने इस बातका विवरण भेजना पड़ता था कि उनके यहाँ इस अवधिमे प्रमीलको (narcotics) का कितना आयात, निर्यात और उत्पादन हुआ। यह इसलिए किया गया कि इस बातका पता लग सके कि ऐसी वस्तुएँ कहाँसे लुक-छिपकर आती जाती है। लगभग चालीस राष्ट्रोंने इस इकरारनामेको मानकर अपने ऊपर कड़ी जिम्मेदारी ली। १९३१ मे एक दूसरे इकरारनामेको और अधिक राष्ट्रोंने स्वीकार किया। इसके फलस्वरूप अफीम तथा अन्य सम्बन्धित औषधियोके पश्चिमी देशोंमे भेजे जाने पर रोक लगा दी गई। जो मानदण्ड तय किया गया वह वही था जो मेडिकल और वैज्ञानिक प्रयोजनोके लिए आवश्यक था। इन औषधियोके उत्पादन पर भी प्रतिबन्ध लगाया गया।

१९३१ के इकरारनामेका महत्व इस बातमे था कि सम्प्रभु राष्ट्रोंने पहली बार एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था द्वारा "अपनी आर्थिक सक्रियताकी एक सम्पूर्ण शाखा पर, कच्चे मालके उत्पादनसे लेकर तैयार वस्तुके उपभोग तक, निरीक्षण व्यवस्थाको मंजूर कर लिया (८५ १७९)।' उत्पादन और उपभोगमे पूरा-पूरा समन्वय कायम किया गया। इतना सब होने पर भी प्रमीलको (narcotics) का अवैध उत्पादन पूर्ण रूपसे नहीं बन्द हो सका, यद्यपि यह समस्या ऐसी है कि इसे हल किया जा सकता है।

अन्तर्युद्ध विकास
(The Inter War Development)

आलोचकोने पिछले दिनो राष्ट्र संघको पूर्व निर्धारित विचारोंका संघ, लुटेरोंका संघ, और समस्याओंको लटकाये रखनेवालोंका संघ कहा है। कुछ लोगोने कहा कि राष्ट्रसंघ गरज सकता है लेकिन बरस नहीं सकता। पर इस प्रकारकी आलोचनाके बावजूद लोगोमे, प्रभावपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय निरीक्षण और नियत्रणके पक्षमे, भावना बढ़ रही थी।

१९३८ के बाद विश्व संघके प्रश्न पर साहित्यकी एक बाढ़-सी आ गई थी। श्री क्लेरेन्स स्ट्रीट ने अमेरिका और पश्चिमी यारोपके प्रजातन्त्र राज्योके एक संघ (federal union) की रूपरेखा तैयार की। इस योजनाके अनुसार एक संघीय

व्यवस्थापिका होती, एक सघीय राष्ट्रपति होता, एक सघीय प्रधान मत्री, और एक सघीय मन्त्रिपरिषद होती और उसे युद्ध और शान्ति, सुरक्षा और वैदेशिक सम्बन्ध, डाक व्यवस्था और मुद्रा आदि ऐसे प्रश्नो पर पूरा-पूरा नियत्रण प्राप्त होता। इस सघ के भीतर "एक नागरिकता, एक रक्षात्मक सेना एक मुक्त व्यापार क्षेत्र, एक ही मुद्रा और एक ही टिकट व्यवस्था' होती। सदस्य राष्ट्रोंके उपनिवेशोंको उनसे ले लिया जाता और उनका शासन सम्मिलित रूपसे एक सघ द्वारा किया जाता। इस शासन का उद्देश्य यह होता कि इन प्रदेशोको यथासम्भव शीघ्रसे शीघ्र सघका सदस्य बनने योग्य बना लिया जाय। यह सघ आत्मनिरूपित सन्तो (self-canonized saints) का सघ होता।

श्री मदारियागा एक विश्व समाज और विश्व-सघके प्रबल समर्थक थे। उन्होने अपने विश्व सघको कुछ खास देशो तक ही सीमित नही रखा। अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सघ तथा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय जैसी तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओके अतिरिक्त उन्होने, एक विश्व बैंक, एक विश्व व्यापार आयोग, उपनिवेशोके लिए एक विश्व-प्रन्यास-समिति, अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस और एक अन्तर्राष्ट्रीय सौर असैनिक सेवा (International Civil Service)—इन सबकी आवश्यकताका अनुभव किया था।

'वर्ल्ड फेडरेशन' (१९३९) के लेखक श्री ऑस्कर न्यूफांग के अनुसार राष्ट्र सघका सगठन ऐसा था कि उसे बडी सरलतासे एक विश्व सघमे परिणत किया जा सकता था। राष्ट्र सघकी सभा विश्व विधान मण्डल बन जाती और परिषद मन्त्रि परिषद बनती। विश्व न्यायालयका अधिकार क्षेत्र अनिवार्य कर दिया जाता। सदस्य राष्ट्रोकी पूरी सशस्त्र-सेना धीरे-धीरे केन्द्रीय अधिकार सत्ताको सौंप दी जाती। व्यापारकी रुकावटो को हटा दिया जाता और एक आर्थिक व्यवस्था लागू कर दी जाती।

सर विलियम बेवरिज का कहना था कि तत्कालीन परिस्थितियोमे विश्व सघ असम्भव था। इसलिए अपनी योजनाको उन्होने ब्रिटेन, फ्रान्स, जर्मनी (प्रजातन्त्रीय), बेल्जियम, हॉलैण्ड, फिनलैण्ड, स्वीडेन, नार्वे स्विट्जरलैण्ड और पाच अग्रेजी उपनिवेशो तक ही सीमित रखा था। केन्द्रीय नियन्त्रणमे दिये जानेवाले कमसे कम विषय थे—सुरक्षा, और वैदेशिक नीति। आश्रित प्रदेशोकी व्यवस्था, मुद्रा, व्यापार और प्रवास आदि विषयोको क्रमश केन्द्रके हाथोमे देनेकी व्यवस्था सोची गयी थी।

सेन्टपाल गिरजाघरके भूतपूर्व डीन डॉक्टर डब्ल्यू० आर० इन्ज ने ससारके अग्रेजी बोलनेवाले देशोका सघ बनानेकी योजना तैयार की। इस योजनाके अनुसार ब्रिटेन, उसके स्वशासित उपनिवेशो और सयुक्त राष्ट्र अमेरिकाका सघ बनता। कलकत्तामे प्रकाशित होनेवाले अग्रेजी दैनिक स्टेट्समैनके भूतपूर्व सम्पादक सर ए० वाट्सन का कहना था कि एक ब्रिटिश साम्राज्य सघ बनाया जाय। 'ग्रेट ब्रिटेन एण्ड ईस्ट' मे उन्होने लिखा था "भविष्यकी कल्पनामे एक ऐसा साम्राज्य सघ आता है जिससे अलग रहनेका साहस उनमेसे कोई भी देश न कर सकेगा जो आज अपनी ओछी स्थितिकी शिकायत करते है क्योकि उनकी सुरक्षा और उनका अस्तित्व ही राष्ट्रोके एक ऐसे समुदायके सहयोग पर निर्भर होगा जो सम्मिलित रूपसे अजेय

होगा पर पृथक रहनेमे उनकी स्वाधीन स्थितिकी कोई आशा ही न रहेगी।" उस समय श्री विंस्टन चर्चिल भी अमरिका, ब्रिटेन और उपनिवेशोका किसी प्रकारका सघ बनाने का विचार कर रहे थे।

डा० आइवर जेनिंग्स ने पश्चिमी योरोपीय देशोके सघकी एक सीमित योजनाकी विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत की। उनका कहना था कि "योरोप ही वह कढाई है जिसमे अधिकाश युद्धोका मसाला पक कर तैयार होता है और इसलिए एक सघीय सघ (federal union)—खासकर पश्चिमी योरोपके राष्ट्रोका सघीकरण इन युद्ध प्रिय प्रवृत्तियोको रोक सकेगा। इन महोदयका उद्देश्य समस्त विश्वकी शान्ति और समृद्धि की सुरक्षा इतना अधिक नही जान पडता, जितना यह कि अफ्रीका तथा एशियाके कुछ भागोके शोषणमे योरोपीय राष्ट्रोकी प्रतिस्पर्धा या पारम्परिक होडका समाप्त किया जाय। उन्हीके शब्दोमे इस सघका प्रधान उद्देश्य "पश्चिमी योरोपके राष्ट्रोमे परस्पर युद्धका बिल्कुल असम्भव बना देना था।"

डा० जेनिंग्स अपनी योजनाके अनुसार अग्रेजी साम्राज्य और राष्ट्र सघ इन दोमे से किसी एक का भी तिरस्कार नही करना चाहते थे। अग्रेजी साम्राज्य इस नये सघ मे एक इकाईके रूपमे बना रहता। उसके उपनिवेशो और आश्रित प्रदेशोमे होनेवाले हानि लाभमे सघीय भाई बन्धु साझीदार होते और पिछडे हुए प्रदेश सभी सघीय नागरिकोकी पूजी और उद्योग शीलताके लिए खुले रहते। एक सघीय आयोग होता जिसका अधिकार क्षेत्र सभी औपनिवेशिक प्रदेशो पर रहता। सभी सघीय देशोके लोग औपनिवेशिक अधिसेवाके पदो पर नियुक्त किये जा सकते थे। राष्ट्र सघका अस्तित्व उन राष्ट्रोके कल्याणके लिए बना रहता जो पश्चिमी योरोपीय सघके सदस्य न होते। यह सघ राष्ट्र सघकी परिषदमे एक इकाईके रूपमे अपना प्रतिनिधि भेजता। यह सघ राष्ट्र सघको अपने देशोके प्रति उत्तरदायित्वोसे मुक्त रखता और राष्ट्र सघको शेष ससारके कल्याण पर और अधिक ध्यान देनेका अवसर मिलता। सघीय विषय प्रधान रूपमे सुरक्षा और वैदेशिक मामले होते और कुछ हद तक आर्थिक सम्बन्ध और उपनिवेश भी। शेष बचे हुए अधिकार (residuary powers) राज्योके हाथोमे रहते।

श्री डी० एन० प्रिट ने ससारका आशिक सघ बनानेकी सभी योजनाओकी सबसे कठोर आलोचना की है। आपने समाजवादी आधार पर तर्क करते हुए कहा है कि जब तक पूजीवाद और साम्राज्यवादको कायम रखा जायगा तब तक ससारका सघ केवल एक धोखा है। आपका कहना था कि आज दिन असली शक्ति पूजी और उद्योग पतियोके छोटेसे गुटके हाथोमे है और सरकारोका नियत्रण करनेवाले प्राय वही होते है जो उद्योगोका नियत्रण करते है। इसलिए ऐसी हालतमे एक सघ बनानेका मतलब होगा विभिन्न देशोके निहित स्वार्थवाले गुटोका एकीकरण जिससे वे स्वय अपने देशकी जनताका और उपनिवेशोकी जनताका और भी अधिक शोषण कर सके। कुछ शक्तिशाली राष्ट्रो और उनके पिछलग्गू राष्ट्रोकी यह एक गुटबन्दी होगी।

श्री प्रिट के ही शब्दोंमें "आधुनिक औद्योगिक राज्योंमें कुछ थोड़ेसे धनी व्यक्तियोंमें वास्तविक शक्ति केन्द्रित रहती है। राज्योंके इस स्वरूपको पहले बिल्कुल बदल देना होगा तभी एक विश्व संघ सम्भव हो सकता है।"

उन्होंने विश्व संघकी विभिन्न योजनाओंकी आलोचना इस आधार पर भी की है कि उनमें सारे संसारको नहीं सम्मिलित किया गया। उनका कहना है कि ऐसे आंशिक संघ तो किसी प्रकारका संघ न होना ही अच्छा है। यह तो एक साम्राज्यसे भी अधिक घातक है क्योंकि अन्य राष्ट्रोंके विरुद्ध इसका उपयोग एक भालेकी नोककी भांति किया जा सकता है। ऐसे संघसे जो राज्य बाहर रखे जायंगे वे अपना एक अलग गुट बना सकते हैं। और तब संघ और इस गुटके बीच बराबर संघर्ष और ईर्षा बनी रहेगी।

विश्व संघकी योजनाओंका समर्थन करनेवाले भी यह अनुभव करते हैं कि ये योजनाएं इतनी विशाल है कि इन्हें कार्यान्वित करना असम्भव है। इसलिए ये लोग क्षेत्रीय संघोंकी योजनाका समर्थन करते हैं। इन संघोंके ऊपर सीमित अधिकारोंवाला एक महासंघ हो सकता है।

प्रा० कैटलिन ने राष्ट्रीय सम्प्रभुताके पिटे-पिटाये सिद्धान्तके स्थान पर समन्वित सम्प्रभुता (pooled sovereignty) के नये सिद्धान्तका समर्थन किया। उनका कहना था कि तीन पृथक अधिकार सत्ताओंके अधीन तीन पृथक क्षेत्र होने चाहिए। सबसे ऊपर सारा विश्व हो जिसकी अपनी एक विश्व सरकार हो। इस सरकार के अधिकार क्षेत्रमें डाक व्यवस्था, हवाई यातायात, विश्व मुद्रा, कुछ कच्चे मालोंका उपयोग और टंग्स्टन (tungsten), टाइटेनियम (titanium) तथा निकेल (nickel) जैसे महत्वपूर्ण कच्चे पदार्थों (raw materials) का अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण हो। शक्ति द्वारा शान्ति स्थापित करनेके लिए एक विश्व न्यायालय और विश्व पुलिस भी हो।

इसके बाद एक प्रादेशिक अधिकार सत्ता हो जिसके अधीन एक प्रादेशिक भू-भाग रहे। इसका काम एक बीचके क्षेत्रमें हो जिसके भीतर समाजका एकीकरण तुरन्त सम्भव हो। श्रम और व्यापार सम्बन्धी कुछ बातें और चुंगी (tariff), आप्रव्रजन (immigration) उसके अधीन रहे। प्रादेशिक क्षेत्रोंमे रहनेवालोंकी आदतें तथा जीवन पद्धतियां मिलती-जुलती होगी। इन प्रादेशिक भू-भागोंके निर्माणमें और उन्हें कायम रखनेमें भौगोलिक राजनीति (Geo-politics) का बड़ा प्रभावपूर्ण हाथ रहता। इन प्रादेशिक भू-भागोंके ऊपर एक संघ होता जो राष्ट्र संघ या विश्व संघसे बिल्कुल भिन्न होता।

लॉर्ड डेवीज का कहना था कि निम्नलिखित संघ बन सकते हैं अंग्रेजी भाषा भाषी देशोंका संघ, रूसका केन्द्र बनाकर स्लाव देशोंका संघ, दक्षिणी अमेरिकाके लैटिन गणराज्योंका संघ, भारत और उसके पड़ोसी राज्योंको मिलाकर मध्य एशियाई देशोंका संघ, सुदूर पूर्वी देशोंका संघ और योरोपके राष्ट्रोंका संघ। अफ्रीकाका नाम

बड़ी सुविधाके साथ छोड़ दिया गया था—सम्भवत अंग्रेजी भाषा भाषी देशों द्वारा शापण किये जानेके लिए। लॉर्ड डेवीज के अनुसार युद्धका समाप्त कर देना, विधि राज्यकी स्थापना करना, एक सामान्य वैदेशिक नीति निर्धारित करना, न्यायाधिकरण के लिए एक विश्व अधिकार सत्ताकी स्थापनाके उद्देश्यसे विश्व राष्ट्रसंघसे सम्मिलित होना, शान्ति स्थापित रखना और आर्थिक समस्याओंके निराकरणमें सहयोग देना—आदि इन संघोंके उद्देश्य थे। नवीन संघमें पचास या अधिक राज्योंके बजाय पांच या छ सदस्य होते और उनके बीच होनेवाले विवादोंका निराकरण समझौते और परामर्श द्वारा किया जाता।

संगठनोंकी शृंखलामें तीसरी श्रेणी राष्ट्रीय क्षेत्रोंकी थी जिनकी एक राष्ट्रीय सरकार होती। श्री कैटलिन इस क्षेत्रका शिक्षा और संस्कृतिके विकासके लिए उपयुक्त क्षेत्र मानते थे। राष्ट्रीय भावनाके लिए यह क्षेत्र उपयुक्त था। इस सीमाके भीतर राष्ट्रीयतावाद कल्याणकारी था, इस सीमाके बाहर उसे कल्पना मूलक, प्रतिक्रियावादी, और कभी समाप्त न होनेवाले युद्धोंका सक्रिय कारण माना गया।

इन प्रस्तावोंका निचोड़ था सांस्कृतिक क्षेत्रमें राष्ट्रीयतावाद, आर्थिक क्षेत्रमें प्रादेशिकतावाद और उच्च राजनीतिक क्षेत्रमें अन्तर्राष्ट्रीयतावाद। एटलांटिक राजलेख (Atlantic Charter) से हमें इस बातका संकेत मिलता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन युद्धके बादके संसारमें किस प्रकारकी विश्व व्यवस्था कायम करना चाहते थे। इस घोषणा पत्रको विन्स्टन चर्चिल के यथार्थवाद और कॉर्डेल हल के आदर्शवादका रूजवेल्टीय समन्वय कहा जाता है। वाइकाउण्ट सैमुअल (Viscount Samuel) का कहना है कि इस अधिकार पत्रकी प्रथम तीन धाराएं बाइबिल (old testament) के दशम आदेश (tenth commandment) की व्याख्या-मात्र है। यह आदेश है 'तुम लालसा नहीं रखोगे"। संयुक्त राज्य अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन दोनोंने इस बातकी घोषणा की कि उन्हें प्रादेशिक या अन्य किसी भी प्रकारके विस्तारकी महत्वाकांक्षा नहीं है। सच बात तो यह है कि इस धारासे किसीके भी हृदयमें कोई उत्साह नहीं पैदा होता। यह तो ऊंचे रक्तचाप (high blood pressure) से पीड़ित एक पेटकी स्वत अपने ऊपर लागू की हुई आत्म-निषेध मूलक आज्ञा है। इस धाराने हिटलर की युद्धके पहले की गई इस फरेबभरी घोषणाको और भी बल दे दिया कि वह जो युद्ध प्रारम्भ करने जा रहा था वह धनी देशों और निर्धन देशोंके बीच होनेवाला युद्ध था। चर्चिल के वक्तव्योंसे उनका यह इरादा साफ झलकता था कि 'जो हमारे अधिकारमें है उसे हम अपनी मुट्ठीसे निकलने न देंगे"। हम श्री प्रिट के इस विश्वाससे सहमत है "कि जब तक साम्राज्यवाद जड़से नष्ट नहीं होता तब तक एक सुन्दर विश्व व्यवस्था" नहीं कायम की जा सकती।

इस राजलेखकी दूसरी धारामें यह इच्छा प्रकट की गई थी कि "ऐसा कोई प्रादेशिक परिवर्तन नहीं होगा जो उस प्रदेशकी जनताकी स्वतन्त्र सम्मतिसे मेल न

चाना हो' । तो क्या इसका यह अर्थ था कि फिनलैण्ड, पोलैण्ड और बाल्टिक राज्योंको उनके वे प्रदेश वापस दिलाये जायंगे जो युद्धके पूर्व उनके अधिकारमें थे? इस व्यवस्थाके प्रति रूसकी क्या प्रतिक्रिया हुई?

तीसरी धारामें घोषणा की गई कि "सभी जातियोंके इस अधिकारका सम्मान किया जायगा कि वह स्वयं यह निर्णय करे कि किस प्रकारकी सरकारके अधीन वह रहना चाहती है"। इस धारामें यह इच्छा भी व्यक्तकी गई कि जिन लोगोंके सार्वभौम अधिकार और जिनका स्वशासन उनसे बलात् छीन लिया गया है वे उन्हें वापस दिलाये जायं। तो क्या इसका मतलब यह है कि केवल बहुमतका शासन होगा या इसमें उपजातियों द्वारा अपने पृथक राज्य स्थापित करनेका अधिकार भी निहित है? यदि इसका दूसरा अर्थ ही अभीष्ट है तो इस प्रकार बनाये जानेवाले नये राज्यों में अल्पसंख्यकोंके अधिकारोंकी क्या व्यवस्था होगी? क्या यह धारा भारत पर भी लागू थी? श्री चर्चिल ने कहा था कि वह भारत पर लागू नहीं होती और श्री रूजवेल्ट का विचार था कि यह भारत पर लागू होती है।

चौथी और पांचवीं धाराएं आर्थिक पक्षका विवेचन करती हैं। इन धाराओं में इस बातका वादा किया गया है कि कुछ विशेष प्रतिबन्धोंके साथ सभी राज्योंका समान शर्तोंके आधार पर व्यापारकी और संसारके ऐसे कच्चे मालकी प्राप्तिकी ऐसी सुविधाएं दी जायंगी जो उनकी आर्थिक समृद्धिके लिए आवश्यक होंगी। एक प्रश्न जो सम्भवतः हमारे मनमें उठता है, यह है "क्या यह आवश्यक था कि ऐसी घोषणा करनेके लिए युद्ध आरम्भ हो जानेके बाद दो वर्षों तक प्रतीक्षा की जाती? यदि यह घोषणा युद्धके पहले कर दी गई होती तो क्या उपनिवेशोंके लिए हिटलर के दावोंका आधार ही समाप्त न हो जाता। इस धाराका निहित अर्थ यह है कि १९३२ का ऑटवा समझौता जिसके अनुसार साम्राज्यके बाहरवाले देशोंके विरुद्ध कठोर चुंगी की दीवार (tariff wall) खड़ी की गई थी, एक भयंकर भूल थी। चौथी और पांचवीं धाराओंमें संसारके सभी देशोंके लिए श्रमके विकसित मानदण्ड, आर्थिक प्रगति और सामाजिक सुरक्षा सुलभ और सुरक्षित बनानेके उद्देश्यसे सभी राष्ट्रोंमें परस्पर घनिष्ठ सम्बन्धका आश्वासन दिया गया है।

अन्तिम तीन धाराओंमें उन साधनोंको बताया गया है जिनके द्वारा नाजी अत्याचारोंके समाप्त हो जानेके बाद स्थायी शान्ति कायम की जाती। इन साधनोंमें आक्रमण करनेवाले राष्ट्रोंका निःशस्त्रीकरण, सामुद्रिक स्वातन्त्र्य और भय तथा अभावसे मुक्ति भी सम्मिलित थी।

इन धाराओंका मूल्य आज आंका जा रहा है। जनरल स्मट्स् की इस घोषणा ने इन धाराओंका पर्दाफाश कर दिया है कि एटलांटिक राजलेख उत्तरी अफ्रीकाके इटलीके उन प्रदेशों पर नहीं लागू हो सकता जो युद्धके दौरानमें संयुक्त राष्ट्र संघके अधिकारमें आ गये हैं।

यह कहा जाता है कि रूजवेल्ट द्वारा घोषित चार स्वाधीनताएं हर व्यक्तिके

लिए स्वाधीनताका राज्य-पत्र है। अकारण आक्रमणके भयसे मुक्ति, और बिना किसी प्रकारकी बाहरी बाधा या दबावके, अपना राष्ट्रीय जीवन बितानेकी स्वाधीनता। अभावसे मुक्तिमें दरिद्रतासे मुक्ति और सामूहिक बेकारीसे मुक्ति तथा काम करनेका अधिकार और प्रत्येक व्यक्तिके लिए जीवनका एक न्यूनतम मान दण्ड सम्मिलित है। शेष दो स्वाधीनताएं—विवेक स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्तिकी स्वाधीनता—अपने आप स्पष्ट है। इस सूचीसे एक महत्त्वपूर्ण स्वाधीनताको बाहर रखा गया है और वह है जातीय और सामाजिक अत्याचारोंसे मुक्ति। श्री रूजवेल्ट की मन्त्रिपरिषदमें गृह विभागके मन्त्री श्री आइक्स् ने कहा था कि अमरिकामें अल्प समुदायोंके साथ, विशेषकर नीग्रो लोगोंके साथ, जो व्यवहार किया जाता है वह उस व्यवहारसे कहीं खराब है जो रूसमें अल्प समुदायोंके साथ किया जाता है।

हम भारतवासी निम्नलिखित चार स्वाधीनताएं चाहते है (१) अकारण आक्रमणसे मुक्ति, (२) आर्थिक अरक्षा (economic insecurity) से मुक्ति, (३) सामाजिक अत्याचारों (वर्ण, वर्ग, समाज, धर्म व भाषा द्वारा होनेवाले) से मुक्ति और (४) पूर्ण आत्माभिव्यक्तिकी स्वाधीनता जिसमें विवेककी स्वाधीनता और अभिव्यक्तिकी स्वाधीनता सम्मिलित है।

युद्धके बादके वर्षोंमे अन्तर्राष्ट्रीयतावादके लिए चार निम्नलिखित शर्तें अनिवार्य है (१) चरम राष्ट्रीय सम्प्रभुताके सिद्धान्तका परित्याग, (२) रचनात्मक शान्तिकी स्थापना और उसको बनाए रखनेके लिए एक उपयुक्त उपकरण की स्थापना, (३) राष्ट्रों और राष्ट्र समूहोंके बीच आर्थिक न्याय, और (४) व्यक्तियोंके लिए सामाजिक सुरक्षा। जहाँ तक भारतका सम्बन्ध है यह सुरक्षा द्वितीय पचवर्षीय योजना सम्बन्धी बेवेरिज योजनाके अनुसार होनी चाहिए।

इस समय अपनेको केवल दूसरी शर्त तक ही सीमित रखते हुए हम श्री वाइखम स्टीड (Wickham Steed) के इस कथनसे सहमत है कि शान्तिका अर्थ केवल युद्ध बन्दी या युद्धका न होना ही नहीं होता। शान्ति नकारात्मक नहीं है। वह रचनात्मक और गतिशील है और इसमें जोखिमका पुट होनेके कारण यह एक आकर्षक व्यवसाय है। श्री लिविनॉफके शब्दोंमें "शान्ति अविभाज्य है"।

शान्तिकी प्रतिष्ठा तभी हो सकती है जब हम विश्व समाजकी भावनाको विकसित करें। हम यह नहीं चाहते कि एक आंग्ल सेक्सनी संघ शेष समस्त संसारके लिए विधायकका काम करे। कौन जानता है कि वह विधान कितने दिन चले। हम शक्ति सन्तुलनके बदनाम सिद्धान्तकी पुनरावृत्ति भी नहीं चाहते।

युद्धके बादके कुछ वर्षोंके लिए जर्मनीको निरशस्त्र करना चाहे जितना आवश्यक रहा हो, पर एक पक्षीय निरशस्त्रीकरण युद्ध और शान्तिकी समस्याका कदापि हल नहीं कर सकता। प्रथम विश्व-युद्धकी समाप्ति पर एक पक्षीय निरशस्त्रीकरणका प्रयत्न किया गया था पर योरोपीय सरकारें परस्पर वाक्-युद्ध ही करती रहीं और किसी एक सामान्य नीतिके सम्बन्धमें एकमत न हो सकीं। हर सरकार अपने

शस्त्रास्त्रोको अपने पास सुरक्षित रखना चाहती थी और उनका एकीकरण किसी ने स्वीकार नही किया। वाइ काउण्ट सैमुएल का यह कहना बिल्कुल ठीक है कि एक पक्षीय शस्त्रीकरणमे निरपराध राष्ट्रोके मुकाविले अपराधी राष्ट्रोको एक बहुत बडी आर्थिक सुविधा मिल जायगी। इसके अतिरिक्त एक पक्षीय निश्शस्त्रीकरणसे न तो सद्भावना स्थापित हो सकती है और न इस पर अधिक समय तक अमल ही किया जा सकता है।

सब राष्ट्रोका एक साथ निश्स्त्रीकरण और एक वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार सत्ताकी स्थापना जिसे विश्व न्यायालय और एक अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस या शान्ति-रक्षक दलका बल प्राप्त हो, ही इस समस्याका एक मात्र हल है। इस शान्ति रक्षक सेनाका एक प्रधान सेनापति होना चाहिए और उसे कुछ ऐसी शक्तियोकी सैनिक मैत्रीमे पडकर भ्रष्ट न होना चाहिए जो किसी दूसरे सैनिक मैत्री वाले गुट के साथ शस्त्रीकरण की होडमे लगे हो। इसमे अग्रेजो, अमरीकियो तथा रूसी और चीनी लोगोके साथ-साथ जर्मन, इटालियन और जापानी लोगोको भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। यदि इससे राष्ट्रीय देशभक्ति समाप्त हो जाती है तो उससे कोई हानि नही होती क्योकि ऐसी देशभक्ति स्थायी बनानेके योग्य नही है। इसे यथार्थ रूपमे एक सच्चे राष्ट्र सघका पुलिस दल बनाना होगा। हम नही चाहते कि ससारका आधा हिस्सा दूसरे आधे हिस्सेके लिए पुलिसका कार्य करे। ससार भरके कल्याणके लिए सारे ससारको पुलिस बनना होगा। राष्ट्रीय सैन्य दलोके स्थान पर एक वास्तविक विश्व पुलिस दल होना चाहिए जो जानेबूझे अपराधोके लिए जाने-बूझे अपराधियोके विरुद्ध सीमित शक्तिका प्रयोग करे।

SELECT READINGS

Aims, Methods and Activity of the League of Nations, 1935

ASIRVATHAM, E —*A New Social Order*—Chs IX, X, and XI.

BARNES, LEONARD—*The Duty of Empire*

BARNES, LEONARD—*The Future of Colonies*

BARNES, LEONARD—*Empire or Democracy*

BRYCE, LORD—*International Relations*

BUELL, R L —*International Relations*

CURTIS, L —*Civitas Dei*

GIBBONS, H A —*Introduction to World Politics*

GILCHRIST, R N —*Indian Nationality*

GOOCH, G P —*Nationalism*

HALLOWELL, J H —*Main Currents in Modern Political Thought*—Ch 16

HAYES, C J H —*Essays on Nationalism*

HOBSON, J A —*Imperialism, A Study*
HOCKING, W E —*The Spirit of World Politics*
JENNINGS, IVOR—*A Federation for Western Europe*
JOSEPH BERNARD—*Nationality*
KOHN, HANS—*Nationalism in the East*
LASKI H J —*A Grammer of Politics*
MADARIAGA, SALVADOR DE—*The World's Design*
MAZZINI—*Selected Writings*
MAZZINI—*The Duties of Man and other Essays*
MILL, J S —*Representative Government*
MOON, P T —*Imperialism and World Politics*
MOON, P T —*Syllabus on International Relations*
MORGENTHAU, J H —*Politics among Nations*
MUIR, R —*Nationalism and Internationalism*
PALMER, N D AND PERKINS—*International Politics*
PILLSBURY W B —*The Psychology of Nationality and Internationalism.*
PRITT, D N —*Federal Illusion*
ROSE, J H —*Nationality in Modern History*
SCHUMAN, F L —*International Politics, (4th Ed , 1948)*
SITARAMAYYA—*History of the Indian National Congress*
TOYNBEE A —*Nationality and the War*
TOYNBEE, A —*Study of International Affairs*
TAGORE, R —*Nationalism*
VON TREITSCHKE—*Politics—(2 Vols)*
WOOLF, L —*Imperialism and Civilization*
WOOLF, L S —*International Government*
ZIMMERN, A E —*Nationality and Government*
ZIMMERN, A E —*The Third British Empire*

२०

संयुक्त राष्ट्र-संघ

(The United Nations)

हिटलर और मसोलिनी की और जापानके युद्ध नायकोंकी महत्वाकांक्षाओंके कारण १९३९ मे ससार एक भयानक युद्धमें फँस गया। इनके विरुद्ध युद्ध करनेवाले मित्र राष्ट्रोंको उस समय युद्धमे विजय पाना सर्व प्रमुख लक्ष्य हो गया। पर जैसे-जैसे युद्ध बढता गया वैसे-वैसे मित्र राष्ट्रोंके राजनीतिज्ञोंने अधिकाधिक अनुभव किया कि यदि उन्हें युद्ध जीतना है तो उन्हें अपनी जनताके सामने कोई ऐसा महत्वपूर्ण उद्देश्य रखना होगा जिसके लिए युद्ध करना उचित मालूम पडे। इसीलिए अमरिकाके राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने चार स्वाधीनताओंकी घोषणाकी और रूजवेल्ट तथा ब्रिटेनके प्रधान मंत्री चर्चिल ने एक सयुक्त घोषणा पत्र निकाला जिसे अतलांतिक राज्यपत्र (Atlantic Charter) कहते है।

रूजवेल्ट ने निम्नलिखित चार स्वाधीनताओंकी घोषणा की थी—भय और अरक्षा (insecurity) से मुक्ति, अभावसे मुक्ति, विचारकी स्वतन्त्रता और उपासना की स्वतन्त्रता (freedom from fear and insecurity, freedom from want, freedom of exprsssion, and freedom of worship)। जर्मनीमे नाजियोंके अत्याचारकी पृष्ठभूमिके विरुद्ध इन स्वाधीनताओंका निर्धारण हुआ था। रूजवेल्ट ने घोषणा की थी कि ये स्वाधीनताए सारी मानव जाति पर सब कहीं लागू होंगी। अतलांतिक राज्यपत्रकी घोषणा अगस्त १९४१ मे की गई। इसमें मौलिक सिद्धान्तो की घोषणा थी। ये सिद्धान्त विलसन के चौदह सूत्रोंसे बहुत मिलते-जुलते थे। इन सिद्धान्तोंमें से कुछ ये हैं—शान्तिकी स्थापना भय और अभावसे मुक्ति, शक्ति प्रयोग का निषेध, निश्शस्त्रीकरण, अनाक्रमण, सम्बन्धित जनताकी स्वीकृति बिना प्रादेशिक सीमा परिवर्तनका निषेध, सब देशोंके लिए कच्चे मालकी समान सुविधा, आर्थिक क्षेत्रमे सब देशोंका पूर्ण पारस्परिक सहयोग आदि।

जैसे-जैसे युद्ध बढता गया धुरी राष्ट्रों (axis powers, जर्मनी, इटली और जापान) के विरुद्ध युद्ध करने वाले मित्र राष्ट्रोंको सयुक्त राष्ट्र या यूनाइटेड नेशंस कहा जाने लगा। यह नाम रूजवेल्ट ने रखा था। उनकी मृत्युके बाद उन्हींकी यादगारमे विश्वराष्ट्रोंके सगठनका नाम सयुक्तराष्ट्र सघ (The United Nations Organization) रख दिया गया। इसे सक्षेपमे सयुक्तराष्ट्र (The United Nations) या यू० एन० कहा जाता है।

मित्र राष्ट्रोंके राजनीतिज्ञ युद्ध समाप्त होनेकी प्रतीक्षा किये बिना युद्धके दौरान मे ही सयुक्त राष्ट्रसघके सगठनमे तत्पर हो गये। पिछले राष्ट्र सघ या लीग ऑफ नेशन्सकी असफलता सबकी आखे खोल चुकी थी फिर भी लोगोने महसूस किया कि राष्ट्र सघका ढाचा अधिकाश रूपमें सन्तोषजनक बनाया गया था। इसलिए वे उसी ढाचे पर नये सगठन का निर्माण करने लगे। पहली जनवरी १९४२ को सयुक्त राष्ट्र घोषणा पत्र (The United Nations Declaration) पर हस्ताक्षर किये गये। ब्रिटेन की ओर से चर्चिल ने, अमेरिका की ओर से रूजवेल्ट ने, रूस की ओर से लिट-विनाव ने और चीन की ओर से टी० य० सूग ने इस घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किये। एक वर्षसे कुछ अधिक समय बाद मॉस्कोमे एक सम्मेलन हुआ जिसमे ब्रिटेन, अमेरिका, रूस और फ्रासके विदेश मन्त्री सम्मिलित हुए। ३० अक्टूबर १९४३ को उन्होंने यह घोषणा की—"अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाये रखनेके लिए यथासम्भव शीघ्र एक ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय सगठन स्थापित करनेकी आवश्यकताका अनुभव हम करते है जिसका सगठन सभी शान्ति प्रिय राष्ट्रोंकी समान सम्प्रभुताके सिद्धान्त पर हो और जिसका द्वार सभी छोटे-बडे शान्तिप्रिय राष्ट्रोंके लिए खुला हो"।

मॉस्कोकी इस घोषणाके बाद और कई सम्मेलन हुए जैसे काहिरा-सम्मेलन (नवम्बर १९४३, काहिरा—यूनाइटेड अरब रिपब्लिककी राजधानी), तेहरान सम्मेलन (तेहरान—ईरानकी राजधानी), ब्रेटन वुड्स् सम्मेलन (ब्रेटन वुड्स् नामक नगर सयुक्त राज्य अमेरिकामे) और हॉटस्प्रिग्स सम्मेलन (हॉटस्प्रिग्स, सयुक्त राज्य अमरिकामे एक नगर), अन्तिम सम्मेलनमे सयुक्त राष्ट्र सघकी शाखा "खाद्य व कृषि सगठन" की नीव डाली गई जिसने शुरूसे ही महान सेवा कार्य किया है।

सयुक्त राष्ट्र सघकी रूपरेखा तय करनेवाला सम्मेलन अक्टूबर १९४४ मे वाशिंगटनमे डम्बर्टन ओक्स नामक भवनमे हुआ था। इस सम्मेलनमे एक आम सभा, एक ११ सदस्यी सुरक्षा परिषद, एक आर्थिक और सामाजिक परिषद्, एक अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय, और एक स्थायी सचिवालय कायम करनेके प्रस्ताव रखे गये। अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस दलके प्रश्न पर भी विचार किया गया था।

एक महत्त्वपूर्ण बात जो इस सम्मेलनमे तय होनेसे रह गई थी वह थी सुरक्षा परिषदमे मतदानकी पद्धति। इस प्रश्नका फैसला याल्टा सम्मेलनमे हुआ। इसमें स्तालिन, रूजवेल्ट और चर्चिल शामिल हुए थे। इस प्रश्नको तय करनेके अतिरिक्त उन्होने यह भी प्रस्ताव रखा कि अप्रैल सन् १९४५ में सैनफ्रैंसिस्को मे उन सभी राष्ट्रोका एक सम्मेलन हो जो धुरी राष्ट्रोंके विरुद्ध युद्ध कर रहे है। सम्मेलन होनेके पहले ही रूजवेल्ट का देहान्त हो गया और उनके स्थान पर ट्रूमैन अमरिका के राष्ट्रपति हुए। जब २५ अप्रैल सन् १९४५ को निश्चित स्थान पर सम्मेलन हुआ तब नयी कठिनाइयाँ पैदा हो गई। रूस उस सम्मेलनसे बाहर निकल आया और राष्ट्रपति ट्रूमैन के बहुत समझाने बुझाने पर ही वह फिर सम्मेलनमे शामिल हुआ। भारत इस सम्मेलनमे सम्मिलित हुआ था। श्री ए० रामास्वामी मुदालियर,

श्री वी० टी० कृष्णमाचारी और फिरोज खा नून भारतके प्रतिनिधि थे। डम्बर्टन ओक्समे बनी रूपरेखा पर सम्मेलनने विस्तारपूर्वक विचार कर उसका ब्योरेवार विस्तार किया। सबसे अधिक और ब्योरेवार विचार इस सम्मेलनमे आर्थिक और सामाजिक परिषदके गठन और उसके कार्यो पर किया गया क्योकि यह अनुभव किया जा चुका था कि जब तक मनुष्य जातिके कुछ गम्भीर आर्थिक प्रश्नोका नही सुलझाया जाता तब तक स्थायी शान्ति असम्भव है।

इस सम्मेलनमे ५० राष्ट्र शामिल हुए थे और वे ही सयुक्त राष्ट्र सघके प्रथम सदस्य बने। २४ अक्तूबर सन् १९४५ को हस्ताक्षर करनेवाले राष्ट्रोने घोषणा पत्र स्वीकार कर लिया और तत्सम्बन्धी सूचनापत्र अमेरिकाके राष्ट्र विभागमे दाखिल कर दिये गये। १० जनवरी सन् १९४६ को संयुक्त राष्ट्रसघ की स्थापना हो गई। वह दिन राष्ट्र सघ (League of Nations) का २६वा जन्मदिवस था। सयुक्त राष्ट्र सघकी आम सभाकी पहली बैठक लन्दनमे वेस्ट मिन्स्टरके सेन्ट्रल हॉल में हुई। उसके बाद राष्ट्र सघ (League of Nations) वैधिक रूपसे समाप्त कर दिया गया।

घोषणापत्रमे १११ छोटी-छोटी धाराएँ है। घोषणा पत्रकी प्रस्तावना (Preamble) मे सयुक्त राष्ट्रके मौलिक उद्देश्य बताये गये है। इसका प्रारम्भ इन अर्थपूर्ण शब्दोके साथ होता है—"हम सयुक्त राष्ट्रोके लोग"। राष्ट्र सघ (League of Nations) के घोषणा पत्रमे इन शब्दोका प्रयोग किया गया था—हम अनुबन्ध करनेवाले उच्चाधिकारी (The High Contracting Parties)—इससे यह मतलब निकलता है कि सयुक्त राष्ट्र सघ ससारकी जनताकी ओरसे बोलता और काम करता है। पर इस शाब्दिक अन्तरमे बहुत अधिक अर्थ न ढूंढना चाहिए क्योकि सयुक्त राष्ट्र सघके सदस्य भी राज्य है जो कि स्वतत्र और सम्प्रभु हैं। सयुक्त राष्ट्र सघ भी अपने सदस्योसे अपनी सम्प्रभुता समर्पित करनेकी माग उसी प्रकार नही करता जैसे कि राष्ट्र सघ नही करता था। सयुक्त राष्ट्र सघ "सम्प्रभु राज्योका स्वेच्छामूलक सहयोग" है। वह राज्यो पर राज्य (super state) नही है।

सयुक्त राष्ट्र-सघके उद्देश्य (Purposes of the U N)

सयुक्त राष्ट्र सघके निम्नलिखित चार उद्देश्य है—(१) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाये रखना,

(२) समान अधिकारो और आत्म निर्णयके प्रति निष्ठाके आधार पर—राष्ट्रो के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धोका विकास करना,

(३) आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक और मानवता मूलक अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओंके सुलझाने और मानवीय अधिकारो तथा सबके लिए मौलिक स्वाधीनताओ के प्रति सम्मानकी भावनाका विकास करनेमे सहयोग करना, और

(४) इन सार्वजनिक उद्देश्योकी सिद्धिके लिए राज्यो द्वारा किये जानेवाले कार्योके समन्वय (harmony) का केन्द्र बनना।

सिद्धान्त (principles)—ऊपर बताये गये उद्देश्योकी पूर्तिके लिए सयुक्त राष्ट्र सघ निम्नलिखित सिद्धान्तोके अनुसार काम करता है —

(१) सघका सगठन अपने सभी सदस्योकी सम्प्रभुताकी समताके सिद्धान्त पर आधारित है,

(२) सदस्य राष्ट्रोने घोषणा पत्रके अनुसार जो जिम्मेदारियाँ या कर्तव्य पूरा करनेका भार अपने ऊपर लिया है उन्हें सदस्य राष्ट्र ईमानदारीके साथ पूरा करें,

(३) सदस्योको अपने अन्तर्राष्ट्रीय झगडे शान्तिमय तरीकोमे सुलझाने है,

(४) सदस्योको अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धोमे ऐसे किसी ढगसे शक्ति-प्रयोग की धमकी नही देना है और न शक्तिका प्रयोग करना है जो सयुक्त राष्ट्रोके उद्देश्य के प्रतिकूल हो,

(५) घोषणा पत्रके अनुसार सयुक्त राष्ट्र सघ जो भी काम करे उसमे सदस्योको हर प्रकारकी मदद करनी है और ऐसे किसी भी राष्ट्रका सहायता नही देनी है जिसके विरुद्ध सयुक्त राष्ट्र सघ निषेधात्मक या आदेशमूलक कार्रवाई कर रहा हो,

(६) सयुक्त राष्ट्र सघको इस बातका प्रयत्न करना है कि जो राष्ट्र सघके सदस्य नही है वे भी, जहाँ तक अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा कायम रखनेके लिए आवश्यक है, इन सिद्धान्तोके अनुसार आचरण करें,

(७) सयुक्त राष्ट्र सघका किसी राष्ट्रके घरेलू मामलोमें दखल नही देना है। पर जब शान्ति भग होनेका खतरा हो या शान्ति भगकी गयी हो तथा आक्रमण किया गया हो तब यह धारा लागू नही होगी और सयुक्त राष्ट्र सघ आदेश मूलक कार्रवाई कर सकेगा।

सदस्यता (Membership) जैसा ऊपर बताया जा चुका है, सयुक्त राष्ट्र सघके प्रथम सदस्योकी सख्या पचास थी। १९५५ तक केवल दस सदस्य और शामिल किये गये क्योकि सदस्योके अगीकरणका प्रश्न दो शक्तिशाली गुटोके बीच सघर्षका विषय बन गया। १९५५ में दोनो गुटोमे समझौता हो जानेसे एक साथ सोलह सदस्य सघमे शामिल कर लिये गये। सदस्योकी सख्या १९५८ के अन्त तक ८२ पर पहुँच गयी है। सघकी सदस्यता "सभी शान्ति प्रिय राष्ट्रोके लिए खुली है"। सदस्योको घोषणा पत्रमे लिखित उत्तरदायित्व स्वीकार करने होते है और उनमे इन उत्तरदायित्वोका निभानेकी सामर्थ्य और इच्छा होनी चाहिए। सुरक्षा परिषदकी सिफारिश पर आम सभाके दो तिहाई सदस्योके समर्थन द्वारा नये सदस्य सयुक्त राष्ट्र सघमे शामिल किये जाते है। और सुरक्षा परिषदमे पाच बडों (ब्रिटेन, राष्ट्रीय चीन, फ्रास, सयुक्त राज्य अमेरिका और रूस) में से कोई भी अपने वीटो (veto) का

प्रयोग कर सकता है। सयुक्त राष्ट्र सघके छोटेमे इतिहासमे सोवियत रूस ने बहुत बार वीटाका प्रयोग किया है जिसमे से कई बार यह प्रयोग इसी सम्बन्धमें किया गया है। इस अधिकार का इतना अधिक दुरुपयोग किया गया है कि यह सामान्य धारणा बन गई है कि इस स्थितिसे बचनेके लिए कोई उपाय निकालना चाहिए। एक सम्भव हल यह है कि किसी भावी सदस्यकी सदस्यता पर वीटो का प्रयोग केवल दो बार ही किया जाय। या नये सदस्य सुरक्षा परिषदकी सिफारिशके बिना ही आम सभाके दो तिहाई वोटो से शामिल किये जाय। राष्ट्र सघमे ऐसा ही होता था। यह बहुत आवश्यक है कि सयुक्त राष्ट्र सघका आधार यथासम्भव अधिकाधिक व्यापक हो और केवल वही राष्ट्र उससे बाहर रखे जायँ जिनका सकल्प ही उसे नष्ट कर देना हो।

घोषणा पत्रके सिद्धान्तोका बार-बार उल्लघन करने पर किसी सदस्यको सघसे निकाला जा सकता है। आम सभाको अधिकार है कि सुरक्षा परिषदमे जिन सदस्योके विरुद्ध निषेधात्मक या आदेशमूलक कारवाईकी गई हो उनकी सदस्यताको सुरक्षा परिषदकी माग पर दो तिहाई सदस्योके वोटमे स्थगित (suspend) करदे। जिस सदस्य राष्ट्रकी सदस्यता इस प्रकार स्थगितकी जाती है वह सयुक्त राष्ट्र सघकी किसी भी शाखाको बैठकोमे शामिल नही हो सकता जिसका वह सदस्य है। वह किसी न्यास प्रदेश (trust) का शासन नही कर सकता। पर ऐसे राष्ट्रके जो नागरिक सयुक्त राष्ट्र सघके सचिवालयमे काम करते है वे काम करते रहते है।

सयुक्त राष्ट्र सघमे किसी सदस्यके सघसे अलग हो जानेकी कोई व्यवस्था नही है। राष्ट्र सघमे यह व्यवस्था थी। पर विशेष परिस्थितियोके कारण किसी सदस्यके बाहर निकलने पर रोक लगानेका कोई इरादा नही है। अभी तक कोई सदस्य सघसे अलग नही हुआ है यद्यपि फ्रान्स और दक्षणी अफ्रीका ने बैठकोम से विरोध प्रस्थान किया है (staged a walk-out)।

सयुक्त राष्ट्र-सघकी शाखाए (The Organs of the United Nations) जहा राष्ट्र सघ (League of Nations) की तीन प्रधान शाखाए थी—आम सभा, परिषद और सचिवालय—वहा सयुक्त राष्ट्र सघकी निम्नलिखित ६ मुख्य शाखाए हैं—आमसभा (the General Assembly), सुरक्षा परिषद (The Security Council), आर्थिक तथा सामाजिक परिषद (The Economic and Social Council), न्यास परिषद (The Trusteeship Council), अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (the International Court of Justice) और सचिवालय (the Secretariat)। आर्थिक और सामाजिक परिषद तथा न्यास परिषद आम सभाके अधीन काम करती है। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयको सयुक्त राष्ट्र सघका एक अविभाज्य अग बनाया गया है। सघके सारे प्रशासकीय काय सुरक्षा परिषद, आर्थिक और सामाजिक परिषद और न्यास परिषदके बीच बँटे हुए है। सुरक्षा परिषद आम सभासे अलग स्वतन्त्र रूपमें काम करती है।

आम-सभा (The General Assembly)

आम सभा ही सयुक्त राष्ट्र सघकी ऐसी अकेली शाखा है जिसमें सघके सभी सदस्य-राष्ट्रो के प्रतिनिधि रहते है। प्रत्येक सदस्यको पाच प्रतिनिधि रखनेका अधिकार है जिन सबका एक वोट होता है। आम सभाकी बैठक नियमित रूपसे सालमे एक बार होती है। प्राय यह बैठक सितम्बरके महीनेमे प्रारम्भ होती है। सुरक्षा परिषद या सघके बहुसख्यक सदस्योकी प्रार्थना पर आम सभाकी विशेष बैठक बुलाई जा सकती है। आम सभा केवल विचार विमर्श करने वाली सस्था है। वह केवल सिफारिश कर सकती है। शान्ति और सुरक्षाके मसले अकेले सुरक्षा परिषदको ही सौपे गये है। जब सुरक्षा परिषद ऐसे मसलो पर विचार कर रही हो तब आम सभा उस सम्बन्धमे कोई सिफारिश भी नही कर सकती। पर १९५० मे स्वीकृत 'शान्तिके लिए सगठित कार्रवाई" वाले प्रस्ताव {या अचेसन प्रस्ताव (Acheson महोदयके नाम पर)} के अनुसार यदि सुरक्षा परिषद किसी महत्त्वपूर्ण मसले पर कदम उठानेमे असफल होती है तो आम सभा उस मसले पर विचार कर सकती है और उचित सिफारिश कर सकती है। साधारणतया आम सभाका काम "विचार विमर्श करना, विवाद करना, और सिफारिश करना है पर कार्रवाई करना नही"। विचार विमर्श करनके अधिकार के साथ-साथ आम सभाको कुछ प्रशासकीय या व्यवस्था सम्बन्धी, निर्वाचन सम्बन्धी और बजट सम्बन्धी अधिकार प्राप्त है। उस घोषणा पत्रमे सशोधनोके लिए कदम उठानेका भी अधिकार है।

राष्ट्र सघ और सयुक्त राष्ट्र सघकी आम सभाओके बीच एक प्रधान अन्तर यह है कि राष्ट्र सघकी आम सभा ऐसे निर्णय कर सकती थी जो सदस्यो पर लागू होते थे, पर सयुक्त राष्ट्र सघकी आम सभा केवल सुझाव दे सकती है, यद्यपि उसके पीछे काफी नैतिक बल रहता है।

सयुक्त राष्ट्र सघकी आम सभामे मतदानकी पद्धति राष्ट्र सघकी पद्धतिकी अपेक्षा सुधरी हुई है। राष्ट्र सघकी आम सभामे किसी निणयके लिए सर्वसम्मत मत आवश्यक था यानी उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्योका सर्वसम्मत मत। पर सयुक्त राष्ट्र सघकी आम सभामे मौजूद और मतदान करने वाले सदस्योके दो तिहाई मतसे ही निर्णय हो सकते है। इस प्रकार निर्णयकी जानेवाली समस्याओमे निम्न-लिखित विषयो पर सुझाव देना भी शामिल है अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा कायम करना, परिषदोके सदस्योका निर्वाचन, सयुक्त राष्ट्रसघमे नये सदस्योकी भर्ती, या सदस्योका स्थगन (suspension) या निष्कासन, न्यासधारी व्यवस्थाकी कार्य विधिसे सम्बन्ध रखने वाले मसले, और बजट सम्बन्धी प्रश्न। उपस्थित और वोट देनेवाले सदस्योके साधारण बहुमतसे ही अन्य मसलो पर निर्णय किये जाते हैं। आम सभाकी समितियोमें निर्णय उपस्थित और वोट देने वाले सदस्योके बहुमतसे किये जाते है।

राजनीतिके क्षेत्रमें अन्तर्राष्ट्रीय सहयोगका विकास करने और अन्तर्राष्ट्रीय विधान

के निरन्तर विकास और सहितावद्ध करनेके कार्यको उत्साहित करनेके लिए अध्ययन का उपक्रम और अपने सुझाव रखने या सिफारिश करनेके व्यापक अधिकार आम सभाको दिये गये हैं। "निश्शस्त्रीकरणके निर्देशक सिद्धान्तो और शस्त्रास्त्रोके नियमन सम्बन्धी सिद्धान्तो" पर विचार करने और अपने सुझाव देनेका भी अधिकार आम सभाको है। चौदहवी धाराके अन्तर्गत उसे अधिकार है कि 'ऐसी किसी परिस्थितिके शान्तिपूर्ण सुलझावके सम्बन्धमे उस परिस्थितिकी उत्पत्ति पर ध्यान न देते हुए निश्चित कदम उठानेकी सिफारिश करे जिसे वह राष्ट्रोके मैत्रीपूर्ण सम्बन्धो अथवा सामान्य कल्याणके लिए घातक या बाधक समझती हो।'

अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षाके बारेमे आम सभा निम्नलिखित दो हालतोमें सिफारिशे कर सकती है (१) जब सुरक्षा परिषद घोषणा पत्र (Charter) के अन्तर्गत अपना काम न कर रही हो। या (२) जब सुरक्षा परिषद निवेदन करे। धारा ११ (३) के अन्तर्गत आम सभा सुरक्षा परिषदका ध्यान उन परिस्थितियोकी ओर दिला सकती है जिनसे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षाको खतरा हो। धारा १२ (२) मे इस बातकी व्यवस्था है कि सयुक्त राष्ट्र सघके सदस्योको उन मामलोमे अवगत रखा जाया करे जो कार्रवाईके लिए सुरक्षा परिषदके विचाराधीन हो। सयुक्त राष्ट्र सघका महामत्री सुरक्षा परिषद (सम्भवत सभी स्थायी सदस्य) की मजूरीसे आम सभाके प्रत्येक अधिवेशनको अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा कायम रखनेसे सम्बन्धित उन मामलोसे सूचित करेगा जिन पर सुरक्षा परिषद विचार कर रही हो। जब सुरक्षा परिषद ऐसे मामला पर विचार करना समाप्त कर देती है, तो इसकी सूचना भी महामत्री आम सभाको देगा। और यदि आम सभाका अधिवेशन नहीं हो रहा हो तो सयुक्त राष्ट्र सघके सदस्योको सूचित किया जायगा।

सगठनात्मक कार्यके अन्तर्गत, आम सभा सुरक्षा परिषदके अस्थायी सदस्योको दो वर्षोंके लिए चुनती है। वह आर्थिक और सामाजिक परिषदके सदस्योको चुनती है और न्यास-परिषद (Trusteeship Council) के निर्वाचनीय सदस्यो (elective members) को चुनती है। (बाकी सदस्य *ex-officio* होते हैं)। सुरक्षा परिषदकी सिफारिश पर आम सभा सयुक्त राष्ट्र सघके महामत्रीको नियुक्त करती है। सुरक्षा परिषदके साथ स्वतत्र रूपसे वोट देते हुए आम सभा अन्तर्राष्ट्रीय न्याया-लयके न्यायाधीशोको चुनती है।

आम सभा सघकी अन्य सस्थाओसे उनकी रिपोर्ट लेती है और उन पर विचार करती है। महामत्रीकी वार्षिक रिपोर्ट आम सभामे पेशकी जाती है। आम सभा समूचे सगठनके बजट पर विचार करती है, उसे स्वीकार करती है और सदस्योके बीच व्ययका बटवारा करती है।

सुरक्षा परिषदको पन्द्रहवी और चौबीसवी धाराओके अन्तर्गत आम सभाके सामने वार्षिक रिपोर्टे और विशेष रिपोर्टे पेश करनी होती है। यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि ये रिपोर्टे कब पेशकी जानी चाहिए। ऐसा मालूम होता है कि सुरक्षा

परिपदको काम करनेकी पर्याप्त स्वतत्रता है। आम सभा इन प्रतिवेदनो या रिपोर्टो को लेती है और उन पर "विचार" करती है। "विचार" करनेके सिलसिलेमे प्रति-वेदनोमे निहित समस्याओ पर अपने सुझाव देनेका अधिकार आम सभाका है। यद्यपि शान्ति और सुरक्षा कायम रखनेका उत्तरदायित्व सुरक्षा परिपद पर ही है पर आम सभाके जरियेमे उसे ससारके जनमनके सामने यह जवाब देना होता है कि वह इस महत्त्वपूर्ण कामका किस प्रकार कर रही है। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयके प्रतिवेदनो या रिपोर्टोके बारेमे कोई विशेप व्यवस्था नही की गई है। सघकी विशेप सस्थाओ को स्वायत्त अधिकार प्राप्त है और वे आम सभाके सामान्य निर्देशनमे काम करती है।

आम सभासे आशा की जाती है कि वह अपने अधिवेशनोके बीचकी अवधिमे अन्तरिम सभा या लघु सभाके माध्यमसे काम करे। इसमे प्रत्येक सदस्य राष्ट्रका एक प्रतिनिधि बैठता है। अन्तरिम या लघुसभा एक दुर्बल सस्था है क्योकि रूस इसका दृढ विरोधी है। आम सभा कुछ महत्त्वपूर्ण स्थायी समितियोके माध्यमसे काम करती है, जैसे प्रथम समिति जो राजनैतिक और सुरक्षा समितिके नाममे विख्यात है और द्वितीय समिति जो आर्थिक और वित्त समिति कहलाती है।

आम सभाकी प्रभावोत्पादकता (Effectiveness of the General Assembly) यद्यपि आम सभाका प्राथमिक कर्तव्य "विचार करना, विवाद करना और सिफारिश करना" है। फिर भी उसे किसी अर्थमे भी प्रभावहीन सस्था नही कहा जा सकता। उसका नैतिक प्रभुत्व दिनोदिन बढता ही गया है। सयुक्त राष्ट्र सघके जीवनके प्रथम दस वर्षोमे आम सभाकी प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि बढी है और सुरक्षा परिपदकी कुछ घटी है। एक लेखक ने आम सभाको "ससारकी नगर सभा" कहा है। एक दूसरे समकालीन लेखकके अनुसार आम सभा 'ससारकी स्पष्ट नैतिक चेतना" है। यह "आलोचना करनेवाली (criticizing), पर्यालोचन करने वाली (reviewing) और निर्देशन करनेवाली (overseeing) सस्था है, पर कार्य-वाहक (executive) सस्था नही है"। सुरक्षाके मसलोमे कार्यकारिणी सस्था, सुरक्षा परिपद है और आम सभा केवल "विवाद और आलोचना करनेवाली सस्था" है। किन्तु कल्याणसे सम्बन्ध रखनेवाले मामलोमे वह सर्वोपरि है।

सुरक्षा-परिषद (The Security Council)

सुरक्षा परिपद केवल अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षासे सम्बन्धित मसलो पर ही विचार करती है। इस मामलेमे इस परिपदकी शक्तियाँ राष्ट्र सघकी परिपदकी शक्तियोकी अपेक्षा अधिक और सुनिर्धारित है। इसमे १५ सदस्य होते है। यह सख्या निश्चित है (जैसा कि राष्ट्र सघकी परिपदमे न था)। इन १५ सदस्योमेसे पाँच सदस्य स्थायी होते हैं जो पाँच बडे राष्ट्रोके प्रतिनिधि होते हैं। अस्थायी सदस्यो

पाँच

का चुनाव दो वर्षके लिए होता है और प्रतिवर्ष तीन सदस्य चुने जाते हैं। ये सदस्य लगातार दुबारा नहीं चुने जा सकते हैं। भारत एक बार अस्थायी सदस्य रह चुका है। अस्थायी सदस्योंका चुनाव करते समय निम्नलिखित दो बातोंका ध्यान रखा जाता है (१) राष्ट्रसंघके सदस्यों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा कायम रखनेमें और संघके अन्य उद्देश्योंकी पूर्तिमें योगदान (२) न्यायसंगत भौगोलिक वितरण। यह केवल सामान्य नियम है जिनकी अवहेलना भी आम सभा कर सकती है। और वास्तवमें एकसे अधिक बार ऐसा किया जा चुका है। सन् १९५५ तक इस नियम की अवहेलना की गयी है। यह तो दो शक्तियोंके संघर्षका एक मसला बन गया है।

विशेष परिस्थितिमें अल्पकालीन सदस्योंकी भी व्यवस्था है। ये सदस्य संघके उन सदस्य राष्ट्रोंका प्रतिनिधित्व करनेके लिए आमंत्रित किये जाते हैं जिन्हें सुरक्षा परिषदमें प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त है या जो संयुक्त राष्ट्र संघके सदस्य नहीं है पर विचाराधीन मसलेसे सम्बन्धित है। ऐसे आमंत्रित सदस्य सुरक्षा परिषदकी बैठकोंमें भाग लेते हैं, पर वोट नहीं देते।

परिषदके हर सदस्यका एक वोट होता है। स्थायी सदस्य रखनेका कारण यह है कि वे सुरक्षाकी गारण्टी देनेवाले सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण राष्ट्र माने जाते हैं। परिषदके स्थायी सदस्योंमें परिवर्तन १०८ वी और १०९ वी धाराके अनुसार संघके घोषणा पत्रका संशोधन करके ही किया जा सकता है।

परिषदका सभापतित्व परिषदके सदस्योंमें अंग्रेजी वर्णमालाके अक्षरोंके अनुसार सदस्य राष्ट्रोंके नामोंके क्रमसे प्रति मास बदलता रहता है। परिषद अपने कार्य करनेकी नियमावली स्वयं बनाती है और अपना काम पूरा करनेके लिए आवश्यक उपसंस्थाओंका निर्माण करती है। इस प्रकार परिषदके १९ सदस्योंकी दो अस्थायी समितियां है (क) विशेषज्ञ समिति या प्रवर समिति जो कार्य पद्धतिकी नियमावलीका काम देखती है और (ख) नये सदस्योंकी भर्तीका काम देखनेवाली समिति।

वीटो (The Veto) सुरक्षा परिषदके हर स्थायी सदस्यको सभी तात्विक प्रश्नों पर वीटो प्राप्त है। वोट न देनेका अर्थ निषेधात्मक वोट नहीं है और न अनुपस्थितिका ही अर्थ निषेधात्मक वोट होता है। इस दूसरी बातका निर्णय १९५५ में हुआ था जब रूसके प्रतिनिधि श्री जेकब मलिक राष्ट्रवादी चीनके प्रतिनिधित्वहीन प्रतिनिधिके बराबर परिषदमें भाग लेनेके विरोधमें परिषदमें अनुपस्थित रहे थे। बादमें जब वह सुरक्षा परिषदमें वापस आये और उन्होंने यह दावा किया कि उनकी अनुपस्थितिमें की गई परिषदकी कार्यवाही अवैध है तब परिषदने उनका दावा अस्वीकार कर दिया। सभी तात्विक प्रश्नोंके बारेमें कोई निर्णय वैध होनेके लिए उसके पक्षमें सात वोट होने चाहिए जिनमें पाँच स्थायी सदस्योंके वोट सम्मिलित हो। कार्य-पद्धतिसे सम्बन्धित प्रश्नोंमें किन्हीं सात सदस्योंके स्वीकारात्मक वोट पर्याप्त होते है। यह भी एक तात्विक प्रश्न है कि कौन-सा प्रश्न तात्विक है और कौन-सा कार्य-पद्धतिसे सम्बन्धित है।

उसकी ओर ध्यान आकर्पित करनेके निम्नलिखित चार तरीके हैं—(१) राष्ट्र सघकी भाति सयुक्त राष्ट्र सघके घोषणा पत्रके अन्तगत सदस्योंको इस बातका अधिकार है कि वे सु क्षा परिषद अथवा आम सभाका ध्यान ऐसी किसी भी स्थिति या ऐसे झगडे की ओर आकर्पित करे जिसमे अन्तर्राष्ट्रीय सघर्ष या झगडा उत्पन्न हो जानेकी आशका हो। (२) सुरक्षा परिषद स्वय किसी भी स्थिति या झगडेकी जाच यह जाननेके लिए कर सकता है कि "क्या इस स्थिति या झगडेका बना रहना अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षाके कायम रखनेमे घातक होगा" (धारा ३४)। (३) आम सभा ऐसी स्थितियो की ओर सुरक्षा परिपदका ध्यान आकर्पित कर सकती है जिनसे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षाके लिए खतरा पैदा होनेकी आशका हो (धारा ११, पैरा ३)। (४) महामत्री सुरक्षा परिपदका ध्यान किसी भी ऐसी स्थितिकी ओर आकर्पित कर सकता है जो उसकी रायमे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा कायम रखनेमे बाधा डालनेवाली हो। इस अन्तिम बातसे यह मालूम पडेगा कि महामत्री एक प्रतिष्ठित प्रधान क्लर्क मात्र नही है। वह स्वय भी काफी कार्योका सूत्रपात कर सकता है (he is endowed with considerable initiative)। श्री ट्रिग्वे ली (Trygve Lie) ने कभी-कभी इस अधिकारका विचारहीन प्रयोग किया था। पर उनके उत्तराधिकारी श्री हैमर शोल्ड (Dag Hammarskjold) ने ऐसा नही किया।

धारा ३५ (२) के अन्तगत कोई भी राष्ट्र सयुक्त राष्ट्र सघका सदस्य न होते हुए भी अपनेसे सम्बन्धित किसी झगडेको सयुक्त राष्ट्रके सामने रख सकता है, बशर्ते कि वह मामलेको सयुक्त राष्ट्र सघके घोषणा पत्रके अनुसार शान्तिपूर्वक तय करनेको राजी हो।

अन्तर्राष्ट्रीय अथवा सामूहिक आत्मरक्षा (International or collective self-defence) के मामलोके अतिरिक्त अन्य सब मामलोमे युद्धसे विरत रहनेका उत्तरदायित्व सदस्यो पर पूरा-पूरा है (धारा ५१)। यदि शान्तिके लिए कोई खतरा हो या शान्ति भग की गई हो या किसी प्रकारकी आक्रामक कार्रवाई की गई हो—तो सुरक्षा परिपद इसके विरुद्ध निपेधात्मक या आदेशात्मक कदम उठा सकती है। सुरक्षा परिपद शान्तिपूर्ण समझौतेके लिए निम्नलिखित तरीके अपना सकती है: (१) झगडेमे सम्बन्धित पक्ष पचायत, न्यायालय, आपसी बातचीत, जाच, मध्यस्थो तथा समझौते द्वारा अथवा प्रादेशिक प्रतिनिधि सस्थाओ और प्रबन्धो (regional agencies and arrangements) द्वारा अपने झगडेका निपटारा कर सकते है। (२) जब झगडेमे सम्बन्धित पक्ष स्वय झगडा निपटानेमे असफल रहें और झगडेके बने रहनेमे शान्ति और सुरक्षाका खतरा हो तब सुरक्षा परिपद उन पक्षोंको ऊपर लिखे तरीकोसे अपना झगडा निपटानेको कह सकती है। (३) झगडेकी किसी भी स्थिति मे किसी भी समय सुरक्षा परिपद झगडा हल करनेके लिए उचित तरीकोंकी सिफारिश कर सकती है पर परिपदकी इस सिफारिशसे झगडेका कोई पक्ष विधितः बाध्य नही है, भले ही इस सिफारिशका अधिकसे अधिक राजनीतिक या नैतिक महत्त्व हो।

वैधिक झगडे (जिन्हें पहले न्यायमाध्य कहा जाता था) नियमत अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयके सामने पेश किये जाते है। इस सबसे यह स्पष्ट है कि शान्ति पूर्ण समझौते की पद्धति सयुक्त राष्ट्र सघके घोषणा पत्रमे राष्ट्र सघकी बनाई गई पद्धतिकी अपेक्षा अधिक लचीली है।

आदेशात्मक कार्रवाई (Enforcement Action) (१) सुरक्षा परिषद ३९वी धाराके अनुसार शान्तिके लिए खतरा, शान्ति भग और आक्रामक कार्रवाईका निर्णय करती है। एक बार इस सम्बन्धमे निर्णय कर लेने पर वह तुरन्त कार्रवाई कर सकती है। यह निश्चय सारे सयुक्त राष्ट्र सघकी ओरसे किया जाता है। इसलिए सघके सभी सदस्य आवश्यकतानुसार सुरक्षा परिषदकी सहायता करनेको बाध्य हैं (धारा ४८)। सघके व्यक्तिगत सदस्योको फिर निश्चय करना नही रह जाता। (२) सुरक्षा परिषद परिस्थितिको बिगडनेसे बचानेके लिए अस्थायी या अन्तरिम कार्रवाईकी माग कर सकती है। (३) सैनिक तथा असैनिक दोनो प्रकारकी अनुशास्तियो (sanctions) के सम्बन्धमें सघके सदस्य सुरक्षा परिषदके निर्णयोमे बाध्य है। (४) राष्ट्र सघ (League of Nations) के पास कोई सशस्त्र-सेना नही थी। सयुक्त राष्ट्र सघके घोषणा पत्रमे सेनाके प्रयोगके सम्बन्धम अग्रिम योजना बनानेकी व्यवस्था की गई है। ४५वी धाराके अनुसार सदस्योको "सामूहिक अन्तर्राष्ट्रीय आदेशात्मक कार्रवाईके लिए तुरन्त मिल सकनेवाली राष्ट्रीय हवाई सेनाका टुकडिया तैयार रखनी चाहिए।" शान्तिके लिए सामूहिक कार्रवाईवाले प्रस्तावम सामूहिक कार्रवाई समितिको व्यवस्थाके द्वारा इस योजनाको और अधिक सबल बना दिया गया है। कमी यह है कि कोई सैनिक कारवाई उस समय तक नही हो सकती जब तक सभी पाचो बडे राष्ट्र सहमत न हो। सयुक्त राष्ट्र सघ छोटे राष्ट्रों के विरुद्ध प्रभावपूर्ण निषेधात्मक (preventive) और आदेशात्मक (enforcement) कार्यवाही कर सकता है।

सुरक्षा परिषद निम्नलिखित दो प्रकारकी आदेशात्मक कार्रवाई कर सकती है (१) ऐसी कार्रवाई जिसम सेनाका प्रयोग आवश्यक न हो यानी आर्थिक और कूटनीतिक कार्रवाई जैसे आर्थिक सम्बन्धो और रेल, तार, रेडियो, डाक, समुद्री हवाई और अन्य सचार सूत्रो व परिवहन (transport) का पूर्ण या आशिक स्थगन और कूटनीतिक सम्बन्धोकी समाप्ति। (२) सयुक्त राष्ट्र सघके सदस्योकी जल, थल और नभ सेना द्वारा समुद्री, स्थलीय और हवाई कार्रवाई जिनम प्रदर्शन, घेरा डालना और अन्य कारवाइया शामिल है। परिषद इस बातका निश्चय करती है कि कार्रवाई सब सदस्यो द्वारा की जानी चाहिए या कुछ सदस्यो द्वारा और जो कार्रवाई की जाय वह इन उपयुक्त अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओके माध्यमसे की जाय जिनके वे सदस्य है, या स्वतत्र रूपसे सीधी कार्रवाई होनी चाहिए।

सुरक्षा परिषद द्वारा सचालित आदेशात्मक कार्रवाई किये जानेके फलस्वरूप यदि किसी राष्ट्रके सम्मुख विशिष्ट आर्थिक समस्याए उठ खडी होती हैं तो वह राष्ट्र चाहे

वह सयुक्त राष्ट्र सघका सदस्य हो या न हो, उन समस्याओके हलके सम्बन्धमे सुरक्षा परिपदसे परामर्श कर सकता है।

क्षेत्रीय व्यवस्थाए (Regional Arrangements) सैनफ्रासिस्कामे पश्चिमी गोलार्द्धके राष्ट्रोने इस बात पर बहुत जोर दिया कि क्षेत्रीय व्यवस्थाओ और सस्थाओकी वैधता स्वीकार की जाय। इसका परिणाम घोपणापत्रकी ५२वी धारा है जिसमे क्षेत्रीय सस्थाओ और सयुक्त राष्ट्रके बीच एक निश्चित सम्बन्धकी व्यवस्था की गई है। ये सस्थाए अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा कायम रखनेमे सहायता देनेके लिए है। इन व्यवस्थाओं या सस्थाओको और उनके कार्य कलापोको सयुक्त राष्ट्र सघके उद्देश्य और सिद्धान्ताके अनुकूल होना चाहिए। इन सस्थाओका उद्देश्य स्थानीय झगडाका निपटाना है। जहा उचित होता है वहा सुरक्षा परिपद अपनी आदेशात्मक कारवाईमे इन सस्थाओ या व्यवस्थाओसे काम ले सकती है। पर भूतपूर्व शत्रु राष्ट्रोसे सम्बन्धित मामलोके अतिरिक्त अन्य किसी भी मामलेमे सुरक्षा परिपद द्वारा अधिकार पाये बिना किसी प्रकारकी आदेशात्मक कार्रवाई नही की जा सकती। सयुक्त राष्ट्र सघको इस बातकी सूचना बराबर दी जानी चाहिए कि क्या कार्रवाई की जा रही है और की जायगी। क्षेत्रीय व्यवस्थाओ और सस्थाओ पर सुरक्षा परिपदके प्रभावपूण नियत्रणके लिए यह धारा आवश्यक समझी जाती है।

प्रधान पश्चिमी राष्ट्रो और उनके पिछलग्गू पूर्वी राष्ट्रोंका दावा है कि नाटो (NATO—North Atlantic Treaty Organization), सीटो (SEATO—South East Asia Treaty Organization) और बगदाद सन्धि क्षेत्रीय व्यवस्थाओ के दायरेमे आती है। पर शेप ससार इस पर विश्वास नही करता। असलियत तो यह है कि सैनिक होते हुए भी रक्षात्मक कहे जानेवाले ये क्षेत्रीय गठबन्धन शान्तिके लिए आज सबसे बडे खतरे है।

सयुक्त राष्ट्र सघके घोपणापत्रके अनुसार "स्थानीय झगडे" पहले इन क्षेत्रीय सस्थाओके सामने पेश किये जाने चाहिए और उसके बाद सुरक्षा परिपदके सामने। सुरक्षा परिपद भी फिर इन्ही सस्थाओको झगडे तय करनेका आदेश दे सकती है। यह व्यवस्था पहलेकी उस व्यवस्थाके विरुद्ध है जिसमे कहा गया था कि सुरक्षा परिपदका काम केवल कार्य पद्धति सम्बन्धी सुझाव देना है। यदि क्षेत्रीय सस्था झगडा नही निपटा पाती तो सुरक्षा परिपद, अपने अधिकारका प्रयोग करती है।[1]

घरेलू या आन्तरिक मामले (Domestic Matters) घरेलू या आन्तरिक मामलोके सम्बन्धमे सयुक्त राष्ट्र सघके घोपणापत्रकी व्यवस्था राष्ट्र सघकी व्यवस्था की अपेक्षा अधिक व्यापक है। दूसरी धाराके सातवें पैराके अनुसार सयुक्त राष्ट्र सघ "ऐसे मामलोमे हस्तक्षेप नही करेगा जो तात्विक रूपमे किसी राष्ट्रके घरेलू या

---

[1] घोपणा पत्रकी कुछ टिप्पणिया निम्नलिखित पुस्तकसे ली गई है
Goodrich & Hambro Charter of the United Nations Commentary and Documents

आन्तरिक क्षेत्रमें आते हैं। और न सदस्योंसे माग करेगा कि वे एसे मामलोंको घोषणा-पत्रके अन्तर्गत हल करनेके लिए संयुक्त राष्ट्र संघके सामने पेश करें।

सुरक्षा परिषदके अन्य कर्तव्य (Other Functions of the Security Council) सामरिक महत्व के (*strategic*) न्यस्त प्रदेशों (*trust areas*) का निरीक्षण करना सुरक्षा परिषदका काम है। सुरक्षा परिषदके स्थायी सदस्य न्यास परिषद (Trusteeship Council) के पदेन (*ipso facto*) सदस्य होते हैं। सुरक्षा परिषद और आम सभा साथ-साथ, किन्तु स्वतंत्र रूपसे, वोट देकर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयके न्यायाधीशोंका निर्वाचन करती है। सुरक्षा परिषद आम सभाको वार्षिक और विशेष रिपोर्टें भेजती है। सामरिक महत्वके क्षेत्रोंके सम्बन्धमें सुरक्षा परिषद आर्थिक और सामाजिक परिषद और न्यास परिषदकी भी सहायताकी प्रार्थना कर सकती है। किसी भी वैधिक मामलेमें सुरक्षा परिषद अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयसे परामर्श ले सकती है।

सैनिक कार्रवाई समिति (Military Staff Committee), मान्य-शस्त्रास्त्र समिति (Committee for Conventional Armaments), तदर्थ (*ad hoc*) समितियां, स्थायी (standing) समिति या आयोग सुरक्षा परिषदको अपनी रिपोर्टें भेजनेवाली सहायक संस्थाएं है। मान्य-शस्त्रास्त्र आयोग शस्त्रास्त्रों और सेनाओंके सामान्य नियंत्रण और उनके घटानेके सम्बन्धमें अपने सुझाव या प्रस्ताव सुरक्षा परिषदको भेजता है। जनवरी सन् १९४६ में आम सभा द्वारा स्थापित अणुशक्ति आयोग सुरक्षा परिषदको अपनी रिपोर्ट भेजता है और उसीसे शान्ति और सुरक्षाके कायम रखनेसे सम्बन्धित प्रश्नों पर निर्देश प्राप्त करता है।

राज्यपत्रमें संशोधन (Amendments to the Charter) (धारा १०८ और धारा १०९) राज्यपत्रमें संशोधन आम सभा द्वारा अथवा संयुक्त राष्ट्र संघके सदस्योंके आम सम्मेलन द्वारा किये जा सकते है। ये संशोधन तभी लागू होते हैं जब वे आम सभाके कुल सदस्योंके (केवल उपस्थित और वोट देनेवाले सदस्योंके नहीं) दो तिहाई द्वारा स्वीकार कर लिये जायें और संघके दो-तिहाई सदस्य-राष्ट्र जिनमें सुरक्षा परिषदके सभी स्थायी सदस्य भी शामिल हैं, उन्हें मान लें।

राज्यपत्रमें संशोधन करनेका दूसरा तरीका यह है कि आम सम्मेलनमें आम सभाके दो-तिहाई सदस्य और सुरक्षा परिषदके कोई सात सदस्य संशोधनको स्वीकार कर लें। यदि आम सभाके दसवें वार्षिक अधिवेशनके पहले ऐसा सम्मेलन नहीं बुलाया जाता है तो आम सभाके दसवें वार्षिक अधिवेशनकी कार्य सूचीमें अधिवेशन बुलानेका प्रस्ताव अपने आप शामिल कर दिया जाता है। यदि आम सभाका बहुमत और सुरक्षा परिषदके सात सदस्य सम्मेलन बुलानेके पक्षमें वोट देते है तो सम्मेलन बुलाया जाता है।

हर संशोधनके लिए, चाहे वह पहले ढंगसे पास किया गया हो और चाहे दूसरे

ढगसे, यह आवश्यक होता है कि सुरक्षा परिषदके सभी स्थायी राष्ट्रों सहित सघके दो-तिहाई सदस्य, उसे स्वीकार करें।

आर्थिक और सामाजिक परिषद
(The Economic and Social Council)

जिस प्रकार सुरक्षा परिषदका लक्ष्य ससारको भयसे मुक्त करना है उसी प्रकार आर्थिक और सामाजिक परिषदका लक्ष्य ससारको अभावसे मुक्त करना है। किसी ने बिल्कुल ठीक कहा है कि "यह बातूनी सुरक्षा परिषदकी चुप्पी जुडवा बहिन है"।

घोषणा-पत्रकी ५५वी धारामे कहा गया है कि सयुक्त राष्ट्र सघके निम्न-लिखित कार्य होंगे,

(१) जीवनका स्तर ऊचा करना और भरपूर रोजी और आर्थिक व सामाजिक उत्थानकी परिस्थितियाँ उत्पन्न करना,

(२) अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, स्वास्थ्य-सम्बन्धी तथा अन्य सम्बन्धित समस्याओको हल करना और अन्तर्राष्ट्रीय सास्कृतिक और शिक्षा-सम्बन्धी मामलो मे सहयोग देना,

(३) जाति, लिग, भाषा और धर्मके भेदभावोसे रहित सबके लिए मानव अधिकारो और मौलिक स्वाधीनताओकी प्रतिष्ठा करना और पालन करवाना।

इनमे से अन्तिम तीसरी बात नयी है, यद्यपि राष्ट्र सघने भी विशिष्ट "अल्प-सख्यक समझौतोके अन्तर्गत" राष्ट्रीय अल्पसख्यक समुदायोके अधिकारोकी रक्षाके लिए बहुत कुछ किया था। राष्ट्र सघके अधिकाश आयोग और उसकी अधिकाश समितियाँ परिषदके प्रति उत्तरदायी थी। इसके विपरीत आर्थिक और सामाजिक परिषद केवल आम सभाके ही अधीन काम करती है।

आर्थिक और सामाजिक परिषदमे १८ सदस्य होते है। ये सदस्य आम सभा द्वारा तीन सालके लिए चुने जाते है। हर साल ६ सदस्योका चुनाव होता है। अवधि पूरी होनेके बाद सदस्य दुबारा चुने जा सकते है। इस परिषदमे सुरक्षा परिषदकी भाति स्थायी सदस्योका कोई व्यवस्था नही है और न भौगोलिक विविधताका या औद्योगिक तथा पिछड़े हुए राष्ट्रो या साम्राज्य सम्पन्न और उपनिवेशहीन राष्ट्रोके बीच सन्तुलनका कोई विचार रखा गया है। फिर भी व्यवहारमे पाच बडे राष्ट्र हमेशा चुने गये हैं और ये राष्ट्र परिषदके स्थायी सदस्यसे हो गये हैं। "प्रतिनिधित्वके भौगोलिक सन्तुलन" का सिद्धान्त भी व्यवहारमे अपना स्थान पा गया है।

आम सभाकी भाँति परिषदमे सभी सदस्योका पद समान है। प्रत्येक सदस्य राष्ट्रको एक सदस्य और एक वोटका अधिकार है। कोई भी प्रस्ताव साधारण बहुमतसे पास हो सकता है। साधारणतया परिषदकी बैठक वर्षमे दो बार सयुक्त राष्ट्र सघके केन्द्रमे होती है। यदि परिषद चाहे तो उसकी बैठक दूसरी जगह भी हो

सकती है। परिषद स्वय अपनी कार्य-पद्धतिके नियम बनाती है और अपने सभापति तथा उपसभापतिका चुनाव करती है। परिषद केवल सिफारिशे कर सकती है, वास्तविक कार्यकारिणी शक्ति उसके पास नही है।

जब परिषद किसी ऐसे मसले पर विचार करती है जिसका सम्बन्ध विशेष रूप से किसी गैर सदस्य राष्ट्रसे होता है तब उस राष्ट्रको बैठकमे भाग लेनेके लिए बुलाया जाता है। वह राष्ट्र विचार विमर्शमे भाग लेता है पर वोट नही दे सकता।

परिषद अपनी या अपने आयोगोकी बैठकोमे विशिष्ट समितियो या विशेषज्ञ समितियोके प्रतिनिधियोके भाग लेनेकी भी व्यवस्था कर सकती है जो विचार-विमर्शमे भाग तो ले सकते है पर वोट नही दे सकते। विशिष्ट समितियोकी कारवाइयोमे परिषदका भी प्रतिनिधित्व हो सकता है।

परिषद गैर-सरकारी सगठनो या सस्थाओके पर्यवेक्षकोको भी परामर्शदाताओ के रूपमे अपनी बैठकोमे बुलानेकी व्यवस्था कर सकती है।

आर्थिक और सामाजिक परिषदके कुछ विशिष्ट कर्तव्य ये है

(१) अपनेसे सम्बन्धित सभी विषयोका आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक और शिक्षा तथा अन्य सम्बन्धित मसलोका स्वय अध्ययन करना या अध्ययनका उपक्रम करना और उन मसलो पर अपनी रिपोर्ट तैयार करना।

(२) आम सभाको या सदस्य राष्ट्रोकी सरकारोको या विशेषज्ञ समितियोको अपनी सिफारिशे या सुझाव भेजना।

(३) समझौतोके मसविदे आम सभाके सामने पेश करना। पास हो जाने पर ये मसविदे सदस्य राष्ट्रोके पास उनकी स्वीकृति और कार्यान्वयके लिए भेजे जाते है।

(४) अपने कर्तव्योको पूरा करनेके लिए आयोगोकी स्थापना करना।

(५) अपने अधिकार-क्षेत्रके मसलोके सम्बन्धमे अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनोको बुलाना।

सुरक्षा परिषदको सूचनाए देना और निवेदन किये जाने पर अन्य प्रकारसे उसकी सहायता करना, परिषदके विशिष्ट कर्तव्य है। प्रन्यास परिषद (Trusteeship Council) का इस परिषदसे और उसकी विशेषज्ञ समितियोसे प्राविधिक सहायता (professional assistance) पानेका अधिकार है।

परिषद अपना काम विविध आयोगो, तदर्थ (*ad hoc*) समितियो, स्थायी समितियो और विशेषज्ञ समितियोके माध्यमसे करती है। यह सभी परिषदको अपनी रिपोर्टे भेजती है। आयोग दो प्रकारके होते हैं—व्यावसायिक (functional) और क्षेत्रीय (regional)। प्रथम कोटिके आयोग है—आर्थिक और रोजगार सम्बन्धी, मानव अधिकार सम्बन्धी, सामाजिक, महिलाओकी स्थिति सम्बन्धी, नशीली दवाओं सम्बन्धी, मुद्रा सम्बन्धी और आबादी सम्बन्धी। इनमेसे कुछ के अधीन उप-आयोग भी है। इन आयोगो और उप-आयोगोसे लाभ यह है कि ये अपने-अपने क्षेत्रकी

अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर निरन्तर विचार करते रहते है। ये आयोग और उप-आयाग अपने-अपने कार्य-क्षेत्रमे सचिवालयके कार्यसे बडा घनिष्ठ सम्पर्क रखते है। ये उन समस्याओं और प्रस्तावोका अध्ययन करते है जो कि परिषद इनके पास भेजती है और फिर ब्योरेवार अपना रिपोर्ट और सुझाव पेश करते हैं। इन आयोगोको स्पष्ट आदेश है कि सम्बन्धित मसलो पर विशेषज्ञ समितिया जितना काम कर चुकी है, ये आयोग उसके आगे काम करे और उन कार्याको न करे जो विशेषज्ञ समितियाँ कर चुकी है।

व्यावसायिक पक्षमे निम्नलिखित तीन उप-आयोग है (१) साख्यिकीय विश्लेषण (statistical sampling), (२) भेदभाव निरोध और अल्पसख्यक सरक्षण (prevention of discrimination and protection of minorities) और (३) सवाद या सूचना स्वातन्त्र्य और समाचार-पत्र स्वातन्त्र्य (freedom of information and of the press) सम्बन्धी।

स्थायी समितियोमे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्राविधिक सहायता समिति (Technical Assistance Committee) है। परिषद सदस्य राष्ट्रोको आयोगाके सदस्य निर्वाचित करती है। इसके लिए परिषदका सदस्य होना जरूरी नही है। इस प्रकार एक सन्तुलित प्रतिनिधित्व हो जाता है।

क्षेत्रीय आयोगाको बनानेका कारण यह है कि उनसे विविध आर्थिक समस्याओ का निपटारा आसान हो जाता है। इन आयोगाकी सदस्यता सम्बन्धित क्षेत्रके उन राष्ट्राको दो जाती है जो सयुक्त राष्ट्र सघके सदस्य है और उन सदस्योको भी जिनके विशिष्ट स्वार्थ उस क्षेत्रमे हो, उदाहरणार्थ अमरिका और ब्रिटेन के सम्बन्धित क्षेत्रके व राष्ट्र या क्षेत्र जो सयुक्त राष्ट्र सघके सदस्य नही हैं, सहायक सदस्योके रूपमे निर्वाचित किये जा सकते है।

अब तक इस प्रकारके तीन आयोग स्थापित किये गये है। योरोपके लिए सन् १९४७ मे आर्थिक आयोग (ECE—Economic Commission for Europe) बनाया गया था जिसमे १८ सदस्य है। इसके अधीन निम्नलिखित विषयोके बारेमे बनी समितिया हैं कोयला, विद्युत् शक्ति, उद्योग और कच्चा माल, देशी परिवहन, जनशक्ति (manpower), इस्पात, इमारती लकडी (timber), व्यवसायका विकास और कृषि सम्बन्धी समस्याए।

सन् १९४७ मे ही एशिया और सुदूर पूर्वके लिए भी आर्थिक आयोगकी स्थापना की गयी थी। (ECAFE—The Economic Commission for Asia and the Far East)। १९५१ के अन्त तक इसके १४ सदस्य और ११ सहायक सदस्य थे। इसके अधीन अनेक सहायक सस्थाए हैं। उनमेसे एक बाढ-नियत्रण समिति भी है। इस आयोग ने अपने सदस्योके लिए बहुत अधिक आकडे तथा अन्य सामग्री उपलब्ध कर दी है।

तीसरा क्षेत्रीय आयोग लैटिन अमेरिका (टिप्पणी दक्षिणी और मध्य अमेरिकाके वे

प्रदेश लैटिन अमेरिका कहलाते है जहाके निवासियोकी भाषा स्पेनिश, पोर्चुगीज या फ्रेंच है) के लिए आर्थिक आयोग है जो सन् १९४८ मे स्थापित किया गया था। इसके २४ सदस्य और ४ अस्थायी समितियाँ है।

मध्य पूर्वके लिए एक आर्थिक आयोग स्थापित करनेका प्रस्ताव कार्य रूपमे नही लाया जा सका।

क्षेत्रीय आयोगोको अधिकार है कि वे अपने क्षेत्रकी सरकारोमे सीधे बातें करें, नीतियाँ सुझाये, और विशिष्ट सेवाए करें। आयोग परिषदके पास अपनी रिपोर्ट भेजते है जिसके आधार पर उनके कार्योका पर्यालोचन (review) होता है।

निम्नलिखित चार अस्थायी समितियाँ है अन्तर्राजकीय संस्थाओसे बातचीत करनेवाली समिति, गैर-सरकारी सगठनो या सस्थाओसे परामर्शकी व्यवस्था करनेवाली सीमति, कार्य सूची समिति और बैठकोके कायक्रमकी अन्तरिम समिति।

निम्नलिखित विशिष्ट सस्थाए है—स्थायी केन्द्रीय अफीम बोर्ड, निरीक्षक समिति, अन्तर्राष्ट्रीय बाल सकट कोष (UNICEF—International Children's Emergency Fund) और सयुक्त राष्ट्र सघ बाल चदा-फण्ड।

परिषदके कार्यका सीमित स्वरूप (Limited Nature of the Work of the Council)

आर्थिक और सामाजिक परिषद पूरे ससारके सर्वाधिक आवश्यक या महत्त्वपूर्ण आर्थिक प्रश्नो पर विचार करनेका प्रयास नही करती, उन्हें सुलझानेकी बात तो दूर है। अमेरिकाके एक परराष्ट्र सचिव ने अपने इस कथनमे इस परिषदके और सम्पूर्ण राष्ट्र सघके कायके सीमित स्वरूपको स्पष्ट कर दिया है—"एक अन्तर्राष्ट्रीय सगठन आर्थिक और सामाजिक समस्याओके हलमे सहायता दे सकता है पर सम्प्रभु राष्ट्रोके कार्यो और अधिकारोमे दखल नही दे सकता। वह व्यक्तिगत सदस्य राष्ट्रोको कोई काय करनेका आदेश नही दे सकता। राष्ट्रोके आन्तरिक मामलो तक उसकी पहुँच नही होनी चाहिए। उसके साधन और उसकी काय पद्धतिया है अध्ययन, विवाद, रिपोट और सुझाव"। मूलत परिषदको बहुत सकुचित सीमाओके भीतर काम करनेके लिए बनाया गया था, पर सन् १९४५ मे अब तक जो गम्भीर आर्थिक और सामाजिक समस्याए ससारको पीडित करती आ रही है उन्होने परिषदके काय क्षेत्र को विस्तृत बना दिया है।

प्रन्यास-परिषद (The Trusteeship Council)

न्यस्त-प्रदेश और स्वशासनहीन क्षेत्र (Trust Territories and Non-Self-Governing Areas) सयुक्त राष्ट्र सघके वे सदस्य जो स्वशासनहीन

क्षेत्रोंका शासन करते हैं, ऐसे क्षेत्र चाहे अन्तर्राष्ट्रीय न्यास व्यवस्थाके अन्तर्गत हो या न हो, इस दायित्वका स्वीकार करते है कि इन क्षेत्रोंका शासन इस प्रकार करेंगे कि इन क्षेत्रोंके निवासियोंका अधिकसे अधिक कल्याण हो। इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिए ये सदस्य निम्नलिखित कार्य करते हैं

(१) निवासियोंकी संस्कृतियोंको किसी प्रकारकी हानि पहुँचाये बिना उनकी राजनीतिक, आर्थिक सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी उन्नति करना।

(२) उनके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करना और उनके साथ किसी प्रकारका दुर्व्यवहार न होने देना।

(३) स्वशासनका विकास करना और जनताकी स्वतन्त्र राजनीतिक संस्थाओंकी विकासशील उन्नतिमें उनकी सहायता करना,

(४) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षाकी वृद्धि करना,

(५) विकासकी रचनात्मक कारवाईको बढाना, शोध कार्य (research) को प्रोत्साहित करना, और सम्बन्धित प्रदेशोंकी आर्थिक, सामाजिक और वैज्ञानिक उन्नति के लिए एक दूसरेके साथ और अन्तर्राष्ट्रीय विशिष्ट संस्थाओं या विशेषज्ञ समितियोंके साथ सहयोग करना, और

(६) प्रन्यास व्यवस्थाके बाहर जो देश स्वशासनसे वंचित है उनके बारेमें ऐसे समाचारों और आकडोंके अतिरिक्त जो कि सुरक्षा या विधिकी विवशताके कारण नहीं बताये जा सकते उनकी आर्थिक, सामाजिक, और शिक्षा-सम्बन्धी परिस्थितियोंके आकडे और अन्य प्राविधिक सूचनाएं नियमित रूपमें महामंत्रीके पास भेजना।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रन्यास-व्यवस्था (International Trusteeship System) यह व्यवस्था उन प्रदेशों पर लागू होती है जो न्यासधारी देशों और संयुक्त राष्ट्र संघके बीच व्यक्तिगत रूपमें किये गये समझौतोंके अनुसार इस व्यवस्थाके अधीन रखे गये हैं। इस प्रकारसे शासित होने वाले क्षेत्रोंको प्रन्यास क्षेत्र (Trust Territories) कहा जाता है। यह व्यवस्था उन क्षेत्रों पर लागू नहीं होती जो संयुक्त राष्ट्र संघके सदस्य हो गये है। इस व्यवस्थाके निम्नलिखित चार उद्देश्य है

(१) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षाकी वृद्धि करना,

(२) जनताका राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी उत्थान करना और स्वशासन अथवा स्वाधीनताकी दिशामें उनका निरन्तर क्रमिक विकास करना,

(३) मौलिक मानव अधिकारोंका सम्मान बढाना और यह मानना कि संसार के सभी देश अन्योन्याश्रित (एक दूसरे पर निर्भर करते) है,

(४) संयुक्त राष्ट्र संघके सभी सदस्य राष्ट्रोंके बीच समानताके व्यवहारका तथा उन देशोंके नागरिकोंके बीच सामाजिक, आर्थिक और व्यावसायिक मामलों तथा न्यायाधिकरणमें उस हद तक समानताका व्यवहार सुरक्षित रखना जिस हद तक प्रन्यास व्यवस्थाके अन्य उद्देश्योंकी सिद्धिसे उसका मेल बैठता हो।

प्रन्यास परिषद (The Trusteeship Council)

इस परिषदके सदस्य निम्नलिखित होते है

(१) सुरक्षा परिषदके स्थायी सदस्य, चाहे वे न्यास क्षेत्रोका प्रशासन करते हो या नही,

(२) सयुक्त राष्ट्र सघके वे सदस्य राष्ट्र जो न्यास क्षेत्रोका प्रशासन करते है,

(३) वे सदस्य राष्ट्र जो आम सभा द्वारा न्यासधारी सदस्यों और अन्यास-धारी सदस्योंमे समानता बनाये रखनेके लिए चुने जाते है। इस परिषदकी बैठके प्रतिवर्ष दो बार होती है। सदस्योंके बहुमतकी प्रार्थना पर इस परिषदके विशेष अधिवेशन होते हैं। उपस्थित और वोट देनेवाले सदस्योके बहुमतसे निर्णय किये जाते हैं।

परिषदके कर्तव्य और अधिकार (Functions and Powers of the Council)

यह परिषद आम सभाकी अधिकार-सत्ताके अधीन ऐसे न्यस्त प्रदेशोंके प्रति सयुक्त राष्ट्र सघके कर्तव्योका पूरा करती है जिन्हे सामरिक महत्त्वका नही माना गया है। सामरिक महत्त्वके क्षेत्रोंके प्रति सयुक्त राष्ट्र सघके कर्तव्योको सुरक्षा परिषद पूरा करती है। राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी मसलोमे प्रन्यास परिषदकी सहायता ली जाती है।

प्रन्यास परिषद शासन करने वाले राष्ट्रोकी रिपोर्टों पर विचार करती है, और इन्ही राष्ट्रोके परामर्शसे आये हुए प्रार्थना पत्रो पर विचार करती है, समय-समय पर शासन करने वाले राष्ट्रो द्वारा स्वीकृत अवसरो पर न्यस्त प्रदेशोमे भेजनेके लिए पर्यवेक्षक मण्डलोकी व्यवस्था करती है, और प्रन्यास समझौतोकी धाराओके अनुकूल और भी कदम उठाती है, प्रत्येक न्यस्त प्रदेशके निवासियोकी राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और शिक्षा-सम्बन्धी उन्नतिके सम्बन्धमे एक प्रश्नावली तैयार करती है जिसके आधार पर शासन करने वाली शक्तियाँ अपनी वार्षिक रिपोर्ट पेश करती है जिन पर प्रन्यास-परिषद विचार करती है।

प्रवर-समितिया (Specialised Agencies)

राज्य पत्र (charter) की ५७वी धारामे अन्तर्शासनीय करारोंके आधार पर स्थापित विभिन्न प्रवर समितियाकी व्यवस्थाकी गई है। इन समितियोको, उनके मौलिक अधिकार पत्रकी व्याख्याके अनुसार, आर्थिक, सामाजिक शिक्षा सम्बन्धी, सास्कृतिक, स्वास्थ्य तथा, अन्य सम्बन्धित क्षेत्रोमें, व्यापक अन्तर्राष्ट्रीय उत्तर-

दायित्व दिये गये हैं। ये समितिया अधिकार पत्रकी ६३वी धाराके अनुसार सयुक्त राष्ट्र सघमे सम्बन्धितकी जाती है।

आर्थिक और सामाजिक परिपद इन एजिन्सियोके साथ समझौता वार्ता करती है और उन शर्तोंको निश्चित करती है जिनके अनुसार सयुक्त राष्ट्र सघमे उनका सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। पर इन कार्योंके लिए आम सभाकी मजूरी आवश्यक होती है। परिषद इन प्रवर-समितियाके कार्योंको इन समितियोंके साथ परामर्श करके और आम सभा तथा राष्ट्रसघक सदस्योंके पास सिफारिशे भेज करके समन्वय (coordinate) करनेका प्रयत्न करती है।

निम्नलिखित प्रवर समितिया या सगठन स्थापित हो चुके है या स्थापित हो रहे है

(१) अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक-सगठन (The International Labour Organisation—I L O)।

(२) खाद्य और कृषि-सगठन (The Food and Agriculture Organisation—F A O)।

(३) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोप (The International Monetary Fund—I M F)।

(४) पुनर्निर्माण और विकासके लिए अन्तर्राष्ट्रीय बैक (The International Bank for Reconstruction and Development)।

(५) अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन सघ (The International Civil Aviation Organisation)।

(६) सयुक्त राष्ट्रीय शिक्षा, विज्ञान और सस्कृति सगठन (The United Nations Educational, Scientific and Cultural Organisation—UNESCO)।

(७) विश्व स्वास्थ्य सगठन (The World Health Organisation—WHO)।

(८) अन्तर्राष्ट्रीय शरणार्थी सगठन (The International Refugee Organisation)।

(९) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सगठन (The International Trade Organisation)।

(१०) अन्तर्राष्ट्रीय सामुद्र परामर्श सगठन (The International Maritime Consultative Organisation)।

(११) विश्व डाक सघ (The Universal Postal Union)।

(१२) अन्तर्राष्ट्रीय दूर-सचार सघ (The International Telecommunications Union)।

(१३) विश्व अन्तरिक्ष-विज्ञान सघ (The World Meteorological Organisation)।

कुछ गैर-सरकारी संगठनोंको भी इतनी मान्यता दी गयी है कि आर्थिक और सामाजिक परिषद उनसे विमर्श कर सकता है। ये संगठन निम्नलिखित तीन श्रेणियोंके है

(क) वे संगठन जिन्हें परिषदके अधिकांश कार्योंमें मौलिक रुचि है और जो उन क्षेत्र के आर्थिक और सामाजिक जीवनसे घनिष्ठ रूपसे सम्बन्धित हैं जिनका वे प्रतिनिधित्व करते है। उदाहरणके लिए अमेरिका का श्रमिक संघ।

(ख) वे संगठन जिनमें एक विशेष क्षमता है पर जो परिषदके कुछ थोडेसे कामोंसे ही मुख्यतया सम्बन्धित है। ऐसे संगठनोंके कुछ उदाहरण ये है—अखिल भारतीय महिला संघ, अन्तर्राष्ट्रीय शान्तिके लिए कारनेगी स्थायी दानकोष (Carnegie Endowment for International Peace), अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर चर्च आयोग (Commission of the Churches on International Affairs), अन्तर्राष्ट्रीय रेडक्रॉस समिति, लोकतन्त्रीय युवक संगठनका विश्व संघ (World Federation of Democratic Youth) और विश्व यहूदी सम्मेलन (World Jewish Congress)।

(ग) वे संगठन जो मुख्यतया जनमतके विकास और सूचनाओं के प्रचारसे सम्बन्धित हैं। इस प्रकारके संगठनोंके उदाहरण है—माध्यमिक अध्यापकोंका विश्व संघ और अन्तर्राष्ट्रीय राटरी क्लब (Rotary International)।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (International Court of Justice)

वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (International Court of Justice) कई अर्थों में राष्ट्र संघ (League of Nations) के अन्तगत स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय न्यायकी स्थायी अदालत (Permanent Court of International Justice) का ही वर्तमान स्वरूप है। स्थायी अदालत राष्ट्र संघकी एक स्वायत संस्था थी, और वर्तमान न्यायालय संयुक्त राष्ट्र संघकी प्रधान संस्था है। यह न्यायालय अपनी विधान संहिताके अनुसार काम करता है। यह संहिता स्थायी अदालतकी संहिताके आधार पर बनाई गई है।

संयुक्त राष्ट्र संघके सभी सदस्योंको इस न्यायालय तक पहुचनेका स्वत सिद्ध अधिकार है। सुरक्षा परिषदकी सिफारिश पर आम सभा द्वारा स्वीकृत शर्तोंके अनुसार वे राष्ट्र भी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयका उपयोग कर सकते है जो संयुक्त राष्ट्र संघके सदस्य नहीं है। केवल राष्ट्र ही न्यायालयका उपयोग कर सकते है।

किसी राज्यको न्यायालयके सम्मुख आनेके लिए इसलिए बाध्य नहीं किया जा सकता है कि उसके विरुद्ध मुकदमा दायर किया गया है। प्रतिवादी (defendent) राज्यकी स्वीकृतिसे ही अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय मुकदमेकी सुनवाई कर सकता है। राज्यो पर न्यायालयका अनिवार्य अधिकार नहीं है। संयुक्त राष्ट्र संघके सदस्य

अपने मामले न्यायालयके सामने रखनेके लिए बाध्य नहीं है। किसी सन्धि पर हस्ताक्षर करने समय सन्धिसे सम्बन्धित राष्ट्र यह वचन दे सकते है कि सन्धिकी व्याख्यामे यदि कोई झगडा उठ खडा होगा तो वह झगडा न्यायालयके सामने ही पेश किया जायगा।

इस वैकल्पिक धारा पर हस्ताक्षर करके राष्ट्र इस बातका वचन दे सकते है कि कुछ विशेष प्रकारके मामलोमे वे न्यायालयका उपयोग करेगे। इसमे वे सब मामले आ जाते है जिनका सम्बन्ध निम्नलिखित बातोमे होता है —

(क) सन्धिकी धाराओका अर्थ,

(ख) अन्तर्राष्ट्रीय विधिके क्षेत्रसे सम्बन्धित सभी मसले,

(ग) किसी एसे तथ्यकी स्थिति, जिसे यदि सिद्ध किया जा सके तो उससे अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व या कर्त्तव्य भग होता हो, और

(घ) किसी अन्तर्राष्ट्रीय करार या दायित्वके भग किये जाने पर दिये जाने वाले हरजानेका स्वरूप और परिमाण।

केवल अराजनीतिक झगडोके लिए भी कुल ६८ सदस्योमे से केवल ३४ सदस्यो ने ही न्यायालयकी अनिवार्य अधिकार-सत्ता स्वीकार की है।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयके अधिकार क्षेत्रमे वे सब मामले आते है जिनसे सम्बन्धित दोनो पक्ष उन्हे न्यायालयके सम्मुख लाना चाहे और वे मामले भी जिनके सम्बन्धमे सयुक्त राष्ट्रोके घोषणा पत्रमे, चालू सन्धियो या समझौतोमे, ऐसी व्यवस्था की गई है। चूकि इस न्यायालयकी विधान सहिता स्थायी अदालतकी सहिताके आधार पर बनी है, इसलिए सन्धियो या समझौतोके जिन मामलोको स्थायी अदालतमे पेश करनेकी व्यवस्था थी वे मामले अब अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयके क्षेत्रमे आते हैं। यह जरूरी नही है कि सयुक्त राष्ट्र सघके सदस्योके बीच होने वाले झगडे हमेशा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयके सम्मुख लाये जायँ। वे ऐसे अन्य न्यायालयोके सामने भी पेश किये जा सकते हैं जो पहलेसे ही मौजद हो या भविष्यमे स्थापित किये जायँ। न्यायालयकी एक विशेषता यह है कि सुरक्षा परिषदके साथ इसे भी राष्ट्रोको बाध्य करने वाले निर्णय करनेकी शक्ति प्राप्त है। कुछ विशेष परिस्थितियोमें न्यायालयके बाध्य निर्णयो पर सुरक्षा परिषद पुनर्विचार कर सकती है। एक दूसरी विशेषता यह है कि न्यायालयके गठन और उसकी कार्य-प्रणाली पर भी बडे राष्ट्रोके सघर्षका कुछ हद तक असर पड चुका है।

न्यायालयके निर्णयोका आधार (Basis of the Court's Decision)

मुकदमोके फैसले करते समय न्यायालय निम्नलिखित बातोका प्रयोग करता है

(१) अन्तर्राष्ट्रीय मान्यताए (conventions), सामान्य या विशिष्ट दोनो प्रकारकी,

(२) अन्तर्राष्ट्रीय रिवाज (customs),

(३) विधिके सामान्य सिद्धान्त, जिनका सभ्यराष्ट्र स्वीकार करते हैं।

(४) *न्यायालयोंके निर्णय और विविध देशोंके उच्च योग्यता प्राप्त राजनीतिक प्रवीणोंके लेख या उपदेश।*

जहाँ झगड़ेके दोनों पक्ष स्वीकार करते हैं वहाँ न्यायालय सम्बन्धित राष्ट्रोंके न्यायके सिद्धान्तों और सामान्य कल्याणकी धारणाओंका उपयोग कर सकता है।

न्यायालयके निर्णय (Decisions of the Court) संयुक्त राष्ट्र संघके घोषणा पत्रके अनुसार प्रत्येक सदस्य स्वीकार करता है कि जिस किसी मामलेमें वह वादी या प्रतिवादी होगा उसमें किये गये न्यायालयके निर्णयोंको वह मानेगा। यदि झगड़ेका एक पक्ष न्यायालयके निर्णयके अनुसार अपने दायित्वको पूरा करनेके लिए तैयार है और दूसरा पक्ष तैयार नहीं है तो पहला पक्ष इस स्थितिको सुरक्षा परिषदके सामने रख सकता है। सुरक्षा परिषद न्यायालयके निर्णयको कार्यान्वित करानेके लिए कार्रवाई कर सकती है या सुझाव दे सकती है। न्यायालय यह भी स्पष्ट कर सकता है कि झगड़ेके किसी भी पक्षके अधिकारोंकी रक्षाके लिए क्या अस्थाई कार्रवाईकी जानी चाहिए। न्यायालयके निर्णय केवल वादी-प्रतिवादी पक्षों पर ही लागू होते हैं। न्यायालयका निर्णय अन्तिम होता है।

परामर्शमूलक सम्मतियाँ (Advisory Opinions) प्रार्थना किये जाने पर न्यायालय वैधिक प्रश्नोंके सम्बन्धमें परामर्शमूलक सम्मतियाँ भी देता है। आम सभा और सुरक्षा परिषद सीधे न्यायालयमें ऐसी प्रार्थना कर सकती हैं। संयुक्त राष्ट्रोंकी दूसरी संस्थाओं और विशेषज्ञ समितियों या प्रवर समितियोंके लिए जरूरी होता है कि अपने कार्य क्षेत्रके भीतर आनेवाले वैधिक मसलों पर विचार करनेके लिए आम सभासे अधिकार प्राप्त करें।

सचिवालय (The Secretariat)

महामन्त्री (Secretary-General) की नियुक्ति सुरक्षा परिषदकी सिफारिश पर आम सभा करती है। आम सभा, सुरक्षा परिषद, आर्थिक और सामाजिक परिषद तथा प्रन्यास परिषदकी बैठकोंमें वह इसी हैसियतसे काम करता है। सुरक्षा परिषद, आम सभा तथा आम सभाके विशेष अधिवेशन बुलानेके सम्बन्धमें स्वशासन वंचित प्रदेशोंका शासन करने वाले देशोंसे रिपोर्ट प्राप्त करने व सन्धियोंके पंजीबद्ध करने (registration) और अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयके न्यायाधीशोंके चुनावके सम्बन्धमें महामन्त्रीको अनेक कर्त्तव्य पूरे करने होते हैं। उसके विशेष अधिकारोंमें से एक यह है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षाके लिए जिस किसी भी समस्याको घातक समझता हो उसकी सूचना सुरक्षा परिषदको दे सकता है। संयुक्त राष्ट्र संघके राज्य पत्र (charter) के अनुसार संगठनके कार्य-कलापके बारेमें आम सभाके सम्मुख

वार्षिक रिपोर्ट पेश करना उसके लिए आवश्यक है। प्रथम महामंत्रीकी नियुक्ति पाँच वर्षके लिए हुई थी। अवधि समाप्त होने पर महामंत्री फिरसे चुना जाता है।

महामंत्री महासभा द्वारा निर्धारित नियमोके अनुसार सचिवालयके कर्मचारियो की नियुक्ति करता है। कुशलता, योग्यता और चारित्रिक दृढताके उच्चतम मान-दण्डोके आधार पर नियुक्तियाँ की जाती है। नियुक्तियाँ करते समय न्यायोचित भौगोलिक वितरणका भी ध्यान रखा जाता है। महामंत्री या कोई भी अन्य कर्मचारी राष्ट्रसघके बाहरकी किसी भी सरकारसे या अधिकार सत्तासे कोई भी निर्देश प्राप्त नही कर सकता है और न उसे मान सकता है। राष्ट्रसघके सदस्य राष्ट्र भी अपनी ओरसे यह वादा करते है कि वे महामंत्री और उसके कर्मचारियोके अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूपका सम्मान करेंगे और अपने कर्त्तव्यो और दायित्वोकी पूर्तिमे उन्हे किसी प्रकार भी प्रभावित नही करेंगे पर व्यवहारमे ऐसा हमेशा नही किया गया। कुछ वर्ष पहले जब साम्यवाद विरोधी भावनाए बहुत तीव्र हो गई थीं तब अमेरिकाने सयुक्त राष्ट्रसघ और उसके महामंत्री पर दबाव डालकर सयुक्त राष्ट्रमे काम करने वाले उन अमेरिकी नागरिकोको वहासे हटवाया जिन पर साम्यवादके समर्थक होने का सन्देह था।

कर्मचारी वर्ग (The Staff)

राज्य-पत्र पर पुनर्विचार (The Revision of the Charter)

यद्यपि सयुक्त राष्ट्रसघके राज्यपत्रमें और उसके कार्यमे अनेक त्रुटियाँ पाई गई हैं, फिर भी अभी तक राज्यपत्र पर पुनर्विचार करनेका कोई इरादा नही दिखाई देता, क्योंकि जब तक वीटोका अधिकार है और दो शक्तियोका सघर्ष चालू है तब तक पाँच बडोमे से किसी न किसी राष्ट्र द्वारा उसका प्रयोग किया जाना भी निश्चित ही है। फिर भी केवल शास्त्रीय अध्ययनकी दृष्टिसे कुछ सकेत किये जा सकते है जिनके अनुसार भविष्यमे परिवर्तन होना चाहिए।

(१) वीटोका नियत्रण, विशेष रूपसे जहाँ तक नये सदस्योको लिये जानेका सम्बन्ध है।

(२) आन्तरिक या घरेलू अधिकार क्षेत्र (domestic jurisdiction) की अधिक स्पष्ट व्याख्या ताकि दक्षिणी अफ्रीका जैसे देश अश्वेत जातिके लोगोके प्रति असभ्य एव अमानुषिक व्यवहारके बारेमे सयुक्त राष्ट्रसघकी निरन्तर अवहेलना यह कहकर न कर सकें कि यह उनका घरेलू मामला है।

(३) ससारके समस्त उपनिवेशोको न्यास व्यवस्थाके अन्तर्गत ले आना और निश्चित समयके भीतर उपनिवेशोकी समाप्ति।

(४) निःशस्त्रीकरण पर अधिक ध्यान दिया जाना और एक अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस दल या शान्ति दलके निर्माणके लिए प्रभावपूर्ण कदम उठाना। जैसे-जैसे इस

अन्तर्राष्ट्रीय दलकी वृद्धि हो वैसे-वैसे राष्ट्रीय सेनाओंको अनुपातमें कम करवाते जाना।

(५) धारा ५१ और ५२ की अधिक स्पष्ट परिभाषा देना ताकि भौगोलिक दृष्टिसे पृथक राष्ट्र किसी सैनिक सन्धि द्वारा एक गुटमें न लाये जा सके जैसा नाटो और सीटा ने किया है।

(६) इस बातकी अधिक स्पष्ट व्याख्या करना कि आत्मरक्षाके लिए शक्ति प्रयोगका क्या अर्थ है।

(७) किसी भी राष्ट्रके इस अधिकार पर कडी रोक लगाना कि वह परमाण्विक (atomic) और हाइड्रोजन बम और अन्य ऐसे ही घातक अस्त्रोंके विस्फोटका परीक्षण जारी रख सकता है।

(८) शान्तिके लिए अणुशक्तिके प्रयोग पर अधिक ध्यान देना।

(९) मानव अधिकारोंका लागू करनेकी पर्याप्त व्यवस्था। यह अधिकार एक घोषणा-पत्र (declaration) के रूपमे पहलेसे ही मान्य है।

(१०) विश्व नागरिकता और एक सीमित विश्व सरकारकी स्थापनाके लिए सक्रिय कदम उठाना।

कार्य-सम्पादन[1] (Operation)

संयुक्त राष्ट्र संघके कार्योंका मूल्यांकन करते समय हमें अत्यधिक आशावाद और निराशावाद दोनोंसे बचना चाहिए। निराशावादी कहते हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघको तो "विभक्त राष्ट्र संघ" कहा जाना चाहिए। यदि हम संयुक्त राष्ट्र संघको इस बात से परखें कि सुरक्षा परिषदमें वीटोका प्रयोग कितनी बार मनमाने तौर पर किया गया है या इस बातसे कि बडे-बडे राष्ट्रोंने संघका दो शक्तिशाली गुटोंका अखाडा बनानेके कितने प्रयत्न किये है या इस बातसे कि कितनी बार संयुक्त राष्ट्र संघकी अवहेलना की गयी है तो यह आलोचना सही है। इस अन्तिम बातका एक जीता-जागता उदाहरण यह है अमेरिकाने संयुक्त राष्ट्र संघके दायरेके बाहर, पिछडे हुए राष्ट्रोंको काफी आर्थिक सहायता दी। अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्न आज भी उलझे पडे है। उनमेंसे कुछ ये है—(१) संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा बार-बार न्यास समझौते पर जोर दिये जाने और विश्व न्यायालय द्वारा आमेलन (incorporation) के विरुद्ध फैसला दिये जाने के बावजूद दक्षिणी अफ्रीका द्वारा, दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीकाको अपने राज्यमें मिला लिया जाना, (२) अणुबमों और हाइड्रोजन बमोंके नियत्रणके सम्बन्धमें समझौतेका अभाव और कुछ शक्तियों द्वारा एक पक्षीय निश्चय कि वे जहां चाहेंगे

---

[1] इस विभागकी अधिकांश सामग्री संयुक्त राष्ट्र संघके विभिन्न प्रकाशनोंसे ली गयी है।

और जब चाहेंगे तब इन अस्त्रोंका परीक्षण करेंगे, (३) नये सदस्योंके भर्ती किये जानेका व्यवस्थित और प्रतिष्ठापूर्ण मार्ग निकालनेमें असफलता और (४) वीटो का दुरुपयोग।

ऊपर बतायी गयी कमियोंके रहते हुए भी अनेक राजनीतिक कठिनाइयोंको हल करनेमें सुरक्षा परिषद और आम सभाके माध्यमसे बहुतसे महत्त्वपूर्ण कार्य किये गये हैं। फिर भी यह कहना पड़ेगा कि संयुक्त राष्ट्र संघका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण काम आर्थिक और सामाजिक परिषदके क्षेत्रमें किया गया है, विशेषकर प्रवर समितियों या विशेषज्ञ समितियोंके माध्यमसे। प्रन्यास परिषद और अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयने अभी तक बहुत उल्लेखनीय कार्य नहीं किये हैं।

राजनीतिक और सुरक्षा-क्षेत्र
(The Political and Security Fields)

(१) **ईरान** इस क्षेत्रमें सबसे पहला महत्त्वपूर्ण प्रश्न ईरानसे सम्बन्ध रखता था। १९ जनवरी, १९४६ को ईरानने सुरक्षा परिषदको सूचना दी कि सोवियत रूस उसके अजरबैजान प्रान्तमें घुस आया है और अपनी सेना वापस बुलानेसे इन्कार कर रहा है। रूसी प्रतिनिधि श्री ग्रोमिको ने इस विषय पर विचार करने देनेसे इन्कार किया। वह इस बात पर अड़ गये कि यह मसला सुरक्षा परिषदकी कार्य सूचीमें भी नहीं आना चाहिए। पर परिषदने इस मसलेको अपनी कार्य सूचीमें रखा और कुछ ही समय बाद रूसने अपनी फौजोंको वापस बुला लिया। इस मामलेका उल्लेख बहुधा सामूहिक सुरक्षा सिद्धान्तकी अद्वितीय विजयके रूपमें किया गया है।

(२) **सीरिया और लेबनान** इन देशोंकी जनता अपने यहां अंग्रेजी और फ्रांसीसी सेनाओंके रहनेके बहुत विरुद्ध थी। सुरक्षा परिषदने एक नरम प्रस्ताव स्वीकार किया कि इन देशोंसे ब्रिटेन और फ्रान्स अपनी सेनाएं धीरे-धीरे वापस बुलावें। पर सोवियत रूसने इस नरमीके विरुद्ध वीटोका प्रयोग किया। परिणाम यह निकला कि सेनाओंको तेजीसे वापस आना पड़ा और सीरिया तथा लेबनानके गणतन्त्रोंका निर्माण हुआ।

(३) **हिन्देशिया (Indonesia) का प्रश्न** युद्ध समाप्त होने पर डच लोगोंने डच ईस्ट इण्डीज पर फिरसे अपना पंजा जमाना चाहा। इस प्रदेशमें अंग्रेजी सेनाकी मौजूदगीसे लाभ उठाकर वे फिर नृशंस तरीकोंसे सत्तारूढ होनेकी कोशिश करने लगे। ३० जुलाई, १९४७ को भारत और ऑस्ट्रेलियाने सुरक्षा परिषदका ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि हिन्देशिया गणतन्त्र और हॉलैण्डके बीच युद्ध छिड़ गया है। दोनों पक्षोंके बीच शान्तिपूर्ण समझौता करानेके लिए परिषदने तत्काल एक सद्भावना समितिकी स्थापना की। पारस्परिक सन्देह दूर करनेमें काफी विलम्ब

होनेके बाद प्रसिद्ध रेन्वील (Renville) समझौते पर १७ जनवरी, १९४८ को हस्ताक्षर हुए। युद्ध बन्द हुआ और राजनीतिक वार्ता प्रारम्भ हुई।

पर कुछ ही महीना बाद युद्ध फिर प्रारम्भ हो गया। दोनों पक्ष एक दूसरे पर समझौतेकी शर्तोंको पूरा न करनेका आरोप लगा रहे थे। वार्ता चल ही रही थी कि डच लोगोंने समझौतेको ठुकराकर हिन्देशियाकी राष्ट्रीय सरकार पर पूर्ण तौरसे हमला बोल दिया।

सुरक्षा परिषदका एक संकट कालीन अधिवेशन तुरन्त बुलाया गया। परिषदने दोनों दलोंको युद्ध बन्द करनेका आदेश दिया और डच सरकार से कहा कि वह हिन्देशिया गणतन्त्रके राष्ट्रपति तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओंका जिन्हें वह बन्दी बनाये था, छोड दे। डच सरकार कुछ समय तक संयुक्त राष्ट्र संघके प्रस्तावोंकी अवहेलना करती रही पर हेगमें एक गोलमेज परिषद करनेके लिए वह २ मार्च, १९४९ को तैयार हो गई। लम्बी खींच-तानके बाद डच सरकारने जावा और सुमात्रा से अपनी फौजें वापस बुला लीं और १९४९ में २३ अगस्तसे २ नवम्बर तक हेगमें सम्मेलन हुआ। सम्मेलन में दोनों पक्षोंके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र संघके हिन्देशियाई आयोगने भी भाग लिया। सम्मेलनके फलस्वरूप हिन्देशियाके संयुक्त गणतन्त्रको पूर्ण सम्प्रभुता मिल गई। समझौते में समानता और पारस्परिक सहयोगके आधार पर भावी हिन्देशियाई सम्बन्धोंकी भी व्यवस्था की गई। सम्प्रभुताका वास्तविक हस्तान्तरण २७ दिसम्बर, १९४९ को हुआ और २९ सितम्बर, १९५० को हिन्देशियाको संयुक्त राष्ट्र संघका सदस्य बनाया गया।

(४) स्पेन का प्रश्न पोलैण्ड ने अप्रैल, १९४६ में सुरक्षा परिषदमें यह मांगकी कि स्पेनकी तत्कालीन सरकारको अन्तर्राष्ट्रीय शान्तिके लिए खतरा घोषित किया जाय क्योंकि यह सरकार फासीवाद सरकार है और पाट्सडैम प्रस्तावमें भी यही बात कही गयी है जिसका समर्थन पुनः सैनफ्रान्सिस्को सम्मेलनमें किया गया है। परिषदने पश्चिमी राष्ट्रोंका यह संशोधन स्वीकार कर लिया कि पोलैण्ड द्वारा प्रयुक्त "खतरा" के स्थान पर 'सम्भावित संकट" शब्दोंका प्रयोग किया जाय। रूसने इस पर वीटोका प्रयोग किया और तब यह प्रश्न आम सभाके सम्मुख पेश किया गया। आम सभाने प्रस्ताव पास किया कि फ्रैन्कोकी सरकार संयुक्त राष्ट्र संघ और उसकी सहायक समितियों या संस्थाओंकी सदस्यतासे वंचित कर दी जाय।

पर बादमें, जब शीत युद्ध (cold war) बढा और अमेरिकाको फ्रैन्कोके स्पेनकी सद्भावनाकी आवश्यकता जान पडी तब सन १९५० के अधिवेशनमें आम सभाको इस बातके लिए राजी किया गया कि वह अपने पिछले निर्णयको बदल दे जिसमें संयुक्त राष्ट्र संघके सदस्यों द्वारा स्पेनसे अपने-अपने राजदूत वापस बुला लेने और संयुक्त राष्ट्र संघकी सदस्यतामें स्पेनको वंचित रखनेकी सिफारिशकी गयी थी। इसके बाद तो १९५५ में सामूहिक समझौतेके परिणामस्वरूप स्पेनको सदस्य भी बना लिया गया। स्वतन्त्रता और औचित्यके प्रेमियोंको इस फैसले पर अफसोस हुआ।

(५) दक्षिणी अफ्रीकामें भारतीय वंशजोंके साथ व्यवहार सन् १९४६ में आम

सभाके पहले अधिवेशनमे ही भारतीय प्रतिनिधिने दक्षिणी अफ्रीकाके एशियाई भूमि व्यवस्था और प्रतिनिधित्व कानून (१९४६) (Asiatic Land Tenure and Representation Act of 1946) की अपमानजनक प्रवृत्तियोंकी ओर सभाका ध्यान आकर्षित किया। दक्षिणी अफ्रीकाकी सरकार द्वारा कठोरताके साथ बरती जाने वाली जातीय विभेदकी नीतिकी ओर भी सभाका ध्यान आकर्षित किया गया। यह बताया गया कि इन सब बातोंसे संयुक्त राष्ट्र संघके मानव समानता और मानव-सम्मानके आदर्शोंकी अवहेलना होती है।

दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारकी ओरसे कहा गया कि यह उसका घरेलू मसला है और राज्य पत्रकी धारा २, पैरा ७ के अनुसार संयुक्त राष्ट्र संघको इस विषय पर विचार करनेका अधिकार ही नहीं है। उसने यह भी मांग की कि इस सम्बन्धमें अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयकी परामर्श मूलक सम्मति मांगी जाय। इस तर्कको अस्वीकार करते हुए आम सभाने यह फैसला दिया कि चूंकि इस प्रश्नका संयुक्त राष्ट्र संघके दो सदस्य राष्ट्रोंके मैत्री पूर्ण सम्बन्धों पर बुरा प्रभाव पड़ने वाला है, इसलिए सभाको उस पर विचार करनेका अधिकार है। इस प्रस्तावका अर्थ भारत और दक्षिणी अफ्रीकाने भिन्न-भिन्न रूपसे किया। दक्षिणी अफ्रीकाने इस प्रस्तावको पारस्परिक वार्ताका आधार माननेसे ही यह कहकर इन्कार कर दिया कि इस प्रस्तावको वार्ताका आधार बनानेका मतलब यह होगा कि दक्षिणी अफ्रीकाने आम सभाके इस निर्णयको स्वीकार कर लिया कि संघके राज्य पत्रका उल्लंघन किया जा चुका है।

समस्या फिर आम सभाके सामने लायी गयी। सन् १९४९ मे आम सभाके तीसरे अधिवेशनने भारत, पाकिस्तान और दक्षिणी अफ्रीकाको एक गोलमेज सम्मेलन करनेके लिए आमन्त्रित किया जिसमे संयुक्त राष्ट्र संघके घोषणापत्रके उद्देश्यों और सिद्धान्तों तथा मानव अधिकारोंकी विश्व व्यापी घोषणाको ध्यानमे रखते हुए इस मसले पर विचार किया जाय।

दक्षिणी अफ्रीकाने इस प्रस्तावको यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि इसमे उसके आन्तरिक मामलोंमें हस्तक्षेप होता है। लम्बी वार्ताके बाद गोलमेजके प्रारम्भिक प्रयासोंमे सफलता मिली। पर सम्बन्धित तीनों राष्ट्र सम्मेलनकी कार्य सूत्रोंके विषय पर एक मत न हो सके।

बादमे विशेषकर शीत युद्धकी स्थितिके कारण पश्चिमी राष्ट्रोंने इस प्रश्नमे रुचि लेना बन्द कर दिया। विश्व साम्यवादके विरुद्ध अपने युद्धमे उन्हें दक्षिणी अफ्रीकाके सहयोग और उसके भौतिक साधनोंकी आवश्यकता है। एशियाई अफ्रीकी राष्ट्रोंमें बढ़ती हुई उपनिवेशवाद विरोधी भावना ने भी इस प्रश्नके सम्बन्धमे पश्चिमी राष्ट्रोंकी अभिरुचि कम करनेमे योग दिया। अन्तमे सन् १९५५ मे आम सभाने अपने उस पूर्व प्रस्तावको भी रद्द कर दिया जिसमे दक्षिणी अफ्रीकाकी जातीय-विभेद नीतिकी निन्दाकी गई थी। इस प्रकार कुल मामला खटाईमे पड़ा है। संयुक्त राष्ट्र संघके इतिहासमे यह एक काला धब्बा माना जायगा।

(५) **फिलिस्तीन (Palestine)** ब्रिटेनने फिलिस्तानका मसला संयुक्त राष्ट्र संघके अप्रैल, सन् १९४७, मे होनेवाले पहले विशेष अधिवेशनमें पेश किया। यह अधिवेशन इसीलिए बुलाया गया था। यहूदी समिति और अरब उच्च समितिके प्रतिनिधियोको अपने-अपने विचार प्रकट करनेके लिए बुलाया गया। विचार-विमर्श के फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघने फिलिस्तीनके बारेमें एक समिति बनायी। इस समिति का यह काम सौंपा गया कि वह फिलिस्तीन तथा अन्य सम्बन्धित क्षेत्रोंम जाय, मौके पर जाकर असली हालतका पता लगाये और अपनी जाचके आधार पर रिपोर्ट पेश करे। यह समिति फिलिस्तीन, लेबनान, सीरिया, और ट्रान्सजार्डन गयी। समितिने जर्मनी और ऑस्ट्रियामे विस्थापितोके केन्द्रोंका भी दौरा किया। समितिकी रिपोर्टमे बहुमत ने एक यहूदी राज्य और एक अरब राज्यकी स्थापना करने तथा यरूशलम को अन्तर्राष्ट्रीय शासनमें रखनेकी सिफारिश की। तीनोंकी एक आर्थिक इकाईमे सगठित करनेकी भी सिफारिश की गई। अल्पमतने सिफारिश की कि अरब राज्य और यहूदी राज्यका फिलिस्तीन संघ बनाया जाय और यरूशलम यहूदी राज्यकी राजधानी रहे। आम सभा ने बहुमतकी योजना स्वीकार की। भारत ने अल्पमतकी रिपोर्ट पर हस्ताक्षर किये थे।

इसके बादमे हालत बिगडने लगी। ब्रिटेनने घोषणा की कि वह १५ मई, १९४८, को फिलिस्तीन परसे अपना नियोग समाप्त कर देगा यद्यपि आम सभाकी योजनाके अन्तर्गत उसे पहली अगस्त तक की अवधि दी गई थी। यहूदी समिति तथा अरब उच्च समिति दोनो ने बडे जोर-शोरसे अपने-अपने पक्षका समर्थन किया। अरब राष्ट्रो ने घोषणा की कि वे किसी प्रकार किसी भी रूपमे विभाजन स्वीकार नही करेंगे। दूसरी ओर यहूदी समितिका कहना था कि विभाजनसे ही समस्या हल हो सकती है। उसने अपने तर्क और अपनी मांगका आधार उन वादोको बनाया जो बालफूर (Balfour) घोषणाम और राष्ट्र संघके नियोगम किये गये थे। योरोप के उन विस्थापित यहूदियोकी इच्छाको भी मॉगका आधार बनाया गया जो और कही शरण नही पा सकते थे।

अरब लोगो ने विभाजन रोकनेके लिए सीधी कार्रवाईका रास्ता अपनाया। उग्र विचारके यहूदियो ने भी अपनी हिंसात्मक कार्रवाई जारी रखी। सुरक्षा परिषद ने सम्बन्धित राष्ट्रोंसे बार-बार अपील की कि फिलिस्तीनमे बढनेवाली अव्यवस्था और अशान्तिको रोकनेके लिए वे हर सम्भव प्रयत्न करे। रूसी प्रतिनिधि ने सुरक्षा परिषदमें कहा था कि विभाजन शान्तिपूर्ण तरीकोसे हो सकता है। अमेरिका ने इस पर सन्देह करते हुए मार्च, १९४८ मे यह प्रस्ताव किया कि फिलिस्तीनको कुछ समयके लिए न्यास परिषदके अधीन कर दिया जाय और इस प्रस्ताव पर विचार करनेके लिए आम सभाका एक विशेष अधिवेशन बुलाया जाय।

आम सभाकी प्रार्थना पर सुरक्षा परिषद ने दीवालोसे घिरे यरूशलम शहरमे युद्धबन्दीका आदेश जारी किया और दोनो पक्षो ने उसे स्वीकार किया। आम सभा

ने अन्तर्राष्ट्रीय नियोग (mandate) का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और एक मध्यस्थ नियुक्त करनेका निर्णय किया जिसका काम फिलस्तीनकी स्थितिका शान्तिपूर्ण हल निकालनेमें सहायता देना था। काउन्ट बर्नाडोट मध्यस्थ चुने गये। जिस दिन फिलस्तीन पर ब्रिटिश नियोग समाप्त हुआ उसी दिन 'इसराईल' (Israel) नामक एक यहूदी राज्यकी घोषणा की गई।

संघर्ष फिर शुरू हो गया। सीरिया, लेबनान, ट्रांसजार्डन (अब जॉर्डन) और मिस्र ने इसराईल पर आक्रमण तेज कर दिया। एक बार फिर सुरक्षा परिषद ने दोनों पक्षों से युद्ध बन्द कर देने को कहा। यह ध्यान देनेकी बात है कि अरबों और यहूदियोंसे सम्बन्धित कुछ प्रस्तावोंमें संयुक्त राष्ट्र संघने शक्ति प्रयोगकी धमकी भी दी थी। ४ जून, १९४८ को युद्धबन्दी समझौता हुआ पर लड़ाई बन्द नहीं हुई।

मध्यस्थ स्वयं फिलस्तीन गये और कुछ समयके लिए युद्ध बन्द करानेमें वे सफल हुए। उन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघसे चौकसी रखनेवाले एक फौजी दस्तेकी माँग की जो तुरन्त मंजूर कर ली गई। युद्धबन्दीकी निगरानीके लिए निरीक्षक नियुक्त किये गये। श्री बर्नाडोटने बड़ा परिश्रम करके फिलस्तीनके बटवारेकी एक नई योजना तैयार की जो पहली योजनासे अधिक अरबोंके पक्षमें थी। पर संयुक्त राष्ट्रसंघके सम्मुख इस योजनाको रखे जानेके पहले ही १७ सितम्बर, १९४८, को यरूशलमके इसराईल अधिकृत क्षेत्रमें उनकी हत्या कर दी गई। अनुमान किया जाता है कि यह हत्या किसी यहूदी गैर-सरकारी सैनिक संगठनने की थी।

इसराईलने कठिनाइयोंके बावजूद सैनिक शक्तिके बल पर अपने पैर जमाये और संयुक्त राष्ट्रसंघके फिलस्तीन आयोगने उसके लिए जो सिफारिशें की थीं उनसे अधिक प्राप्त किया। संयुक्त राष्ट्रसंघके न्यासिताधिकार विभागके सदस्य अमरिकी नीग्रो डा० राल्फ बुंचे श्री बर्नाडोटके स्थान पर अन्तिम रूपसे समझौता करानेके लिए नियुक्त किये गये। आखिरकार उन्हींके श्रम और कौशलके फलस्वरूप शान्ति समझौता हुआ जिसमें एक ओर इसराइल और दूसरी ओर मिस्र, लेबनान और ट्रान्सजार्डन ने हस्ताक्षर किये।

इसराइलकी स्थापनासे लेकर अब तकका सारा समय इसराईलके लिए अशान्त-शान्तिका ही समय रहा है। अरब राष्ट्र इस बातके लिए कृत-संकल्प हैं कि यदि सम्भव हो तो इसराईलको कुचलकर नष्ट कर दिया जाय। इन पंक्तियोंके लिखे जानेके समय मिस्र और जार्डन, सीरिया, लेबनान, और सऊदी अरबके साथ मिलकर युद्धकी तैयारी कर रहे हैं और ऐसा मालूम होता है कि पुनः लड़ाई छिड़ सकती है। मिस्र और सीरिया ने अपना एक संघ बना लिया है। संघका उद्देश्य बताना तो कठिन है, पर उसका अनुमान लगाना कठिन नहीं है। पश्चिमी राष्ट्र जो कभी एक पक्षकी तरफदारी करते हैं और कभी दूसरे पक्षकी, इस पशोपेशमें हैं कि इस क्षेत्रमें ही तीसरा महायुद्ध न प्रारम्भ हो जाय। बगदाद समझौता (Baghdad Pact), जिसमें इस क्षेत्रके कुछ राष्ट्र शामिल हैं, न केवल अरब लोगोंमें एक दरार पैदा

कर रहा है, बल्कि विश्व शान्तिको भी वह कोई सहारा नहीं दे रहा है। सोवियत रूस जेकोस्लावाकिया या मिस्रों द्वारा हथियार बेचनेकी सलाह देकर इस अशान्त क्षेत्रमे अपना दांव लगा रहा है। फिलिस्तीनके विस्थापित अरबोंकी समस्याका हल अभी दिखाई नहीं दे रहा है।

(७) **कोरियाई प्रश्न** जापान, कोरिया पर सन् १९१० से शासन कर रहा था। मित्रराष्ट्रोंने वादा किया था कि युद्ध समाप्त होने पर कोरियाको स्वतंत्र कर दिया जायगा। जब युद्ध समाप्त हुआ उस समय उत्तरी कोरिया पर रूसका और दक्षिणी कोरिया पर अमेरिकाका अधिकार था। जापानी सेनाओंके तात्कालिक आत्मसमर्पणके लिए यह निश्चय किया गया कि ३८° अक्षांशके उत्तर जापानी सेनाएं रूसियोंके सामने और उससे दक्षिण अमेरिकियोंके सामने आत्मसमर्पण कर दें। यह ३८° अक्षांश बहुत शीघ्र एक निश्चित विभाजक रेखा बन गई जिसने कोरियाको उत्तरी कोरिया और दक्षिणी कोरियामें बांट दिया।

अमेरिका चाहता था कि यथासम्भव शीघ्र कोरियामें फौजें वापस बुला ली जायं और कोरियाई लोगोंको स्वयं अपना शासन करने दिया जाय। पर रूसके विचार बिल्कुल भिन्न थे। रूसकी इच्छा थी कि आम सभा १९४८ के प्रारम्भमें विदेशी सेनाओंको एक साथ वापसीका आदेश दे और कोरियाई जनताके निर्वाचित प्रतिनिधि आम सभाकी पहली समितिमें कोरियाके भविष्यके सम्बन्धमें विचार-विमर्शमें भाग लेनेके लिए बुलाये जायं।

आम सभाने रूसी प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। पर पूरे कोरियामें निर्वाचन कराने और एक राष्ट्रीय असेम्बली व एक राष्ट्रीय सरकार कायम करनेके लिए उसने एक अस्थायी कोरिया-आयोगका निर्माण किया। भारत इस आयोगका सदस्य था। साम्यवादी गुटने सहयोग करनेसे इन्कार कर दिया इसलिए यह आयोग उत्तरी कोरिया न जा सका। ऐसी अड़चनके बावजूद आयोग अपने काममें लगा रहा। उसने दक्षिणी कोरियामें चुनाव कराये और दक्षिणी कोरियाके लिए एक सरकार बनायी गई जिसे बादमें संयुक्त राष्ट्रसंघने मान्यता प्रदान की। दक्षिणी कोरियाको कोरियाई गणतंत्र कहा जाता है। डा० सिंगमान री (Syngman Rhee) इस गणतंत्रके प्रथम निर्वाचित राष्ट्रपति हैं।

इसके बाद आम सभाने विदेशी सेनाओंकी वापसीकी सिफारिश की। अमेरिकाने उसे स्वीकार कर लिया पर सोवियत रूसने स्वीकार नहीं किया। अस्थायी आयोगके स्थान पर एक स्थायी कोरियाई आयोग नियुक्त किया गया जिसे कोरियाकी एकता स्थापित करने और उत्तरी तथा दक्षिणी कोरियाके बीचकी आर्थिक, सामाजिक तथा अन्य खाइयाँ पाटनेका काम सौंपा गया। देशकी एकता कायम करनेमें दुर्भाग्यवश कोई प्रगति नहीं की जा सकी। इसका कारण कुछ तो साम्यवादियों और कुछ दक्षिणी कोरियाके नव निर्वाचित राष्ट्रपति डा० सिंगमान री की अड़ंगेबाजी थी। उत्तरी और दक्षिणी कोरियामें बहुधा सामान्य संघर्ष होते रहे।

अन्तमे २५ जून, १९५०, का उत्तरी कोरियाने दक्षिणी कोरिया पर हमला कर दिया। मौके पर उपस्थित संयुक्त राष्ट्रसंघके कोरियाई आयोगने और अमेरिकी सरकार दोनोने तुरन्त सुरक्षा परिषदको इसकी सूचना दी और परिषदका एक संकट-कालीन अधिवेशन बुलाया गया। परिषदने तात्कालिक युद्ध-बन्दीका आदेश दिया और फौजोको ३८° अक्षांश पर वापस बुला लेनेको कहा। संघके सदस्योंसे कहा गया कि वे उत्तरी कोरियाको सहायता न दें।

उत्तरी कोरियाने संयुक्त राष्ट्रसंघके प्रस्तावको अनसुना कर दिया। इसलिए दो दिनके अन्दर ही अमेरिकाने एक प्रस्ताव पेश किया जिसमे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा स्थापित करनेके लिए उत्तरी कोरियाके विरुद्ध सैनिक कारवाई करनेकी माग की गई। रूसी प्रतिनिधि सुरक्षा परिषद्की बैठकोमे अनुपस्थित रहे। इसलिए बिना किसी कठिनाईके प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। प्रस्तावमे संयुक्त राष्ट्र संघके सदस्य राष्ट्रोंसे माग की गई कि सैनिक हमलेको पराजित करनेके लिए कोरियाई गणतन्त्रको जितनी सहायताकी आवश्यकता हो उतनी सहायता दी जाय। पर युद्धका बोझ अमेरिका पर पड़ा। वह इसके लिए तैयार भी था।[1] युद्ध अधिकांशमें अमेरिकी धन, अमेरिकी युद्ध सज्जा और अमेरिकी सैनिको द्वारा लड़ा गया। भारत ने एक डॉक्टरी उपचार दल भेजा था।

इस युद्धको प्रायः संयुक्त राष्ट्र संघका युद्ध कहा जाता है। इस युद्धको सामूहिक सुरक्षाकी सफलताका एक सुन्दर उदाहरण माना जाता है। पर असलियत यह है कि यह युद्ध अमेरिकी युद्ध था जिसे संयुक्त राष्ट्र संघका आशीर्वाद प्राप्त था। हमारे तत्कालीन उद्देश्यके लिए युद्धके विवरणमे जाना जरूरी नही है। जब संयुक्त राष्ट्र संघकी सेनाओने संगठित होकर आक्रमण करना प्रारम्भ किया तब पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें समझाया कि वे ३८° अक्षांशके आगे न जाय। पर संयुक्त राष्ट्रसंघके झण्डेके नीचे संयुक्त कमानके सेनापति जनरल मैकआर्थर ने उनकी बात अनसुनी कर दी। वह युद्धको न केवल कोरियाको मंचूरियासे अलग करनेवाली यालू नदी तक ही ले जानेके लिए कृत-संकल्प थे बल्कि मंचूरियाके भीतर भी—जिसे वह सैनिकोंका और सामग्रीका स्रोत मानते थे—घुस जाना चाहते थे। वह मंचूरियाको "प्रवेश निषिद्ध" क्षेत्र माननेके लिए तैयार नही थे।

अब तक चीनी साम्यवादी भी युद्धमे कूद पड़े थे क्योंकि उन्हें भय था कि स्वयं उनकी सुरक्षा ही खतरेमे है। जैसे ही युद्ध प्रारम्भ हुआ राष्ट्रपति ट्रूमैन ने सातवां जहाजी बेडा चीनी सागरमे इसलिए भेज दिया था कि न तो चीनी साम्यवादी

---

[1] उत्तरी कोरियाके हमलोंकी आशंकामे अमेरिकी सेनाएं २३ जूनको ही चल चुकी थीं और उन्होंने पीले सागरके कोरियाई समुद्रतट पर २७ जूनको ही घेरा डाल दिया था। अमेरिकाके सातवें बेड़ेने फारमोसा द्वीपको २४ जूनको ही अपने घेरेमे ले लिया था।

फारमोसा के राष्ट्रवादियों पर और न फारमोसा के राष्ट्रवादी चीनी साम्यवादियों पर हमला कर सकें। साम्यवादियोंने इस कामको अपने आन्तरिक मामलोंमें अनुचित हस्तक्षेप कहकर इसका बड़ा विरोध किया। युद्ध विचार धाराओंका युद्ध बन गया जिसमे एक ओर "साम्यवाद और एशियाई राष्ट्रीयतावाद" की और दूसरी ओर "पश्चिमी प्रजातन्त्र और उपनिवेशवाद" की शक्तियाँ थीं। एशियाके राष्ट्र जो साम्यवाद और उपनिवेशवाद दोनोंके विरोधी थे, एक अजीब पशो-पेशमे पड़ गये।

ऐसी हालतमें भारतने एक मध्यस्थ और शान्ति स्थापकका काम करनेका प्रयत्न किया। अशत उसके समझानेसे चीनी गणतन्त्रको समस्याका हल निकालनेके लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा आमन्त्रित किया गया। पर चीनी प्रतिनिधि मण्डल आवश्यकतासे कुछ अधिक दृढ और अड़ जानेवाला था। उसने साफ-साफ अमेरिका को कोरिया और तायवान (Formosa) में हमलावर ठहराया। अमेरिकाने इसके बदलेमें पर्याप्त सदस्य अपने पक्षमें कर लिये जिन्होंने इस अमेरिकी प्रस्तावका समर्थन किया कि चीन आक्रमणकारी था। इससे चीनका रुख कड़ा हो गया और समस्याका शान्ति पूर्ण हल करीब-करीब असम्भव हो गया।

एक साल तक लड़ते रहनेके बाद जब युद्धमें ही गत्यावरोध आ गया तब दोनों पक्ष संयुक्त राष्ट्रसंघकी एक समिति द्वारा तैयार किये गये युद्ध-विराम समझौतेको माननेके लिए तैयार हो गये। भारत, कैनाडा और आम सभाके अध्यक्ष इस समिति के सदस्य थे। भारत, मिस्र, बर्मा, आदिने समझौता वार्ता द्वारा शान्तिके पक्षमें जोर दिया। संयुक्त राष्ट्रसंघके कुछ सदस्योंके लिए इसे स्वीकार करना कठिन था। फिर भी ऐसा ही हुआ।

समझौता वार्ता २५ अक्तूबर, १९५१, को संयुक्त राष्ट्रसंघके तत्वावधानमे पानमुनजोम मे शुरू हुई और २७ जुलाई १९५३, को कोरियाई-शान्ति समझौते पर हस्ताक्षर हुए। समझौतेके रास्तेमे सबसे बड़ी बाधा युद्ध बन्दियोंकी अदला-बदलीका प्रश्न था। साम्यवादियोंका कहना था कि युद्ध बन्दियोंको जबरन स्वदेश वापस भेज दिया जाना चाहिए। पर अमेरिका इस बात पर जोर दे रहा था कि किसीको भी उसकी इच्छाके विरुद्ध उसके अपने देशमें या देशके किसी भी भागमे नहीं भेजा जाना चाहिए, क्योंकि ऐसा करना मौलिक मानव अधिकारका उल्लंघन होगा। भारतके प्रयत्नसे यह प्रश्न भी अन्तको हल हो गया। शान्ति समझौतेकी शर्तोंका ठीक तरह पूरी करानेके लिए तटस्थ राष्ट्रोंका एक निरीक्षण आयोग और तटस्थ राष्ट्र अदला-बदली आयोग तथा कुछ इसी प्रकारकी अन्य संस्थाएं कायम की गईं। जनरल थिमैया तथा भारतीय संरक्षक सेनाने युद्ध बन्दियोंकी वापसीमें और समझौतेका कायम रखने मे अमूल्य योग दिया, यद्यपि डा० सिंगमान री ने अनेक अड़चनें उनके रास्तेमें डालीं। डा० सिंगमान री ने २५,००० उत्तरी कोरियाई युद्ध बन्दियोंको संयुक्त राष्ट्र संघ की अवहेलना करते हुए उस समय छोड़ दिया जब उनकी वापसीकी समस्याका हल खोजा जा रहा था। कोरियाके युद्ध बन्दियोंकी वापसीके प्रश्नने अन्तर्राष्ट्रीय विधि

और मौलिक अधिकारोंको जो एक महत्त्वपूर्ण देन दी है, वह यह है कि कोई सरकार किसी व्यक्तिको अपने देश वापस जानेके लिए विवश नहीं कर सकता, भले ही वह व्यक्ति अपने देशकी तरफसे लड़ता रहा हो।

शांति समझौता हुए पांच वर्षसे अधिक बीत चुके हैं पर अभी तक कोरिया एक राष्ट्र नहीं बन सका है। सिंगमान री समय समय पर फिरसे युद्ध आरम्भ करनेकी धमकी देते रहते हैं, पर अमेरिका अंकुश लगाये है।

(८) काश्मीरका प्रश्न यह प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघके सामने आनेवाले सबसे कठिन प्रश्नोंमें से एक है और अभी तक सुलझ नहीं सका है। सन् १९४७ में भारत स्वाधीन हुआ। जम्मू और काश्मीर राज्यको जिस पर एक भारतीय नरेशका शासन था, यह अधिकार दिया गया कि वह चाहे भारत या चाहे पाकिस्तानमें अन्तिम समझौता न होने तक एक यथास्थिति समझौतेके आधार पर शामिल हो सकता है। पर १ जनवरी १९४८ को भारतने सुरक्षा परिषदको सूचना दी कि पाकिस्तानकी साठ-गाठसे सीमा प्रान्तके कबायली लोगों तथा अन्य लोगों द्वारा काश्मीरमें शुरू किये गये भयानक युद्धसे अन्तर्राष्ट्रीय शान्तिको खतरा पैदा हो गया है। इस समय काश्मीरके महाराजाने भारतमें सम्मिलित होनेकी प्रार्थना की। भारतने इस प्रार्थनाको स्वीकार कर लिया और आक्रमणकारियोंको मार भगानेके लिए अपनी फौजें काश्मीर भेज दीं। यह तय हुआ कि सामान्य स्थिति स्थापित हो जाने पर जम्मू और काश्मीरकी जनता एक स्वतंत्र जनमत गणना द्वारा अपना भविष्य निश्चित करेगी।

भारतने अभियोग लगाया कि पाकिस्तान आक्रमण करनेका अपराधी है, क्योंकि उसने आक्रमणकारियोंको सहायता दी है। उसने आक्रमणकारियोंको अपने हथियार और अपना पेट्रोल दिया है और पाकिस्तानी नागरिकोंने आक्रमणमें भाग लिया है। पाकिस्तानने अभियोगसे इन्कार किया और यह दावा किया कि कबायली लोगोंका धावा रोकनेके लिए युद्धके अतिरिक्त सब कुछ उसने किया है और घोषणा की कि जम्मू-काश्मीर राज्यका भारतमें सम्मिलित होना अवैध है। भारत और पाकिस्तान दोनोंने स्वीकार किया कि उनके बीच स्थिति ऐसी है कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति भंग हो सकती है।

इस समस्याको हल करनेके लिए सुरक्षा परिषदने २० जनवरी, १९४८, को तीन सदस्योंका एक मध्यस्थ आयोग बना दिया जिसमें दो सदस्य बादमें और बढ़ा दिये गये। परिषदकी कई एक बैठकों और भारतीय तथा पाकिस्तानी प्रतिनिधि मण्डलोंके बीच अनेक गुप्त परामर्शोंके बाद परिषदने एक प्रस्ताव पास किया जिसमें दोनों पक्षोंसे युद्ध बन्द करने और शान्ति तथा निष्पक्ष जनमतगणनाके लिए मार्ग प्रशस्त करनेको कहा गया। इन कामोंको पूरा करनेके लिए संयुक्त राष्ट्रके आयोगको आदेश दिया गया कि वह तुरन्त भारत पहुँचे और वहां भारतीय तथा पाकिस्तानी सरकारोंकी सहायताके लिए अपनी मध्यस्थता प्रस्तुत करे।

परिषदने यह भी सिफारिश की कि विदेशी कबायली लोग और काश्मीरमें ब

रहनेवाले पाकिस्तानी नागरिक काश्मीरसे हटा लिये जायँ और यथासम्भव अधिकसे अधिक भारतीय सैनिक भी वापस बुला लिये जायँ। भारत द्वारा स्थापित किये जानेवाले जनमतगणना प्रशासन द्वारा ऐसे वातावरणमें जनमत-गणना करानेकी तैयारी करने को कहा गया जिसमें अभिव्यक्तिकी स्वतन्त्रता और विचार प्रकाशित करनेकी, भाषण देनेकी, सभा करनेकी और यात्राकी पूरी पूरी आजादी हो।

आयोग ने अपना काम आरम्भ किया। उसने १३ अगस्त १९४८, को दोनों सरकारोंसे कहा कि यथासम्भव शीघ्रातिशीघ्र युद्ध बन्दी आदेश जारी किये जायँ तथा समझौतेके आधारभूत कुछ सिद्धान्तोंका स्वीकार किया जाय। वे सिद्धान्त ये थे (१) पाकिस्तान हाल ही में काश्मीरमें तैनात की गई अपनी फौजोंको वापस बुला ले और विदेशी कबायलियोंको तथा काश्मीरमें साधारणतया न रहनेवाले पाकिस्तानी नागरिकोंको वापस बुलानेका भरसक प्रयत्न करे, (२) इस प्रकार खाली किये गये क्षेत्रका शासन आयोगके निकट निरीक्षणमें स्थानीय अधिकारी करें, (३) जब आयोग भारतको इस बातकी सूचना दे कि पाकिस्तान इन शर्तोंका पालन कर रहा है तब भारत अपनी अधिकांश सेना धीरे-धीरे वापस बुला लेगा। भारतीय सेनाकी वापसीका क्रम भारत और आयोग आपसमें तय करेंगे और (४) अंतिम या स्थायी समझौतेकी शर्तें तय होने तक भारत युद्ध-बन्दी की सीमाके भीतर उतनी सेना रखेगा जितनी कानून और व्यवस्थाकी रक्षामें स्थानीय अधिकारियोंकी सहायता के लिए आवश्यक हो।

पाकिस्तानने आयोगको सूचित किया कि आयोगके प्रस्तावके कुछ अंशोंको विशेषतः जनमतगणना संगठनसे सम्बन्धित अंशको वह ज्योंका त्यों बिना किसी शर्त के स्वीकार नहीं कर सकता। काफी विलम्ब और लम्बी वार्ताके बाद इस बात पर समझौता हुआ कि एक संयुक्त राष्ट्र संघीय जनमतगणना व्यवस्थापककी नियुक्ति की जाय और युद्ध बन्दी हो। १ जनवरी १९४९ को युद्ध-बन्द हुई। इसके बाद संयुक्त राष्ट्र संघने विविध देशोंसे पर्यवेक्षक नियुक्त किये। इन पर्यवेक्षकोंको युद्ध-बन्दी समझौतेके पालनके बारेमें रिपोर्ट देनेका काम सौंपा गया।

अमरिकाकी नामीनाम एडमिरल चेस्टर निमिट्ज को जनमतगणना प्रशासक मनोनीत किया गया। जम्मू और काश्मीरकी सरकारसे उन्हें रस्मीतौर पर नियुक्त करनेको कहा गया। जनमतगणनाके बारेमें भारत और पाकिस्तानके बीच तीव्र मतभेद होनेके कारण प्रशासक अपना काम न कर सका और उसने कुछ महीनों बाद अपने पदसे इस्तीफा दे दिया।

आयोगने अपनी रिपोर्टमें सुरक्षा परिषद्से कहा कि प्रभावपूर्ण मध्यस्थता अब अधिक नहीं चल सकती। रिपोर्टमें सिफारिश की गई थी कि परिषद्को पांच सदस्योंके आयोगके स्थान पर एक व्यक्तिको ही इस कामके लिए नियुक्त करना चाहिए कि वह दोनों सरकारोंको झगड़ेवाले मसलोंके सम्बन्धमें एक दूसरेके समीप लाये। परिषदने फौजोंकी वापसीकी एक योजना बनाई। इस योजनाकी पूर्तिमें सहायता करनेके लिए

ऑस्ट्रेलियाके सर आवेन डिक्सन को संयुक्त राष्ट्र संघके प्रतिनिधि पद पर नियुक्त किया गया। पर वह भी सफल न हो सके। विसैन्यीकरण और जनमतगणनाकी तैयारीके सम्बन्धमें मतभेद बना रहा। फिर भी डिक्सन ने पाकिस्तानसे यह बात स्वीकार करा ली कि काश्मीरका युद्ध पाकिस्तानकी सक्रिय सहायतासे प्रारम्भ हुआ था। उन्होंने काश्मीरके बटवारेका सुझाव दिया। इस सुझावके अनुसार पाकिस्तानी फौजों और आजाद काश्मीरी फौजों द्वारा अधिकृत प्रदेश पाकिस्तानको मिल जाता और भारतीय फौजों तथा जम्मू काश्मीर राज्यकी फौजों द्वारा अधिकृत प्रदेश भारतमें मिल जाता और जनमतगणना केवल काश्मीर-घाटीके सीमित क्षेत्रमें होती। पाकिस्तानने इसे भी स्वीकार नहीं किया और डिक्सन ने अपने पदसे इस्तीफा दे दिया।

इसके बाद संयुक्त राष्ट्र संघने अमेरिकाके डा० फ्रैंक ग्रैहम को अपना प्रतिनिधि बनाया। वह एक से अधिक बार काश्मीर, भारत और पाकिस्तान आये। उन्होंने फौजोंकी वापसी और काश्मीरमें ईमानदारीके साथ जनमतगणना करानेके लिए भारतीय और पाकिस्तानी फौजोंकी आनुपातिक तैनातीके सम्बन्धमें बहुत परिश्रमके साथ काम किया। उनका अन्तिम सुझाव यह था कि ६,००० पाकिस्तानी और १८,००० भारतीय सैनिक काश्मीरमें रहें। पर वह भी सफल न हो सके। जिन बातों पर समझौता हो सका वे दोनों देशोंके यह निश्चय थे कि दोनों युद्धका रास्ता नहीं अपनायेंगे, युद्धकी स्थिति जैसे भाषण या वक्तव्य नहीं देंगे, युद्ध-बन्दी समझौतेको भंग नहीं करेंगे, और काश्मीरके विलयका प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघके तत्वावधानमें आयोजित स्वतन्त्र और निष्पक्ष जनमतगणना द्वारा तय करेंगे।

इस झगड़ेके दौरानमें ही जम्मू-काश्मीरकी सरकारने अपने संविधान परिषदके द्वारा भारतमें मिलनेका संकल्प कर लिया। इस संकल्पको काश्मीरके वर्तमान प्रधान मंत्री बख्शी गुलाम मोहम्मद कई बार दोहरा चुके हैं। इसके विपरीत आजाद काश्मीर सरकार है जो पाकिस्तानके अधीन है।

जब सर आवेन डिक्सन और डा० ग्रैहम दोनों ही असफल हो गये तब यह सुझाया गया कि भारत और पाकिस्तान दोनों पारस्परिक सीधी बातसे अपना मतभेद दूर कर लें। एक बार यह भी सुझाया गया कि पंच-निर्णयका रास्ता अपनाया जाय पर यह सुझाव भारतको स्वीकार नहीं हुआ। फलतः गत्यावरोधकी स्थिति है। काश्मीरके बारेमें बड़े राष्ट्रोंकी स्वार्थपूर्ण रुचि मामलेको और भी बिगाड़ती है। इस क्षेत्रमें अमेरिका और ब्रिटेन सैनिक और सामयिक कारणोंसे बहुत अधिक रुचि लेते रहे हैं। यही हालत रूसकी भी है। अपनी भारतीय यात्राके दौरानमें बुल्गानिन और ख्रुश्चेव ने घोषणा की थी कि वे भारतमें काश्मीरके विलयको अन्तिम और अविचल मानते हैं। पश्चिमी राष्ट्रों (अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रान्स) ने तथा पाकिस्तान और सीटोके अन्य सदस्योंने अपनी कराँचीकी बैठकमें इसके उत्तरमें यह कहा कि यह मसला संयुक्त राष्ट्र संघके निरीक्षणमें जनमतगणना द्वारा हल होना चाहिए।

सयुक्त राष्ट्र सघने १९५७ के प्रारम्भमे सुरक्षा परिषदके तत्कालीन अध्यक्ष श्री जारिंग का भारत और पाकिस्तान भेजा। उनसे कहा गया कि वे काश्मीरके प्रश्न पर सयुक्त राष्ट्र सघके पहले प्रस्तावके अनुसार अपने सुझाव दें। दोनो प्रधान मन्त्रियोमे लम्बी वार्ताके बाद उन्होने अपनी रिपोर्ट दी। आपने अपनी रिपोर्टमे कहा कि जनमत-गणनाके आश्वासनके समयसे अब तक बहुत-सी बाते हो चुकी है, वर्तमान परिस्थितियो मे जनमतगणनासे बहुत-से विघ्न पैदा हो सकते है और दक्षिणी और दक्षिणी पूर्वी एशिया की शक्ति सन्तुलनका जिसमे १९४८ के बादसे काफी परिवर्तन हो गया है, काश्मीरी प्रश्न पर काफी प्रभाव पडेगा। साथ ही श्री जारिंग ने गत्यावरोधको पच निर्णयसे दूर करनेका सुझाव दिया। भारतका कहना था कि पचायत करानेका मतलब है यह मान लेना कि पाकिस्तानका काश्मीर पर भारतके समान ही दावा है। भारत पाकिस्तानके इस दावेको स्वीकार नही करता। पाकिस्तान काश्मीरमे आक्रमणकारी है, न उससे कुछ कम और न कुछ अधिक।

हालके पिछले महीनोमे भारतका कहना यह रहा है कि काश्मीरके भारतमे मिल जानेसे और काश्मीर सविधान सभाके प्रस्तावके कारण जिसकी पुष्टि बादके चुनावोमे भी हुई है, काश्मीर भारतका अभिन्न अग है। भारत बार-बार कह चुका है कि वह जनमतगणनाका उस समय तक कार्यान्वित करने को राजी नहीं है जब तक काश्मीरके पाकिस्तान अधिकृत क्षेत्रको पाकिस्तान खाली नही कर देता। श्री वी० के० कृष्णमेनन ने सयुक्त राष्ट्र सघमे और भारतमे इस विचारके समर्थनमे बहुत कुछ कहा है। इस सब के बावजूद गत्यावरोधको दूर करनेके उपाय बतलानेके लिए श्री फ्रैंक ग्राहम सुरक्षा परिषद द्वारा भेजे गये। उनकी रिपोर्ट अभी तक प्रकाशित नही हुई है।

२. अन्य राजनीतिक तथा सुरक्षा-सम्बन्धी प्रश्न (Other Political and Security Issues)

स्थानाभावके कारण हम अन्य उन प्रश्नोका साराशमे ही उल्लेख करेगे जिनमे सयुक्त राष्ट्र सघको पूरी या सीमित सफलता मिल पाई है। इन प्रश्नोमे से कुछ महत्त्वपूर्ण है और कुछ साधारण।

(१) **यूनान (Greek) का प्रश्न** यूनानने सयुक्त राष्ट्र सघमे शिकायत की कि अलबानिया, बल्गेरिया और युगोस्लाविया द्वारा उसकी सीमाओ पर साम्यवादी दबाव डाला जा रहा है। रूसके विरोधके बावजूद आम सभाने भारी बहुमतसे यूनान की सीमाओ पर एक "सतर्क निरीक्षक आयोग" स्थापित करके बाल्कन प्रदेशमे शान्ति स्थापित करनेके लिए कदम उठाया। इस कार्यमे सफलता मिली। यह कार्य सयुक्त राष्ट्र सघके छोटे राष्ट्रोकी अखण्डताकी रक्षा करने के सकल्पका द्योतक है।

(२) **बर्लिनका प्रश्न** सन् १९४८ मे सोवियत रूसने पश्चिमी राष्ट्रो द्वारा जर्मनीके अधिकृत प्रदेश और बर्लिन शहरके बीच आवागमन और सूचना साधनो पर

कुछ मन-मानी शर्तें लगा दीं। फ्रान्स, अमेरिका और ब्रिटेनने संयुक्त राष्ट्र सभामे अपील की। कुछ समयके लिए स्थिति बहुत गम्भीर हो गई और ऐसा लगा कि युद्ध शुरू हो जायगा। पर पश्चिमी राष्ट्रों ने अपना धैर्य बनाये रखा और एक सुसगठित हवाई यातायात द्वारा रूसी अवरोधको भंग कर दिया। जब रूसने देखा कि वह सफल नहीं हो सकता तब उसने अमरिका और अन्य पश्चिमी राष्ट्रोंसे संयुक्त राष्ट्र सभा भवनके गलियारेमें हो गैर-रस्मी तरीकेसे समझौता कर लिया।

(३) कॉर्फ चैनल का प्रश्न सन १९४७ में ब्रिटेनने सुरक्षा परिषदमें शिकायत की कि अल्बानिया द्वारा उसके समुद्रमें बिछाई गई सुरंगने अंग्रेजी युद्ध पोतोंको नुकसान पहुँचाया है और अंग्रेज नाविकों को घायल कर दिया है इसलिए अल्बानियाको हर्जाना देना चाहिए। अल्बानियाने इसका उत्तर यह दिया कि ब्रिटेन उसके क्षेत्रीय सागरकी सीमाका उल्लंघन करके उसकी सम्प्रभुता भंग कर रहा है। अन्तमें मामला अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयमें भेजा गया जिसने फैसला दिया कि अल्बानियाको हर्जाना देना चाहिए।

(४) हिन्द चीन का युद्ध शुरूमें तो यह फ्रान्सीसी साम्राज्यवादी शासनके विरुद्ध हिन्द-चीनकी जनताका विद्रोह था। बादमें यह पश्चिमी देशोंके लोकतन्त्र और उपनिवेशवादके विरुद्ध राष्ट्रीयतावाद और साम्यवादके गठबन्धनमें परिणत हो गया। आठ वर्ष तक युद्ध होता रहा और फ्रान्सकी गहरी हानि हुई। फ्रान्सने हिन्द-चीनको विभाजित करके अपना शासन बनाये रखनेके लिए अनेक रास्ते अपनाये पर उसे सफलता नहीं मिली। बादमें अमेरिकाने फ्रान्सको काफी सैनिक और आर्थिक सहायता दी और चीनके साम्यवादियोंने उत्तरी वियतनामको मदद पहुँचाई। जब गत्यावरोध की स्थिति उत्पन्न हो गई और दोनों पक्ष समझौतेके लिए उत्सुक हो गये तब १९५४ में जेनेवामें कुछ बड़े राष्ट्रों (ब्रिटेन, फ्रान्स और चीन) की बैठक हुई और भारतने सहायकका हितकर कार्य किया। इस सम्मेलनके परिणामस्वरूप हिन्द चीनमें अपेक्षाकृत शान्ति स्थापित हो गयी, यद्यपि उत्तरी और दक्षिणी वियतनाममें जिस निर्वाचनका वादा किया गया था वह दक्षिणी वियतनामके प्रधान मन्त्रीकी अडंगेबाजी के कारण पूरा नहीं हो पाया। संयुक्त राष्ट्रके सम्मुख आनेवाले अन्य रोचक मसले निम्नलिखित हैं

(१) हैदराबादका सवाल,
(२) इटलीके उपनिवेशोंकी भावी स्थिति,
(३) विदेशी नागरिकोंकी रूसी पत्नियोंका प्रश्न,
(४) ट्यूनिसका सवाल,
(५) मोरक्कोका प्रश्न,
(६) ब्रिटेन और ईरानके बीच तेलकी समस्या,
(७) ट्रीस्टके स्वतन्त्र-प्रदेशका प्रश्न।

इन प्रश्नों और ऐसे अन्य प्रश्नोंके विवरणके लिए पाठकोंको संयुक्त राष्ट्र

संघके प्रकाशन "एवरी मैन्स यूनाइटेड नेशन्स" (पृष्ठ ३९–१६५) को पढ़ना चाहिए।

३. राजनीतिक गत्यावरोध (Political Impasses)

संयुक्त राष्ट्र संघके सामने आनेवाले अनेक मसले गत्यावरोधकी हालतमें पहुँच गये हैं। उचित साधनोंकी कमी, इस गत्यावरोधका इतना कारण नहीं है जितना राष्ट्रों द्वारा अपनी-अपनी सम्प्रभुता पर अड़ने और निहित स्वार्थों द्वारा अपना प्रभुत्व जमाये रखनेकी पुरानी समस्याएं हैं। स्थानकी कमीके कारण यहां भी हम इन प्रश्नों की सूची मात्र दे सकेंगे। जिन मामलोंमें संयुक्त राष्ट्र संघने अपनेको बदनाम किया है वे ये हैं

(१) संयुक्त राष्ट्र संघमें राष्ट्रीयतावादी चीनका बराबर बने रहना और साम्यवादी चीनका सदस्य बाहर रखना।

(२) दक्षिणी अफ्रीकामें भारतीयोंके साथ दुर्व्यवहार।

(३) दक्षिणी अफ्रीकाकी जातीय-विभेदकी नीति।

(४) दक्षिणी अफ्रीका द्वारा दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीकाका वस्तुतः अपनेमें मिला लिया जाना।

(५) आणविक अस्त्रोंके प्रयोगात्मक विस्फोटों पर रोक लगानेमें असफलता।

(६) निरशस्त्रीकरण (पुरानी चालक और नये आणविक शक्ति, दोनों)।

वीटो पर रोक लगाने और संयुक्त राष्ट्र सदस्य नये सदस्योंके प्रवेशके सम्मानपूर्ण ढंगकी समस्याका भी कोई तात्कालिक हल नहीं दिखाई देता।

४ आर्थिक-क्षेत्रमें संयुक्त राष्ट्र संघकी सफलताएं
(Accomplishments of the U N in the Economic Field)

गैर राजनीतिक क्षेत्रमें संयुक्त राष्ट्र संघका काम एक उत्साहवर्धक कहानी जैसा मालूम होता है। संगठन, अध्ययन, रिपोर्ट, गोष्ठी, सम्मेलन समन्वय, सूचनाओं और कर्मचारियोंकी अदला-बदली, कर्मचारियोंके प्रशिक्षण और ऐसे ही अन्य साधनों से संघने अनेक आर्थिक और सामाजिक समस्याओंको सुलझानेमें सहायता दी है। विश्वके जन, धन और ज्ञान सम्बन्धी साधनोंके एकीकरणका यह एक महान् प्रयोग है।

आर्थिक आयोग (Economic Commissions)

१९४६, में आर्थिक और सामाजिक परिषदने क्षति-ग्रस्त क्षेत्रोंके आर्थिक

पुर्ननिर्माणके लिए एक स्थायी उप-आयोगकी स्थापना की जिसकी बैठक लन्दनमे २९ जुलाईसे १३ सितम्बर, १९४६, तक हुई। इसी वर्ष बादमे इस उप-आयोगने परिषदके सामने अपनी रिपोर्ट पश की जिसम जन-शक्ति, खाद्यान्न, कृषि, इंधन और विद्युत् शक्ति, प्रधान उद्योग व्यवसाय, आवास, यातायात, अर्थ व मुद्रा और व्यापार सम्बन्धी दीर्घ कालीन और अल्प-कालीन समस्याओका विवेचन किया गया था। उसने अन्तर्राष्ट्रीय सहयोगके लिए सुझाव भी दिये जिनमे योरापके लिए एक आर्थिक आयोग बनाये जानेका सुझाव भी था। इस अस्थायी आयोग और उसके अन्तगत काम करनेवाले दलोंकी रिपोर्टके फलस्वरूप एशिया और सुदूर-पूर्वके क्षति ग्रस्त क्षेत्रो के अध्ययनके लिए आयोग स्थापित किये गये। अफ्रीकाके लिए भी एक आयोग बनने का था पर यह बन न पाया। आम सभाकी सिफारिश पर आर्थिक और सामाजिक परिषदने ये संस्थाए बनाई योरोपके लिए आर्थिक आयोग एशिया और सुदूर पूर्वके लिए आर्थिक आयोग, और बादमे लेटिन अमेरिकाके लिए आर्थिक आयोग। परिषद ने ७ मार्च, १९४८, को मध्यपूर्वके लिए एक आर्थिक आयोग स्थापित करनेकी समस्या का अध्ययन करनेके लिए एक अस्थायी समिति नियुक्त की।

इन तीनो आयोगोमे से प्रत्येकने विशिष्ट अध्ययन किये और सम्बन्धित देशोको बहुमूल्य सुझाव दिये। योरोपमे इसके फलस्वरूप सहयोगात्मक व्यवस्थाओके आधार पर अधिक उत्पादन सम्भव हुआ है। उदाहरणके लिए इस्पातका उत्पादन १५ लाख टन अधिक हुआ है। यह सदस्य राष्ट्रोंके बीच कच्चे मालका विभाजन करता है जिनमे कोयला, लकड़ी और कच्चे खनिज प्रमुख है। योरोपके जो राष्ट्र सयुक्त राष्ट्र सघके सदस्य नही है वे भी इस सस्थाके सलाहकार बन सकते है। इस सहयोग मूलक प्रयत्नोके कुछ उदाहरण ये है अग्रेजोने अपनी कुछ बोझा ढोनेवाली मोटर गाडिया जर्मनीके फ्रान्स अधिकृत प्रदेशके लिए दी, इटलीसे कुशल मजदूर लाये गये, जर्मनी के अमेरिकी-क्षेत्रमे स्टीम बेलचे (शॉवेल) व बुलडोजर मशीनें भेजी गई। अमेरिका ने टेक्नीशियन भी दिये। अन्तर्राष्ट्रीय बैंकसे मिले ऋणने योरोपके बहुत बडे भागकी आर्थिक स्थिति सभालनेमे मदद की है।

एशिया और सुदूर-पूर्वके आर्थिक आयोगका प्रधान कार्यालय बैंकॉकमे है। सयुक्त राष्ट्र सघकी अन्य सस्थाओकी भांति इस आयोगको भी अपनी इच्छा लागू करनेका वैधिक अधिकार प्राप्त नहीं है। आर्थिक और सामाजिक परिषदके सामान्य निरीक्षणमे यह आयोग जो भी निर्णय करता है उन्हे सम्बन्धित देशोकी स्वीकृतिसे ही कार्यान्वित किया जा सकता है। क्षेत्र विशेषके देशोका आयोग एकत्र करता है ताकि वे उस क्षेत्रसे सम्बन्धित सामान्य प्रश्नो पर विचार विमर्श कर सके। ऐसा पहले उन्होंने कभी नही किया था। यह एक ऐसा मच है जहा एकत्र होकर क्षेत्र विशेषकी सरकारें सामूहिक रूपसे अपनी सामान्य आर्थिक समस्याओ पर विचार करती हैं। इसके निश्चित विशिष्ट कार्य ये है

(१) सामूहिक सुसगठित कार्योंकी शुरुआत करना और उनमें भाग लेना।

(२) आर्थिक और प्राविधिक (technological) समस्याओ तथा विकास कार्योंको जाच पडताल और अध्ययन करना या करवाना।

(३) आर्थिक, प्राविधिक और साख्यिक सूचनाओके सचय, मूल्याकन और वितरणका कार्य करना या कराना।

आयोगका कार्य निम्नलिखित विभागोमे होता है कृषि, औद्योगिक विकास, प्राविधिक प्रशिक्षण और सहायता, व्यापारकी उन्नति, बाढ नियत्रण और शोध।

लेटिन अमेरिकाके लिए बने आर्थिक आयोगके कार्य-कलाप भी शेप दोनो आयोगोके कार्याके समान ही हैं। यह आयाग विभिन्न राष्ट्रोके आर्थिक साधनोके बीच सहयोग और समन्वय कायम करनेमे लगा हुआ है।

आर्थिक और रोजगार आयाग ससारकी आर्थिक स्थिति और गति पर अपनी नियमित रिपोर्ट दिया करता है। मुद्रा आयाग सयुक्त राष्ट्र सघकी विभिन्न सस्थाओको, प्रार्थना किये जाने पर प्राविधिक परामर्श, सूचना और सहायता दिया करता है। इस विषय पर दो ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

साख्यिक आयोग (Statistical Commission), जैसा कि इसके नामसे ही प्रकट है, साख्यिक सूचनाए सग्रह करता है। परिवहन (transport) और सचार (communications) आयागका काम दूर-सचार (tele-communications), डाक, हवाई, जल और स्थल परिवहन आदिसे सम्बन्धित है।

पुनर्निर्माण और विकासके लिए अन्तर्राष्ट्रीय बैक
(The International Bank for Reconstruction and Development)

इस बैककी अधिकृत पूजी एक करोड अमेरिकी डालर है। यह पूजी एक-एक लाख डालरके हिस्सोमे बटी है। इन हिस्सोको केवल सदस्य ही खरीद सकते है और केवल बैकको ही वे हस्तान्तरित किये जा सकते है। १५ फरवरी, १९५४, को ५५ सदस्य राष्ट्रो द्वारा जमा की गई पूजी स्वर्ण, अमेरिकी डालरो और विभिन्न सदस्य राष्ट्रोकी मुद्राओमे २०,३८,५०० डालर यानी अधिकृत पूजीकी २० प्रतिशत थी।

सदस्य राष्ट्रोकी विकास योजनाओ और कार्यक्रमो पर विचार-विमर्श करनेके लिए अथवा जिन योजनाओके लिए कर्जकी माग की गयी है उनके लिए आर्थिक सहायताकी सम्भावना आदिके सम्बन्धमे बैक अपने सदस्य राष्ट्रोके साथ बराबर लिखा पढी करता रहता है। सदस्य राष्ट्रोको प्राविधिक परामर्श देने, दीर्घकालीन विकास योजनाए बनानेमे सहायता देने अथवा ऋणके उपयोगके सम्बन्धमे बैकके प्रतिनिधि सदस्य देशोका दौरा किया करते हैं।

बैक अपने कर्जो पर निगरानी भी यह देखनेके लिए रखता है कि जिन प्रसाधन सज्जा (equipment), सामान और वस्तुओके लिए सदस्य राष्ट्रोको पैसा दिया

जाता है उनका उपयोग उन्हीं कामोंमें ही होता है जिनके लिए वह दी गई है।

किसी भूखण्ड-विशेषको या किसी विशेष मामलेमें कर्ज दिया जाय या नहीं, यह निश्चय करनेके लिए अन्तर्राष्ट्रीय बैंकके निम्नलिखित पांच सिद्धान्त हैं

(१) यदि कर्ज लेनेवाला किसी अन्य सूत्रसे उचित शर्तों पर कर्ज पा सकता है तो बैंक ऋण नहीं देगा, जिस योजनाको कार्यान्वित करनेके लिए ऋण मांगा जा रहा है वह चाहे जितनी उपयोगी क्यों न हो।

(२) दूसरा सिद्धान्त यह है कि सामान्यतया बैंक किसी देशको उसकी योजना से सम्बन्धित विदेशी सामान और सेवा प्राप्त करनेके लिए आवश्यक विदेशी रकमका ही ऋण देगा।

(३) तीसरी ऋण तभी दिया जाता है जब कर्ज लेनेवाला और उसका जामिन मूलधन और ब्याज अदा कर सकें।

(४) चौथा सिद्धान्त यह है कि बैंक सबसे अधिक उपयोगी और आवश्यक योजनाओंको ही वरीयता (preference) देगा।

(५) पांचवां शर्त यह है कि कर्ज लेनेवालेमें इतना ज्ञान, कौशल और आर्थिक साधन हो कि वह योजनाको सफल बना सके।

बैंकके कर्जका उपयोग करनेवाली भारतकी प्रधान योजनाओंमें से एक दामोदर घाटी योजना है। सन् १९५२ में दूसरा कर्ज इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनीको अपनी फैक्टरियों और खान बढ़ानेके लिए दिया गया।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (**International Monetary Fund**) "एवरी मैन्स यूनाइटेड नेशन" नामक ग्रन्थके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोषके उद्देश्य प्रधानतः निम्नलिखित हैं —

आर्थिक नीतिके प्रधान उद्देश्यकी सिद्धिके लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारके विस्तार और सन्तुलित विकासकी सुविधा प्रस्तुत करना और इसके द्वारा रोजगार और वास्तविक आयका स्तर ऊंचा करना और उसे कायम रखना तथा सभी सदस्योंके उत्पादक साधनोंकी उन्नतिमें सहायता देना,

मुद्रा विनिमयकी स्थिरताको बढ़ावा देना, सदस्योंके बीच व्यवस्थित विनिमयका प्रबन्ध करना और प्रतियोगिता मूलक विनिमय मूल्यावरोह को बचाना या रोकना,

उपयुक्त संरक्षणोंके अन्तर्गत सदस्योंके लिए कोषके साधन सुलभ बनाकर उनमें विश्वास उत्पन्न करना।

पिछड़े हुए या अधविकसित देशोंके[१] आर्थिक विकासके लिए प्राविधिक सहायता (**Technical Assistance for the Economic Development of underdeveloped countries**) यह सहायता संयुक्त राष्ट्र संघ और

---

[१] इस विभागकी सामग्री 'इण्टरनेशनल कांसिलिएशन' जनवरी, १९५०, नं० ४५७ से ली गयी है।

उनकी संस्थाओं द्वारा दी जाती है। यह योजना १९४९ में बनायी गयी थी। इस योजनाके अन्तर्गत आत्म-सम्मान खोये बिना और राजनीतिक हस्तक्षेपके भयसे मुक्त सहायता प्राप्त की जा सकती है। रकम खर्च करनेके पहले प्राविधिक ज्ञानकी कमी पूरा करना आवश्यक होता है।

प्राविधिक सहायता केवल सलाह, प्रशिक्षण, विधि-प्रदर्शन और कौशल इकट्ठा कर देनेके रूपमें होती है (Technical assistance is simply advice, training, demonstration, and the pooling of 'know how')। बर्मा ने अपने साधनोंसे सम्बन्धित ज्ञान सामग्रीका संग्रह करने और बुद्धिमत्तापूर्वक उसका विश्लेषण करनेके लिए संयुक्त राष्ट्र संघसे एक सांख्यिक (statistician) की सहायता मांगी थी। मैक्सिको ने अपने स्थानीय कार्योंके अधिक उत्तम उपयोगके सम्बन्धमें परामर्श देनेके लिए तीन विशेषज्ञोंकी सहायता मांगी थी। ईरानने राजस्व, चुंगी, आयात निर्यात-कर और संगठनके क्षेत्रमें सहायताकी प्रार्थना की थी। स्याम ने जल साधनोंके विकास और नियंत्रणके लिए खाद्य और कृषि संगठनकी सहायता मांगी थी। औद्योगिक मजदूरोंके स्वास्थ्य और निरीक्षणका सर्वोत्तम प्रबन्ध कैसे किया जाय—इसका अध्ययन करनेके लिए मिस्र ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठनसे सहायता मांगी थी। एथियोपिया ने सफाई निरीक्षकों और अस्पताली कर्मचारियों का प्रशिक्षण प्रारम्भ करनेके लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य संगठनसे सहायता मांगी थी। भारत ने तपेदिक के विरुद्ध बी० सी० जी० का टीका लगानेके प्रदर्शनकी प्रार्थना की थी।

सहायता निम्नलिखित रूपसे दी जाती है—विदेशोंमें अध्ययनके लिए छात्र-वृत्तियाँ, गोष्ठियां, विशिष्ट सहायताएं—जैसे इक्वेडोरमें आये भूकम्पसे पीड़ित को, विशिष्ट समस्याओंका अध्ययन, जैसे लटिन अमेरिका में भूकम्पसे ध्वस्त एक नगर की समस्याओंका, और साधारण ज्ञानकी बातोंका प्रचार। कुछ रासायनिक द्रव्यों और स्प्रे-मशीनोंकी सहायता पा जानेसे यूनान मलेरियाके मच्छरोंसे मुक्त पा गया। भारत भी इस दिशामें बढ़ रहा है, पर द्रुतगतिसे नहीं।

पथ-प्रदर्शक योजनाओं, प्रदर्शन दस्तों और दौरा करनेवाले विशेषज्ञोंके माध्यमसे लोगोंके जीवन स्तरको ऊंचा उठानेमें भी सहायता दी जाती है। उन्नतिशील और अल्प-विकसित दोनों प्रकारके राष्ट्रोंको शोध कार्यों और विचारोंके विनिमयसे सहायता मिलती है। उदाहरणके लिए, चीनके कुछ फलों और तरकारियोंके बीज अमेरिकी बीजोंसे अच्छे पाये गये और तुरन्त उनकी मांग अमेरिका में बढ़ गई। अब यह अनुभव किया जाता है, कि अल्प-विकसित क्षेत्रोंमें होनेवाला अधिक उपजका अर्थ है औद्योगिक और उत्तम कोटिकी वस्तुओंकी अधिक मांग। इससे नये बाजार उपलब्ध हो जाते हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघकी प्राविधिक सहायता, योजनाका प्रशासन और कार्यान्वय एक प्राविधिक सहायता बोर्ड द्वारा होता है, जो दैनिक कार्योंके लिए जिम्मेदार है, और

एक प्राविधिक सहायता समितिके द्वारा जो आर्थिक और सामाजिक परिषदकी ओरसे निरीक्षणका काम करती है।

यह सिद्ध करनेके लिए किसी तर्ककी जरूरत नहीं है कि अन्तर्राष्ट्रीय तत्वावधानमें मिलनेवाली प्राविधिक सहायता हर हालतमें किसी एक देशसे मिलनेवाली सहायतासे कहीं अच्छा है। (१) इसमें संशयसे अपेक्षाकृत मुक्ति रहती है। (२) अनेक राष्ट्र अपने अनुभवको एक साथ संचित और संगठित कर सकते है, और इस बातकी लाभदायक अनुभूति प्राप्त करते है कि किसी भी देशको प्राविधिक ज्ञान पर एकाधिकार नहीं प्राप्त है। (३) कोई-कोई समस्या ऐसी होती है कि उसके सम्बन्धमें अन्तर्राष्ट्रीय कार्रवाई आवश्यक हो जाती है। हैजा और चेचक जैसी महामारियाँ, या टिड्डी जैसी आपदाएं भौगोलिक सीमाओंको नहीं मानती। संयुक्त राष्ट्र संघने यह बात साफ-साफ प्रदर्शित कर दी है कि योजनाओंके लिए समन्वय और मिलकर काम करनेकी जरूरत है।

खाद्य और कृषि-संगठन (Food and Agriculture Organisation) यह आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रमे संयुक्त राष्ट्र संघके सबसे उत्तम संगठनोंमें से एक है। अपने जीवनके प्रारम्भिक वर्षोंमें इसने खाद्यान्नकी कमी और अकालोंसे उत्पन्न होनेवाली समस्याओं पर ध्यान दिया। अब यह कुछ दीर्घकालीन योजनाओं पर भी ध्यान देनेमें समर्थ हो गया है।

संयुक्त राष्ट्र संघके कई एक संगठनोंने हिमालयकी तलहटीमें तराई क्षेत्रको कृषि योग्य बनानेमें सहायता दी है। इस क्षेत्रमें मलेरियाका जोर था और इसमें दल-दल बहुत थी, यद्यपि किसी समय इसमें अच्छी खासी खेती-बारी होती थी। सन् १९४९ में संयुक्त राष्ट्र संघ और भारतके विशेषज्ञों द्वारा यहाँ मलेरियाके मच्छरोंके विरुद्ध युद्ध छेड़ा गया। जब यह युद्ध जीत लिया गया तब खाद्य और कृषि संगठनने यहाँ आधुनिक कृषिके एक सुनियोजित विकासमें भारत सरकारका साथ दिया। एक कृषि इंजीनियर, एक ट्रैक्टर चलाने वाला, एक कृषि मशीनरी विशेषज्ञ, एक वनस्पति-शास्त्रका ज्ञाता और विभिन्न देशोंसे आये ऐसे ही अन्य विशेषज्ञ तराईकी कायापलट करनेमें जुट गये।

हिन्देशियाका मत्स्य (मछली) उत्पादन एक दूसरा क्षेत्र है जिसमें खाद्य तथा कृषि संगठनने अच्छा काम किया है। हिन्देशियामें धानकी फसलके साथ-साथ छोटी मछलियाँ भी पैदा की जाती हैं। दोनों फसलें एक साथ तैयार होती है। मछलियाँ छोटे मच्छरोंको खाती है और जमीनको उपजाऊ भी बनाती है। मछलियोंसे किसानोंको अतिरिक्त भोजन मिल जाता है और आमदनी भी हो जाती है। खाद्य तथा कृषि संगठनके विशेषज्ञोंकी सहायतासे हिन्देशियाके अनुभव हेटी (Haiti) आदि अन्य देशोंके लिए सुलभ बनाये गये। इसराईल भी इसका प्रयोग करनेकी कोशिश कर रहा है। जब थाइलैण्डके किसानोंने खेतोंको सूखनेसे बचानेके लिए अपनी धानकी फसलका बलिदान करना शुरू किया—तीन महीनेमें धानकी फसल तैयार हो जाती है—तब खाद्य तथा कृषि संगठनके विशेषज्ञोंने एक तरीका निकाला जिससे धान भी नष्ट न हो

और मछलियां भी न मरें। यह तरीका था किसानोंको ऐसे गढे खोदनेके लिए प्रोत्साहित करना जिनमें मछलियां बेनाम फिर पानी भरनेके समय तक सुरक्षित रह सकें।

भारत सरकारने खाद्य तथा कृषि संगठनके तत्वावधानमें एक चावल शोधशाला खोली है। इस शालाके कार्यमें एशियाके अन्य दस देश भी साझेदार हैं।

खाद्य तथा कृषि संगठन "रिन्डर पेस्ट" नामक पशुओंकी एक बीमारीसे भी मोर्चा ले रहा है। इस बीमारीसे निकट और सुदूर पूर्वके देशोंमें हर साल लाखों पशु मरते हैं।

यूनान, गाटेमाला, फिलिपाइन्स और थाईलैण्डमें पोषक-खाद्य-सम्बन्धी कार्योंमें समन्वय स्थापित किया गया है।

खाद्य तथा कृषि संगठनके द्वारा योरोपीय इमारती लकड़ीकी पूर्ति (supply) में पर्याप्त वृद्धि हुई है। इस संस्थाने लेटिन अमेरिकी देशोंको अपने काष्ठ साधनोंके विकासकी योजना बनानेमें भी सहायता दे दी है।

खाद्य तथा कृषि संगठन इस प्रकार प्राविधिक सहायताकी कई योजनाएं पूरी कर चुका है। इन योजनाओंका लक्ष्य अल्पविकसित क्षेत्रोंके उत्पादन-कौशलकी उन्नति करना है। इस कामका अधिकांश संयुक्त राष्ट्र संघकी संवर्धित (expanded) प्राविधिक सहायता योजनाके अन्तर्गत किया जाता है।

जमींदारीकी समस्याका खाद्य तथा कृषि संगठनने विशेष अध्ययन किया है। इस संगठनने जापानमें किये गये प्रयोगोंके लाभोंका अन्य देशोंके लिए सुलभ बना दिया है। जापानमें कब्जा अधिकारियों (occupation authorities) ने ५० लाख एकड़ जमीन जमींदारोंसे खरीद लेनेका आदेश दिया। फिर यह जमीन किसानोंको उचित मूल्य पर बेच दी गई। किसानोंका जमीनकी कीमत किस्तोंमें तीस वर्षोंमें चुकानी पड़ेगी और केवल ३ २ प्रतिशत ब्याज देना पड़ेगा।

खाद्य तथा कृषि संगठनने सन् १९४६ में पहली बार विश्व खाद्य सर्वेक्षण (survey) कराया और दूसरा सर्वेक्षण रिपोर्ट १९५२ में प्रकाशित हुई। इसने १९५० में विश्व-कृषि-आकलन (World Census of Agriculture) की व्यवस्था कराई।

अधिक अन्न और दूसरी फसलें कैसे पैदा की जाय, टिड्डी जैसे नाशक कीड़ों और पौधों तथा पशुओंकी बीमारियोंका नियन्त्रण कैसे किया जाय, जिस खाद्यकी कमी हो उसकी रक्षा कैसे की जाय और साधारणतया खेतों, मत्स्य क्षेत्रों और जगलोंकी पैदावार कैसे बढ़ाई जाय—आदि समस्याओंके सम्बन्धमें प्राविधिक सहायता चाहनेवाले देशोंकी सहायताके लिए खाद्य तथा कृषि संगठन अपने विशेषज्ञ भेजता है। भूमि संरक्षण (soil conservation) और खादोंके प्रयोगके सम्बन्धमें भी वह परामर्श देता है। संक्षेपमें वह वैज्ञानिक सूचनाओंका विनिमय-गृह है। वह ऐसी प्राविधिक सहायता देता है जिसके लिए राष्ट्र संघके अधीन कोई सुविधा न थी। अपने विशिष्ट कार्यक्षेत्रके सम्बन्धमें वह राष्ट्रोंके बीच समान वैधिक व्यवस्थाओंको भी प्रोत्साहित करता है।

खाद्य तथा कृषि सगठनने अनेक क्षेत्रीय खाद्य सम्मेलनोकी व्यवस्था की है। उसने अनेक देशोका मक्काके प्रसंकर बीज (hybrid corn) तथा अन्य उन्नत बीजो के नमूने भेजे है। कृषि मजदूरोके लिए उसने प्राविधिक पत्रिकाए तथा अन्य प्रकाशन वितरित किये है। इथिओपिया और कुछ यूरोपीय देशोमे पशु चिकित्साके लिए उसने नमूनेकी यात्राओमे सामान भेजा है। उसने अच्छी नसलके पौधो और पशुओ का एक सूची पत्र तैयार कराया है।

यातायातकी सुविधाओमे सुधार (Improvement of Transport Facilities) ईरानमे धरतीकी बनावटके कारण, यात्रा करना बहुत कठिन होता है। यह कठिनाई दूर करनेके लिए हवाई यात्राका विस्तार ही ठीक समझा गया। अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक-उड्डयन सगठन (International Civil Aviation Organisation) ने जो सयुक्त राष्ट्र सघसे सम्बद्ध उसकी विशेषज्ञ सस्थाओमे से एक है, अपने विशेषज्ञोको इस समस्याका अध्ययन करने और ईरानकी हवाई यात्राके विकासमे उसे परामर्श देनेके लिए तथा उड्डयन विभागके, जमीन पर काम करनेवाले दलके प्रशिक्षणमे ईरानी सरकारके नागरिक उड्डयन विभागको सहायता देनेके लिए ईरान भेजा।

एक दूसरा क्षेत्र जिसमे सयुक्त राष्ट्र सघ यातायातकी सुविधाओका सुधार करने में व्यस्त रहा है, पूर्वी पाकिस्तान तथा अन्य कुछ ऐसे देश है जहा जल मार्ग ही परिवहन का प्रधान साधन है।

५ सामाजिक, मानवतावादी और सास्कृतिक क्षेत्रोंमें सफलताए (Accomplishments in the Social, Humanitarian and Cultural Fields)

मानव अधिकार यदि सयुक्त राष्ट्र सघ जैसी अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओ समेत सभी सरकारोका प्राथमिक कर्तव्य मनुष्यके कल्याणकी वृद्धि है तो मानव अधिकारोका प्रश्न सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। राष्ट्र सघ (League of Nations) ने सभ्य जीवन के कुछ अधिकारो पर विचार किया था, पर सयुक्त राष्ट्र सघने अनेक सास्कृतिक अधिकारोको भी विचारणीय विषयोमे शामिल कर लिया है।

आर्थिक और सामाजिक परिषदके जरिये ऐसे अनेक अध्ययन किये गये जिनमे तथाकथित सास्कृतिक अधिकार भी आ गये। इन अध्ययनोंके परिणाम मानव अधिकारोके अन्तर्राष्ट्रीय विधेयकके रूपमे सयुक्त राष्ट्रके सम्मुख पेश किये गये। सावधानीपूर्वक विचार-विमर्श करनेके बाद आम सभाने १० दिसम्बर, १९४८, को मानव अधिकारोका विश्व घोषणा-पत्र स्वीकार किया। यह घोषणा पत्र अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर सभी मनुष्योकी जन्म-जात स्वाधीनताओ और उनके जन्म-जात अधिकारो की परिभाषा करता है। इनमे निम्नलिखित शामिल है जीवन, स्वाधीनता और

विश्व स्वास्थ्य सगठन, जन स्वास्थ्य और रोगोके नियत्रणके सम्बन्धमें अपने सदस्य राष्ट्रोको परामर्श देता है। मलेरिया, तपदिक, न्युपदश (yaws) और उपदश (syphilis) जैसी व्यापक बीमारियोके विरुद्ध यह सगठन युद्ध छेडे हुए है और यह युद्ध कोढ, टाइफस, पोलियो, डिफ्थारिया व बिल्हारजियासिस[1] (bilharziasis) जैसी कम व्यापक बीमारियोंके विरुद्ध भी चल रहा है।

स्वास्थ्यके कुछ क्षेत्रोमे—जैसे स्वास्थ्य और खाद्यकी सम्बन्धित समस्याओमे—यह सगठन खाद्य और कृषि सगठन (FAO) के साथ मिलकर काम करता है—क्योंकि दोनाके कार्योमे समानता होती है।

इस सगठन द्वारा की गयी कुछ विशिष्ट सेवाए ये है

(१) मलेरिया पर काबू पानेके लिए यूनानको दी गई सहायता, बीमारी ९५ प्रतिशतसे घटकर ५ प्रतिशत रह गई।

(२) भारतको तपेदिक निरोधकमे बी० सी० जी० के टीका देना।

(३) एथियोपियाकी सरकारको डाक्टरी शिक्षाकी योजनाके सम्बन्धमें दिया गया परामर्श।

(४) बन्दरगाहोकी सफाई करने वाले कर्मचारियोके पुनर्वासके सम्बन्धमे इटलीको सरकारसे की गई सिफारिशे।

(५) औषधियो, शरीर विज्ञान सम्बन्धी आवश्यकताओ और डाक्टरी साज-सामानके प्राप्त करनेमे अपने मेडिकल सप्लाई ब्यूरो द्वारा सरकारोको दी गई सहायता।

(६) जन-स्वास्थ्य और डाक्टरीके क्षेत्रमे अल्पविकसित देशोकी सिफारिश पर सरकारी अधिकारियोको दी गई छात्र वृत्तियाँ।

(७) मलेरिया विरोधी अभियानमे लगे देशोको कीटाणु नाशक डी० डी० टी० देना और मूत्र रोगोके नियत्रणमे व्यस्त देशोको पेनिसिलीन देना।

सक्षेपमे हम कह सकते है विश्व स्वास्थ्य सगठन, अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा कार्योमे सगति बैठानेवाले अधिकारी की भाति काम करता है, शोध-कार्य को प्रेरणा, और बल देता है, महामारियो और अन्य बीमारियोको दूर करता है, पोषण, आवास, सफाई, विनोद, आर्थिक और कामकी परिस्थितियो तथा वातावरणसे सम्बन्धित स्वास्थ्य सफाईके अन्य पहलुओमे सुधार करता है, खाद्य सामग्री, शरीर विज्ञान तथा औषधि निर्माण और अन्य ऐसी ही बातोंके सम्बन्धमे अन्तर्राष्ट्रीय मान-दण्डोका विकास करता है, और उनकी प्रतिष्ठा और वृद्धि करता है।

सयुक्त राष्ट्र सघका अन्तर्राष्ट्रीय बाल सकट कोष (UNICEF) यह सघकी एक और सस्था है जिसका स्वास्थ्यमे—विशेषकर बच्चोके स्वास्थ्यसे—घनिष्ठ सम्बन्ध है। सन् १९४६ मे आम सभा ने सयुक्त राष्ट्रके सहायता व पुनर्वास सगठनके अधूरे

---

[1] A disease caused by trematode worms parasite in human and other blood Common in Egypt—Chambers's Twentieth Century Dictionary

कामको पूरा करनेके लिए इसका सगठन किया था। क्योकि सहायता व पुनर्वास सगठन १९४६ मे अपना काम बन्द करने जा रहा था। इस सगठनका सयुक्त राष्ट्र सघके बजटसे धन नही मिलता। यह सगठन सरकारी और व्यक्तियोंके स्वेच्छा दान और बडे दिनके कार्डो (X'mas Cards) की बिक्रीसे मिलनेवाले धन पर टिका है।

सयुक्त राष्ट्र सघका अन्तर्राष्ट्रीय बाल सकट कोष निम्नलिखित कार्योंमे विशेषता प्राप्त करता है—शिशु कल्याण और मातृ रक्षा सम्बन्धी सामान सज्जा, भोजन और औषधियाँ सुलभ बनाना, बीमारियो—विशेषकर बच्चोकी बीमारिया—का नियत्रण करना, शिशु पालन, और भूकम्प, बाढ, अकाल तथा ज्वालामुखियोके उद्गारसे बच्चाकी रक्षा व सहायता करना। इसके अतिरिक्त यह सस्था जच्चा-बच्चा कल्याण सेवाओकी और प्रशिक्षणकी व्यवस्था भी करती है। यह सस्था विश्व स्वास्थ्य सगठन और खाद्य व कृषि सगठनके साथ बडे घनिष्ठ सहयोगसे काम करती है।

इस कोषके दो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण काम है न्यूपदश (yaws) और तपेदिक के विरुद्ध अभियान। इन्डोनेशिया की सरकारकी प्रार्थना पर वहाँ न्यपदशके विरुद्ध डटकर काम किया गया है। एशिया और अफ्रीकाके अन्य ऐसे देशोमे भी जहाँ यह बीमारी फैली हुई है, अभियान छेडा गया है। इस कोषकी और विश्व स्वास्थ्य सगठनकी सहायतासे बी० सी० जी० के टीके लगानेका काम जन-प्रिय बनाया गया है। सन् १९५३ तक इस कोषके द्वारा दो करोड बीस लाख बच्चोको बी० सी० जी० टीका लगाया गया, तीस लाख बच्चे न्यूपदशकी बीमारीसे और एक करोड बीस लाख बच्चे मलेरियाकी बीमारीसे बचाये गये। पेनिसिलीन और डी० डी० टी० के निर्माण के लिए और बी० सी० जी० के टीके लगानेके लिए भारतको इस सस्थाने उदारताके साथ सहायता दी है। हाल ही मे भारत सरकारने देशव्यापी कुष्ठ (कोढ) नियत्रण योजनाके विकासके लिए इसकी सहायता मागी है।

आम सभा ने सर्वसम्मतिसे इस कोषको अनिश्चित काल तक चालू रखनेका प्रस्ताव पास किया है और उसे एक नया नाम दिया है—सयुक्त राष्ट्र सघका बाल कोष।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सगठन (International Labour Organization) इसका विकास राष्ट्र सघसे सम्बन्धित एक स्वायत्त सस्थासे हुआ है। यह सस्था समूचे युद्ध काल भर काम करती रही और अब वह सयुक्त राष्ट्र सघसे सम्बद्ध एक विशेषज्ञ समिति है।

इस सगठनका वार्षिक सम्मेलन वेतन भोगी मजदूरोकी रक्षाके लिए विधियोका विकास करता है। इसके लिए वह अन्तर्राष्ट्रीय करारोको प्रस्तावित करता है। इन प्रस्तावोको सम्मेलनमे आये प्रतिनिधि अपने-अपने देश ले जाते है और अपनी सरकारो के सम्मुख स्वीकार करनेके लिए पेश करते है। जो सरकार इन करारोमे से किसी को मान लेती है वह अपनेको इस बातके लिए बाध्य बना देती है कि वह हर वर्ष

इसकी रिपोर्ट भेजे कि करारोमे जिन विधियोकी मॉग की गई है उनके पास करनेके लिए क्या और कितना काम किया गया। सन् १९१९ से अब तक अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सगठन ने १०० स अधिक प्रस्नाव इस प्रकार भेजे है और १,३०० से अधिक स्वीकृतियोकी सूचना उम मिल चुकी है।

यह सगठन सरकाराको सलाह देता है कि मजदूराकी रक्षा करनेवाल आधुनिकतम विधियाको किस प्रकार बनाया जाय। इसने हालम अपना काम बढाकर ऐसी विधियोके प्रशासनके विकासमे भी सहायता देना प्रारम्भ कर दिया है। राजगार सम्बन्धी सेवाआ, श्रम सम्बन्धी सर्वक्षणो और आकडा तथा औद्योगिक सुरक्षा और स्वास्थ्यका विकास भी यह सगठन करता है।

सन् १९४९ तक इस सगठन ने निम्नलिखित कार्य खास तौर पर किये —

(१) श्रम-सम्बन्धी विधियो और काम की परिस्थितियो मे सुधारके सम्बन्धमे सरकारोका परामर्श देनेके लिए अनगिनती श्रम विशेषज्ञोका अन्य देशोमें भेजा गया।

(२) विविध देशोंकी रोजगार दिलानेमे सम्बन्धित सेवाओके विषयमे एक छोटी पुस्तक-माला तैयार की गयी।

(३) औद्योगिक प्रतिष्ठानो (Industrial establishments) के लिए सुरक्षा नियमो (safety regulations) की एक आदर्श सहिता बनायी गयी।

(४) कई क्षेत्रीय श्रम सम्मेलन किये गये।

(५) सन् १९४७ मे हुए अपने दिल्ली सम्मेलनमे इसने सामाजिक सुरक्षा व्यवस्थाआ (social security systems) के विकासके सम्बन्धमे और छोटे-छोटे कुटीर उद्योगा और हस्तकला व्यवसायोको प्रोत्साहन दिये जानेके सम्बन्धमे विचार किया।

सयुक्त राष्ट्रीय शिक्षा, विज्ञान और सस्कृति सगठन (UNESCO) इस सस्थाका सम्बन्ध शिक्षा और सस्कृतिके विकासमे है। इस सस्थाका नियमन करने वाले सविधान पर १५ नवम्बर, १९४५, का हस्ताक्षर किये गये थे। इसका काम अपने सदस्य राष्ट्राके चन्देसे चलता है। दैनिक व्यवस्था २० सदस्योकी एक कार्य-समिति करती है।

निरक्षरताका उन्मूलन इसके प्राथमिक कार्योमे से एक है। दक्षिणी एशिया और प्रशान्त महासागर क्षेत्रमे नौ करोड पचास लाख बच्चोमे से पाच करोड तीस लाख बच्चोको किसी प्रकारकी शिक्षा नही मिलती। प्रौढाकी शिक्षाके सम्बन्धमे यह सगठन इस नतीजे पर पहुचा है कि केवल अक्षर ज्ञान करा देनेसे कोई अधिक लाभ नही होता। उनके लिए ये बाते ज्यादा जरूरी है—अपने जीवनमे कुछ सीधे-सादे व्यावहारिक सुधार सीखना जैसे पीनेके पानीका उबालना, पाखानोका खोदना, ऊँचे उठे रसोईघर बनाना, स्थानीय सामानसे ही अधिक अच्छे घर बनाना, स्वय तरकारियाँ पैदा करके अपने भोजनमे सुधार करना, आदि।

ऐसी नयी-नयी बात सीख लेनेके बाद लोग सिनेमा और अन्य तरीकोंसे शिक्षा

पानेके लिए तैयार हो जायगे। सगठनके पास स्वय इतना पर्याप्त कोष नही है कि वह शिक्षाका अथवा शिक्षकोके प्रबन्धका व्यय उठा सके। वह केवल इन ममलो पर सरकारोको सलाह देना है और साथ ही कुछ विशेप प्रकारके प्रशिक्षण और सज्जा (equipment) का प्रबन्ध कर देना है। शिक्षणके हर स्तर पर वह चित्रोके अधिकाधिक प्रयोगका प्रोत्साहन देना है। सन् १९५२-५३ मे नई दिल्लीमे एक तीन महीनेकी गोष्ठी हुई थी जिसमे भारतीय शिक्षकोको यह सिखाया गया था कि तात्विक शिक्षामे वे चल-चित्रो, तस्वीरो और अन्य दृश्य-साधनोंका किस प्रकार उपयोग करे। मिस्रमे सन् १९५३ मे अरब राज्योका तात्विक-शिक्षा-केन्द्र खोला गया था। इसके पाठ्य-क्रममे लिखना और पढना सिखानेकी विधियाँ, घरेलू अर्थशास्त्र, स्वास्थ्य, कृषि और कुटीर-उद्योग शामिल हैं। ये केन्द्र पाठ्य पुस्तकें, प्रारम्भिक बाल पाथियाँ और दृश्य-साधन जैसे चल-चित्र आदि और शिक्षा पद्धतियो पर पुस्तके प्रकाशित करता है।

यह सगठन साहित्यिक सामग्री, फोटोग्राफ और चल-चित्र आदिके अन्तर्राष्ट्रीय आवागमनके विकासमे सहायता करना है। इसने अन्तर्राष्ट्रीय कॉपी-राइटकी मान्यता करानेमे सहायता दी जिसके द्वारा लेखका और कलाकारोके अधिकारोकी रक्षा होती है। पुस्तकोके स्वतन्त्र व्यापार और वैज्ञानिक ओजाराके परीक्षणके सम्बन्धमे भी समझौते हो चुके है। विद्यालयाकी पद्धतियोके विकासके सम्बन्धमे अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हो चुके हैं। सग्रहालयोके सचालकोके सम्मेलन बुलाये गये है जिनमे उ है और अन्य विशेषज्ञोको इस बातमे सहायता दी गई है कि वे सग्रहालयोका उपयोग जन-शिक्षाके महत्त्वपूर्ण साधनोके रूपमे कर सके।

भारत सरकारके सुझाव पर अन्धोके लिए ब्रेल (लिखित वर्णमाला) का एक निश्चित स्तर निर्धारित किया गया है। सन् १९५४ मे परिसके यूनेस्को भवनमे अन्ध-सगीतज्ञाका एक सम्मेलन इसलिए बुलाया गया था कि ब्रेल-सगीत सकेतोंका मानदण्ड सुधारा जाय।

अमेरिका जैसे कठोर मुद्रा क्षेत्रो (Hard Currency Areas) मे पुस्तको और शिक्षा सम्बन्धी सामग्रीकी खरीदमे नरम मुद्रा क्षेत्रो (Soft Currency Areas) के सम्मुख डालरोकी कमी जो कठिनाई पैदा करती है उसे दूर करनेके लिए इस सगठन ने कई लाख डालरके कूपन जारी किये हैं जिनसे ऐसे देश शिक्षा सम्बन्धी सामान खरीद सकते है।

अनउपजाऊ या ऊसर धरतीकी समस्या का अध्ययन करनेकी व्यवस्था करना इस सगठनकी एक विशेप योजना है। यह सगठन सयुक्त राष्ट्र सघकी प्राविधिक सहायता कार्यक्रममे भी भाग लेना है।

सयुक्त राष्ट्र सघके शिक्षा, विज्ञान, सस्कृति सगठनके कुछ अन्य विशिष्ट कार्य निम्नलिखित है —

(क) लोगोंको अपना जीवन स्तर ऊँचा उठानेके लिए आवश्यक आधार भूत

ज्ञान और उसकी विधियाँ सुलभ बनानेके उद्देश्यसे पथप्रदर्शक योजनाएं (पायलट प्रोजेक्ट्स्) बनाना,

(ख) ग्रामीण क्षेत्रोंमें प्रौढ़-शिक्षा पर गोष्ठियाँ करना,

(ग) विशिष्ट समस्याओंमें सहायता देनेके लिए विशेषज्ञोंको भेजना,

(घ) वैज्ञानिकोंके बीच सम्पर्क स्थापित करना, और

(च) चल-चित्र व रेडियो द्वारा शिक्षा देनेका, विज्ञान और सामाजिक उत्थानका और शैक्षिक व्यवस्था आदिका अध्ययन करनेके लिए छात्र-वृत्तियाँ देना।

६ पराधीन जगत (The Dependent World)

प्रन्यास व्यवस्थासे उन क्षेत्रोंकी स्थितिमें कुछ भी सुधार नहीं हुआ है जो पहले "मैन्डेट्स्" कहलाते थे और अब न्यास प्रदेश कहे जाते हैं। एक लेखकका कहना है "नवीनता रूपकी अधिक है, तथ्यकी कम"। न्यास प्रदेशोंका कुल क्षेत्रफल शेष पराधीन जगतकी तुलनामें बहुत कम है। अधिकतर पहलेके बी और सी श्रेणीके "मैन्डेट्स्" ही आज न्यास प्रदेश हैं।

इनकी सूची इस प्रकार है

न्यास-प्रदेश	प्रशासन सत्ता
कैमरून्स	ब्रिटेन
कैमरून्स	फ्रान्स
न्यूगिनी	ऑस्ट्रेलिया
नौरू	ऑस्ट्रेलिया
रूआन्दा उरुण्डी	बेल्जियम
टांगानिका	ब्रिटेन
तोगोलैण्ड	ब्रिटेन
तोगोलैण्ड	फ्रान्स
पश्चिमी सामोआ	न्यूजीलैण्ड
सोमालीलैण्ड	इटली (१० वर्षोंके लिए, इसके बाद
इटलीका पुराना उपनिवेश	सोमालीलैण्ड स्वतन्त्र हो जायगा।)
लीबिया अब स्वतंत्र हो गया है।	

पहलेकी व्यवस्थाकी तुलनामें प्रन्यास व्यवस्था कुछ अर्थोंमें पीछे ले जानेवाली और कुछ अर्थोंमें प्रगतिशील व्यवस्था है। राष्ट्र संघकी व्यवस्थामें एक निश्चित हिदायत यह थी कि 'अ' और 'ब' श्रेणीके 'मैन्डेट्स्' में खुले द्वारकी नीति कायम रखी जायगी। यह भी आदेश था कि किसी प्रकारकी स्थानीय किलेबन्दी या विदेशोंमें सेवा करनेके लिए देशी सेनाओंकी भर्ती नहीं की जायगी। ये पाबन्दियाँ संयुक्त राष्ट्र संघ

के घोषणापत्र मे नही है। प्रगतिशील बात यह है कि प्रन्यास परिषद सरकारी प्रतिनिधियोकी संस्था है न कि स्वतन्त्र विशेषज्ञो की।

व्यावहारिक तौर पर साम्राज्यवाद कलामे कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नही हुआ। साम्राज्यवादी राष्ट्रोने कुछ समय तक तो अपने अधिकृत प्रदेशोके सम्बन्धमे रिपोर्ट या सूचनाए दी। अब वह ऐसा करनेमे आना-कानी करते है और समभेदी प्रश्नोका स्वागत नही करते। अमरिका तो प्रशान्तके अपने "सामरिक क्षेत्रो" का आणविक अस्त्रो के जीवन संहारक प्रयागोके लिए उपयागामे लाते समय अपनी बपौती ही समझता है। सुरक्षा परिषदकी स्वीकृतिसे ये क्षेत्र सैनिक अड्डे बना दिये गये है। श्री एफ० एल० शूमन लिखते है "कोई भी दूसरी शक्ति प्रन्यास व्यवस्थाको पुरानी आत्मसात् करने वाली व्यवस्थाके साथ एकरूप बनानेमे इतना आगे बढनेकी हिम्मत नही कर सका। पुरानी उपनिवेशवादी व्यवस्थामे यह प्रन्यास व्यवस्था किस सीमा तक अर्थपूर्ण परिवर्तन करनेवाली है, इसकी पर्याप्त टीका सुरक्षा परिषदकी यह स्वीकृति स्वय ही है।" (International Politics, पृष्ठ ३५२-५३—१९५३ का संस्करण)

व्यावहारिक तौर पर प्रन्यास व्यवस्थामे अनेक लाभ है। चूंकि प्रन्यास परिषदके आधे सदस्य गैर साम्राज्यवादी राज्योके प्रतिनिधि होते है इसलिए न्यास प्रदेशोका शासन करनेवाली शक्तियोको अपने हर कदमका औचित्य सिद्ध करना होता है। विश्वके जनमतकी तेज निगाहे इन देशो पर रहती है। न्यास प्रदेशोके व्यक्तियो और समुदाय। दोनोसे लिखित और मौखिक प्रमाण लिये जाते है। संयुक्त राष्ट्र संघके दौरा करने वाले प्रतिनिधि मण्डल न्यास प्रदेश जाते है, मौके पर जाकर स्वय वहाँ की परिस्थितियोका अध्ययन करते है और अपनी रिपोर्ट देते है। वार्षिक रिपोर्टो पर विस्तृत तौर पर विचार होता है। विभिन्न प्रदेशोकी प्रशासकीय रिपोर्टोकी परीक्षा करनेके बाद प्रन्यास परिषदने शासन करनेवाली सत्ताओको कई एक सुझाव दिये है, जैसे जीवनमे मानदण्डोका सुधार, ऊचे वेतन, शिक्षाकी सुविधाओका विस्तार और स्थानीय शासनमे मूलनिवासियोका अधिकाधिक प्रतिनिधित्व।

याचिकाए (Petitions) सन् १९५२ मे अपने ग्यारहवे अधिवेशनके समाप्त होते समय तक परिषद न्यास प्रदेशोसे प्राप्त एक हजारसे अधिक याचिकाओ और सूचनाओ पर विचार कर चुकी थी। यह याचिकाए राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक मामलोमे किये जानेवाले अन्यायोके विरुद्ध व्यक्तिगत शिकायतोसे लेकर सामूहिक विरोधो तक सभी प्रकारकी होती है। नागालैण्डके "इवा" लोगोका एकीकरण करने और सीमाओ का स्वशासनका अधिकार दिये जानेकी महत्त्वपूर्ण याचिकाओ पर परिषदने विचार किया है। भाषा सम्बन्धी और आर्थिक कठिनाइयो के कारण तथा अध्यापको और विद्यार्थियोकी कमीके कारण अफ्रीकाके न्यास प्रदेशो के लिए एक विश्वविद्यालय स्थापित करनेकी याचिकाको अस्वीकार करना पडा था।

याचिकाओकी संख्या इतनी अधिक बढ गयी है कि उन पर विचार करनेके लिए अब एक स्थायी समिति बना दी गई है।

७. वैधिक झगड़े (Legal Disputes)

जैसा ऊपर कहा जा चुका है अन्तर्राष्ट्रीय, न्यायालयके अधिकार क्षेत्र तीन प्रकार के है —

(१) स्वेच्छा मूलक—धारा ३६,

(२) वैकल्पिक धाराको स्वीकार करनेवाले राष्ट्रोके लिए वैकल्पिक, अनिवार्य और बाध्य अधिकार क्षेत्र (optional, compulsory and obligatory jurisdiction for those states which have acceded to the optional clause),

(३) परामर्श मूलक अधिकार क्षेत्र।

सन् १९४५ से अब तक न्यायालयने कई मामलोंका फैसला दिया है, पर स्थानकी कमीके कारण हम यहाँ केवल निम्नलिखित तीन मामलोका ही उल्लेख करेंगे

(१) **कॉर्फू चैनल का मामला** २ अक्तूबर १९४६, को अल्वानिया के क्षेत्रीय समुद्रमें बिछायी गयी सुरगोमे ब्रिटेनके जहाजोंका क्षति पहुँची और अँग्रेज नाविक घायल हुए। कुछ दिन बाद अल्वानियाके अधिकारियोंकी अनुमति लिये बिना अँग्रेजी बेडेने सागरकी सफाई का और सुरगोका पता लगा लिया। पता लगा लेनेके बाद ब्रिटेनने सुरक्षा परिषदमे शिकायत की कि इन सुरगाके लिए अल्बानिया जिम्मेदार है।

चूंकि परिषद किसी फैसले पर न पहुँच सकी, इसलिए मामला अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयके सामने रखा गया। न्यायालय ने सन् १९४९ मे फैसला दिया कि (अ) अल्वानियाका गणतत्र इन विस्फोटोके लिए जिम्मेदार है, (ब) अल्वानिया के क्षेत्रीय सागरमे जाकर ब्रिटेन ने अल्बानिया गणतत्रकी सम्प्रभुता भग नही की और न दुघटनाके बाद उस सागरकी सफाई करके ही ब्रिटेन ने अल्बानिया की सम्प्रभुता भग की और (स) अल्बानिया ब्रिटेनको ८,४३,९४७ पौड हर्जानेके रूपमे दे।

(२) **आंग्ल-ईरानी तेल कम्पनीका मामला (१९५२)** जब डा० मोसद्दिक के शासनमे ईरान ने अपने तेल खानोका राष्ट्रीयकरण कर दिया तब ब्रिटेन और आंग्ल ईरानी तेल कम्पनीने अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयमे प्रार्थना की कि जब तक मामले का फैसला न हो जाय तब तक ईरान मे उनके अधिकारोंका सुरक्षित रखनेके लिए अस्थायी कारवाई की जाय।

इसी बीच ईरान ने आंग्ल-ईरानी तेल कम्पनिया पर अधिकार कर लेनेका आदेश दे दिया। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयने अपने ५ जुलाई १९५१, के निर्णयमे अँग्रेज-सरकारकी इस प्राथनाका मान लिया कि ईरान के तेल झगडेको पूर्वस्थितिमे ही रहने दिया जाय। न्यायालयके बहुमतने अपने निर्णयमे दानो सरकारोंका आदेश दिया कि वे ऐसा कोई काम न करे जिससे तेलके स्वतत्र प्रवाहमें कोई बाधा पड़े।

ब्रिटेन और आंग्ल-ईरानी तेल कम्पनीको उसी प्रकार तेल मिलता रहे जिस प्रकार १ मई, १९५१, के पूर्व मिलता था जब ईरान ने तेलका राष्ट्रीयकरण किया था।

न्यायालयने तेल उद्योग चालू रखनेके लिए एक निरीक्षक बोर्ड तैनात किये जाने का सुझाव दिया जिसमें दो दो सदस्य ब्रिटेन व ईरान के हों और पाँचवाँ सदस्य किसी ऐसे देशका प्रतिनिधि हो जिसे ब्रिटेन व ईरान आपसमें तय करें। ईरान की सरकार ने इस सुझावको यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि यह व्यादेश (injunction order) के समान है।

तब १९ अक्तूबर, १९५१ को ब्रिटेन ने मामला सुरक्षा परिषदके सामने पेश किया। परिषद तब तक के लिए स्थगित हो गयी जब तक अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय यह फैसला न कर दे कि उसे इस विवादग्रस्त मामले पर विचार करनेका अधिकार है या नहीं।

न्यायालयने यह फैसला दिया कि वह ब्रिटेन के इस अभियोगको नहीं मान सकता कि ईरान ने आंग्ल-ईरानी तेल कम्पनीकी ५० करोड़ पौंडकी सम्पत्तिका राष्ट्रीयकरण करके अन्तर्राष्ट्रीय विधिको भंग किया है और इसीलिए न्यायालयको आंग्ल-ईरानी तलके झगड़े पर विचार करनेका अधिकार नहीं है। दूसरे शब्दोंमें इस उद्योगके राष्ट्रीयकरणको ईरानके आन्तरिक अधिकार क्षेत्रका मामला माना गया।

(३) **दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीकाकी अन्तर्राष्ट्रीय स्थितिका मामला** आम सभाके पहले अधिवेशनमें ही दक्षिणी अफ्रीका ने यह दावा किया कि दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका के समाज्ञापित प्रदेश (mandate) को जिस पर वह अब तक एक समाज्ञापी की तरह शासन करता रहा था, अपनेमें मिला लेनेका उसे अधिकार है। आम सभा दक्षिणी अफ्रीका के तर्कोंको माननेके लिए तैयार नहीं थी। इसलिए निम्नलिखित दो महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर उसने न्यायालयसे सलाह माँगी —

(अ) दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका के समाज्ञापित प्रदेशके प्रति दक्षिणी अफ्रीका के क्या अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्व हैं?

(ब) क्या दक्षिणी अफ्रीका को दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका को अपनेमें मिला लेने का कोई वैधिक अधिकार है?

११ जुलाई, १९५०, को न्यायालयने निर्णय दिया कि दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका अब भी एक अन्तर्राष्ट्रीय समाज्ञा ही है और दक्षिणी अफ्रीका को उसकी अन्तर्राष्ट्रीय स्थितिमें किसी प्रकारका परिवर्तन करनेका अधिकार नहीं है। न्यायालय ने यह भी फैसला दिया कि समाज्ञा की शर्तोंमें ऐसी कोई बात नहीं है कि दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका अपना भू-प्रदेश दक्षिणी अफ्रीकाको दे या अपनी सम्प्रभुता उसको हस्तान्तरित करे। दक्षिणी अफ्रीका को जो एक मात्र काम सौंपा गया था वह यह था कि दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका के निवासियोंकी ओर से उन्हींके कल्याण एवं उत्थानके उद्देश्यसे उस प्रदेशका शासन सँभालें।

जब दक्षिणी अफ्रीका की सरकारने यह तर्क रखा कि चूंकि राष्ट्र संघका अस्तित्व ही समाप्त हो गया है, इसलिए समाज्ञा भी समाप्त हो गयी। तब न्यायालयने बिल्कुल ठीक उत्तर दिया कि यदि समाज्ञा समाप्त हो गयी है तो उस पर दक्षिणी अफ्रीका की अधिकार-सत्ता भी समाप्त हो गयी है।

रूस, बेल्जियम और चिनी के प्रतिनिधि न्यायाधीशो द्वारा व्यक्त न्यायालयका अल्प मत इस पक्षम था कि दक्षिण अफ्रीकाको वैधिक तौर पर मजबूर किया जाना चाहिए कि वह समाज्ञापित प्रदेशको संयुक्त राष्ट्र संघकी प्रन्यास व्यवस्थाको सौंप दे क्योंकि शेष सभी समाज्ञापी शक्तियोंने समाज्ञा व्यवस्थाको प्रन्यास व्यवस्थामें परिवर्तित करना स्वीकार कर लिया है।

संयुक्त राष्ट्र संघ और विश्व सरकार
(The United Nations and World Government)

समय-समय पर लोग एक ऐसी विश्व सरकारका स्वप्न देखते रहे है जो राष्ट्रीय राज्योंका स्थानीय सरकारोंके स्तर पर उतार दे। ऐसे लोगोंमे विश्व विजेता और साम्राज्य निर्माता भी रहे है। पर जिन लोगोंका दृष्टिकोण प्रजातन्त्रवादी है और जिनके हृदयमे राष्ट्रीय अधिकारों तथा राष्ट्रीय विरासतके प्रति कुछ सम्मान है वे लोग एक विश्व संघका सपना देखते रहे है। यदि १८वी शताब्दीमे नैपोलियन की चल पाती तो उसने कमसे कम योरोप भरके लिए अवश्य ही एकात्मक सरकार कायम कर दी होती। हिटलर ने भी इसी दिशामे कार्य किया।

लोकतन्त्रवादी दृष्टिकोणमे इस समस्या पर विचार करने वालोमे १९वी शताब्दी के अंग्रेज कवि श्री अल्फ्रेड टेनिसन का नाम लिया जा सकता है। उन्होंने "मानव जातिकी एक संसद और एक विश्व संघ" की कल्पना की थी। हमारे युगके एक दूसरे अंग्रेज श्री एच० जी० वेल्स भी विश्वको एक इकाई मानकर सोचने और लिखते थे।

राजनीतिक तौर पर संसारको एक सूत्रमे बांधनेकी यह उत्कंठा अपेक्षाकृत नयी है। द्वितीय विश्व युद्धके पहले स्पेन के श्री मदारियागा ने विश्व संघके पक्षमे लिखा था। अन्य अनेक अमेरिकियों की भांति इस क्षेत्रके एक अमेरिकी अग्रदूत श्री क्लेरेन्स स्ट्राट ने अमेरिकी संघवादका सहारा लेकर पश्चिमी लोकतन्त्रवादी राष्ट्रो के एक संघ (Federal Union) का समर्थन किया था।

युद्ध समाप्त होनेके बादसे विश्व सरकारमे लोगोंकी रुचि बहुत बढ़ गई है। संयुक्त राष्ट्र संघके राज्य-पत्र (charter) की स्याही सूखने भी न पायी थी कि आलोचकोंने यह कहना शुरू कर दिया कि संयुक्त राष्ट्र संघ शान्ति और सुरक्षाकी अन्तिम समस्याओंको हल करनेमे वीटो की व्यवस्था होनेके कारण खासतौर पर असमर्थ है। राष्ट्रीय सम्प्रभुताके सिद्धान्तको बार-बार इस मामलेमें बाधक बताया

जाता है और यह तर्क दिया जाता है कि जब तक राष्ट्रीय सम्प्रभुताका नियंत्रण नही कर लिया जाता तब तक किसी प्रकारकी भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था असम्भव है। ध्यान देनेकी एक बात यह है कि किसी न किसी प्रकारकी विश्व सरकारके प्रति जो उत्साह है उसका कमसे कम एक अंश उस निराशाकी भावनासे पैदा हुआ है जिसका कारण संयुक्त राष्ट्रकी कारवाइयोमे रूस का नकारात्मक या उत्तेजक रवैया रहा है। इसलिए यह कहना अनुचित न होगा कि विश्व सरकारके प्रति जो धार्मिक उत्साह दिखाई देता है वह कभी-कभी अपने भीतर रूस विरोधी भावनाको छिपाये रखता है।

विश्व सरकारकी सफलताके लिए यह जरूरी है कि लोगोमे विश्व समाजकी प्रबुद्ध चेतना और भावना हो। इसका मतलब यह नही है कि पहले एक पूर्ण विश्व समाजकी स्थापना हो जाय तभी विश्व सरकार सन्तोष-जनक ढगसे कार्य कर सकती है। दोनो एक दूसरेकी सहायता करेंगे ही। पर एक विश्व समाजकी स्थापनाकी दिशामे पहले कुछ प्रारम्भिक कदम उठाये जाने चाहिए तभी सशंकित राष्ट्र और व्यक्ति विश्व सरकारके हाथोमे अपना भविष्य सौपनेके लिए तैयार होगे। आज दिन ससारमे एक विश्व समाजकी कोई प्रबुद्ध चेतना नही है। ससारके प्रभावशाली राष्ट्रो मे उपनिवेशवाद और साम्राज्यवादी शोषण तथा जातीय विभेदको दूर करनेका कोई सकल्प नही दिखाई देता। मानव अधिकारो तथा व्यक्तिके गौरवके प्रति सम्मानकी भावना अधिकाश रूपमे अभी तक स्वप्न ही है। पिछड़े हुए राष्ट्रोकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रगतिमे सहायता देनेकी इच्छा भी अधिक गम्भीर नही है। जहा कही ऐसी इच्छा दिखाई भी देती है वहा वह राजनीतिक और सामरिक कारणो से दूषित है।

प्रसिद्ध अमेरिकी विचारक श्री राइनहोल्ड नाइबूर (Reinhold Neibuhr) का कहना है कि विश्व सरकारके लिए विश्व समाज अत्यन्त आवश्यक है। उनका यह कथन बिल्कुल सही है कि विश्व समाजकी स्थापना वैधिक, सावैधानिक और सरकारी साधनो द्वारा नही की जा सकती। उन्हीके शब्दोमे, "समाज पर दबाव डालकर उसमे मौलिक व्यवस्था कायम नही की जा सकती। मौलिक व्यवस्था तो आन्तरिक सलाग (innate cohesion) से ही उत्पन्न हो सकती है।" अभी तक ससारमे 'समष्टि भावना' नही दिखाई देती।

विश्व समाजकी प्रबल भावनाके अभावमे विश्व सरकार आसानीसे अन्याचार और दमनका साधन बन जायगी और यथास्थितिको कायम रखनेका प्रयत्न करेगी। उसकी बादकी स्थिति पहलेकी स्थिति से भी बुरी ही होगी। कुछ वैधानिक परिवर्तन मात्र हो जानेसे मानव प्रकृतिमे यकायक कोई आश्चर्यजनक परिवर्तन नही हो सकता। यह आशा नही की जा सकती कि जो लोग विश्व सरकारका सचालन करेंगे वे उन लोगोसे बहुत अधिक अच्छे होगे जो आज संयुक्त राष्ट्र सघ अथवा राष्ट्रीय सरकारो का सचालन कर रहे हैं। अपने व्यक्तिगत, वर्गगत, जातीय, राष्ट्रीय अथवा सैद्धान्तिक स्वार्थोकी सिद्धिके लिए विश्व सरकारके सगठनके भीतर भी अपना घनिष्ठ गुट बना

लेना उनके लिए बहुत असम्भव होगा। 'जैसा हमारा ससार है और जो साधन हमे प्राप्त है उन्हीमे हमे काम करना होगा।"

विश्व सघमे मतदान स्पष्टत विश्वकी जनसख्याके आधार पर नही होगा। यदि जनसख्याको ही आधार माना जाय तो सयुक्त राज्य अमेरिकाको केवल ६ प्रतिशत ही वोट मिलेगे। यदि आर्थिक उत्पादनशीलताको आधार माना जाय तो ससारके २० प्रतिशतसे भी कम जनसमाजको ७५ से ८० प्रतिशत तक वोट मिल जायगे और तब शेष ससार इसे एक साम्राज्यवादी षडयत्र मान सकता है। साक्षरता, राजनीतिक परिपक्वता और आर्थिक विकासके पक्षमे कुछ अधिक प्रतिनिधित्व (weighted representation) उचित मालूम होता है। पर एक विश्व समाजकी भावनाके अभावमे इस प्रकारके विचारोके पीछे स्वार्थपरताको छिपाया जा सकता है। विश्व समाजकी प्रबल भावनाके अभावमे विश्व पुलिस दल अत्याचारी हो सकता है। हमे यह स्मरण रखना चाहिए कि लोकतन्त्रके कन्धो पर चढकर शक्ति पानेके बाद ही हिटलर ने लोकतत्रका विनाश किया था। भावी अत्याचारी अथवा असीमित अहकार तथा महत्वाकाक्षावाले व्यक्ति ऊपरसे दिखावेके तौर पर लोकतान्त्रिक पद्धतियोसे काम करते हुए भी एक विश्व सरकारके साथ वही कर सकते हैं जो हिटलर ने लोकतन्त्रके साथ किया था।

विश्व सरकारके समर्थक बडी आसानीसे यह कल्पना कर लेते है कि यदि रूस और उसके अनुगामी राज्य अलग भी रहे तो भी शेष ससार उनके साथ आ जायगा। पर आज भी यह स्पष्ट दिखाई देता है कि रूसी और आग्ल-अमेरिकी गुटके अलावा ऐसी शक्तियोका एक तीसरा गुट भी बन रहा है जिन्हे तटस्थ तथा सकोचशील और कभी-कभी अवसरवादी भी कहा जा सकता है। पूर्वी देशोमे अनेक लोग इस बातको समझने और माननेमे असमर्थ है कि सभी नैतिक और राजनीतिक अच्छाइयाँ वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय वादविवादके एक गुट मे है और सभी बुराइयाँ दूसरे गुटमे। पूर्वके कुछ राष्ट्र जिन्हे साम्राज्यवादी चगुलसे हालमे छुटकारा मिल गया है फिरसे अपनेको उस शृखलामे बाँधनेके लिए उत्सुक नही है। रूसके बिना विश्व सरकारको उसकी आधी भी सफलता नही मिल सकती जितनी सयुक्त राज्य अमेरिकाके बिना राष्ट्र सघको मिली थी। रूस और तटस्थ राष्ट्रोके बिना विश्व सरकार एक भारी-भरकम असफलता ही सिद्ध होगी।

सयुक्त राष्ट्र सघके आलोचको ने उसे अपना औचित्य सिद्ध करनेके लिए पर्याप्त समय नही दिया। पौधेको बार-बार उखाड कर यह देखना कि उसकी जडे कितनी जम चुकी है, उसको पनपने देनेका बहुत अच्छा तरीका नही है। सयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार १६० वर्षोसे अधिक पुरानी है। फिर भी वहाँकी सीनेटने १९४९ तकमे नागरिक अधिकार योजनाके सम्बन्धमे अनावश्यक बाधा डाली है। ऐसी हालतमे जो काम सयुक्त राज्य अमेरिका १६० वर्षोमे नही कर सका उसे सयुक्त राष्ट्र सघ द्वारा १० वर्षोमे पूरा किये जानेकी आशा कोई क्यों करे।

सयुक्त राष्ट्र-सघ द्वारा विश्व-सरकार
(World Government Via the United Nations)

इसी शीर्षकमे लिखते हुए श्री क्लाक एम० आइचैलबर्गर[१] कहते है कि विश्व सरकारकी आवश्यकता पर सभी लोग किसी न किसी हद तक सहमत है। लोगोमे मतभेद समय, स्वरूप, और मात्राके सम्बन्धमे है। सयुक्त राष्ट्र सघ राजनीतिक सुरक्षा, आर्थिक विकास और मानव अधिकारोकी गारण्टी देकर इस दिशामे कदम उठा चुका है। इसलिए श्री आइचैलबर्गर की रायमे सयुक्त राष्ट्र सघके राज्यपत्र पर पुनर्विचार करनेका अभी उपयुक्त समय नही है। उनके कुछ तर्क निम्नलिखित है —

(१) किसी भी अच्छी सरकारके लिए यह जरूरी है कि वह सामान्य हितो और आकाक्षाओ पर आधारित हो। आज हमे सयुक्त राष्ट्र सघमे विचारोकी बढती हुई एकता दिखाई देती है। यही विश्व सरकारका प्रारम्भ है। एशिया निवासी अधिकस अधिक सख्यामे सयुक्त राष्ट्र सघकी परिषदोमे आ रहे हैं जो विश्व समाजकी स्थापनामे व्यावहारिक शिक्षा दे रही है। श्री आइचैलबर्गर का विश्वास है कि ऐसे सम्बन्धोसे जिनके परिणामस्वरूप पारस्परिक विश्वास और भरोसा पैदा हो सके, सयुक्त राष्ट्र सघ क्रमश एक विश्व सरकारके रूपमे विकसित हो सकता है। उन्हीके शब्दोमे "विश्व सरकारका उदय हो चुका है और सयुक्त राष्ट्रके माध्यमसे उसका विकास होना ही रहेगा क्योकि लोग उसे विकसित करनेके लिए उत्सुक है।"

(२) सयुक्त राष्ट्र सघका राज्यपत्र (charter) लचीला है और इसमे विकास की गुजाइश है। वह एक विकासशील आलेख है और इसलिए यह सम्भव है कि उसकी कुछ धाराओकी उदार टीका की जाय जैसा कि सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयोके सम्बन्धमे किया जाता है। सैनफ्रान्सिस्को सम्मेलनके समय शायद ही कोई व्यक्ति अणुशक्तिकी बात जानता रहा हो फिर भी जब वह शक्ति एक तथ्य बन गई तब उसके नियत्रणकी भी व्यवस्था की गई, यद्यपि रूसने उसे स्वीकार नही किया है। इसी प्रकार श्री बर्नाडिट की दुर्भाग्यपूर्ण हत्याके बाद सयुक्त राष्ट्र सघके महामत्री को यह अधिकार दिया गया कि वह सयुक्त राष्ट्र सघका एक रक्षक दल रखे जो सयुक्त राष्ट्र सघकी वर्दी पहने और उसके झण्डेके नीचे चले। यदि सयुक्त राष्ट्र सघका कोई प्रतिनिधि किसी देशकी सीमाके भीतर उस देशकी सरकारकी असावधानीसे या उसकी गुप्त सहमतिसे मारा जाता है या घायल किया जाता है तो सयुक्त राष्ट्र सघ उस देश पर क्षति पूर्तिका दावा कर सकता है। सयुक्त राष्ट्र सघ एक शुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस दल कायम कर सकता है। आम सभाकी सिफारिशोको अधिकाधिक अधिकार शक्ति दी जा रही है और उसके प्रस्तावोको लगातार अधिकाधिक अधिकार-सत्ता प्राप्त होती जा रही है। विवादो और सघर्षोमे मध्यस्थता तथा समझौता करानेके लिए अधिकाधिक

---

[१] *The Annals of the American Academy of Social and Political Sciences, July, 1949*

राष्ट्र सघीय प्रतिनिधि-मण्डल कायम किये जा रहे है। इन सब बातोंसे हमें श्री आइचैलबर्गर के साथ विश्वास करना होता है कि व्यवस्थापिका और कार्यपालिका के साधनोंसे नहीं बल्कि प्रशासकीय माध्यमसे विश्व सरकारकी स्थापना हो सकती है।

कोरियाई युद्धके बादसे सयुक्त राष्ट्र सघका निरन्तर बढ़ती हुई नैतिक अधिकार सत्ताको कुछ धक्का लगा है। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि सुरक्षा परिषद द्वारा २७ जून, १९५०, को उत्तरी कोरियाके सम्बन्धमे की गयी तात्कालिक कार्रवाईने सयुक्त राष्ट्र सघकी प्रतिष्ठा कायम रखी है। फिर भी यह एक खेदजनक बात है कि उस शान्ति मूलक कार्यकी बहुत कुछ उपेक्षा की गयी है जो सयुक्त राष्ट्र सघके राज्य-पत्रके अनुसार सघका प्रधान उद्देश्य था। सयुक्त राष्ट्र सघको किसी राष्ट्रका या कुछ राष्ट्रोंके एक गुटका सुविधाजनक चिट्ठीरसा बना देना उसे शक्तिशाली बनानेका प्रयास नहीं है।

फिर भी जैसा कि श्री आइचैलबर्गर कहते है सयुक्त राष्ट्र सघ दूसरा राष्ट्र सघ नही है। वह उत्तरोत्तर सम्प्रभु संस्था बनता जा रहा है। बहुत समय नहीं बीता जब कैलिफोर्नियामे एक न्यायाधीशने यह फैसला दिया था कि सयुक्त राष्ट्र सघके राज्यपत्रको और मानव अधिकार सम्बन्धी उसकी घोषणाको, जिसे सयुक्त राज्य अमेरिकाकी सीनेटने स्वीकार कर लिया है, अमेरिकी राज्य विधि पर प्राथमिकता प्राप्त है। यदि इस निर्णयको उच्चतर न्यायालय स्वीकार करले तो सम्प्रभुता सम्बन्धी परम्परागत धारणाओंमे बहुत बड़ा सशोधन हो जायगा।

यह दुबारा जोर देकर कहा जा सकता है कि सयुक्त राष्ट्र सघके राज्यपत्रमे वृद्धि और विकासकी पर्याप्त सम्भावनाएं है। यह विश्व सरकारका श्रीगणेश है। बुद्धिमानी इस बातमे है कि सयुक्त राष्ट्र सघको कुछ इस ढगसे चलाया जाय कि सघकी अन्तिम स्थिति विश्व सरकारकी प्रारम्भिक स्थिति हो अर्थात् सयुक्त राष्ट्र सघ ही अन्तमे विश्व सरकार बन जाय। हमारे कहनेका मतलब यह नहीं है कि हम विश्व सरकारका निर्माण अनन्त कालके लिए स्थगित करना चाहते है। हम तो यह चाहते है कि जितनी शीघ्र विश्व सरकारकी स्थापना हो सके उतना ही अच्छा है। हमारे कहनेका मतलब केवल इतना है कि केवल भावुकता और सावैधानिक परिवर्तनोंसे ही नये युगका प्रारम्भ नही हो जायगा। विश्व सरकार तो तब सफल हो सकेगी जब ससारके मनुष्योंमे एक विश्व समाजके प्रति प्रबल निष्ठा उत्पन्न होगी। इसका अर्थ यह हुआ कि पहले मनुष्योंके चिन्तनमे गहरा नैतिक और आध्यात्मिक परिवर्तन हो तब विश्व सरकार बन सकती है। यदि पहले न हो तो साथ ही साथ होना तो लाजमी है। विश्व सघवादी एक सरल मार्ग खोजते है। श्री आइचैलबर्गर के अनुसार, यदि उन्हे अपने प्रयत्नोंको सफल बनाना है तो उन्हे अपनेको पलायन-वादिता (escapism) से बचाना चाहिए। वह जड़ोंकी उपेक्षा कर, फलोंकी कामना करना सिखाते हैं। दूसरी ओर सर्वोच्च राष्ट्रीय सम्प्रभुताकी धारणाको दूर कर उन्होंने एक महान् कार्य किया है। उन्हे तथा अन्य लोगोंको दूसरा कदम यह उठाना

है कि विश्व समाजको वास्तविकताका रूप दें और सशंकित लोगोंका विश्वास प्राप्त करनेके लिए अपने-अपने देशके सद्आशयोंको सिद्ध करें। संविधान द्वारा संसारकी रक्षा नहीं की जा सकती। संसारकी रक्षा ऐसे स्त्री और पुरुषों द्वारा हो सकती है जो समूची मनुष्य जातिके प्रति उत्कट निष्ठा रखते हों और अपनी सरकारों पर इस बातका दबाव डाल सकते हों कि वह अपने सभी नागरिकोंके साथ समान व्यवहार करें और परमात्माकी निम्नतम सृष्टिके प्रति भी अपनी जिम्मेदारियोंको पूरा करें।

Select Readings

Bentwich, N., and Martin, A.—*A Commentary on the Charter of the United Nations*
Chase, E. P.—*The United Nations in Action*
Eagleton, C.—*International Government*
Evatt, H. V.—*The United Nations*
Everyman's United Nations
Goodrich, L. M., and Hambro, E.—*Charter of the United Nations*
Hall, H. D.—*Mandates, Dependencies, and Trusteeships*
Hasluck, P.—*The Workshop of Security*
Leonard, Harry—*International Organization*
Manders, F.—*Foundation of Modern World Society*
Meyer, Cord—*Peace or Anarchy*
Reeves, Emery—*The Anatomy of Peace*
Schwarzenberger, Georg—*Power Politics*
United Nations—*Handbook of the United Nations and Specialised Agencies*
United Nations—*Yearbook of the United Nations*
United Nations—*These Rights and Freedoms*

Periodicals

India Quarterly
International Organization
Documents of International Organization
United Nations Bulletin
Foreign Affairs
Foreign Policy Reports
Headline Series
International Conciliation
World Politics
International Affairs
World Report

समाजवादी और साम्यवादी विचारधाराका विकास

(The Evolution of Socialistic and Communistic Thought)

"औद्योगिक समाजका जो विश्लेषण मार्क्स ने किया है, उससे हम सहमत हों या न हों, यह तो कहा ही जा सकता है कि मार्क्स का अध्ययन—जैसे अध्ययनके वे अधिकारी है—तब तक नही हो सकता जब तक यह न स्वीकार कर लिया जाय कि शायद रिकार्डो का छोडकर, अर्थ-विज्ञानके समूचे इतिहासमे, मार्क्स से बढकर मौलिक, शक्तिमान् और तीक्ष्ण बुद्धि मनुष्य उत्पन्न नही हुआ।" प्रो० ई० आर० ए० सेलिगमैन अपनी पुस्तक 'इकानॉमिक इण्टरप्रेटेशन ऑफ हिस्ट्री' (इतिहासकी आर्थिक व्याख्या) मे, पृष्ठ ५६।

आधुनिक समाजवाद और साम्यवाद दोनोकी उत्पत्ति एक ही मूलस्रोत कार्ल मार्क्स से हुई है। मार्क्स १८१८ से १८८३ तक जीवित रहे। उनके माता-पिता यहूदी-शास्त्रियों (Jewish rabbis) के वंशज थे। सामाजिक न्यायकी प्रबल इच्छाके लिए यहूदी हमेशासे प्रसिद्ध हैं। मार्क्स के पिता प्राटेस्टेण्ट ईसाई हो गये थे। मार्क्स बुरे दिन देख चुके थे और लगता है कि सामाजिक प्रश्नोसे सम्बन्धित उनके विचारो पर इन बुरे दिनोका गहरा असर पडा। जीवनके प्रारम्भ ही मे उनमे और श्री ऐंजेल्स मे मित्रता हो गई थी। इस मित्रताके कारण दोनोने राजनीतिक क्षेत्रमे तथा अनुसन्धान एवं पुस्तकें लिखनेमे मिलकर काम किया। अपने क्रान्तिवादी कार्योके कारण मार्क्स को अपने जीवनके अनेक वर्ष एक राजनीतिक निर्वासीके रूपमे जर्मनी, हालैण्ड और फ्रान्ससे बाहर बिताने पडे। उनका बहुत-सा समय लन्दनमे ब्रिटिश संग्रहालयमे बीता। अपने जीवन-कालमे वे योरोपीय मजदूर आन्दोलनोके सर्वमान्य नेता माने जाते थे। आज भी वह आधुनिक समाजवादके पिता माने जाते हैं। उन्होने ऐंजेल्स के साथ सन् १८४८ मे कम्युनिस्ट पार्टीका घोषणापत्र प्रकाशित किया। उनका महान् ऐतिहासिक ग्रन्थ "डास कैपिटल" १८६७ मे प्रकाशित हुआ था।

हीगेल और फ्यारबाख (१८०४–७२) का मार्क्स की विचारधारा पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पडा। मार्क्स ने हीगेल से द्वन्द्ववाद (dialectic) की धारणा ली। द्वन्द्ववादका अर्थ है कि दो विरोधी तत्वोकी अन्तर्क्रियाके परिणामस्वरूप प्रगति होती है। हीगेल के अनुसार इतिहास द्वन्द्वात्मक मार्गमे अपने पूर्व निश्चित लक्ष्यकी ओर बढता है। हीगेल ने द्वन्द्ववादकी शिक्षा विचारोके क्षेत्रमे दी थी, पर मार्क्स ने उसका प्रयोग कार्य-

समाजवादका लक्ष्य "भूमि और औद्योगिक पूंजीको व्यक्तिगत स्वामित्वसे मुक्त करके सार्वजनिक हितके लिए समाजके अधिकारमें लाकर समाजका पुनस्संगठन करना है।" न तो भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व रहेगा और न लगान ही रहेगा। उद्योगकी पूंजी, जैसे-जैसे समाज उसका उपभोग करने योग्य होता जायगा, हस्तान्तरित की जायगी।

इस प्रकारसे समाजवादके प्रधान समर्थक सिडनी तथा बीट्रिस वेब, ग्रैहम वैलेस, ऐनीबसेण्ट, ई० आर० पीज, एच० जी० वेल्स, जी० बी० शा० और जी० डी० एच० कोल हुए हैं। इन्होंने बहुत सी छोटी-छोटी पुस्तिकाएं रची हैं और लेख लिखे हैं और इनके द्वारा जनताकी सामाजिक चेतनाको जाग्रत करनेका यत्न किया है। जी० बी० शा ने फेबियन लेखोंका सम्पादन किया और इन लेखोंको १८८८ में सर्वप्रथम भाषणोंके रूपमें जनताके सामने प्रकाशित किया। हैलोवल लिखते हैं कि सिडनी वेब लोकतन्त्रीय, क्रमिक, शान्तिपूर्ण और वैधिक तरीकोंके द्वारा समाजवादी समाजके उदयकी कल्पना करते थे। एक महत्त्वपूर्ण वाक्यांशके लिए हम फेबियनोंके ऋणी हैं। वह है—"समाजवादकी अनिवार्यता (the inevitability of socialism)"।

मार्क्सवाद और फेबियनवादमें अन्तर मार्क्सवाद अधिकांश श्रमिक सिद्धान्त और वर्गयुद्ध पर आधारित है। पर फेबियनवादका आधार है राजस्व सिद्धान्त (Theory of Rent) का विस्तार और राज्यकी सामाजिक चेतनाका विकास। मार्क्सवाद क्रान्तिवादी है, फेबियनवाद विकासवादी।

फेबियनों द्वारा फेबियनवादका परित्याग (Defection in Fabians' ranks) फेबियनोंकी संस्था कभी बड़ी नहीं रही। वह अधिकतर मेधावियों (intellectuals) तक ही सीमित रहा है। सन् १९४३ में वह अपनी लोकप्रियता के शिखर पर था तब भी इसके केवल ३,६०० सदस्य थे। १९२० के बादके १० वर्षों के अनेक विवादोंके समय, बहुत-से युवा मेधावी इसे छोड़कर श्रेणी समाजवाद (guild socialism) में शामिल हो गये। वेब-दम्पती की सहानुभूति रूसमें होनेवाले प्रयोगके प्रति बढ़ी और उन्होंने एक महान् ग्रन्थ लिखा जिसका नाम है 'सोवियत कम्यूनिज्म—ए न्यू सिविलाइजेशन।" कोल ने १९४२ में फेबियनवाद की निम्नलिखित शब्दोंमें फिर से व्याख्या की—

"हमारा विश्वास है कि समाजवादी आन्दोलनमें कहीं एक ऐसी संस्थाकी आवश्यकता है जो नवीन विचारोंको सोचने और उनका प्रचार करनेके लिए बिल्कुल स्वतन्त्र हो। भले ही ऐसे विचार समाजवादी परम्पराके अनुसार शास्त्र-सम्मत न हों। समाजवाद कुछ निश्चित नियमोंका समूह नहीं है जिसे समय या स्थानका विचार किये बिना ही प्रयोगमें लाया जाय।" आगे कोल लिखते हैं 'फेबियन समाज का संगठन विचार-विनिमयके लिए है न कि चुनाव लड़नेके लिए। इस कामको उसने अन्य संस्थाओंके लिए छोड़ दिया है, फेबियनोंको अपने चुने हुए काम—लेखन और अनुसन्धानमें लगे रहना चाहिए पर चूंकि अब यह विस्तृत कार्य (समाजवादी

दलमे समाजवादी प्रचार)को करनेवाला कोई नही है, इसलिए फेबियन पुस्तक लेखन कार्य और शोध कार्य पूरे दल पर अपना वांछित प्रभाव डालनेमे असमर्थ है। यदि अन्य कोई इस कार्यका नही करता है तो फेबियनोंका ही सामने आना होगा और समाजवादका प्रचार करनेका बीडा उठाना पडेगा।"[1]

भारतके लिए फेबियनवादकी उपयुक्तता (Applicability of Fabianism to India) हमारे अहिंसावादी होनके कारण फेबियनवाद और उससे उत्पन्न मजदूर दलका कार्यक्रम, किसी अन्य प्रकारके समाजवादकी अपेक्षा हमारे स्वभाव और हमारी आवश्यकताओके अधिक अनुकूल है। हम पूजीवादी समाजका समाजवादी समाजमे परिवर्तन शान्तिपूर्ण ढगसे करना चाहते है। जैसे-जैसे हमारे ज्ञान, अनुभव और चरित्रका विकास होता जायगा, वैसे वैसे अधिकाधिक मात्रामे व्यक्तिगत क्षेत्रका स्थान सार्वजनिक क्षेत्र लेता जायगा, और उत्पादनके सभी साधन समाजके स्वामित्वमे आ जायगे। सामाजिक न्याय और हिंसामे किसी प्रकारकी भी समानता नही है।

ब्रिटेनका मजदूर दल (The British Labour Party) बहुत थोडेसे रूपमे प्रारम्भ होकर ब्रिटेनके मजदूर दलने पिछले पचास वर्षोके अन्दर बहुत प्रगति की है। यह दल तीन बार १९२४ मे, १९२९-३१ मे और १९४५-५१ मे सत्तारूढ़ रह चुका है। पहले दो अवसरो पर अपना पूर्ण बहुमत न होनेके कारण इस दलको दूसरे दलोकी दया और सद्भावना पर निर्भर रहना पडा। किन्तु १९४५-५१ की अवधिमे यह दल न केवल पदारूढ़ रहा बल्कि इसके हाथोमे शक्ति भी रही और इसने समाजवादकी दिशामे अनेक परिवर्तन किये और अंग्रेजी साम्राज्यवादकी जजीरें ढीली करके उसे एक लोकतन्त्रीय राष्ट्रमण्डलमे परिणत करनेकी दिशामे भी कदम उठाया।

प्रारम्भमे ही मजदूर दलकी शक्ति उसके मजदूर-सघोमे और उसकी नरम नीति मे ही रही है। सन् १८८९ मे कोयलेकी खानमे काम करनेवाले स्कॉच महोदय श्री किअर हार्डी ने एक स्कॉटिश मजदूर दलकी स्थापना की थी। उन्होने ही १८९३ मे अन्य व्यक्तियोके साथ एक स्वतत्र मजदूर दलकी स्थापना की जिनके प्रारम्भिक सदस्योमे से श्री रैमजे मैकडोनल्ड भी थे, जो १९२४ मे प्रथम मजदूर दलीय प्रधान मंत्री हुए। वह एक बार फिर १९२९-३१ मे प्रधान मत्री हुए, पर इसके बाद उन्होने मजदूर दल छोड दिया।

ट्रेड यूनियन कान्फ्रेन्सकी ससदीय कमेटीका नाम १९०६ मे ब्रिटिश लेबर पार्टी रखा गया। यह दल व्यक्तियोंका दल होनेके बजाय मजदूर समुदायोंका एक सघ है। सही मानामे ब्रिटिश मजदूर दलका प्रारम्भ १९०६ के बाद ही हुआ। उसी वर्ष उसने पार्लमेण्टमे अपनी शक्तिसे ट्रेड डिस्प्यूट्स एक्ट पास कराया। इस कानूनने मजदूरो

---

[1] जी० डी० एच कोल फेबियन सोशियलिज्म, पृष्ठ १६४

को धरना देनेका अधिकार दिया और इस प्रकार होनेवाले हानिके कारण किये जाने वाले सामूहिक जुर्मानेको अवैध घोषित किया। अल्पमतमें होनेके कारण मजदूर दल पार्लमिण्टमें दूसरे सुधार न कर सका लेकिन इसने आयरिश स्वशासन विधेयक (Irish Home Rule Bill), मताधिकार विधेयक (Suffrage Bill) और वैल्श विस्थापना विधेयक (Welsh Disestablishment Bill) की तरफदारीमें उदार दलका साथ दिया।

प्रथम विश्व युद्धके पहले समाजवादकी आग आगे लगाये रखने पर भी मजदूर दलने अपने आपको समाजवादी घोषित नही किया था। सन् १९१८, मे उसने 'मजदूर और नवीन सामाजिक व्यवस्था' शीर्षक कार्यक्रम स्वीकार किया जो निम्नलिखित चार मौलिक सूत्रों पर आधारित था—

(१) सबके लिए न्यूनतम राष्ट्रीय आय।
(२) उद्योगका लोकतन्त्रीय नियन्त्रण।
(३) राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थामें क्रान्ति।
(४) अतिरिक्त सम्पत्तिका सार्वजनिक कल्याणके लिए उपयोग।

मजदूर दलने सन् १९२९ मे 'मजदूर और राष्ट्र' के नामसे प्रसिद्ध एक और घोषणापत्र प्रकाशित किया। इस घोषणापत्रमे मजदूर दलने कोयलेकी खानों, भूमि, यातायात और जीवन बीमाके समाजीकरण और बैंक आफ इग्लैण्ड (इग्लैण्डमे रिजर्व बैंक आफ इण्डियाके तुल्य) के राष्ट्रीयकरणका वादा किया। १९२९ में मजदूर दलको २८८ सीटें मिलीं और बहुमत होनेके लिए २० सीटोंकी कमी रह गई। अत इस अपनेको दो वर्ष तक शासनारूढ रखनेके लिए उदार दल पर निर्भर रहना पड़ा। अल्पमतमे होनेके कारण यह दल ससदमें बहुत अधिक समाजवादी विधि न प्रस्तुत कर सका।

श्री मैकडानल्ड और श्री स्नोडेन के रूढिवादी दल (Conservative) में शामिल हो जानेके बाद मजदूर दलके सामने विरोधी दल बननेके अतिरिक्त और कोई चारा न रह गया। द्वितीय विश्व युद्धके प्रारम्भमे सन् १९४० म मजदूर दलने अपना एक कार्यक्रम प्रकाशित किया जो 'मजदूर युद्ध और शान्ति' के नामसे प्रसिद्ध है। उसी वर्ष उसने चर्चिल के साथ सयुक्त मोर्चा बनाया और जब तक जर्मनीका विनास न हो गया तब तक मजदूर दल एक छोटे साझीदारके रूपमें पदारूढ रहा। जुलाई, सन् १९४५, के आम चुनावमे, हरक की आशाके विपरीत मजदूर दल अच्छे खासे बहुमत मे निर्वाचित हो गया और वह अपने कार्यक्रमका कुछ अश कार्यान्वित कर सका।

सन् १९४२ की अपनी काग्रेसमे मजदूर दलने निम्नलिखित बातो पर जोर दिया था—

"देशके मौलिक उद्योगो और सेवाओंका समाजीकरण तथा सामाजिक उपभोग की दृष्टिसे उत्पादनकी योजना बनाना, क्योंकि यही एक ऐसी न्यायसगत और समृद्ध आर्थिक व्यवस्थाकी स्थायी आधार-शिला है जिसमे राजनीतिक लोकतन्त्र

और व्यक्तिगत स्वाधीनताके साथ सभी नागरिकोंके लिए जीवनके एक न्यायसंगत मानदण्डकी गारंटी बैठाई जा सकती है।"

सन् १९४५ मे श्री क्लीमेण्ट ऐटली के नेतृत्वमे सत्तारूढ होनेके बाद मजदूर दल ने कोयले और इस्पातके उद्योगों, बैंक आफ इग्लैण्ड, नागरिक उड्डयन, विद्युत् पारेषण (power-transmission), दूर-संचार (tele communication), रेल और मोटर-बस परिवहन, लन्दन-परिवहन, जलमार्गों और गैस (इग्लैण्डमे गैसका अत्यधिक महत्त्व है। यह नलियो द्वारा घरोमे भेजी जाती है जहा यह उन्हे गर्म रखने और ईधनके काम आती है।) का राष्ट्रीयकरण कर दिया। रोटी (bread) और दूधके व्यवसायको आर्थिक सहायता दी गई। आवास योजनाओ (housing scheme), वृद्धावस्थामे पेन्शनकी व्यवस्था पर भी ध्यान दिया गया। राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्थाका २० प्रतिशत सार्वजनिक नियन्त्रणमे ले आया गया। राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा (national health service) की व्यवस्था मजदूर दलकी महानतम सफलताओमे से एक है।

मजदूर दलके शासनारूढ होनेके दिनोमे ही भारत, पाकिस्तान, बर्मा और लंका को स्वाधीनता मिली।

जबसे मजदूर दल सत्तारूढ नहीं रहा तबसे इधर कुछ दिनो दलके भीतर ही दक्षिणपथी और वामपथी गुटोमे तीव्र मतभेद रहा है। वामपथी अल्पमत है और उनके नेता श्री अन्यूरिन बेवन हैं। रूढिवादी दल जो इस समय सत्तारूढ है, मजदूर दल द्वारा किये कुछ कामोको नष्ट करनेकी कोशिश कर रहा है। इस्पातका राष्ट्रीय-करण समाप्त किया जा चुका है। अपने १९५६ के बजटमे राजकोष महामात्य (Chancellor of the Exchequer) श्री हैरोल्ड मैकमिलन (जो अब प्रधान मत्री है) ने रोटी और दूधके उद्योगोको दी जानेवाली सहायतामे कमी करनेका प्रस्ताव किया था।

ब्रिटेनका मजदूर दल शारीरिक और बौद्धिक काम करनेवाले दोनो ही प्रकारके मजदूरोको मान्यता देता है। वह लोकतन्त्र और न्यायके आधार पर समाजके समाज-वादी पुनर्निर्माणका समर्थक है। वह दक्षिणपन्थी और वामपन्थी दोनो ही प्रकारकी तानाशाहीको अस्वीकार करता है। इस दलके सदस्य अपनी नीति व अपने कार्यक्रम को 'सहमति द्वारा क्रान्ति' कहते है। 'उदारवाद' (Liberalism) और एकदलीयतन्त्र-वाद' (Totalitarianism) के बीच सघर्ष है। कुछ सदस्योका विश्वास है कि समाजवादकी सिद्धिके लिए कुछ स्वेच्छाचारी कदम उठाने पडेगे।

श्रेणी समाजवाद (Guild Socialism) इग्लैण्डके अतिवादी विचारकोमे कुछ समयके लिए श्रेणी समाजवादका फैशन रहा है। रॉका (Rockow) ने इसे "अग्रेजी फेबियनवाद और फ्रासीसी श्रमिक सघवादका बौद्धिक शिशु माना है"।

कन्टेम्पोरेरी पोलिटिकल थाट इन इग्लैण्ड, पृष्ठ १५०

हैलोवेल जो इसके प्रति अधिक कठोर है, लिखते है "श्रेणी समाजवाद फ्रांसीसी श्रमिक संघवादका दुर्बल मरगिल्ला रूपान्तर रहा है और है। मूलरूपमे यह एक शुद्ध अंग्रेजी सिद्धान्त है। कुछ लोग इसे श्रमिक संघवाद और समूहवाद (Collectivism) के बीचका विश्राम शिविर मानते है। सीधी कारवाई द्वारा राज्यका उन्मूलन करने मे यह श्रमिक संघवादसे सहमत नही है और न यह सभी उद्योगोका राज्य द्वारा नियन्त्रण ही चाहता है जैसा कि समूहवाद चाहता है, वह बीचका रास्ता अपनाता है। यह राज्यके ढाचेके भीतर ही उपभोक्ताओ और उत्पादकोंके संघ बनाना चाहता है। श्रेणी (Guild) की परिभाषा इस प्रकार की गई है—"अन्योन्याश्रित या अपनी इच्छासे एक दूसरे पर आश्रित लोगोंकी श्रेणी जो स्वय अपना शासन करती हो और जिसका सगठन समाजके एक विशेष कर्तव्यको जिम्मेदारीके साथ पूरा करनेके लिए हुआ हो।"

श्रेणी समाजवादके प्रधान समर्थक है—वस्तुत इसकी नीव डालनेवाले ए० जे० पेण्टी, 'न्यू एज', के सम्पादक ए० आर० आरेज, इस आन्दोलनके प्रधान कर्मठ एस० जी० हाबसन और जी० डी० एच० कोल जो इसमे सर्वाधिक प्रभावपूर्ण, विशद विचारक और प्रचारक है।

निम्नलिखित कारणोंसे श्रेणी-पद्धतिका उदय हुआ

(१) मजदूरीकी प्रथा और पूजीवादियोंकी मुनाफाखोरी पर समाजवादी प्रहार,

(२) जान रस्किन, टामस कार्लाइल और विलियम मोरिस जैसे साहित्यिक व्यक्तियोंका प्रभाव। इन सबने अति उत्पादनके विरुद्ध आन्दोलन किया था,

(३) राज्यके विरुद्ध फ्रान्सका श्रमिक संघवादी आन्दोलन;

(४) सुप्रसिद्ध चर्च मैन श्री फिगिस का प्रभाव जिन्होंने राज्यकी सम्प्रभुताकी कपोल-कल्पनाका भण्डाफोड किया और राजनीतिक अधिकार सत्ताको "एक संघ न कि अधिपति" (an association, not a lordship) बतलाया,

(५) व्यापारवाद या उद्योगवाद (functionalism) जिसके अनुसार सम्पत्ति को व्यापार या उद्योगबद्ध होना चाहिए और उस पर जो अधिकार हो वह उद्योगहीन लोगोंके हाथोसे हटकर काम करनेवालोंके हाथोमे चला जाना चाहिए।

श्रेणी समाजवादका कार्यक्रम इस कार्यक्रमके निम्नलिखित दो मुख्य अग है (१) मजदूरी प्रथाका उन्मूलन और (२) "राष्ट्रीय श्रेणियोंकी पद्धतिसे उद्योगके क्षेत्रमे स्वशासनकी स्थापना, यह राष्ट्रीय श्रेणी समाजके अन्य लोकतान्त्रिक सगठनोसे मिलकर काम करेगा।"[1]

---

[1] जोड द्वारा उद्धृत माडर्न पोलिटिकल थ्योरी, पृष्ठ ७५

श्रेणीवादी मार्क्सवादकी इस मागका समर्थन करते हैं कि मजदूरी प्रथाका उन्मूलन किया जाना चाहिए, यह प्रथा नैतिक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक और कलात्मक दृष्टियोंसे बुरी हैं। यह मजदूरोंमें दास भावना उत्पन्न करती है और उनकी सर्जक प्रवृति (creative instinct) को कुठित करती है। श्रेणीवादियोंका कहना है कि व्यक्तिको वेतन मनुष्य समझकर देना चाहिए न कि इस नाते कि उससे कितना श्रम प्राप्त हुआ है। समाजको उसे काम करते समय तथा बेकारीके समय, बीमारीके समय और उसके स्वस्थ रहते समय दोनो हालतोंमे वेतन देना चाहिए। इसके अतिरिक्त उत्पादनकी व्यवस्थाका नियमन मजदूरोंके साथ मिलकर किया जाना चाहिए।

जोड श्रेणी समाजवादको व्यावसायिक लोकतन्त्र कहते हैं। उद्योग पर बौद्धिक व शारीरिक दोनो ही प्रकारके काम करनेवालोका नियन्त्रण होना चाहिए। समाजमे शक्ति और उत्तरदायित्व किये गये कामोके अनुपातमे होना चाहिए।

व्यावसायिक प्रतिनिधित्व (Functional Representation) यह श्रेणी समाजवादका मूल मन्त्र है। यह दलील दी जाती है कि कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्तिका प्रतिनिधित्व नही कर सकता। श्रेणी-समाजवादियोका विश्वास है कि "यद्यपि एक व्यक्ति अपने पडोसियोका प्रतिनिधित्व नही कर सकता पर वह कुछ ऐसे उद्देश्योका प्रतिनिधित्व कर सकता है जो उसके और उसके पडोसियो दोनोके सामान्य हो।" यह व्यावसायिक प्रतिनिधित्व द्वारा ही सम्भव है। ऐसा प्रतिनिधित्व स्थानीय व राष्ट्रीय दोनो आधारो पर होगा। कर-आरोपण (taxation), प्रतिरक्षा (defence) और शिक्षा जैसे राष्ट्रीय मामलोका प्रतिनिधित्व एक राष्ट्रीय संस्था द्वारा होगा। स्थानीय संस्थाए गैस, बिजली, और पुलिस जैसे मामलोकी देख-भाल करेगी।

कारखानोकी निर्वाचित समितिया मजदूरी, कामके घण्टों और उत्पादनके परिमाण आदि प्रश्नोका निपटारा करेंगी। कारखाना समितियोके साथ मिलकर उपभोक्ता समितिया उत्पादन-व्यय, मूल्यो और उत्पादनकी सीमाके प्रश्नोका फैसला करेंगी।

श्रेणीवादियोका कहना है कि लोकतन्त्रको पहले आर्थिक क्षेत्रमे आना चाहिए, बादमे इसे राजनीतिक क्षेत्रमे लागू किया जाना चाहिए। आज तो इसका उल्टा होना दिखाई दे रहा है। श्रेणी-समाजवादके अनुसार आधुनिक औद्योगिक परिस्थितियाँ इतनी अस्त-व्यस्त और शोषणमूलक है कि उनको पहले सुधारे बिना सामाजिक जीवनके अन्य-क्षेत्रोमे कोई परिवर्तन सम्भव नही है।

श्रेणी-समाजवादके अन्तर्गत न केवल औद्योगिक श्रेणी होगी, बल्कि उपभोक्ता-श्रेणी नागरिकश्रेणी, और अन्य-फर्मों व जीविकाओकी श्रेणिया होगी। इन सबका सगठन स्थानीय, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय आधार पर होगा।

राज्यके स्थान पर कम्यून या स्वशासित समाजकी स्थापना होगी। इसके

कर्तव्य सीमित रहेंगे। उत्पादनके यंत्र श्रेणियोंको राज्यके न्यासधारी या ट्रस्टीके रूपमें सौंप दिये जायगे।

श्रेणी-समाजवादकी पद्धतिया (Methods of Guild Socialism) श्रमिक संघवादसे भिन्न श्रेणी समाजवाद विकासवादी पद्धतियों पर विश्वास करता है। पर उसे साथ ही साथ संसदीय कार्यक्रम सीमित विश्वास है। यह मजदूरोंका बहुत उपयोग करना चाहता है। 'आजके ट्रेड यूनियन कलकी श्रेणिया होंगी।" ये श्रेणिया सम्पत्तिशाली वर्गोंके हाथमें धीरे-धीरे शक्ति छीन लेती है। इस प्रसगमें वे श्रमिक संघवादसे भिन्न हैं जो सीधी कार्रवाई और आम हड़तालका रास्ता अपनाता है।

आलोचना (१) श्रेणी-समाजवादी मध्ययुगकी श्रेणी व्यवस्थाको आदर्श मानता है और उसकी उपासना करता है। (२) व्यवसायवादका अर्थ होगा समाज को छोटे-छोटे टुकड़ोंमें बाट देना। (३) श्रेणी-समाजवाद अव्यावहारिक है क्योंकि उत्पादकों और उपभोक्ताओंके बीच विभेदकी निश्चित रेखा खीच सकना सम्भव नही है और यदि यह विभेद स्पष्ट हो भी तो उपभोक्ताओं पर उत्पादकोंके हावी होने की सम्भावना है। (४) एक आर्थिक ससद राजनीतिक ससदका स्थान आसानीसे नहीं ले सकती। अधिकसे अधिक वह एक सलाहकार परिषदका कार्य कर सकती है।

गुण (Merits) ऊपर बताई गई कमजोरियोंके बावजूद उद्योगोंके सचालन में सरकारी दफ्तरशाही हस्तक्षेपमें अपरिणाम और लोकतन्त्रात्मक शासन, श्रमिकोंका सचालनमें योग और उद्योग तथा राजनीति दोनोंमें व्यावसायिक प्रतिनिधित्व इत्यादि बातोंके लाभ पर जनताका ध्यान केन्द्रित करके श्रेणी समाजवादने बहुत बड़ी सेवा की है।

लेनिन और लेनिनवाद लेनिन (१८७०–१९२४), १९१७ की रूसी क्रान्ति के विधाता और वर्तमान रूसी राष्ट्रके पिता थे। वे सिद्धान्तवादी भी थे और कर्मशील भी। यह १८९० ही में क्रान्तिकारी आन्दोलनमें सम्मिलित हो गये थे। उन्होंने मार्क्स और एंजेल्स का अध्ययन करनेमें अनेक वर्ष विदेशोंमें बिताये। परिस्थितियों के सुखद-सयोग-वश वह प्रथम विश्व-युद्धके दौरानमें जर्मन लोगों द्वारा स्वदेश लाये गये। उन्होंने इस अवसरका उपयोग जारशाही शासनको उखाड़ फेंकने और क्रान्ति करानेमें किया। नवम्बर, १९१७, से लेकर अपनी मृत्युपर्यन्त १९२४ तक वह सोवियत पार्टीके सर्वमान्य नेता रहे। उन्होंने मार्क्सवादका प्रयोग रूसी परिस्थितियों में बहुत ही बुद्धिमत्तासे किया, यद्यपि उन्होंने कुछ विशेष बातोंमें मार्क्सवादमें सशोधन भी किया। उन्होंने मार्क्सवादकी एक बहुत बड़ी सेवा यह की कि मजदूरोंमें क्रान्तिके लिए लगन फिरसे भर दी।

लेनिन द्वारा मार्क्सवादका सशोधन (१) यद्यपि मार्क्स ने यह कल्पना कर ली थी कि साम्राज्यवाद पूजीवादका अन्तिम रूप होगा पर लेनिन ने ही इस विचारको पूर्ण रूपसे विकसित किया। स्तालिन द्वारा दी गयी व्याख्याके अनुसार लेनिनवाद "साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रान्ति (Proletarian Revolution) के युगका

मार्क्सवाद है।" लेनिन ने यथा-सम्भव यह सिद्ध किया कि साम्राज्यवाद मरते हुए पूंजीवादका अन्तिम रूप है। एकाधिकृत पूंजी (monopoly capital) और वित्त पूंजी (finance capital) का अवश्यम्भावी परिणाम साम्राज्यवाद होना है। साम्राज्यवादमे शुरूसे लेकर अन्त तक युद्ध और सघर्ष होता रहता है। पहले तो स्वय साम्राज्यवादी देशके भीतर ही सघर्ष होता है। उसमे अमीरो और गरीबोके बीच एक बहुत बडी खाई पैदा हो जाती है और ऊपरसे देखनेमे यह देश समृद्धिशाली मालूम होता है। ज्यो-ज्यो समय बीतता जाता है त्यो त्यो सर्वहारा और मध्यवर्गके बीच यह सघर्ष अधिकाधिक तीव्र होता जाता है। साम्राज्यवादी सघर्षका दूसरा रूप होता है पूंजीवादी और साम्राज्यवादी देशोकी पारस्परिक होड। साम्राज्यवाद के क्षेत्रमे पुराने साम्राज्यवादियो और नये साम्राज्यवादियोमे सघर्ष होता है। यह सघर्ष उनके बीच होता है जिनके पास राज्य है और जिसके पास नही है। इसका मतलब यह होता है कि कच्चे माल, बाजारो और प्रभाव-क्षेत्रों आदिके लिए छीना-झपटी। इस सघर्षका तीसरा रूप है यारोपीय उपनिवेशवादके विरुद्ध एशिया और अफ्रीकाका राष्ट्रीय आन्दोलन।

(२) लेनिन ने यह बतलानेके लिए बडा परिश्रम किया कि साम्यवाद सबसे पहले किसी अत्यधिक औद्योगिक देशमे न आ कर, जिसकी मार्क्स ने आशा की थी, रूस जैसे सामन्तशाही देशमे कैसे गया? इसका कारण लेनिन यह बतलाते है कि यद्यपि रूसने पूंजीवादके चरम रूपका अनुभव नही किया था फिर भी उसने पूंजीवाद और उद्योगवादका अनुभव अप्रत्यक्ष रूपमे किया। यह तो बहुत ही कमजोर स्पष्टीकरण मालूम होता है। तात्कालिक रूसी समाज अत्यधिक सामन्तशाही सैनिकवाद और निरकुश हो रहा था और उसे फ्रासीसी पूंजीसे शक्ति मिल रही थी और जनता राहत देनेवाले किसी भी परिवर्तनके लिए तैयार थी।

(३) मार्क्सवादके प्रारम्भिक अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूपकी एक राष्ट्रीय व्याख्या करके लेनिन ने उसका शोधन किया। उन्होने 'एक देशमे समाजवाद' की सम्भावनाके सिद्धान्तका जन्म दिया। उनका कहना था कि जैसे पूंजीवाद अपने उत्थानमे ससारके विभिन्न भागोमे एक सा नही रहा, ठीक उसी तरह समाजवादका विस्तार भी सब जगह एक समान नही होगा। एक ही प्रयत्नमे ससारमे साम्यवाद जैसी कोई चीज स्थापित नही हो सकती। उसका प्रसार असमान और असम्बद्ध रूपमे ही होगा। लेनिन का विश्वास था कि पूंजीवादके सागरके बीच एक समाजवादी द्वीप सारे ससारके सर्वहारा वर्गके क्रान्तिकारी आन्दोलनके लिए एक प्रकाश पुञ्जका काम करेगी। 'एक देशमे समाजवाद' के प्रश्न पर स्तालिन और ट्रॉट्स्की मे आगे चलकर तीव्र मतभेद हो गया। ट्रॉट्स्की का अपने देशसे भगा दिया गया और एक हत्यारेने मैक्सिकोमे उनके सिरके टुकडे टुकडे कर डाले। रूसका नया नेतृत्व अब सन् १९५६ मे ट्रॉट्स्की का रूसी क्रान्तिके इतिहासमे उनका उचित स्थान दिलानेका प्रयत्न कर रहा है, और उसकी उपसिद्धिके रूपमे स्तालिन के झण्डेको नीचे गिरानेका प्रयत्न किया

जा रहा है, जो पिछले तीस सालमे ऊचा उठता चला जा रहा है। बीते समयमें स्तालिन के लिए लोगोके दिलोमें जो विशेष आदर भाव था उसे अब व्यक्तित्व पूजा कहकर उसकी निन्दा की जा रही है। इस विचारका नेतृत्व ख्रुश्चेव कर रहे है, और आश्चर्यकी बात तो यह है कि वह अब स्वय 'व्यक्तित्व पूजा (personality cult)' के केन्द्र बनते जा रहे हैं।

(४) मार्क्स ने सर्वहारा वर्गके एकाधिनायकत्व (dictatorship) की शिक्षा दी थी पर लेनिन ने पार्टीके एकाधिनायकत्वका समर्थन किया। लेनिन के सिद्धान्तमे पार्टीको सर्वहारा वर्गके हितमे और सर्वहारा वर्गके नाम पर काम करना था। उन्होने ससदात्मक शासनका तिरस्कार करके शासनकी सोवियत प्रणालीके सिद्धान्तको अपनाया। उन्होने इस विचारका प्रतिपादन किया कि केवल साम्यवादी दल ही सर्वहारा वर्गमे क्रान्ति ला सकता है। लोकतान्त्रिक केन्द्रीयकरण (Democratic Centralism) के सिद्धान्त पर आधारित साम्यवादी दल मजदूर दलके अग्रिम दस्ते का काम करेगा। दलके 'आन्तरिक लोकतन्त्र' को जीवित रखनेके लिए लेनिन ने आलोचना और आत्मालोचनाका महत्त्व बतलाया। दलको सर्वहारा वर्गके एकाधिनायकत्वका साधन बनना था और उस श्रमिक वर्गकी एकता, इच्छा-शक्ति और बुद्धिमत्ताका मूर्त्तरूप बनना था। अन्तम समय-समय पर अवसरवादी लोगोका बाहर निकाल कर उसे अपने आपको शुद्ध और सबल बनाना था।

(५) लेनिन इतने अधिक व्यावहारिक विचारक थे कि वह किसी कल्पनाके पीछे मर मिटनेको तैयार न थे। जब उन्होने देखा कि १९१७-२१ के सघर्षवादी साम्यवादका बडा प्रबल विरोध जनतामे किया जा रहा है, तब उसे वापस ले लेनेमे और उसके स्थान पर पूजीवादका अनेक सहूलियतें देनेवाली नई आर्थिक नीति लागू करनेमे उन्हे कोई हिचक नही हुई। व्यक्तिगत उद्योग या उपक्रम और व्यक्तिगत मुनाफेको एक निश्चित सीमाके भीतर फिरसे लागू किया गया।

लेनिन की मृत्युके बाद स्तालिन और ट्राट्स्की के व्यक्तिगत और सैद्धान्तिक मतभेदोने पार्टीकी जडे हिला दीं। ट्राट्स्की किसानोका पूरा पूरा सामुदायीकरण करना चाहते थे पर स्तालिन उन्हें और अधिक रियायत देना चाहते थे। स्तालिन समाजवादको सबसे पहले रूसमे सफल बनाना चाहते थे, यद्यपि इन्होंने विश्व-व्यापी साम्यवादकी स्थापनाके सभी प्रयत्नोका समर्थन किया।

आलोचना और मूल्याकन (१) यद्यपि लेनिन ने कभी-कभी मार्क्स के उपदेशोसे भिन्न रास्ता अपनाया फिर भी वह मार्क्स के द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद सम्बन्धी उपदेश पर दृढ रहे। (२) मार्क्स की भाँति ही उन्हे वर्गयुद्ध और सर्वहारा वर्गकी अन्तिम विजय पर विश्वास था। साथ ही उन्होने मार्क्सवाद की स्वतन्त्र व्याख्या भी की। लेनिन ने पार्टीका और पार्टीमे मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियो का महत्त्व और कार्य बहुत अधिक बढा दिया। (३) लेनिन ने सम्भवत रूसकी परिस्थितियोसे मेल बैठानेके लिए 'एक देशमे समाजवाद' के सिद्धान्तका प्रतिपादन

किया। (८) लेनिन की प्रधान देन सिद्धान्तकी बारीक व्याख्यामे उतनी नही है जितनी सक्रिय एव गतिशील नेतृत्वमे है, जो उन्होने अपने देशको उसके सकट काल मे दिया। जैसा कि एक लेखकने लिखा है 'लेनिनवाद एक वैज्ञानिकवादकी अपेक्षा एक भावनात्मक आह्वान अधिक है।"

स्तालिनवाद सोवियत रूस मे १९१७ से प्रारम्भ होनेवाले समाजवादी पुनर्निर्माणकी अवधिको लेनिनवादका ही अनुगामी कहा जाता है। जहा तक स्तालिन क्रान्तिके लक्ष्य पर दृढतासे जमे रहे, वह लेनिनवादके प्रति वफादार रहे। पर अपने व्यक्तिगत प्रभावको बढानेके इरादेसे शक्ति-प्राप्त करनेकी अपनी अत्यधिक लालसाने वह लेनिनवादसे दूर हट गये। लेनिन के लोकतान्त्रिक-शक्ति-केन्द्रीयकरणके प्रति वह जबानी श्रद्धा दिखलाते रहे। पर उनके हाथोमे यह सिद्धान्त लोकतन्त्रकी अपेक्षा केन्द्रीयकरण अधिक हो गया। लेनिन द्वारा प्रतिपादित पार्टीके भीतर आलोचना और आत्म आलोचनका सिद्धान्त त्याग दिया गया और उसके स्थान पर केन्द्रीयकरण अपनाया गया। स्तालिन ने न केवल सर्वहारा वर्गके अधिनायकत्वको पार्टीके अधिनायकत्वमे बदल दिया बल्कि पार्टीके भीतर सारे विरोधोको कुचल कर पार्टीको सर्वाधिकारवादी शासनका साधन बना दिया। इस दृष्टिसे यह लेनिन की अपेक्षा हिटलर और मुसोलिनी के अधिक अनुरूप थे।

लेनिन के सिद्धान्त 'एक देशमे समाजवाद' पर स्तालिन कायम रहे। रूस के भीतर पूजीवादके बचे खुचे अशको उन्होने निर्दयतापूर्वक कुचला। उन्होने पचवर्षीय योजनाओकी शृखलासे देशका महान् समाजवादी पुनर्निर्माण किया। हाल ही मे रूस ने अपनी छठी पचवर्षीय योजना भी लागू कर दी है। लेनिन द्वारा किये गये साम्राज्यवादके विश्लेषणको स्तालिन मानते रहे और उन्होने साम्यवादी दलके भीतरी मतभेदोसे सफलतापूर्वक लाभ उठाया।

इस प्रकार उन्होने सोवियत राज्यके शेष ससारसे बिलगाव हो जानेको सफलतापूर्वक रोका। विश्व भरके सर्वहारा वर्गके आन्दोलनोका पथ-प्रदर्शन करनेमे लेनिन द्वारा समर्पित तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय (Third International) का स्वरूप वह बनाये रहे [अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सघ (International Workmen's Association) का तीसरा सगठन। पहला सगठन १८६४ मे कार्ल मार्क्स ने किया जिसको प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय (First International) की सज्ञा दी गई है। दूसरा सगठन १८८९ में बनाया गया जिसे द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय कहते है। तीसरे सगठनकी स्थापना लेनिन द्वारा मार्च, १९१९ मे हुई, इसे तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय (Third International) कहते है। इसका उद्देश्य है सारे ससारके मजदूरोको एक सूत्रमे बाधना और पूजीवादी शोषणके विरुद्ध विद्रोह करना]। इसके साथ ही साथ बालशेविक पार्टीके गठनके सम्बन्धमे लेनिन के सिद्धान्तोकी उन्होने सफलतापूर्वक हत्या भी की। इन बातोसे ऐसा मालूम होगा कि लेनिनवाद स्तालिन के हाथोमे आकर भ्रष्ट हो गया। जिस आन्दोलनको स्तालिन ने आरम्भ किया उसे सच्चे अर्थोमें मजदूरो और किसानों

की क्रान्ति नहीं कहा जा सकता। सोवियतें (soviets, ie, elected representative bodies of peoples) जनताके लोकतन्त्रका गढ़ होनेके बजाय पार्टीके हाथोंमें एक साधन हो गई जिनसे जनता पर निर्दय नियन्त्रण रखा जा सके।

सोवियत रूस के हितोंकी सिद्धिके लिए "सर्वहारा वर्गकी अन्तर्राष्ट्रीय एकता" का थोथा नारा जीवित रखा गया। सन् १९४३ में कॉमिन्टर्नको अनावश्यक और रूस के युद्ध प्रयत्नोंमें बाधक बताकर उसे भंग करनेमें स्तालिन को कोई हिचक नहीं हुई। Communist International का संक्षिप्त रूप Comintern है। यह Third International का ही दूसरा नाम है। कम्यूनिस्ट इन्टरनेशनल द्वारा कहीं भी सफल क्रान्ति करानेका एक भी उदाहरण नहीं है। दूसरे देशोंकी साम्यवादियों को बहुधा सोवियत विदेश नीतिको हानि पहुंचानेवाला 'पांचवां दस्ता' (fifth columnist)[1] समझा जाता था।

स्वीकारात्मक (positive) और नकारात्मक दोनों ही तरीकोंसे स्तालिनवाद ने यह सिद्ध कर दिया कि साम्यवादकी अपेक्षा राष्ट्रीयतावाद अधिक सबल है। स्तालिन ने टीटो (Tito of Yugoslavia) को सम्मानित साम्यवादियोंकी श्रेणीमें अलग करने में कोई हिचक नहीं की क्योंकि टीटो ने अपनी गृहनीति व विदेश नीतिमें रूस की आज्ञा माननेसे इन्कार कर दिया, यद्यपि आर्थिक मामलोंमें वह अपनेको तथा अपने देशको साम्यवादी ही कहते रहे। स्तालिन की मृत्युके बादसे रूसके साथ यूगोस्लावियाके सम्बन्ध काफी सुधर गये हैं। चीनके सम्बन्धमें भी जब साम्यवाद भी पूरी तरह कायम हो गया, तभी स्तालिन ने चीनको विश्वसाम्यवादी भ्रातृ-मण्डलीका एक सदस्य माना। इसके पूर्व चीनके साम्यवादको वह एक दक्षिण पंथी अतिक्रम (a rightist deviation) मानते थे।

लेनिन की, जो एक असाधारण प्रतिभाके व्यक्ति थे, तुलनामें, स्तालिन एक अल्पबुद्धि और मध्यम कोटिकी योग्यतावाले व्यक्ति थे। उनके तरीके प्रायः असंस्कृत (crude) और तानाशाही (dictatorial) होते थे।

माओवाद (Maoism) (माओवादको लेनिनवादका ही एक ऐसा स्वरूप माना जा सकता है जो खेतिहर देशकी परिस्थितियोंके अनुकूल हो। भूमिकी भूख चीनकी प्रधान समस्या रही है और माओवाद उसी समस्याका उत्तर है।)

आधुनिक चीनमें क्रान्तिकारी प्रवृत्तियोंका श्रीगणेश डा० सनयात सेन से हुआ जिन्होंने सन् १९११ में अपने तीन सिद्धान्त—राष्ट्रीयतावाद, लोकतन्त्र तथा जनताकी

---

[1] **Fifth Columnist** १९३६ में स्पेनके जन विद्रोहमें जो जनरल फ्रैंकोके नेतृत्वमें हुआ था, चार दस्तोंने राजधानी मैड्रिड पर प्रत्यक्ष आक्रमण किया था, परन्तु बहुतसे ऐसे लोग थे जिन्होंने गुप्त रूपसे तोड़-फोड़ उपद्रव करके, फूट डालकर और भेदिया बनकर गवर्नमेन्टको खोखला किया। इन छिपे हुए विद्रोहियोंको पांचवां दस्ताकी संज्ञा दी गई तबसे ऐसे लोग जो सगे बनकर दुश्मनकी मदद करते हैं पांचवां दस्ता (fifth columnist) कहलाने लगे हैं।

जीविका अथवा समाजवाद— समाजके सामने रखे। केवल इन तीन सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किसी नये स्वर्ग या नये समाजका निर्माण नहीं कर सका। सन १९१० तक चीनकी हालत और बिगड़ गई और ठीक इसी समय रूस में बाल्शेविकवादका सितारा दिन प्रतिदिन बुलन्द होता जा रहा था। चीनके पढ़े-लिखे समझदार लोग साम्यवादको सहानुभूति पूर्ण दृष्टिसे देखने लगे और १९१८ ही में पेकिंगमें एक साम्यवादी पार्टीकी स्थापना हो गई। इसी समय एक प्रसिद्ध दार्शनिक ली ताओ-चाओ साम्यवादकी ओर झुक रहे थे और उनके पुस्तकालयमें काम करनेवाले माओ से-तुंग पर अपने मालिकका गहरा प्रभाव पड़ा और वह साम्यवादी समाजमें एक विद्यार्थी सदस्यके रूपमें शामिल हो गये।

इसी समय चीन और रूसके बीच कुछ कर्मचारियोंका आदान-प्रदान हो रहा था। डा० सनयात सेन स्वयं भी साम्यवादके प्रति सहानुभूति पूर्ण हो चुके थे। जुलाई, १९२१, तक पेकिंग कैन्टन, शंघाई और हुनानमें साम्यवादी दलकी स्थापना हो गई। साम्यवादी दलके नेतृत्वमें सर्वहारावर्गका उत्थान अपना मार्ग बना रहा था।

इस दलके संगठनके लेनिनवादी ढांचे तरीकोंका सनयात सेन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। अपने तीन सिद्धान्तोंमें से एक राष्ट्रीयतावादको प्राप्त करनेके लिए उन्होंने लेनिनवादी पद्धति पर अपने दलका संगठन किया। डा० सनयात सेन द्वारा स्थापित को-मिन-तांग (Kuo Min-tang) दल सभी वर्गोंका संयुक्त दल था। साम्यवादियोंसे कहा गया कि इस दलमें शामिल होकर इसे क्रान्तिकारी गतिशील शक्ति बनायें। साम्यवादी व्यक्तिगत रूपमें इस दलमें शामिल हुए। साथ ही साथ एक पृथक साम्यवादी दल कायम रखा गया। एक रूसी साम्यवादी नेता बारोदिन, जो इस समय तक चीन आ चुके थे, और सनयात सेन—ये दोनों—इसके प्रधान संचालक थे।

इस समय चीनके लोग नेतृत्वके लिए संगठित हो रहे थे। माओ से-तुंग जो स्वयं एक कृषक परिवारके थे क्रान्तिके लिए किसानोंका संगठन करने लगे। वह जानते थे कि जनतामें किस प्रकार असन्तोष पैदा किया जाता है। विद्यार्थी, पत्रकार और इस प्रकार के अन्य लोग उनके दलमें शामिल हो गये। साम्यवादियोंने पहले पहल को मिन-तांग दलमें अनेक स्थान प्राप्त कर लिये और एक साम्राज्यविरोधी और सामन्तविरोधी कार्यक्रम तैयार किया गया।

इसी बीच डा० सनयात सेन की मृत्यु हो चुकी थी और उनके उत्तराधिकारी दक्षिण-पन्थी सेनापति च्यांग काई-शेक साम्यवादियों और क्रान्तिकारियोंके विरुद्ध हो गये। क्रान्तिकारियोंको बड़ी संख्यामें को मिन-तांग से निकाल दिया गया और जिन पर जरा भी सन्देह था उन सबको गोली मार देनेका आदेश हो गया। बारोदिन छिप कर रूस भाग निकले।

जब च्यांग काई-शेक अपने निर्दय तरीकोंका प्रयोग कर रहे थे तब किसानों और मजदूरोंमें गहरे सम्बन्ध सूत्र (alliance) कायम किये जा रहे थे और लोकतन्त्रीय अधिनायकत्व स्थापित करनेकी योजनाएं बनाई जा रही थीं यह समझकर कि

सैनिक शक्तिके बिना प्रभावपूर्ण कदम नही उठाया जा सकता। यत्र-तत्र लाल सेनाओं (साम्यवादी झण्डेका रग लाल होता है। इसीलिए प्राय साम्यवादियोको लाल या reds भी कहते है) की स्थापना हो रही थी।

सन् १९२७ से राष्ट्रवादियो (को मिन-ताग) और साम्यवादियोके बीच तीव्र मतभेद हो गया। कृषि सुधारो और सशस्त्र विद्रोहो पर जोर दिया गया। साम्यवादियोका निर्दयतापूर्वक दमन किया गया और देशमे गृह-युद्धकी आग भडक उठी। पर माओ से-तुग अपनी शक्ति बढानेमे सफल हुए और १९३१ मे वह नव-स्थापित पूर्वापायी (Provisional) सोवियत सरकारके अध्यक्ष बने। (सोवियतके अर्थ रूसकी सरकार नही है। सोवियत सरकारका अर्थ है सोवियत प्रणालीकी सरकार जिसमे सोवियतो द्वारा शासन होता है।)

इसी समय मचूरिया पर जापानका हमला हुआ। सन् १९३१ मे के० एम० टी० (को मिन-ताग) द्वारा मुकदेन और जहाल प्रान्तोका छोड देनेसे साम्यवादियोको विरोधी प्रचारका बडा अवसर मिल गया। जब राष्ट्रायतावादी जापानियोसे युद्ध करनेमे लगे हुए थे उस समय साम्यवादियोने जोरदार के० एम० टी०-विरोधी आन्दोलन सगठित किया। के० एम० टी० इस परिस्थितिका मुकाबला न कर सका और उसने सन् १९३५ मे बाहरी सकटको समाप्त करनेके उद्देश्यसे साम्यवादी दलसे राष्ट्रीय एकताकी प्रार्थना की। दोनो दल अपने मतभेद भूल कर और एक होकर अपने सामान्य शत्रु जापानको हराने मे लग गये। पर युद्धके दौरानमे च्याग काई-शेक ने अपनी विशिष्ट फौजें सुरक्षित रखी ताकि युद्धके बाद साम्यवादियोसे निपटा जा सके।

युद्धके बाद च्याग काई-शेक का दल अपने भ्रष्टाचार और कुनबापरस्ती (nepotism) के कारण दिन प्रतिदिन अधिकाधिक बदनाम होता जा रहा था। जनताकी कृषि-सम्बन्धी आवश्यकताओकी बराबर उपेक्षा की जाती रही। इससे साम्यवादियोको आगे बढनेका मौका मिला। थोडा-थोडा करके उन्होने सारे चीन पर कब्जा कर लिया और १९४९ मे च्याग काई शेक और उनके अनुयायियोको फारमूसा द्वीपमे खदेड दिया गया। जहा वे अमेरिकी मददसे समय-समय पर साम्य-वादियोके विरुद्ध सग्राम करते आ रहे है। चीनकी नई सरकारको ब्रिटेन, रूस और अनेक एशियाई देशो द्वारा मान्यता मिल चुकी है। पर अब भी वह सयुक्त राष्ट्र सघके बाहर है। बडे देशोमे, सम्भवत चीनकी इस साम्यवादी सरकारको मान्यता देनेमे अमेरिका बिल्कुल आखीरमे होगा।

मार्क्सवाद-लेनिनवादकी शिक्षाओंमे माओ का योग

साम्यवादी चीनमे साम्यवादी रूसके सगठनका बडी बारीकीसे अनुकरण किया गया है। सामन्तवाद, पूजीवाद और साम्राज्यवाद पर सबल प्रहार किये गये है। पर किसानोके सगठनमे सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। साम्यवादी रूस तो खेतोके

समूहीकरणमें बहुत आगे बढ चुका है पर चीनमें किसानोंका स्वामित्व एक सामान्य व्यवस्था है। किसी ऐसे व्यक्तिको जमीन रखनेकी आज्ञा नहीं है जो स्वय उसे जोत न सके। इसके परिणामस्वरूप मध्यम वर्ग समाप्त हो चुका है। माओ ने ग्रामीण सर्वहारा और शहरी सर्वहारामें बहुत विभेद किया है। उनका साम्यवाद इस समय ग्रामीण सर्वहारा वर्गका साम्यवाद है।

विरोधियोंसे और यहा तक कि ईमानदारीमें मतभेद रखनेवालोंसे भी निपटनेमें सख्त तरीके अपनाये गये हैं। विचारोंकी यान्त्रिक एकरूपता कायम करनेमें 'मस्तिष्क शुद्धि' (brain washing) का तरीका अपनाया गया है। फिर भी माऊ से-तुग की प्रतिभा विरोधियोंको अपनेमें मिला लेनेमें रही है न कि उन्हें समाप्त कर देनेमें, जैसा कि स्तालिन किया करते थे। न केवल किसानों और शहरी सर्वहारा वर्गका बल्कि मध्यम वर्गों और देश-भक्त सम्पन्न लोगोंको भी कम्यूनिस्ट पार्टीमें शामिल होने दिया गया है। इस प्रकार सर्वहारा वर्गकी प्रभुताके पुराने विचारका 'वर्गोंके सहयोगकी दिशा' में संशोधित कर दिया गया है। माऊ ने अपनी पुस्तक 'नवीन लोकतन्त्र (*A New Democracy*—१९३८)' में 'सामन्तों और देशद्रोही पूंजीपतियोंके बचे-खुचे प्रतिक्रियावादी अंशोंके विरुद्ध जनताका लोकतन्त्रीय अधिनायकत्व' की धारणाके आधार पर एक नये समझौतेके पक्षमें तर्क दिये है।

एक असाधारण सैनिक नेता होते हुए भी माऊ से-तुग का विश्वास है कि सेना को असैनिक (civilian) सत्ताके अधीन होना चाहिए। यह उनका संकल्प है कि साम्यवादी आन्दोलनको महत्वाकांक्षी सेनापतियोंका खिलौना नहीं बनने दिया जायगा जैसा कि सनयात सेन की मृत्युके बाद बराबर तक होता रहा।

विचारों और संस्थाओंके क्षेत्रमें हीगेल और मार्क्स के 'अन्तर्विरोधोंके सिद्धान्त' को माऊ ने माना है। मार्क्स की भाति उनका भी विश्वास है कि विचारोंका विकास पदार्थोंसे होता है। युद्धोत्तर संसारकी स्थितिके बारेमें माऊ स्वीकार करते हैं कि सरकार समाजवादी और पूंजीवादी गुटोंमें बँटा हुआ है। दोनों ही में अपने अन्तर्विरोध है। माऊ के अनुसार उनमें केवल एक अन्तर यह है कि पूंजीवादके अन्तर्विरोध केवल युद्ध और क्रान्तिके द्वारा ही दूर हो सकते है पर समाजवादके अन्तर्विरोध शान्ति पूर्वक दूर हो जावेंगे। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह केवल एक धार्मिक विश्वास मात्र है और साम्यवादका पिछला इतिहास ऐसे किसी विश्वासकी यथार्थताका सहारा नहीं देता।

बी० आई० श्वार्ट्स अपनी पुस्तक *Chinese Communism and the Rise of Mao* में लिखते हैं कि चीनी साम्यवादी अपने आपको आदिम मार्क्सवादी-लेनिनवादी मानते है। वे अपनी पार्टीको 'ऐतिहासिक मुक्तिका एजेण्ट' और सर्वाधिकारवाद (totalitarianism) 'लेनिनवादी धारणाकी निहित प्रवृत्ति' मानते है (Chinese Cammunist regard the party as the agent of historic redemption and look upon totalitarianism as a tendency

inherent in Leninist conception of the party)। स्वार्टम् के अन्तिम शब्दोमे "साराशमे यद्यपि चीनी साम्यवाद ने अन्तिम रूपमे तथ्या द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि साम्यवादी पार्टी और सर्वहारा वर्गके बीच किसी प्रकारके भी आवश्यक प्राकृतिक सम्बन्धका अभाव है, फिर भी इस आन्दोलनमे मार्क्सवादी-लेनिनवादी परम्पराके कुछ आधारभूत तत्त्व अब भी कायम है। (In sum, while Chinese Communism did conclusively demonstrate in fact the utter lack of any necessary organic relation between Communist parties and the industrial proletariat, the movement still retains certain fundamental elements of Marxist-Leninist tradition)[1]

भारतके लिए समाजका समाजवादी ढाचा

जबसे जवाहरलाल नेहरू सन् १९५४ म चीनसे वापस आये तबसे वह भारतमे समाजवादी समाजके लिए उत्साहम बहुत भर हुए है। १९५५ के प्रारम्भमे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके अवादी (Avadi) अधिवेशनमे यह स्वीकार किया गया कि एसे समाज की स्थापना ही हमारा लक्ष्य है। १९५६ मे अमृतसर अधिवशनमे 'समाजवादी ढाचा (socialist structure)' शब्दका प्रयाग किया गया। सम्भवत इस परिवर्तनका अथ यह है कि जो आदश योजनाके नक्शेके रूपमे अब तक फाइलमे दबा था, वह अब एक ढाचेकी तरह अपने पावो पर खडा होन लगा है। "समाजवादी समाज" या "समाजवादी ढाचा" शब्द जानबूझकर अस्पष्ट रखे गये है। क्योकि समाजवादका अर्थ सिद्धान्तमे या व्यवहारमे सबके लिए एक नही होता। इग्लैण्डके मजदूर दलका समाजवाद, योरोपीय देशोके समाजवादसे अनेक रूपोमे भिन्न है। भारतमे भी सभी समाजवादी समाजवादके अर्थ पर एक मत नही है।

कुछ समय पूर्व राष्ट्रीय विकास परिषद (National Development Council) मे भाषण देते हुए श्री नेहरू ने कहा कि "भावी भारतके सम्बन्धमे जो कुछ मेरे दिमागमे है वह निश्चित और पूर्ण रूपमे समाजका एक समाजवादी चित्र है।" उन्होने कहा कि व्यक्तिगत उद्योग या उपक्रम समाप्त करनेका उनका कोई इरादा नही है। पर साथ ही उन्होने यह भी कहा कि सम्पत्ति जोडनेकी प्रवृत्ति न केवल समयके विपरीत है बल्कि अनैतिक भी है। इसके अनुसार नये समाजको अवसरकी समानता पर आधारित होना होगा और आश्चर्यकी बात यह है कि वह समानता बहुत बडी मात्रामे पूजीवादी समाजमे भी बरती जाती है, जैसे अमेरिकी समाजमे। नेहरू जी आगे कहते है कि भारतके संविधानमे यह निश्चय किया गया है कि भारतीय जनता का लक्ष्य कल्याणकारी राज्य है जिसमे व्यक्तिका समाजके लिए और समाजको व्यक्तिके लिए जीवित रहना है। व्यावहारिक शब्दावलीमे नेहरू जी के अनुसार

---

[1] वही पुस्तक पृष्ठ २०४

समाजवादी समाजका अर्थ है "जीवित रहनेका अधिकार, जीविकोपार्जनके लिए काम पानेका अधिकार, और जो कुछ कोई अर्जित करे उसका सारा प्रतिफल उसे मिले"।

प्रसिद्ध भारतीय अर्थशास्त्री, विद्वान और व्यवहारविद् डॉ० जॉन मथाई का कहना है कि समाजवादी समाजकी दो मुख्य बातें स्वाधीनता और समानता है। समाजवादको एक मत या संगठनका एक प्रकार माननेसे इन्कार करते हुए डा० मथाई जोर देकर कहते हैं कि "समाजवाद जीवनकी एक पद्धति और समाजके प्रति एक दृष्टिकोण है जिसका लक्ष्य है, ऐसे साधनो द्वारा, जो एक स्वतन्त्र लोकतान्त्रिक समाजके लिए उपयुक्त समझे जा सकें, अधिकतर व्यावहारिक सामाजिक न्यायका विस्तार करना। जिन साधनो द्वारा इस समाजवादी समाजकी स्थापना होती है वे है—(१) प्रत्येक मानव व्यक्तित्वका सम्मान व प्रतिष्ठा, (२) प्रेमका सिद्धान्त, और (३) साहचर्य या सहयोगकी भावना।

आश्चर्यकी बात तो यह है कि डा० मथाई राष्ट्रीयकरण या उत्पादनके साधनो का राज्य द्वारा अपने अधिकारमे लिया जाना समाजवादके लिए अनिवार्य नही मानते क्योंकि उन्हींके शब्दोमे "राष्ट्रीयकरणकी माग करनेवालोके दिमागमे जो उद्देश्य होते है उनमे से अनेककी सिद्धि राष्ट्रीयकरणके अतिरिक्त अन्य साधनोमे—विधि-निर्माण, शासकीय आदेश और राजस्व सम्बन्धी उपायोंसे भी हो सकती है। इसकी सम्भावना नही है कि नेहरू जी और अन्य अनेक व्यक्ति जिनमे वर्तमान लेखक भी शामिल है इस विचारसे सहमत होगे। पर डॉ० मथाई के इस कथनमे उनका तीव्र मतभेद होनेकी सम्भावना नही है— 'मै नहीं समझता कि यह समाजवाद का कोई तात्विक अंश है कि व्यक्तिगत उद्योग या उपक्रमका नियंत्रण किया जाय या उसे दबा दिया जाय"।

डॉ० मथाई भारतीय अर्थ व्यवस्थाको सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्रमे बाटे जानेके वर्तमान ढगका समर्थन करेंगे। यद्यपि उन्हे आशका है कि यदि सावधानीसे काम न लिया गया तो आर्थिक लोकतन्त्रके नाम पर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिये जायगे। वह चाहते है कि छोटे उत्पादक और बडे उत्पादकके बीच एक उचित सन्तुलन कायम रखा जाय ताकि दोनोमे किसी एकका दूसरेके लिए बलिदान न हो। एक दूसरा भय उन्हे यह है कि प्रथम और द्वितीय पचवर्षीय योजनाओं तथा अन्य आनेवाली योजनाओंकी आवश्यकताए देशके साधनोके असमर्थ होनेके कारण एक ऐसी स्थिति पैदा कर देगी कि जिसमे कीमते बढेगी और 'एक निश्चित मुद्रा-स्फीतिकी प्रवृत्ति' फैलेगी। हम अपने चारो ओरकी परिस्थिति देखकर समझ सकते हैं कि वह केवल काल्पनिक भय नही है।

एक समाजवादी समाजमे श्रमका न्यूनतम वेतन निश्चित होगा। पर व्यक्तिके लिए पर्याप्त अवकाश होगा और वृद्धजनो व अपगोकी देखभाल की जायगी। समानता के सिद्धान्तके बारेमे डा० मथाई "न्यायकी समानता (Equality in justice), सबके लिए समान विधि (Equality before law), विकास और उन्नतिके लिए

सबका समान अवसर, शिक्षा, उद्योग और आजीविका-चयनमे सबको समान अवसर' पर जोर देते हैं। वह आय और सम्पत्तिकी भी समानताका प्रश्न उठाते है, किन्तु अपने देशकी मौजूदा अवस्थामे वह इसको लागू करनेके पक्षमे नही है। खेतीकी भूमि व्यवस्थाके प्रश्न पर भी वह अपना कोई निश्चित मत प्रकट नहीं करते। एक स्वतंत्र समाजमे स्त्रियों और बच्चोंके साथ न्यायोचित व्यवहार पर, समाज सेवा सघ, भारत सेवक समाज और सामुदायिक योजनाओ द्वारा की जानेवाली निश्शुल्क सामाजिक सेवाओ पर तथा धार्मिक आश्रमो तथा अन्तर्राष्ट्रीय भाई-चारे पर वह विशेष रूपसे जोर देते है।

एक रूढिवादी और धार्मिक दृष्टिकोणसे समाजवादी समाजका यह एक प्रशसनीय चित्र है। पर अतिवादी चाहेगे कि राज्य इससे बहुत आगे बढे। कांग्रेसके भूतपूर्व अध्यक्ष श्री यू० एन० ढेवर ने हाल ही मे समाजवादी समाजकी परिभाषा देनेका प्रयत्न किया है। उनका कहना है कि आर्थिक पक्षमे समाजवादी समाजसे कमसे कम निम्नलिखित तीन बातें व्यक्त होती है (१) कुछ मौलिक या आधारभूत उद्योगोका राष्ट्रीय स्वामित्व या राष्ट्रीय नियत्रण (२) सम्पत्तिका न्यायसगत वितरण और (३) अवसरकी समानता। हम अपनी तरफसे कह सकते है कि सामाजिक पक्षमे समाज-वादी समाजका अर्थ होना चाहिए, एक जातिहीन और वर्गहीन समाज, एक ऐसा समाज जिसमे मनुष्य मनुष्यके बीच वर्तमान कृत्रिम विभेद नष्ट कर दिये गये हो। हमारा विश्वास है कि जब तक मानव प्रवृत्तियो, और इच्छाओं तथा राष्ट्रीय चरित्र मे पूरा पूरा परिवर्तन नही होता तब तक बडे-बडे आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन सम्भव नहीं है।

पहले हम आर्थिक पक्षको ले। यद्यपि "राष्ट्रीयकरण" बहुतोके लिए एक मोहक शब्द है पर वह कोई जादू की छडी नही है जिसको घुमाते ही रात भरमे एक नये समाजकी रचना की जा सके। भारतमे समाजवादी समाजकी रचना हो रही है। यह रचना हो रही है बहुमुखी जलविद्युत योजनाओ (जिनमे सिचाई योजनाए भी शामिल है) द्वारा पडती जमीनको खेती योग्य बनाने, और खादकी मिलो द्वारा देशके भीतर मत्स्य पालन, पशु सुधार, रेलो, हवाई जहाजो और नागरिक उड्डयनो और जीवन बीमाके राष्ट्रीयकरण द्वारा, जमींदारीके उन्मूलन, मशीनोके यत्र निर्माण और छोटे-छोटे उद्योगो और कुटीर उद्योगोको दी जानेवाली सरकारी आर्थिक सहायताके द्वारा। द्वितीय पचवर्षीय योजनामे निजी उद्योगो (१५०० और १७०० करोड रुपयोके बीच) की अपेक्षा सार्वजनिक उद्योगो पर (४८०० करोड रुपये) बहुत अधिक व्यय कूता गया है। पहले की अपेक्षा अब सभी स्तरोकी शिक्षा पर, सार्वजनिक स्वास्थ्य, आवास व्यवस्था, और सामाजिक कल्याण तथा लोगोको काम धधोमे लगाने की समस्या पर बहुत अधिक ध्यान देना होगा। द्वितीय योजनाके पाँच वर्षोमे ९० लाखसे लेकर एक करोड तक नयी कामकी जगहे बनानेका लक्ष्य रखा गया है। पर समयकी आवश्यकताको देखते हुए यह पर्याप्त नही है।

प्रो० जॉन सॉण्डर्स लिखते हैं कि समाजवादी समाजकी माग है न्याय (एक अधिक न्यायसगत वितरणके अर्थमे), सामाजिक सुरक्षा और अधिक पूर्ण जीवन। उनका कहना है कि भूमि सुधार, ऋणमुक्ति, और वैज्ञानिक खेतीको प्राथमिकता दी जानी चाहिए। दोहरी फसल, सिंचाई और खाद आदिके द्वारा अन्न उत्पादन बढाया जाना चाहिए।

भूमिसुधार और उनसे सम्बन्धित प्रश्नोके बाद सॉण्डर्स पूर्ण रोजगारी (सबके लिए काम) और जीवन स्तरको ऊँचा उठानेको तात्कालिक लक्ष्य मानते है जिसे पूरा किया जाना चाहिए। उन्हे इस बात पर खेद है कि खेतिहर मजदूरोको सालमे ८२ से लेकर ११९ दिनो तक बेकार रहना पडता है। बेकारीके साथ-साथ दूसरी बढती हुई बुराई आबादीकी अधिकता है। अनेक प्रगतिशील देशोमे जन्मका अनुपात या तो स्थायी है या कम होता जा रहा है। पर भारतमे इसके कम होनेके कोई लक्षण नही दिखायी देते। दूसरी ओर मृत्युकी सख्या घटती जा रही है।

श्री विनोबा भावे स्वत प्रेरित तरीकोसे समाजमे नयी व्यवस्था लाना चाहते है। एक स्थानसे दूसरे स्थानकी पदयात्रा करनेवाले अपने कुछ साथियोकी सहायतासे वह गरीबोमे बाटनेके लिए ४० लाख एकडसे अधिक भूमि प्राप्त करनेमे समर्थ हुए है। फिर भी गरीबोकी दशा कुछ अधिक सुधरी हुई नही दिखायी देती। भावे का विश्वास है कि किसी भी स्थानमे सामुदायिक योजना लागू करनेसे पहले भूमि का फिरसे वितरण हो जाना चाहिए।

सर्वोदय आन्दोलनका ध्यान भारतके ६ लाख गावो पर केन्द्रित है। भारत सरकार द्वारा चालू किये गये बडे औद्योगिक कारखानो और सिंचाईके कामोको वह शकाकी दृष्टिसे देखता है। ग्रामीण जीवनमे नयी स्फूर्ति लाना ही उसका आदर्श है। यह उत्पादक और उपभोक्ता पर केन्द्रित अर्थव्यवस्थाका समर्थन करता है और उस अर्थव्यवस्थाका विरोध करता है जिसका प्रथम उद्देश्य विदेशी मुद्रा और डालर पूजी प्राप्त करना है। गाँवोके वर्तमान तालाबोको नये सिरे ठीक किया जाना चाहिए, उन्हें गहरा किया जाना चाहिए और पासके छोटे-छोटे तालाबोसे उन्हे भरा जाना चाहिए। देश भरमे नहरोका जाल बिछा हो। नदियो और उनकी घाटियोको सीमाए मानकर आर्थिक परिस्थितियोके आधार पर राज्योका पुनर्संगठन किया जाना चाहिए। जलविद्युत् योजनाओके लिए छोटे-छोटे उत्पादक केन्द्र होने चाहिए। नदियोके उद्गम क्षेत्रोमे उद्योगोको और मुहानोकी तरफके क्षेत्रो पर खेतीको केन्द्रित किया जाना चाहिए। जल यातायातका इतना अधिक विकास किया जाना चाहिए कि वह देशके आन्तरिक व्यापार व्यवसायको सभाल सके और लाखो व्यक्तियोको रोजगार दे सके। ग्रामीणो और उनकी बैलगाडियोकी आवश्यकताओको पूरा करनेके लिए ही सडकोका निर्माण होना चाहिए। बडे उद्योगोको निजी हाथोमे नही छोडना चाहिए। कोयला और बिजली ग्रामीणोके लिए सुलभ होनी चाहिए। सर्वोदय आन्दोलन हाथकी कताई और हाथकी बुनाई, तेलके पेर जाने तथा अन्य दस्तकारियो पर बहुत अधिक जोर देता है।

कहा गया है कि विश्वकी अर्थव्यवस्थामें भारतका योग उसके गाँव की है। इस सम्बन्धमें महात्मा गांधी कहते हैं "यदि गाँव नष्ट हो जाता है तो भारत भी नष्ट हो जायगा। तब फिर वह भारत नहीं रह जायगा और तब संसारके प्रति उसका सन्देश लुप्त हो जायगा।"

संगठनके पक्षमें, २ अगस्त, सन् १९५२, को प्रारम्भ की गयी सामुदायिक योजनाएँ (community projects) जिनकी संख्या ५५ है, समाजके समाजवादी ढाँचेके अनुरूप ही मानी जायगी। उन्हें जनताके हितके लिए, जनता द्वारा, जनताकी योजना कहा गया है। इन योजनाओंका प्रारम्भ करनेवालोंकी आशा है कि ये योजनाएं सारे देश भरके लिए पथप्रदर्शक हो जायगी। इन योजनाओं पर होनेवाले व्ययका ६४ प्रतिशत जनतासे रुपयों, सामानों या श्रमदानके रूपमें मिलता है। यह रूसके कुछ भागोंमें प्रचलित अनिवार्य श्रमसे कितना भिन्न है! हर योजनाका तीन क्षेत्रों (blocks) में बाँटा जाता है और हर क्षेत्रमें १०० गाँव होते हैं। हर गाँवमें एक ग्राम सेवक (village level worker) होता है जिसकी सहायता एक स्टॉकमैन करता है। हरेक क्षेत्रमें एक क्षेत्रीय योजना अधिकारी (Block Development Officer) होता है। जिसका कलक्टर डिप्टी विकास कमिश्नर का काम करना है। यह सब अंग्रेजी कालकी प्रशासकीय व्यवस्थामें आश्चर्यजनक तौर पर विपरीत है।

हालमें सामुदायिक विकास योजनाओंके काममें राष्ट्रीय विकास सेवा योजनाओं द्वारा वृद्धि की गयी है। इन योजनाओं ने सामग्री और रसदके रूपमें सामुदायिक योजनाओंमें महत्वपूर्ण योग दिया है। ६ लाख गाँवोंमें से १ लाख २० हजार गाँव इन दो योजनाओंके भीतर आ गये हैं। और शेष गाँव भी शीघ्र ही योजनामें आ जायगे।

कल्याणकारी राज्य यह रोचक बात है कि भारत ने सन् १९५० में अपने संविधानका शुभ आरम्भ जिस कल्याणकारी राज्यके आदर्शके साथ किया था वह आदर्श धीरे धीरे वर्तमान समाजवादी समाजकी धारणाके साथ घुल-मिल गया है, यद्यपि यह स्पष्ट है कि एक कल्याणकारी राज्यका समाजवादी होना आवश्यक नहीं है। २३ जुलाई १९५४, को अजमेर के कांग्रेस अधिवेशनमें इस आशयका प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था "सहकारी सामान्यसम्पत्ति (Co-operative Commonwealth) या कल्याणकारी राज्यकी स्थापना करना कांग्रेसका लक्ष्य है"। तबसे कल्याणकी व्याख्या अधिकतर आर्थिक शब्दावलीमें की गयी है।

डा० अब्राहम (जिनका उद्धरण प्रो० एम० घोष ने दिया है) ने कल्याणकारी राज्यकी व्याख्या इस प्रकार की है 'एक ऐसा समाज जिसमें राज्य शक्तिका प्रयोग जानबूझकर, समाजकी आर्थिक शक्तियोंकी सामान्य प्रक्रियामें सुधार करनेके लिए, इस उद्देश्यसे किया जाता है कि हर नागरिकके लिए आयका अधिक न्यायसंगत वितरण हो और उसकी सम्पत्ति और उसके कामके बाजार मूल्यका ख्याल किये बिना उसे एक आधारभूत न्यूनतम वास्तविक आय प्राप्त हो सके। टी० डब्ल्यू० केंट (जिनका

उद्धरण भी प्रो० घोष ने दिया है) का कहना है कि "कल्याणकारी राज्य एक ऐसा राज्य है जो अपने नागरिकोंके लिए सामाजिक सेवाओंका एक व्यापक क्षेत्र प्रस्तुत करता है। नागरिकोंकी सुरक्षा उसका मुख्य उद्देश्य होता है। यदि कोई अपनी आयका साधन खो देता है तो उसकी सहायता करनेका उत्तरदायित्व राज्य लेता है।"

घोषके कथनानुसार एक कल्याणकारी राज्यके निम्नलिखित तीन आधार होते हैं आर्थिक न्याय, बेकारी वृद्धावस्था आदिमे सुरक्षा और व्यक्तिके लिए स्वाधीनता। कल्याणकी धारणा केवल भौतिक अर्थमे ही न की जाकर मानव स्वतन्त्रता और प्रगति के अर्थमे भी की जानी चाहिए। कांग्रेसके अजमेर प्रस्तावमें, जिसकी चर्चा ऊपर की गयी है, कल्याणकारी राज्यकी व्याख्या बेकारीके विनाश, अधिक उत्पादन और न्यायसगत वितरणके रूपमे की गयी है।

कल्याणकारी राज्यकी जो भी धारणा हम करें, इसमे अनेक सामाजिक सेवाएं जैसे शिक्षा, वृद्धावस्थामे पेंशनें, बेकारीमे वेतन, और सार्वजनिक सहायता सम्मिलित रहेंगी। यद्यपि अमेरिका की सरकार इनमे से अनेक सेवाएं करती है, पर कल्याणकारी राज्य शब्दका उस देशमे दैवी शाप माना जाता है क्योंकि इसे समाजवादी राज्य शब्दका पड़ोसी समझा जाता है।

कल्याणकारी राज्यमे सर्वत्र एक बहुत बड़ा खतरा यह होता है कि यह राज्य अपने आपको बहुत आसानीसे एक सर्वाधिकारवादी राज्यमे बदल सकता है। घोष का यह विचार सही है कि मनुष्यकी नैतिक स्वाधीनताके साधनके रूपमे ही भौतिक कल्याण सार्थक है। यदि भारतमे कल्याणकारी राज्य या समाजवादी समाजकी स्थापना भलाभाँति करनी है तो यह काम अहिंसात्मक और लोकतान्त्रिक ढगसे ही किया जाना चाहिए। लोकतन्त्र और कल्याणकारी राज्यके आदर्शोंमे मेल बैठाया जाना नितान्त आवश्यक है। कुछ लेखकोंका कहना है कि योजना और लोकतन्त्र दोनो साथ-साथ नही चल सकते।

हमेशा इस बातका खतरा रहता है कि योजनामें अफसरतन्त्र न प्रविष्ट हो जाय। यदि योजनाको सफल होना है तो सम्पूर्ण कार्य-कलापका नियोजित होना जरूरी है। यदि आजकलकी बहसवाली आदतको बहुत अधिक बढ़ावा दिया गया तो सम्भावना यह है कि नियोजन अधूरा और दोषपूर्ण रह जायगा और स्वय ही अपनेको पराजित कर देगा अर्थात् विफल हो जायगा। नियोजनके सफल होनेके लिए यह जरूरी है कि यह अत्यधिक केन्द्रीयकरणसे तथा दलगत नानाशाहीसे मुक्त रहे और इसका क्रम न टूटे। इस अन्तिम विषय पर लिखते हुए बारबारा वूटन कहती है 'यदि राजनीतिक दलोंके अस्तित्वका अर्थ यह है कि हर छठवें महीने हम अपने इरादे बदला करें तो मुझे भय है कि लम्बी अवधिवाली योजनाएं कैसे निभ सकेंगी। प्रो० जॉन सॉण्डर्स का मत है कि आजकी परिस्थितियोंमे भारतके लिए सबसे बड़ा खतरा आर्थिक अधिनायकतन्त्रसे नहीं बल्कि निष्फल लोकतन्त्र से है।

एक दूसरा इतना ही बड़ा खतरा जनताकी अरुचि या असहानुभूति है। जब तक जनतामें उत्साह न हो, समाजवादी समाजके प्रति लगन न हो और लोग इसके लिए सत्यनिष्ठा और ईमानदारीसे काम करनेको तैयार न हों तब तक नियोजनसे पूरा पूरा लाभ उठा सकना असम्भव है।

विषयके हर पहलूका निचोड़ देते हुए प्रो० घोष बुद्धिमत्तापूर्वक लिखते हैं, "हमें समृद्धिके लिए योजना बनानी चाहिए, पर स्वतन्त्रताका मूल्य देकर नहीं, हमें अपनी योजनाओंको राज्यकी दबाव डालनेवाली शक्ति अथवा सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारियोंके बलसे नहीं बल्कि जनताके सक्रिय और उत्साहपूर्ण सहयोग द्वारा कार्यान्वित करना चाहिए। हमें राजनीतिक पार्टियाँ रखनी चाहिए—इसलिए नहीं कि वह दूसरी पार्टियोंको दबावें या अपने सदस्योंको ही अपनी पार्टीके भीतर दबावें बल्कि इसलिए कि वे जनताको सार्वजनिक महत्त्वके मसले पर शिक्षित करें और सार्वजनिक नीतियोंके कार्यान्वयमें सहयोग देनेके लिए उन्हें प्रेरित करें, हमें ऐसा राज्य चाहिए जिसका गठन एकात्मक न हो बल्कि जो छोटे-छोटे लोकतन्त्रोंका एक सन्तुलित जाल हो जिसमें जनता एक सक्रिय और सीधा हिस्सा ले सके। इसलिए ही नहीं कि एक अमूर्त राज्यकी मदद हो बल्कि इसलिए कि इस प्रकार वह सम्प्रभु नागरिक बननेकी दीक्षा लेगें।"

Select Readings

Bhave, V —*The Bhoodan Movement*
Cole, G D H —*Guild Socialism Restated*
Coker, F —*Recent Political Thought*—Chs II, VIII, IX
Gandhi, M K —*Sarvodaya*
Hallowell J H —*Main Currents in Modern Political Thought*—Chs XI to XIV
Hunt, Carew—*The Theory and Practice of Communism*—Chs IV, XV, XVI
Joad, C E M —*Modern Political Theory*—Chs III, IV, V
Laidler, H W —*Social Economic Movements*—Chs XVI, XVIII, XXII, XXIII
Laski, H J —*Karl Marx—An Essay*
Narain, Jai Prakash—*Articles in Newspapers, 1957*
Strachey John—*The Theory and Practice of Socialism*
The First Two Year Plans—*Government of India Publication*
The Community Development Projects—*Government of India Publication*

२२

सर्वाधिकारवादी राज्य

(The Totalitarian State)

१ सर्वाधिकारवादका अर्थ

आधुनिक राजनीतिक साहित्यमे 'सर्वाधिकारवादी राज्य' शब्दका प्रयोग 'उदार लोकतन्त्रीय राज्य' शब्दके विरोधमे किया जाता है। सर्वाधिकारवादी राज्य मनुष्यके सम्पूर्ण जीवन पर अधिकार रखनेका दावा करता है। मनुष्यके जीवनका कोई भी अंश इसके सूक्ष्म निरीक्षण और नियत्रणसे बाहर नही होता। जिस प्रकार बाइबिल का उपदेश है कि "हमारा जीवन, हमारी क्रियाशीलता और हमारा अस्तित्व परमात्मामें ही होता है," उसी प्रकार सर्वाधिकारवाद हमे सिखाता है कि 'हमारा जीवन, हमारी क्रियाशीलता और हमारा अस्तित्व राज्यमें ही है।' सर्वाधिकारवादके अनुसार मनुष्यके जीवन पर उसका अधिकार नही होता। यह राज्यका धरोहर है और इसका प्रयोग राज्यके हितमें ही होना चाहिए। मुसोलिनी के शब्दोंमे 'यदि उन्नीसवीं शताब्दी समाजवाद, उदारवाद और लोकतन्त्रका युग थी तो बीसवी शती अधिकार सत्ता, समष्टिवाद (collectivism) और सर्वाधिकारवादी राज्यका युग है।'

प्राचीन कालमे यूनानका नगर राज्य सर्वाधिकारवादी था पर अच्छे अर्थमे। उस समयकी परिस्थितियाँ आजकी परिस्थितियोंमे बिल्कुल भिन्न थी इसलिए राज्य के कर्तव्य भी अनेक प्रकारके थे। उस समयका राज्य धर्मसंघ (church), शिक्षा-संस्थान (school) और राज्य इन तीनोंका सम्मिलित रूप था। राज्य और समाज का करीब-करीब एक ही माना जाता था। नागरिक जीवन ही यूनानियोंका जीवन था। जैसा कि मैकाइवर का कहना है, एक यूनानीके लिए नागरिकता उसका धर्म था। यूनानी नागरिकका अपने नगर राज्यके प्रति इतना अधिक स्नेह था कि उसका यह आदर्श सही था कि "वह (नगर राज्य) हमारा है और हम उसके है।"

आजकलका सर्वाधिकारवादी राज्य यूनानी नगर राज्यसे बिल्कुल भिन्न होता है। यह फ्रांसके बादशाह चौदहवें लुई की प्रसिद्ध उक्ति "मैं ही राज्य हूँ" का आधुनिक रूप है। सर्वप्रथम हीगेल ने सर्वाधिकारवादी राज्यको दार्शनिक रूप दिया। उन्होंने राज्यको सातवें आसमान तक पहुँचा दिया। वह राज्यको 'धरती पर

आत्म-संयमनी देशोंमें भी जहाँ व्यक्तिगत स्वाधीनताके प्रति प्रेम बहुत गहरा है, राज्यका कार्य क्षेत्र बढ़ रहा है। इसका परिणाम एक नये प्रकारका सर्वाधिकारवाद हो सकता है जिसे लोकतन्त्रीय सर्वाधिकारवाद (democratic totalitarianism) कहा जा सकता है। अमेरिकामें "सांवैधानिक तानाशाही" (constitutional dictatorship) का उदय सम्भव है। ग्रेट ब्रिटेनके बारेमें लन्दनके एक दैनिक समाचार पत्रने विनोदमें लिखा है "भले ही हमारा देश सबसे अच्छा शासित न हो, भले ही हमारा देश सबसे बुरा शासित भी न हो, पर ईश्वर की सौगन्ध हमारा देश सबसे अधिक शासित अवश्य है।"

यह मानना गलत है कि राज्यका सर्वाधिकारवादी सिद्धान्त प्रारम्भसे ही पूर्ण विकसित रूपमें प्रतिपादित किया गया था जिसकी प्रेरणासे आधुनिक सर्वाधिकारवादी आन्दोलन हुए हो। तथ्य यह है कि समय-समय पर हुए आन्दोलनोंसे तथा जीवनकी वास्तविक परिस्थितियोंसे सर्वाधिकारवादी सिद्धान्तका विकास हुआ। यह एक ऐसा उदाहरण है जिसमें तथ्योंसे सिद्धान्त बना है। तथ्योंने सिद्धान्तका अनुकरण नही किया है। यह बात फासिस्टवाद और नाजीवादके बारेमें विशेष तौर पर सही है। ये दोनों ही तत्वतः बुद्धि-विरोधी (anti-intellectual) आन्दोलन थे। प्रथम विश्व-युद्धके बादके वर्षोंकी इटली और जर्मनीकी विशेष आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियोंकी पृष्ठभूमिमें ही इन्हें ठीक प्रकारसे समझा जा सकता है।

२ सर्वाधिकारवादी राज्यकी विशेषताएं
(Features of the Totalitarian State)

(१) सर्वाधिकारवादी राज्यमें बुद्धि-विवेकका तिरस्कार किया जाता है और स्वाभाविक प्रवृत्तियों (instincts) और अन्तर्प्रेरणाओं (impulses) को बहुत महत्त्व दिया जाता है। फासिस्ट इटली और नाजी जर्मनीमें यह बात विशेषरूपसे सही थी। इन राज्यों में जिस राज्य सिद्धान्तका विकास किया गया वह बुद्धि-विरोधी था। स्वाभाविक प्रवृत्ति और इच्छाको बुद्धि-विवेकसे अधिक महत्त्व दिया गया। सारे ही पश्चिमी संसारमें मनुष्यको परमात्माका प्रतिबिम्ब माननेकी धारणा समाप्त होती जा रही है।

(२) सर्वाधिकारवादी राज्यका स्वरूप तानाशाही (dictatorial) होता है। यह उदारवाद और संसदीय शासनका विरोधी है।[१] यह एक व्यक्ति या एक पार्टीके

---

[१] नाजीदल का नारा यह था 'विधिके सम्मुख व्यक्ति नहीं, राष्ट्र सर्वप्रधान है।'
'उदारवाद जीवनका वह दर्शन है जिसे अब जर्मन युवक घृणा तथा क्रोधकी और हेय दृष्टिसे देखता है क्योंकि दूसरा कोई भी जीवन-दर्शन इससे अधिक घृणास्पद और उसके स्वयं अपने जीवन-दर्शनके इतना अधिक विरुद्ध नही है। आज दिन जर्मनी का युवक उदारवादीको अपना शत्रु मानता है।'

—मोयलर फॉन डेर बक, १९३४

हाथोंमे सर्वोच्च-सत्ता सौंप देना है। रूसकी तानाशाही वामपक्षी (leftist) तानाशाही है और इटली और जर्मनी की तानाशाही दक्षिणपक्षी (rightist) तानाशाही थी। रूसकी तानाशाही एक पार्टी[1] की तानाशाही है। पर इटली और जर्मनीकी तानाशाही एक व्यक्तिकी तानाशाही था। फासिस्ट इटली और नाजी जर्मनी दोनो मे एक व्यक्तिके नेतृत्वको बिना किसी तर्क-वितर्कके माना जाता था।

ससदीय लोकतत्र सर्वाधिकारी राज्यके लिए अभिशाप है। इसे मूर्ख, भ्रष्ट और सुस्त बतलाया जाता है। ससदोको बातूनियोका बाजार, कुछ कर पानेमे असमर्थ, और सकटके समय एकदम असहाय बताकर उनका तिरस्कार किया जाता है। एक फासिस्टवादीके कथनानुसार लोकतत्र एक सडती हुई लाश है। सर्वाधिकारवाद प्रत्यक्ष कार्रवाईमे विश्वास करता है। फिर भी सर्वाधिकारवाद शुद्ध एकतत्रवाद (autocracy) नही है। सर्वाधिकारवादमे अभिजात तत्र (aristocracy) के इस सिद्धान्तको कि शासनकी बागडोर विशेषाधिकार प्राप्त कुछ खास लोगोके हाथोमे हो, लोकतत्रके इस सिद्धान्तके साथ मिलाया गया है कि शासक वर्गका चुनाव विस्तृत आधार पर किया जाय।

(३) सर्वाधिकारवादी राज्य व्यक्तिगत स्वाधीनताको कुचल देता है। साम्यवाद व्यक्तिगत स्वाधीनताको मध्यवर्गीय (bourgeois) धारणा मानता है। समय-समय पर राजनीतिक विरोधियो और सेनानायकोका हटाया जाना इस बातका प्रमाण है। फासिस्टवाद और नाजीवाद जन साधारणमे कुछ भी विश्वास नही करते। वे व्यक्तिगत स्वाधीनता की धारणाको पुराने जमानेकी दकियानूसी, अविवेकपूर्ण तथा असभ्य धारणा मानते है।

सर्वाधिकारवाद किसी प्रकारका राजनीतिक विरोध सहन नही करता। यह एक पार्टीका शासन होता है। केवल पार्टीके भीतर ही आलोचना करनेकी छूट रहती है। आलोचना का उद्देश्य शासन यत्रमे सुधार करना होना चाहिए, उसे उखाड फेकना नही। सर्वाधिकारवादी राज्यमे सोचने समझने, भाषण देने और लिखनेकी स्वतत्रता नही होती। समाचार पत्रो पर, पुस्तकोके प्रकाशन पर, रेडियो, चलचित्र उद्योग, थियेटर, सगीत और कला पर बहुत कडा नियत्रण रखा जाता है। सभा करने या सघ बनानेकी स्वतत्रता नही होती।[2] फासिस्ट इटलीमे हडताल करनेकी मनाही थी।

---

[1] सन् १९५३ मे स्तालिन की मृत्युके बाद आजके रूसमे यह बात और भी सत्य है। स्तालिन के व्यक्ति-मूलक अधिनायकत्वके स्थान पर सामूहिक नेतृत्व कायम किया जा रहा है, यद्यपि ख्रुश्चेव एक तानाशाह होते जा रहे है। अपने प्रतिद्वन्द्वियोसे छुटकारा पाकर तथा उन्हे पीछे ढकेलकर ख्रुश्चेव १९५८ मे प्रधान मत्री बन गये। तबसे उन्हे अर्ध-स्तालिनवादी कहा जाता है।

[2] "व्यक्तिकी स्वाधीनता जैसी कोई चीज नही होती। स्वाधीनता जाति या राष्ट्रकी होती है, क्योकि ये ही वे पार्थिव और ऐतिहासिक वास्तविकताए हैं जिनके द्वारा व्यक्तिके जीवनका अस्तित्व कायम रहता है।" —(डा० ऑटो डीट्रिच, १९३७)

इटली और जर्मनीमे प्रोफेसरो और स्कूल मास्टरोकी बार-बार जाच-पडताल की जाती थी। स्कूलोका प्रयोग राजनीतिक प्रचारके लिए किया जाता था। जनता के सम्पूर्ण जीवन पर राज्यका नियत्रण रहता था। प्रशासन सेवा (civil service), न्यायपालिका, सेना और विश्वविद्यालयसे 'राष्ट्र विरोधी तत्वो' का निकाल दिया गया था। जर्मनीमे विश्वविद्यालयके अध्यक्षोको सरकारके सस्कृति-विभागके मत्री नियुक्त किया करते थे। समाचार पत्रोको शासनकी आलोचना करनेकी इजाजत नही थी। इटलीके प्रमुख मेधावियो (intellectuals) की या तो हत्या कर दी गयी थी, या उन्हे जेलोमे बन्द कर दिया गया था या फिर देशसे निकाल दिया गया था। १९२४ मे इटलीमे मेटियाटी (Matteotti) का रहस्यपूर्ण ढगसे लोप हो जाना और जर्मनीमे १९३४ मे रोएम (Roehm) और उनके दलको मौतके घाट उतारा जाना सर्वविदित है और उस पर टीका टिप्पणी करनेकी आवश्यकता नही है।

फासिस्टवाद और नाजीवाद दोनो ने घोर प्रचार किया और जनताको प्रभावित करनेके लिए सभी सम्भव मनोवैज्ञानिक साधनोको अपनाया। उन्होने जनताको उत्साहित करनेके लिए सैनिक प्रदर्शनो कवायदो और भाषण कलाका उपयोग किया। जर्मनीमे राजनीतिक विरोधियोको जेलो और बन्दी शिविरोका रास्ता दिखाया गया। नाजियोके शासनारूढ होनेके कुछ महीनोके भीतर ही पचास हजारसे अस्सी हजार राजनीतिक कैदियोको बन्दी शिविरोमे ठूस दिया गया। हिटलर का कहना था कि प्रचार कार्यमे अच्छे लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए बुरे साधनोका अपनाया जाना भी उचित है।

सर्वाधिकारवादी राज्यमे समाचार पत्रोको आंख बन्दकर सरकारका पूरा-पूरा समर्थन करना पडता था। डॉ० गावेल्स का कहना था कि समाचार पत्रोको पियानो का बाजा बन जाना चाहिए जिनसे सरकारी प्रचार विभाग जब जैसा चाहे तब वैसा स्वर निकाल सके। देशमे केवल एक ही मत हो सकता था और सबको राष्ट्रका एक होकर सोचना पडता था। रेडियो पर होनेवाले भाषण सैनिक ढगके युद्धकालीन जोशीले भाषण होते थे। युद्धकी तैयारी ही इन भाषणोका एकमात्र विषय होता था। युद्धकी स्थितिमे शत्रुका प्रचार सुनना इतना भयकर अपराध माना जाता था कि मौत तककी सजा दी जा सकती थी। इसी प्रकार फासिस्ट इटलीमे सरकारी समाचार विभागका प्रधान बतलाता था कि कौन सा समाचार प्रकाशित किया जाय और कौन-सा दबा दिया जाय। ऐसी परिस्थितियोमे इसमे कोई आश्चर्य नहीं कि जनता ने समाचार पत्रोका पढना ही छोड दिया था।

'स्वेच्छासे घूमने फिरनेकी स्वतत्रता न देना हमारे समस्त भावी जीवनके लिए बहुत आवश्यक है, और इस पर जोर दिया ही जाना चाहिए, भले ही लाखो लोग व्यक्तिगत स्वतत्रता पर लगनेवाली इस रोकको हानिप्रद समझे।'—(रोजेनबर्ग)

वे सभी व्यक्ति विधिके समक्ष समान समझे जायगे जो राष्ट्रीय उद्देश्यकी पूर्तिमें सहायक हैं और सरकारका समर्थन करनेसे इन्कार नही करते'। (हिटलर, १९३३)

सर्वाधिकारवादी राज्यमें व्यक्ति अपने नेता और नेता वर्गकी अधिकार सत्ताके पूर्ण-रूपेण अधीन होता है। जब कोई व्यक्ति फासिस्ट पार्टीमें शामिल होता था तब वह यह शपथ लेता था—"परमेश्वर और इटलीके नाम पर मैं शपथ लेता हूं कि मैं ड्यूस (मुसोलिनी) के आदेशोंका पालन बिना किसी प्रकारके तर्क-वितर्कके किया करूंगा और अपनी समूची शक्तिसे तथा आवश्यकता पड़ने पर अपना रक्त देकर भी फासिस्ट क्रान्तिका लक्ष्य प्राप्त करूंगा।" अधिकार सत्ता, अनुशासन और अधीनता फासिस्ट पार्टीके मूल मंत्र थे। देशके युवक संगठनके समक्ष मुसोलिनी ने यह आदर्श रखा था—'विश्वास करो, आज्ञा मानो, लड़ो।

(४) सर्वाधिकारवाद राष्ट्रको अत्यधिक गौरव प्रदान करता है। वह राज्यको एक शक्ति-व्यवस्था (power system) मानता है। संकीर्ण राष्ट्रीयता, अन्ध देश प्रेम (chauvinism), आक्रमण मूलक युद्ध और साम्राज्यवादी विस्तार फासिस्ट-वाद और नाजीवाद दोनोंकी कुछ मौलिक विशेषताएं थी। रूसी साम्यवाद भी राष्ट्रीयतावादी और सैन्यवादी हो गया है।

फासिस्टवादके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति कायरोंका स्वप्न है। शान्ति-प्रियता "बलिदानका अवसर आ जाने पर भागना है।" फासिस्टवादी राष्ट्रीयतावादी भावनाओंका दुरुपयोग करते हैं। वे समाजवादियों और साम्यवादियोंके अन्तर्राष्ट्रीयतावादको बहुत बढ़ा-चढ़ा कर तथा तोड़-मरोड़ कर चित्रित करते हैं। वे समाजवादियों पर यह ताना मारते हैं कि समाजवादी अपने देशको छोड़कर अन्य सभी देशोंके हितचिन्तक होते हैं।

फासिस्टवादी इटलीकी शिक्षा प्रणाली अधिकतम अन्ध-देश प्रेम पूर्ण थी। स्कूलोंका संचालन सैनिक अनुशासनके ढंग पर होता था। शक्ति और हिंसा की भूरि-भूरि प्रशंसा की जाती थी। विचारकर्त्ता अपेक्षा क्रियाशील व्यक्तिका अधिक महत्व दिया जाता था।

इटली और जर्मनी दोनों ही कच्चा माल पानेके लिए अपनी बनायी हुई चीजों की बिक्रीके लिए तथा अपनी 'अधिकार लिप्सा' का सन्तुष्ट करनेके लिए उपनिवेश चाहते थे। मुसोलिनी ने कहा था, साम्राज्यवाद जीवनका अनन्त और कभी न बदलनेवाला नियम है। हम चार करोड़ व्यक्ति अपने संकीर्ण पर अर्च्चनीय प्रायद्वीपमें न जाने किस प्रकार गुजर कर रहे हैं। मुसोलिनी का कहना था कि इटली का विस्तार इटलीके लिए जीवन और मरणका प्रश्न है। इटलीका "या तो विस्तार होगा या विनाश होगा।"

मुसोलिनी और हिटलर दोनों ही युद्धकी आवश्यकताका खुले आम प्रचार करते थे। पौरुष पूर्ण गुणोंके विकासके लिए वह युद्धको जरूरी बतलाते थे। फासिस्टवादी नीतिके परिणामस्वरूप युद्ध अनिवार्य था। हिटलर विजयी तलवारकी शक्तिमें विश्वास करता था। उसने लार्ड बर्केनहेड के इस कथनकी सच्चाई सिद्ध की कि संसार उन्हींकी भूरि-भूरि प्रशंसा करता है और उन्हींको उपहार देता है जिनकी तलवारकी

धार तेज होती है और जिनके दिल मजबूत होते हैं। रोएम ने कहा था "एक सैनिक के दृष्टिकोणसे शान्तिवाद सैद्धान्तिक कायरता है। कायरता कोई दर्शन नहीं है, बल्कि यह चरित्रका दाग है।" सर्वाधिकारवादी देश सैनिकवादी होते है और भूखो रहकर भी शस्त्राकरण पर विशाल धन व्यय करते है।

हिटलर की महत्वाकांक्षा न केवल उन प्रदेशोंका फिरसे जीन लेनेकी थी जिन्हें जर्मनीने वारसाईकी सन्धिके परिणामस्वरूप खो दिया था, बल्कि वह उन सब प्रदेशोको भी जर्मनीमे मिला लेना चाहता था जिनमे पर्याप्त जर्मन अल्पसंख्यक रहते थे। म्युनिक समझौते (१९३८) के बाद की घटनाओने यह स्पष्ट कर दिया था कि हिटलर केन्द्रीय और पूर्वी योरोप पर मुनरो-सिद्धान्त (Monroe doctrine)[१] जैसी कोई व्यवस्था लागू किये बिना सन्तुष्ट न होगा। पर युद्धमे रूसके हाथो बार बार पराजित होनेके कारण उसके इस स्वप्नका पूरा होना असम्भव हो गया।

(५) सर्वाधिकारी राज्यमे किसी अन्य राजनीतिक सिद्धान्त या आदर्शकी गुंजाइश नही होती। यह उदारवाद और मानवतावादमे विश्वास नही करता। जर्मनीमे जातीय द्वेष और घृणाकी भावनाओको बहुत उभारा गया था। जर्मनीका विश्वास था कि नॉर्डिक जाति सब जातियोमे सबसे अच्छी है। पर नॉर्डिक जातिकी यह जातीय श्रेष्ठता विज्ञानसे भली प्रकार प्रमाणित नहीं होती। यद्यपि आधेसे कम ही जर्मन नार्डिक जातिके है पर शुद्ध आर्य जातिका विकास ही नाज़ीवादका लक्ष्य था। नाजियोने अपनी भाषा, अपने साहित्य और अपनी जातिकी शुद्धता बनाये रखने का प्रयत्न किया था।

सर्वाधिकारवादी राज्य अपनेको आर्थिक तौर पर स्वावलम्बी बनानेका प्रयत्न करता है। इटली और जर्मनी दोनोकी आर्थिक नीति यह थी कि युद्ध संचालनमे काम आनेवाले पदार्थोंके लिए उन्हें विदेशो पर यथासम्भव कमसे कम निर्भर रहना पडे। इसी नीतिके अनुसार जर्मनीने नकली ऊन, रुई और रबड काफी मात्रामें पैदा की। अपने तैयार मालकी बिक्री बढ़ानेके लिए उसने एक राष्ट्रके रूपमे विदेशी वाणिज्य और व्यापारके क्षेत्रमे प्रवेश किया।

(६) सर्वाधिकारवादी राज्य धर्मका प्रतिद्वन्द्वी हो गया। साम्यवादने तो प्रारम्भ में धर्म पर प्रतिबन्ध लगा दिया था, पर फासिस्टवाद और नाजीवादने तो धर्मको सर्वाधिकारवादी राज्यके उद्देश्यकी सिद्धिका साधन ही बना लिया। नाज़ीवादका तो यह खासकर आदेश था कि लोग जो भगवान्को अर्पण करना चाहते है वह शासकको दे। नाजीवाद एक सकीर्ण, बहिष्कार मूलक (exclusive) और गैर-ईसाई-

---

[१] अमेरिकाके राष्ट्रपति मुनरो (१८२३) के नामसे प्रसिद्ध, इस मनरो सिद्धान्त का आशय यह है कि कोई भी योरोपीय देश अमेरिकी महाद्वीपके राजनैतिक मामलो में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न किया करे। इसी प्रकार हिटलर भी चाहते थे कि कोई भी बाहरी देश केन्द्रीय और पूर्वी योरोपके राजनीतिक मामलोमे किसी प्रकारका हस्तक्षेप न किया करे।

ईसाई-धर्म (un-Christian Christianity) स्थापित करना चाहता था जिसे नार्डिक ईसाई-धर्म कहा जाता था। बाइबिलकी, ईसा मसीहके उपदेश की तथा ईसाई परम्पराओंकी वे बातें, जो नॉर्डिक विचारधाराके अनुरूप नहीं थीं निकाल बाहर की गयी। हिटलर को नया त्राता (saviour) माना जाता था। उन्हें मसीहा, और धरती पर भगवान्‌का प्रतिनिधि समझा जाता था। सर्वाधिकारवादी राज्य सर्वाधिकारवादी धर्मका शत्रु था। जे० ए० स्पण्डर ने लिखा था "रूसने धर्मको समाप्त करनेकी कोशिश की है, मुसोलिनी ने उसे निष्क्रिय और निष्प्राण बनाने की चेष्टा की पर हिटलर ने इसे अपने अधीन बनानेका यत्न किया।'[1] स्पेण्डर के उक्त कथनमें इतना और जोड़ा जा सकता है कि फ्रांको धर्मका शोषण कर रहा है।

(७) तीनों तानाशाही राज्योंमें सर्वाधिकारवाद जन आन्दोलन बन गया। स्वतंत्र मतदानके अभावमें यह कह सकना कठिन है कि सर्वाधिकारवादको जनताका समर्थन कहाँ तक प्राप्त है। प्रारम्भमें तो सर्वाधिकारवादी आदर्श और तानाशाही तरीके कुछ थोड़ेसे लोगों तक ही सीमित थे और बहुतसे लोग इनकी खिल्ली भी उड़ाते थे। पर दृढ़ निश्चय, संकल्प और लक्ष्यके बल पर सुसंगठित और पूर्णरूपेण अनुशासित स्पष्ट राजनीतिक और राष्ट्रीय लक्ष्य रखनेवाले मुट्ठी भर सदस्योंका दल अपनेको देशका भाग्य विधाता बनानेमें सफल हुआ। यही नहीं, उन्होंने जनताका पूरा-पूरा समर्थन भी प्राप्त कर लिया। जनताका समर्थन प्राप्त करनेमें, विशेषकर इटली और जर्मनीमें, जन मनोविज्ञान, प्रत्यक्ष कार्रवाई और आतंकवादने बड़ा काम किया। रूसमें, खाने पीनेकी अत्यधिक सुख-सुविधाओंके वादोंने जनताको बाल्शेविक आन्दोलनका समर्थक बना दिया। जर्मनी और इटलीमें घृणा और प्रतिहिंसाकी भावनाओं, साम्यवादके हौवेका, तथा विस्तृत साम्राज्य विजयके प्रलोभन का प्रयोग जन समर्थन प्राप्त करनेके लिए किया गया। जनताको समझाया गया कि विस्तृत साम्राज्यसे उनके अभाव दूर हो जायगे और उन्हें विस्तार करनेका पर्याप्त अवसर मिल जायगा। जनताके विवेकको जागृत करनेके बजाय उसकी ओछी भावनाओंको उभारा गया। फलत जनताने राज्यकी आज्ञाओंका पालन आंख मींचकर मशीनकी तरह किया। उन्हें सैनिक शिक्षा इतनी अच्छी तरह दी गयी कि वे अन्धी, विवेकहीन प्रवृत्तिके वशीभूत होकर दूसरी जातियोंके प्रदेशोंको जीतनेके लिए युद्धके मैदानमें टिड्डी दलकी तरह पिल पड़ते थे।

३. सर्वाधिकारवादकी सफलता (What Totalitarianism Has Done)

सर्वाधिकारवादके उद्देश्यों और उसकी नीतियोंसे हम चाहे कितना ही असहमत क्यों

---

[1] जर्मन भूमि, जर्मन रक्त, जर्मन आत्मा और जर्मन कला—ये चारों चीजें जर्मनोंके लिए धरती पर सबसे पवित्र वस्तुएं होनी चाहिए। जब जर्मनीका प्रत्येक नर और नारी इन चारों पवित्र भावनाओंसे ओत प्रोत हो जायगा तब वह उन्हें एकता के सूत्रमें बांधनेवाले और विजय मुकुट पहिनानेवाले नार्डिक धर्मको स्वीकार करनेको तैयार रहेगा।

न हो पर यह बात माननेसे इन्कार नहीं किया जा सकता कि साम्यवाद, फासिस्टवाद और नाजीवाद ने अपने-अपने देशकी जनतामें अपने लक्ष्योंके प्रति इतनी अधिक निष्ठा पैदा की कि लक्ष्योंकी प्राप्ति ही लोगोंके जीवनका एकमात्र उद्देश्य हो गया और वे अपनी जान देकर भी लक्ष्य प्राप्त करनेको तैयार हो गये। सर्वाधिकारवादने जनता को एक सूत्रमें बाँध कर राष्ट्रीय एकताकी वृद्धि की।

नाजी जर्मनी और फासिस्ट इटलीमें सर्वाधिकारवादने जनताका कुछ कल्याण अवश्य किया पर इसके बदलेमें जनताको अपनी स्वाधीनता खोनी पड़ी। इस कल्याण के लिए लौह अनुशासन, सैनिक शक्ति और युद्धका सहारा लेना पड़ा। सर्वाधिकार-वादी शासनमें इन देशोंकी जो कुछ समृद्धि हुई वह थोड़े ही समय तक रही क्योंकि इसका आधार ही गलत था।

यद्यपि इन देशोंमें सर्वाधिकारवाद पराजित हो चुका है, पर इस बातकी गारण्टी नहीं है कि वह एक बार फिर अपना सिर न उठायेगा। जर्मन जैसी समझदार और ज्ञानी जातिने किस प्रकार अपनेको सर्वाधिकारवादके हाथों समर्पित कर दिया, यह बहुत समय तक एक रहस्य ही बना रहेगा। सर्वाधिकारवादकी सफलतासे यह पता चलता है कि मनुष्यमें नेतृत्व और अधिकार सत्ताका अनुगमन करनेकी तथा कार्य करनेकी उत्कट इच्छा होती है। इस इच्छाको सही मार्ग पर बनाये रखनेके लिए यह जरूरी है कि इस इच्छाके साथ ही साथ लोगोंमें स्वावलम्बी बनने, अपने पैरों पर स्वयं खड़े होने और स्वयं सोचने-विचारनेकी भी इच्छा हो।

४ सर्वाधिकारवादका भविष्य (What of the Future?)

सर्वाधिकारवादी राज्योंने जनताका जो कुछ कल्याण किया है वह उस मूल्यके सामने कुछ भी नहीं है जो जनताको उस कल्याणके लिए चुकाना पड़ा है, जैसा कि ए० डी० लिण्डसे ने कहा है, 'सर्वाधिकारवादी सरकारके साथ लोकतन्त्रका मौलिक संघर्ष यह नहीं है कि यह सरकार जनता द्वारा चुनी न जाकर तानाशाही तरीकेसे बनती है और अपनी शक्तिसे जनताको अपने वशमें रखती है। संघर्ष इस बातका है कि सर्वाधिकार वादी राज्य अपना लक्ष्य उचित और अनुचितका विचार किये बिना बनाता है और उसे गलत तरीकोंसे येन केन प्रकारेण प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है। सर्वाधिकार-वादी राज्यका कहना है कि व्यक्तिका काम केवल राज्यकी सेवा करना, उसकी शक्ति बढ़ाना और उसके गौरव-गीत गाना है। इसके विपरीत लोकतन्त्रवादी कहता है कि राज्यका एकमात्र कर्तव्य यह है कि वह समाजकी सेवा करे और उसके स्वतन्त्र जीवन का उत्थान करे। (५२ ७-८)।"

सर्वाधिकारवादका परिणाम व्यक्तिगत स्वाधीनताका अन्त, मानव व्यक्तित्वका दमन, देशके भीतर हिंसाका प्रयोग और विदेशों पर लज्जाहीन आक्रमण हुआ है। यही नहीं, सर्वाधिकारवादके कारण मानव स्वभावका पाशवीकरण और पूरी जातिका

सैन्यीकरण भी हुआ है। वारसाई सन्धिके अन्याय, जो तानाशाहोंकी सामरिक और आक्रमण-मूलक नीतियोंके लिए वरदान साबित हुए तथा वर्तमान समयमें होनेवाले अन्य अन्याय स्थायी नहीं हो सकते।

सर्वाधिकारवादने यह स्पष्ट कर दिया है कि अपनी स्वाधीनता कायम रखनेके लिए हमें हमेशा और हर प्रकारसे सावधान रहना चाहिए। व्यक्तिगत स्वाधीनता, समानता, बन्धुत्व और मानवतावादके प्रति केवल मौखिक सहानुभूति ही काफी नहीं है। हमें इन आदर्शोंके लिए बराबर प्रयत्न करते रहना होगा। आधुनिक तानाशाहियोंके उदय और विस्तारने यह साबित कर दिया है कि तानाशाहीका मूल कारण भय और अरक्षाकी भावना है। मध्य वर्गके भयभीत होने पर ही फासिस्टवादका उदय होता है।

सर्वाधिकारवादकी इतनी सफलताका मुख्य कारण यह है कि इसने इस अर्ध सत्यसे पूरा-पूरा लाभ उठाया कि मनुष्य मूलतः अविवेकी होता है। मनुष्यकी प्रवृत्तियों, भावनाओं, और राग द्वेषोंको ठीकसे समझ कर और इन भावनाओंका कुशल उपयोग करके ही सर्वाधिकारवाद शक्तिशाली बना। इसने यह साफ-साफ सिद्ध कर दिया है कि हर राजनीतिज्ञ और प्रशासकके लिए वर्गगत मनोविज्ञानका गूढ़ ज्ञान और प्रचार कलामें क्षमता अत्यन्त आवश्यक है। ऐसे समयमें जब समाज और संस्कृति दिन प्रति दिन राजनीतिमें अधिकाधिक ओत-प्रोत होती जा रही है, सर्वाधिकारवाद हमें बताता है कि राजनीतिक शक्तियोंका वास्तविक अध्ययन बहुत आवश्यक है। सर्वाधिकारवाद हमें यह भी बताता है कि हर प्रकारका जीवन दर्शन अच्छा होता है यदि लोगोंमें उसके प्रति हार्दिक लगन हो और वे इसके लिए सब कुछ करने और मरनेको तैयार हों।

सर्वाधिकारवादकी एक मौलिक कमजोरी यह है कि यद्यपि यह मनुष्यके सामूहिक स्वभाव (gregarious nature) को अच्छी तरह समझता है पर वह यह नहीं समझता कि हर मनुष्यमें एकान्तचिन्तन और आत्मपरीक्षणकी भी लालसा रहती है।

यदि लोकतन्त्रको सफल होना है तो तानाशाहीसे केवल युद्ध करते रहनेसे ही उसे कोई लाभ न होगा। लोकतन्त्रको केवल एक धारणा बने रहनेके बजाय एक जीता जागता तथ्य बनना होगा, उसे अपनेको वर्गगत आधिपत्य आर्थिक अन्याय और साम्राज्यवादी शोषणसे मुक्त करना होगा। उसे जीवनके प्रत्येक क्षेत्रको प्रभावित करना होगा और स्वाधीनता तथा समानताके उन सिद्धान्तोंकी प्रतिष्ठा करनी होगी जो ऊपरसे देखनेमें एक दूसरेके विरोधी मालूम होते हैं।

रूसमें सर्वाधिकारवाद (Totalitarianism in Russia)

रूसमें सर्वाधिकारवादका उदय (Emergence of Totalitarianism in Russia)

इटली और जर्मनीके सर्वाधिकारवादकी तुलनामें रूसी सर्वाधिकारवादका उदय भिन्न प्रकारसे हुआ। रूसी सर्वाधिकारवादका एक निश्चित बौद्धिक आधार था।

पहले साम्यवादके विशिष्ट सिद्धान्तका शास्त्रीय रूपसे प्रतिष्ठित किया गया और फिर उसे व्यावहारिक रूप दिया गया। जारशाही रूस निरकुश एकतन्त्र शासनवाला देश था, यद्यपि उस समय ससद (जिसको Duma कहते थे) आदि भी थी जो लोकतन्त्रीय स्वाग बनाये हुए थी। उदारवादी और क्रान्तिकारी आन्दोलनोको पूरी तरह कुचल दिया गया था। सर्वहारा वर्गमे लोकतन्त्रीय सगठनोका पनपन नही दिया गया। किसान अपढ, अज्ञानी, अन्ध-विश्वासी और दरिद्र थे। धार्मिक सत्ता (church) का पतन हो रहा था और उसने राज्यसे अपवित्र गठबन्धन कर रखा था। शेष योरोप की तुलनामे रूस बहुत पिछडा हुआ था।

उक्त सब कारणोसे देश क्रान्तिकारी परिवर्तनके लिए बिल्कुल तैयार था। उस समय रूसमे दो पार्टियाँ थी। पहली बाल्शेविक और दूसरी मेनशेविक। बोल्शेविक बहुमतमे थे। प्रथम महायुद्धमे रूसका पतन हो जानेसे बोल्शेविकोको अपने सिद्धान्त को कार्य रूपमे परिणत करनेका मौका मिल गया। बोल्शेविक पार्टीके नेता और विचारक लेनिन थे। जार और उनके परिवारको फाँसी दे दी गयी। पुरानी व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया। कमजोर लोकतन्त्रीय सगठन दबा दिये गये। किसानोसे जमीन देनेका वादा किया गया। मजदूर और सैनिक समितियोको सारी शक्ति सौप दी गयी। बाल्शेविकवादका साम्यवाद कहा जाने लगा। इसने आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की। यह सफलता इसलिए मिली 'क्योकि राज्य दुर्बल था, उद्योग-धन्धे पिछडे हुए थे, लोकतन्त्रीय परम्पराओका अभाव था। लेनिन और ट्रॉट्स्की की प्रतिभा भी इस सफलताका बहुत बडा कारण थी। जर्मनी और मित्रराष्ट्रोके हस्तक्षेपसे बोल्शेविकोंको और भी मौका मिल गया। उन्होने राष्ट्रीयताका सबल और आकर्षक नारा लगाकर अपनी सफलता और भी सुदृढ कर ली (१२ २४१–२)।'

रूसी जनताके जीवनमे 'युद्धरत साम्यवाद' की अवधि (१९१८ से लेकर १९२१ तक) मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। इन चार वर्षोमे सभी उद्योगोका या तो राष्ट्रीय-करण कर दिया गया या उन्हें स्थानीय शासनके नियत्रणमे रख दिया गया। निजी व्यापार पर रोक लगा दी गयी। किसान अपनी उपजका केवल उतना अश अपने पास रख सकते थे जितना उनके निजी उपभोगके लिए आवश्यक था। उत्पादनमें तेजीसे कमी हुई और लाखो व्यक्ति तबाह हो गये। इन कठिनाइयोंके अतिरिक्त रूसी सरकारका एक और कठिनाईसे गुजरना पडा। उसे 'श्वेतो दल' (Whites) की क्रान्ति-विरोधी सेनाओमे निदय युद्ध करना पडा। १९२१ तक रूस करीब-करीब तबाह हो चुका था। अत १९२१ मे सोवियत क्रान्तिके भाग्यविधाता लेनिन ने बडी ही दूरदर्शिता और बुद्धिमानीसे काम लेकर नयी आर्थिक नीति लागू की। इस नीतिके अन्तर्गत पूँजीवादको अनेक सुविधाए दी गयी। लेनिन का यह कार्य उस युद्ध-कौशलके समान था जब युद्ध-रत सेना आगे बढनेके पूर्व कुछ समयके लिए स्वत पीछे हट जाती है। लेनिन की इस नयी आर्थिक नीतिके फलस्वरूप सरकारको साँस लेनेकी फुरसत मिल गयी, इसकी बहुत आवश्यकता थी। सरकारने अपनी आन्तरिक स्थिति सुदृढ बना ली।

प्रयोगात्मक साम्यवादकी इस प्रारम्भिक अवस्थामे अनेक रूसी नेताओंका निश्चित मत हो गया कि जिस विश्व क्रान्ति पर उन्होने अपनी आशाए केन्द्रित कर रखी थी वह करीब-करीब असम्भव है। १९२० तक यह स्पष्ट हो गया कि अधिक प्रगतिशील और औद्योगिक देशोके समाजवादी आन्दोलन व्यवस्थित प्रगति और राष्ट्रीय राज्यका आदर्श त्याग कर विश्व-क्रान्ति और विश्व-व्यापी साम्यवादका आदर्श अपनानेका तैयार न थे। इसका परिणाम यह हुआ कि रूसम साम्यवाद क्रमश राष्ट्रीय आन्दोलनका रूप धारण करता गया और अन्य देशोकी भाति रूसका विकास भी एक राष्ट्रीय राज्यके रूपमे होता रहा।

१९२१ के बादमे अब तक रूसने गॉसप्लान (Gosplan), प्रथम पचवर्षीय योजना (१९२८–३२) और बादकी अन्य योजनाओ द्वारा साम्यवादकी दिशामे बहुत प्रगति की है। बूर्ज्वा (मध्यम वर्ग) और समृद्ध किसानोको जिन्हे कुलक (kulaks) कहते थे, प्राय समाप्त कर दिया गया। उद्योगोका राष्ट्रीयकरण और खेतीका समूहीकरण तेजीसे होता गया। प्रारम्भिक वर्षाम, भारी उद्योग-धन्धोके विकास पर अधिक जोर दिया गया। विदेशोसे मशीनें बडी मात्रामे मँगायी गयी। देशकी समूची श्रम शक्तिका उपयोग देशके औद्योगिक जीवनका निर्माण करनेमे किया गया। यहाँ तक कि बहुत वर्षो तक खाद्यान्न, वस्त्र, जूतो और मकानोकी कमी रही। लोगोको अपना दैनिक राशन पानेके लिए लम्बी कतारोम खडा होना पडता था। रूसके बडे-बडे नगरोंम तागा, सुई और दर्जियोके अगुस्तान जैसी साधारण वस्तुए भी नही मिलती थी। १९३२–३३ मे रूसके ग्रामीण क्षेत्रोंम भयानक अकाल पडा। इस अकालम लगभग ४० लाख व्यक्ति मर गय। इस अकालकी बहुत बडी जिम्मदारी सरकार पर थी क्योकि उसने समृद्ध किसानो (kulaks) के विरुद्ध निमम युद्ध छेड रखा था और इसके कारण इन किसानोन सरकारसे सहयोग करनेमे इन्कार कर दिया था।

तबसे हालत बहुत सुधर गयी है। वेब्र और उनके बादके अन्य आलोचकोंका कहना है कि सोवियत साम्यवाद एक नयी सभ्यता ह। साम्यवादी आदर्शकी प्राप्तिके लिए जिस निर्मम कठोरता और आतकवादका प्रयोग किया गया था, वेब्र उसकी कोई सफाई नही देत। पर उनका कहना है कि "इस कथनमे कोई अत्युक्ति नही है कि १९१७ मे रूसी जनताका दूसरा जन्म हुआ है।" द्वितीय विश्व युद्धके प्रारम्भ तक जहाँ एक ओर ससारके अनेक देश बेकारीके बोझमे पिसे जा रहे थे, वहाँ रूसमे बेकारीकी कोई समस्या ही नही थी। १९३८ मे व्यक्तिवादी व्यवस्थाकी तुलनामे सामूहिक खेतीमे चौगुना उत्पादन हुआ।[1] किसानोकी वैयक्तिक प्रवृत्तिका सन्तुष्ट

---

[1] रूसमे 'सामाजिक उपयोगके लिए व्यवस्थित उत्पादन होता है' (वेब्र)। हाल ही के एक अधिकारीके कथनानुसार सार्वजनिक स्वामित्वकी व्यवस्थामे १९३७ और १९३८ के बीच रूसी लोगोने अपना औद्योगिक उत्पादन ८०० प्रतिशत बढा लिया जब कि ब्रिटेन, फ्रास, और अमेरिका व्यक्तिगत स्वामित्वकी व्यवस्थाम केवल पचास प्रतिशत ही वृद्धि कर सके।

करनेके लिए उन्हे अपने निजी मकान, उद्यान, कुछ सूअर, गाये और मुर्गियाँ रखनेकी अनुमति दी गयी। गेहूँ पैदा करनेवाले खेतोका सकापण या एकीकरण कर दिया गया है।

रूसका बहुत अधिक औद्योगीकरण हो चुका है। उत्पादन और वितरणकी योजना एक केन्द्रीकृत योजनाके अनुसार तैयार की जाती है। और फिर यह योजना फैक्ट्री-सभाओ और केन्द्रीय समितियोकी शृखला द्वारा कार्यान्वित की जाती है। किन-किन वस्तुओका उत्पादन किया जाय और उनका वितरण कैसे किया जाय—यह निश्चय करनमे साधारण मजदूरका भी हाथ रहता है। योजना इतनी सावधानी और सतर्कतामे बनायी जाती है कि किसी प्रकारकी बर्बादी या तो बिल्कुल नहीं होती या बहुत ही कम होती है। विदेशी व्यापारका सचालन इस प्रकारसे किया जाता है कि बाहरी देशोकी मुद्रा स्फीति (inflation) या मुद्रापकर्ष (deflation) का सोवियत अर्थव्यवस्था पर कोई प्रभाव नही पडता। जितनी रकमका माल बाहरसे मँगाया जाता है उतनी ही रकमका माल रूससे बाहर भेजा जाता है। इस प्रकार आयातका मूल्य निर्यात द्वारा चुका दिया जाता है। प्रत्येक व्यक्तिको उदार 'ट्रेड-यूनियन वेतन' (Trade-Union Wage) मिलता है। यह सही है कि रूसमे भी वेतनो और स्तरोमे असमानता है। पर उतनी नहीं जितनी पूँजीवादी देशोमे। उद्योगो में भी खेल-कूदकी भावनासे काम लिया जाता है। जिस प्रकार खेल-कूदमे सम्मान और आनन्द पानेके लिए परिश्रम किया जाता है, ठीक उसी प्रकार बहुतसे उत्साही मजदूर सम्मान और आनन्द पानेके लिए श्रम करते है। मुनाफेकी भावना समाप्त कर दी गयी है। पूजीवाद हमेशाके लिए बिदा कर दिया गया है।

सोवियत रूसमे ऐसे भी उत्पादक है जो मालिक होते है। पर किसीको मुनाफा कमानेके लिए मजदूरी पर काम लेने की इजाजत नहीं है। पर हालके पर्यवेक्षकोका कहना है कि किसान मालिको (peasant proprietors) को मजदूर रखनेकी छूट है। किसी चीज को मुनाफा लेकर बेचनेके लिए खरीदना अपराध माना जाता है। पुरुषों के समान काम करने पर स्त्रियोंको पुरुषोंके बराबर ही वेतन मिलता है।

सोवियत साम्यवादके आलोचकोका कहना है कि वर्तमान रूसी व्यवस्था न तो समाजवाद है और न साम्यवाद। वह तो स्तालिनवाद है और स्तालिनवाद सैनिक तानाशाहीका ही दूसरा नाम है। इस कथनकी पुष्टिमे कहा जाता है कि समाजवाद का मतलब कामके अनुसार सम्पत्तिका वितरण होना है। साम्यवाद का मतलब आवश्यकताके अनुसार काम का वितरण है पर इन दो मे से एक भी बात रूस मे नही पायी जाती। यही नही, रूस मे उत्पादन के साधनोंका राष्ट्रीयकरण भी नहीं है।[1] यह भी दलील दी जाती है कि रूसमे वेतन और पारिश्रमिकमे भी बहुत बडी

[1] १९३६ के सशोधित सविधान के अनुसार वेतन, की गयी सेवा के अनुरूप होता है।

असमानता है। फैक्ट्रीका मैनेजर साधारण मजदूरसे सौगुना अधिक पाता है। वर्ग व्यवस्था, समाजवाद और साम्यवाद दोनोंके लिए अभिशाप है। पर यह भी रूसमें लुके-छिपे फिर आ गयी है। यह भी कहा जाता है कि रूसमें उत्पादन इतना कम होता है कि जनता का स्वस्थ जीवन बितानेके लिए पर्याप्त वस्तुएं नहीं मिलती। यह भी आरोप लगाया जाता है कि रूसके औसत मजदूरका जीवन-स्तर भारतके कुछ प्रमुख औद्योगिक शहरोंके मजदूरके जीवन स्तरसे भी कम होता है। एक बात और यह कही जाती है कि चूँकि रूसकी नीति सैनिक प्रसार की है, इसलिए रूस में आर्थिक पक्ष की ओर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया जाता है।

विश्वसनीय सूचनाओंके अभावमें यह निश्चय कर सकना कठिन है कि ऊपर की गयी आलोचनाओंमें से कितनी सही है और कितनी रूसके विरुद्ध प्रचार करने के लिए ही की गयी है। रूसने जर्मनीका जिस वीरतासे मुकाबला किया था वह इन सब आलोचनाओंका पर्याप्त से अधिक उत्तर है। यदि रूसकी जनता दीन होती तो इस प्रकारका मुकाबला नहीं कर सकती थी। युद्धके बादसे जनताका जीवन-स्तर भी बहुत सुधर गया है।

आर्थिक पक्षसे हटकर यदि हम मानव जीवनके अन्य पक्षों पर विचार करते हैं तो हमें मालूम होता है कि विवाह और तलाक सम्बन्धी विधियाँ सरल कर दी गयी हैं और एक नये प्रकार के परिवारोंके लिए मार्ग सुगम कर दिया गया है। जार-दबाव समाप्त कर दिया गया है। अन्तिम लक्ष्य पूर्ण यौन स्वाधीनता हो सकता है। स्वतन्त्र यौन सम्बन्धके परिणामस्वरूप वेश्या-वृत्ति बड़ी तेजीसे समाप्त होती चली जा रही है। जो वर्तमान व्यवस्थासे अनुचित लाभ उठाकर अपने जीवन-सगी को बराबर बदलते हैं उनका या तो बहिष्कार किया जाता है या उन्हें दण्ड दिया जाता है। बार-बार तलाक देना स्वाधीनताका दुरुपयोग समझा जाता है। हालके वर्षोंमें तलाकों की संख्या कम हुई है।

राज्य समाजकी बहुमुखी सेवा करता है। रूसकी सबसे बड़ी सफलता शिक्षाके क्षेत्रमें हुई है। रूसमें शिक्षा अनिवार्य है। राज्य शिक्षा का भार उठाता है। पहले ७० से ८० प्रतिशत तक जनता निरक्षर थी। आज दिन सारे योरोपीय रूसमें और साइबेरियाके सभी व्यवस्थित भागोंमें कुछ बूढ़ोंको छोड़कर कोई भी निरक्षर नहीं है। हालके वर्षोंमें स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवा कार्यों, मेडिकल अनुसन्धानों, शिशु-पालन और जच्चाओंकी सुविधाओंमें, और योग्य डाक्टरोंकी संख्यामें बहुत अधिक वृद्धि हुई है। इन सबके साथ ही जेल व्यवस्थामें भी सुधार हुआ है।

रूस में प्रतिनिधित्व क्षेत्रीय न होकर व्यावसायिक है। राजनीतिक व्यवस्था सोवियटों या समितियोंकी एक शृखला द्वारा कार्यान्वित होती है। रूस की आबादी १७ करोड़ है। इसमें से २० से ३० लाख तक व्यक्ति कम्यूनिस्ट पार्टीके सदस्य हैं और कम्यूनिस्ट पार्टी ही देशकी राजनीतिमें मुख्य भाग लेती है। पार्टीके सदस्यों पर कठोर अनुशासन रहता है। पार्टीमें किसी प्रकार की कमजोरी न आने देनेके

लिए समय-समय अवाछनीय व्यक्तियोको पार्टीसे निकाल बाहर किया जाता है। हालके वर्षोमे पार्टीके भीतर उच्च स्थान रखने वालोमे अपना एक विशिष्ट वर्ग बना लेने की प्रवृत्ति पायी जाती है। जो लोग पार्टीके सदस्य नही है उनकी अपेक्षा पार्टीके सदस्योको रहनेके लिए अधिक अच्छे मकान और अधिक सामाजिक सुविधाएँ प्राप्त है।

इस समय तो कमसे कम रूसने विश्व-क्रान्तिका विचार त्याग दिया है। पश्चिम को खतरा मानकर वह तेजीसे जनतामे राष्ट्रीय और सैनिक भावनाओका विकास कर रहा है। इस समय अपनी स्थिति अधिक सुदृढ कर लेनेके लिए वह निश्शस्त्रीकरण और आण्विक परीक्षणो पर रोक लगाये जाने की दिशा मे जोरदार प्रयत्न कर रहा है।

रूसने जो कुछ भी प्रगति की हो, पर हम इस बात को नही भूल सकते कि इसके लिए जनताको दमन और कष्टोका शिकार होना पड़ा है। आज दिन भी रूसमे विरोध सहन नही किया जाता है। अनेक अवसरो पर वास्तविक स्थिति आदर्शसे बहुत नीचे रही है। रूसी प्रयोगमे सहानुभूति रखने वाले अन्य देशो मे रहने वाले विद्यार्थी कह सकते है कि शान्तिपूर्ण तरीको से भी साम्यवाद स्थापित किया जा सकता है। पर यह एक कोरा सपना मालूम होता है।

इटलीका फासिस्टवाद (Fascism in Italy)

इटली और जर्मनीमे सर्वाधिकारवादके बीज वारसाई सन्धि और उसके बादकी घटनाओमे तथा उस साम्यवादकी लहरमे मिलते है जो प्रथम विश्व-युद्धके बाद योरोपमे फैली थी।

विश्व-युद्धके बाद कमसे कम कुछ समयके लिए उदारवादका सितारा चमका। युद्धमे विजय पानेवाले और पराजित होनेवाले दोनो ही, युद्धसे अच्छी तरह ऊब चुके थे। शान्ति, अन्तर्राष्ट्रीयता और लोकतन्त्रके लिए जनतामे सच्चा उत्साह था। पर संसारके भविष्यका निर्माण करनेके लिए वारसाईमे जो राजनीतिज्ञ एकत्र हुए थे वे इस योग्य न थे कि अपने कार्यको ठीक प्रकार कर सकते। सम्प्रभु राष्ट्र राज्यके जर्जर सिद्धान्तको 'राष्ट्रोका आत्म-निर्णय' कहकर भावी व्यवस्थाओका आधार बना दिया गया (The outworn doctrine of the sovereign nation State in the form of 'the self-determination of nations' was made the basis of future arrangements)। फलत कई ऐसे छोटे-छोटे राज्योका निर्माण हुआ जो अपने पैरो पर खडे होनेमे असमर्थ थे। योरोपीय संघका सही अर्थमे निर्माण करनेके बजाय राष्ट्र संघ (League of Nations) का निर्माण किया गया। बडे राष्ट्रोने राष्ट्र संघका प्रयोग अपना मतलब निकालनेके लिए किया। समाज्ञापित-प्रणाली (mandatory system) के नाम पर विजयी राष्ट्रोको उपनिवेश सौंप

दिये गये। पराजित राष्ट्रों पर भारी जुर्माने ठोके गये। जर्मनीको ही युद्धका एक मात्र अपराधी ठहराया गया। वारसाई सन्धिकी 'युद्ध अपराध धारा' बहुत वर्षों तक जर्मनीकी आँखोंमें शूलकी तरह चुभती रही। युद्धसे उत्पन्न समस्याओंको हल करने के लिए कोई गम्भीर प्रयत्न नहीं किये गये। युद्धके बादके प्रारम्भिक वर्षोंमें तो इस दिशामें आस्ट्रिया और जर्मनीको ऋण दिये जानेके अलावा बिल्कुल यत्न ही नहीं किया गया। राजनीतिक और आर्थिक समस्याओंको एक दूसरेसे बिल्कुल पृथक रखा गया। विश्वका वित्तीय नियंत्रण विजयी राष्ट्रोंके हाथोंमें रहा। सामूहिक सुरक्षाकी व्यवस्था तो की गयी पर यह कागज़ पर ही रही। सामूहिक सुरक्षाका स्थान क्रॉसमैन के शब्दोंमें 'सामूहिक शान्तिवाद' (collective pacificism) ने ले लिया। 'ऐसा मालूम पड़ता है कि विजय ने फ्रांस और ब्रिटेनकी चुस्तीमें कमी करदी। इन देशोंके अनुदारवादी (conservatives) पहलेकी भांति प्रचण्ड साम्राज्यवादी न रह गये और समाजवादियोंने क्रान्तिकी क्षमता खो दी'। (क्रॉसमैन, २५६)। इन देशोंकी सैनिक शक्ति अब भी पर्याप्त थी, पर वे उस समय तक इसका प्रयोग नहीं करना चाहते थे जब तक कि यथावत् स्थिति असहनीय न हो जाय। अनुशास्ति व्यवस्थाका पाखण्ड रचा गया (The myth of sanctions was invented), पर उसका प्रयोग केवल एक ही बार अबीसीनिया युद्धके दौरान १९३५-३६ में किया गया। और उस समय भी इसका प्रयोग करनेवालों ने ही इसे विफल कर दिया। इन सब बातोंके फलस्वरूप लोकतन्त्रीय निष्ठाको भारी धक्का लगा। दूसरी ओर, युद्धके एकदम बादके वर्षोंमें खास तौर पर, साम्यवादका हौवा विश्व क्रान्ति करा देनेकी धमकी दे रहा था। युद्धोपरान्त योरोपीय स्थितिकी इस पृष्ठ भूमिमें ही इटलीके फासिस्टवाद और जर्मनीके नाजीवादको ठीक प्रकारसे समझा जा सकता है।

१ इटली में फासिस्टवादका उदय (The Emergence of Fascism in Italy)

'फासिस्टवाद' (fascism) शब्दकी उत्पत्ति 'fascio' शब्दसे हुई है जिसका मतलब है लकडीका एक गट्ठा जो अनुशासन, एकता और शक्तिका प्रतीक है। युद्धके दौरानमें इसका मतलब उन सब लोगोंसे था जिन्होंने अपनेको एक सूत्रमें बाँध लिया था और इटलीके लिए जीने और मरनेको तैयार थे। सर्वप्रथम 'fasio' नामक संस्थाकी स्थापना मुसोलिनीके नेतृत्वमें मिलान नामक शहरमें १९१५ में हुई थी। इसके बाद १९१९ में साम्यवादका मुकाबला करनेके लिए संस्थाका पुनर्निर्माण किया गया। सन १९१९ के संसदीय चुनावमें फासिस्टोंका एक भी सीट नहीं मिली। मुसोलिनी स्वयं मिलानमें खडे हुए थे और बुरी तरह हारे थे। उस समय मुसोलिनी के बारेमें कहा गया था कि "यह एक मुर्दा है जो शीघ्र ही दफना दिया जायगा।" पर 'मुर्दा' जी उठा और तीन सालके भीतर ही इटलीमें फासिस्टवादी सरकारकी स्थापना हो गयी।

इटली की कुछ घटनाओंने फासिस्टवादके इस आश्चर्यजनक उत्थानमे बड़ी सहायता पहुँचायी। युद्धके बाद इटलीमे उदारवादी सरकार शासनारूढ थी। यह सरकार बहुत कमजोर थी। इस सरकारके विरुद्ध यह आरोप लगाया गया कि पेरिस शान्ति सम्मेलनमे यह इटली का पूर्णरूपण हित साधन करनेमे विफल रही है। विजयी राष्ट्र होने पर भी इटली को कोई महत्वपूर्ण क्षेत्र नही मिला। स्मर्ना या अन्य कोई भी प्रदेश न मिलनेसे इटली का घोर निराशा हुई। आग्ल-सैक्सन देशोके बढ़ते हुए भारी ऋणोने आगमे ईंधनका काम किया। इटलीमे एकके बाद एक करके अनेक हड़ताले हुई। फलत देशका आर्थिक जीवन बुरी तरह अस्त-व्यस्त हो गया। समाजवादी क्रान्तिकी तैयारी कर रहे थे। ससदमे भी सरकारके कार्योमे बाधाए पैदाकी जा रही थीं। इन सब बातोंके बावजूद इटलीकी तत्कालीन सरकार कड़ा कदम उठाने से डरती रही और हाथ पर हाथ धरे बैठी रही।

इटली की इस दयनीय स्थितिमे मुसोलिनी ने रगमच पर पदार्पण किया। वह सम्पूर्ण इटली को एक सूत्रमे बाँधकर देशमे शान्ति, व्यवस्था और अनुशासन कायम कर एक शक्तिशाली सरकार स्थापित करना चाहते थे। मुसोलिनी अपने जीवनके प्रारम्भमे अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादमे विश्वास करनेवाले क्रान्तिकारी विचारोके व्यक्ति थे। पर प्रथम विश्व युद्धके दौरानमे उनके विचारोमे एक दम परिवर्तन हो गया और उन्होने सेनामे भर्ती होकर दो वर्ष तक अपने देशके लिए युद्ध किया। देशभक्तिकी आग उनके हृदयमे जोरोंसे धधक रही थी। वह इटली का प्रथम श्रेणी की योरोपीय शक्ति बना देना चाहते थे। उनका कहना था कि उदार लोकतत्रका भार ब्रिटेन, फ्रास और अमरिका ऐसे अमीर देश ही उठा सकते हैं, इटली जैसे गरीब देश नही। उनका कहना था कि इटली का इस समय सबसे बड़ी जरूरत नेतृत्व और अनुशासन की है। इटली की जनता दो कारणोसे लोकतत्रके एकदम विरुद्ध थी। पहला कारण तो यह था कि इटलीमे लोकतत्र अपनेको प्रभावहीन सिद्ध कर चुका था। और दूसरा कारण यह था कि शान्ति सम्मेलनमे और उसके बादके वर्षोंमे इटली को पश्चिमी लोकतत्रके हाथो हानि उठानी पड़ी थी। इटली की जनताका लोकतत्रमे विश्वास तो उठा ही, साथ ही वह राष्ट्र सघमे भी अविश्वास करने लगी और वह ब्रिटेन और फ्रास के गठबन्धनको नष्ट करनेको बेचैन हो उठी। मुसोलिनी इस गहरे असन्तोषकी भावनाके मूर्तरूप थे। (All this surging discontent found an embodiment in Mussolini)।

अपने जीवनके प्रारम्भमे मुसोलिनी पर सोरेल की श्रमिक सघवादी शिक्षाओका बहुत प्रभाव पड़ा था। आम हड़तालमे तथा वर्गयुद्धमे उनका पक्का विश्वास था। पर युद्धके बादकी इटली की हालत ने उन्हे सोरेल की शिक्षाओंका त्यागनेके लिए बाध्य किया। यद्यपि सामान्य श्रमिक सघवादी विचारधारामें, विशेषकर सीधी कार्रवाईमे, उनका विश्वास बना रहा। पहली अगस्त, १९२२ को आम हड़तालकी घोषणा की गयी। यह घोषणा फासिस्टवादियोंके लिए वरदान साबित हुई। फासिस्टवादियोंने मौलिक

सेवाओंका चालू रखनेका भार अपने ऊपर लेकर हड़तालको २४ घण्टेके अन्दर समाप्त कर दिया। अपने इस कार्यमें फासिस्टवादियोंने जनताके एक बहुत बड़े अंशकी कृतज्ञता प्राप्तकी और उसके विश्वास पात्र हो गये।

तत्कालीन इटली की सरकार जनताकी दृष्टिमे और भी नीचे गिरती गयी। अन्तमें २८ अक्तूबर, १९२२ को मुसोलिनी ने अपने अनुयायियोंके साथ रोम पर धावा बोलकर सार्वजनिक कार्यालयों, रेलो, डाक और तारघरो आदि पर अधिकार कर लिया। यह सब शान्तिपूर्ण ढगसे ही हुआ। सरकारके पास इस्तीफा दे देनेके अतिरिक्त और कोई चारा नही रह गया। एक दिन बाद इटलीके राजाने मुसोलिनी को मन्त्रि-मण्डल बनानेके लिए आमन्त्रित किया। मुसोलिनी ने फौरन ३० अक्तूबर, १९२२ को अपना मन्त्रिमण्डल बनाया। उसके बाद मुसोलिनी २४ जुलाई, १९४३ तक इटली के एकछत्र शासक रहे और फिर उनका पतन हो गया।

आन्दोलनके प्रारम्भिक दिनोमे जब मुसोलिनी राज्य सत्ताकी ओर अपने कदम बढ़ा रहे थे, उनके पास कोई निश्चित कार्यक्रम नही था/और उन्होने एक बारसे अधिक अपनी स्थिति बदली। उन्होने घोषणाकी कि इटली का 'कार्यक्रम' नहीं 'कार्य' चाहिए। उनके शुरूके मन्त्रिमण्डलोमे विभिन्न दलोके लोग थे। १९२६ के बाद ही इटली की सरकार पूरी तरहसे फासिस्टवादी और तानाशाही बनी। उसी वर्ष नवम्बर मे फासिस्ट दलके अतिरिक्त शेष सभी राजनीतिक दल दबा दिये गये और समाचार पत्रोका मुह बन्द कर दिया गया। कई एक कानून पास करके मन्त्रिमण्डल को ससदके प्रति उत्तरदायी होनेसे बरी कर दिया गया। मुसोलिनी सरकारके प्रधान' बन गये। वह केवल राजा ही के प्रति उत्तरदायी रहे। उन्हे ऐसे आदेश जारी करने का अधिकार हो गया जो विधियोके समान ही शक्ति मान थे। मन्त्रिगण उनके सहयोगी न रहकर तानाशाहके अधीन हो गये। मुसोलिनी 'ड्यूस' कहे जाने लगे। ड्यूस शब्द का मतलब है 'नेता'।

१९२८ मे पुरानी प्रतिनिधि सभा (Chamber of Deputies) को समाप्त कर उसके स्थान पर एक नये सदनकी स्थापनाकी गयी जिसे 'Corporative Parliament' कहा जाता था। इसमे चार सौ सदस्य थे। ये सदस्य आबादी या क्षेत्रका प्रतिनिधित्व न करके आर्थिक हितोका प्रतिनिधित्व करते थे। इस सदनकी सदस्यता की व्यवस्था फासिस्ट दलकी महासमिति (grand council of fascism) करती थी जो राष्ट्रीय राज्यकी भी महासमिति थी। सदनका पहल कदमी (initiative) का कोई अधिकार नहीं दिया गया था। वह केवल प्रधान द्वारा दिये गये सुझावो पर ही अपनी राय दे सकता था, पर उन्हे अस्वीकार नही कर सकता था। फासिस्ट दलका प्रधान ही फासिस्ट सरकारका प्रधान होता था।

ससदके ऊपरी सदन, सिनेटमे राजवंशके राजकुमार और प्रधान मन्त्रीकी सलाहसे राजा द्वारा नियुक्त आजीवन सदस्य होते थे। आजीवन सदस्योकी सख्या सीमित नहीं थी। सिनेट निचले सदन द्वारा भेजे गये विधेयको पर विवाद करती थी, उसमें सुधार

कर सकती थी और उन्हें स्वीकार या अस्वीकार कर सकती थी। सिनेट द्वारा संशोधित या अस्वीकृत विधेयक निचले सदनका पुन विचार करनेके लिए भेज दिये जाते थे।

फासिस्टवादकी विचारधारा
(The Ideology of Fascism)

इटलीमें इक्कीस वर्ष तक निरकुश राज्य करने पर भी फासिस्टवादका कोई सुविचारित सिद्धान्त नही था। प्रथम विश्व युद्धके समाप्त होने पर इटली में जो वास्तविक परिस्थितियाँ थीं उन्ही परिस्थितियोकी उपज फासिस्टवाद है। यह राष्ट्रका कार्य करनेकी शिक्षा देता है। उसका प्रधान मत्र शक्ति और सजीवना है। फासिस्टवाद, व्यक्तिवाद, पूँजीवाद, अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद, उदारवाद और ससदात्मक प्रजातत्रका विरोधी है। फासिस्टवाद वर्ग-युद्ध और सर्वहारावर्गकी तानाशाही पर आधारित साम्यवादका विशेष तौर पर विरोधी है। पर साम्यवादका तो अपना एक दर्शन है जो प्रमाणो द्वारा तर्कपूर्ण ढगसे व्यवस्थित और सिद्ध किया गया है और जिसका विचारपूर्ण मूल्याकन किया गया है। भले ही अपनायी गयी पद्धतिका आधार एक बौद्धिक उलझन ही हो। इसके विपरीत फासिस्टवादका दर्शन कार्य-साधक रहा है। इसका प्रधान लक्ष्य रहा है काम निकालना, किये हुए कार्योका औचित्य सिद्ध करना और आनेवाली परिस्थितियोका सामना करना और इसके लिए वह अपने विचारोमे समय-समय पर परिस्थितियोंके अनुसार रद्दोबदल करता रहा है। फासिस्टवाद मूलत तर्कहीन है। उसमे प्रेरणा अथवा स्वाभाविक प्रवृत्ति पर आधारित कपोल कल्पना ही मिलती है। फासिस्टवाद इच्छा और विश्वासके कारण ही सत्य है। (सेबाइन)।

फासिस्टवाद सक्रिय और शक्तिशाली राज्यका समर्थन करता है। मुसोलिनी ने लिखा था कि फासिस्टवाद एक धार्मिक धारणा है। इस धारणाके अनुसार व्यक्तिका एक उच्चतर विधिमें गहरा सम्बन्ध रहता है। यह व्यक्ति विशेषसे ऊपर होती है और व्यक्तिका भी ऊपर उठाकर उसे आध्यात्मिक समाजकी चेतन सदस्यताकी स्थिति तक पहुचा देती है। यह हीगेल के राज्य सिद्धान्तका आधुनिक रूप है। यह इतिहासकी मार्क्सवादी व्याख्याका तथा लोकतत्रवादी व्यक्तिवाद दोनोको अस्वीकार करता है। राष्ट्रका उच्चतम् नैतिक सत्ता माननेवाला सिद्धान्त ही इसका आधार है।

१९१९ में मुसोलिनी ने लिखा था " हम ऐसे प्रत्येक धर्म सम्प्रदायको नष्ट कर चुके है हम प्रत्येक अन्धविश्वासी मत पर थूक चुके है, हम प्रत्येक स्वर्गका बहिष्कार कर चुके है, और सफेद, काले और लाल हर प्रकारके पाखण्डियोंकी धज्जियाँ उडा चुके है जो मनुष्य जातिका सुखी बनानेके लिए जादूका असर रखनेवाले नुस्खे लिखते हैं।

हमे किसी पद्धति, औषधि, मन्त्र या देवदूत पर श्रद्धा नही है। मुक्ति और स्वर्ग पर तो हमे और भी कम विश्वास है। हमे व्यक्तिके पास एक बार फिर वापस जाना चाहिए। हम उस प्रत्येक बातके समर्थक हैं जो व्यक्तिको ऊपर उठाती है उसे महान् बनाती है, उसे अधिक आराम, अधिक स्वाधीनता और व्यापक जीवन देती है। हम उस प्रत्येक बातके विरुद्ध युद्ध कर रहे है जो व्यक्ति पर प्रतिबन्ध लगाती है और उसे हानि पहुँचाती है। हमारे दिमागो पर और ससार पर आधिपत्य जमानेके लिए आजकल दो सम्प्रदाय आपसमे सघर्ष कर रहे है। इनमे से एक काला है और दूसरा लाल। एक का केन्द्र रोम (कैथालिक धर्मका सबसे बडा पोप रोम के एक भाग वैटिकनसे सारे ससारके कैथालिक ईसाईयोको आदेश देता है—अनुवादक) और दूसरेका केन्द्र मॉस्को है। दोनो ही स्थानोसे आदेश पत्र जारी किये जाते है। हम इन दोनोमे से किसी भी धर्मको नही मानते (१२ २६८)।

(फासिस्टवाद कार्य, राष्ट्रीय एकता दृढ़ता और पर विश्वास करता है। वह विचार विमर्श और समझौते पर आधारित सरकारके विरुद्ध है। उसे साम्यवाद जैसे अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलनोमे जरा भी निष्ठा नही है। इन सब कारणोसे फासिस्टवाद तर्क और बुद्धि पर अविश्वास करता है। वह सैनिक वर्दियो, आडम्बरपूर्ण कार्यो और ओजपूर्ण भाषणो द्वारा लोगोकी भावनाओको बहुत प्रभावित करता है। लोगोकी भावनाओको उकसानेके लिए वह किसी भूतका आविष्कार करता है (It invents a myth which is calculated to rouse the feelings of the people) फासिस्टवाद मान बैठता है कि जनताको न तो राजनीतिमे दिलचस्पी होती है और न उसमे अपना शासन स्वय करनेकी क्षमता ही होती है। फासिस्टवादी विचार-धाराके अनुसार एक औसत व्यक्ति न तो उद्योग पर नियत्रण चाहता है और न स्वशासन चाहता है। वह तो अच्छी आजीविका चाहता है और एक ऐसा नेता चाहता है जिसके पीछे वह आख मूदकर चल सके। ज्ञातव्य है कि ससदात्मक लोकतत्रकी जडे इटलीमे कभी मजबूत नही रही। इटली के लिए तानाशाही कोई असाधारण बात नही है।

इटलीमे राजनीतिक पार्टियाँ और उन पार्टियोसे बनने वाली सरकारे हमेशा दुर्बलताका कारण रहा है। ऐसे देशमे राष्ट्रीय विचारधारा पर आधारित होनेके कारण फासिस्टवाद एक दलके शासनका ही समर्थक है। यह विरोध सहन नही करता। इटलीकी ससदके सदस्य मटियोटी (Matteoti) की १९२४ में जो रहस्य-मय ढगसे हत्या की गयी थी उसकी सफाई आसानीसे नही दी जा सकती। उनका अपराध केवल यही था कि उन्होने ससदमे अपने विचार स्वतत्रतापूर्वक व्यक्त किये थे। इसी प्रकार काउण्ट बाल्बो (Balbo) के जीवनका अन्त भी अफ्रीका मे रहस्य-मय ढगसे हो गया था। फासिस्टवादी दलको नयी चेतनाका मूर्तरूप माना जाता है। इसका विरोध करनेवालेको देशका शत्रु माना जाता है। श्रमिक सघो (Trade Unions) को समाप्त कर उनके स्थान पर फासिस्टवादी श्रमिक सगठन स्थापित

किये गये। फासिस्टवादी इटली मे मजदूर सघो और किसानोकी सहकारी समितियों को फिर भी कुछ स्वाधीनता प्राप्त थी। जबकि नाजी जर्मनी में इन सगठनोंका कुछ भी स्वाधीनता प्राप्त न थी।

यह मानना गलत होगा कि इटली मे आतक ही आतक था। फासिस्टवाद बीस सालसे अधिक समय तक बहुत सफल रहा। इस सफलताका मुख्य कारण मुसोलिनी का शक्तिशाली नेतृत्व ही था। जिस समय मुसोलिनी ने देशके शासनकी बागडोर सँभाली, उस समय पश्चिमके लोकतन्त्रवादी राज्य इटलीको एक निम्न कोटिका देश मानते थे और उससे वैसा ही व्यवहार करते थे। पर कुछ ही वर्षोमे मुसोलिनी ने इटलीका भूमध्य सागरका ऐसा मुख्य सबल राष्ट्र बना दिया कि वह उत्तरी अफ्रीका में अपना आधिपत्य जमाने और साम्राज्य स्थापित करनेका प्रयत्न करने लगा युद्धके बादके वर्षोमे समाजवादी और साम्यवादी दोनोमे से कोई एक भी इटलीका वैसा नेतृत्व न दे सके जैसे नेतृत्व की उसे आवश्यकता थी। समाजवादी समदात्मक मनोवृत्तिके दास थे। वह जनताका समर्थन तर्क द्वारा तथा समझाबुझा कर प्राप्त करना चाहते थे। दूसरी ओर साम्यवादी वर्ग युद्ध और विश्व क्रान्तिका ही राग अलापा करते थे। उन्होने इस प्रकार न केवल पूजीपतियों और मध्यवर्गको बल्कि मजदूरोके एक बहुत बड़े भागको भयभीत कर रखा था। इस परिस्थितियोमे मुसोलिनी और उसके दलके लिए सत्तारूढ होना और समूचा जनताका सच्चा प्रतिनिधि होनेका दावा करना आसान हो गया।

(फासिस्टवादी आदिसे अन्त तक राष्ट्रवादी थे। पर उनकी राष्ट्रीयता सकीर्ण और उग्र थी। वह आक्रामक युद्ध और साम्राज्यवादी विस्तारका खुले आम समर्थन करती थी। फासिस्टोकी शिक्षा और उनके आचरणसे ऐसा मालूम होता था कि कुख्यात मैकियावेली एक बार फिर जीवित हो उठा है। इटलीका गौरव बढाने वाले हर कार्यको फासिस्ट उचित मानते थे। इटली ने द्वितीय विश्व युद्धके दौरानमे खुले आम अवसरवादी नीति बरती, जब जैसा मौका देखा तब वैसी नीति अपनायी, उसने जैसे ही फ्रास का कमजोर पडते देखा वैसे ही जर्मनीके साथ अपना भाग्य जोडकर जर्मनीका साथ दिया और फ्रासका पतन आसान कर दिया।

(फासिस्टवाद अन्तर्राष्ट्रीयतावादका शत्रु है। उसका कहना है कि 'अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति कायरोका स्वप्न है।' मुसोलिनी के कथनानुसार 'साम्राज्यवाद जीवनकी पुरानी और कभी न बदलने वाली विधि है।) एक बार उन्होने लिखा था कि हम चार करोड व्यक्ति अपने सकरे पर अर्चनीय (adorable) प्रायद्वीपमे न जाने किस प्रकार गुजर कर रहे है और इस अर्चनीय प्रायद्वीपके इन चार करोड व्यक्तियोंको हाथ-पैर फैलानेका अवसर देनेके लिए, १९३६ मे जरासे बहानेको लेकर एक बर्बर युद्धके बाद अबीसीनियाको इटलीमे मिला लिया गया। मुसोलिनी का कहना था कि 'इटली का विस्तार उसके लिए जीवन और मरणका प्रश्न है।' इटलीका विस्तार होना ही चाहिए अन्यथा उसका विनाश हो जायगा।

सरकारकी आन्तरिक कठिनाइयोंसे लोगोंका ध्यान हटानेके लिए इटली ने युद्ध का सहारा लिया। फासिस्टवादने जानबूझ कर देशमे ऐसी नीति अपनायी कि जिसका परिणाम दूसरे देशोंके साथ युद्धके अतिरिक्त और कुछ हो ही नही सकता था। वह न तो विश्व शान्तिका सम्भव ही मानता था और न उसे उपयोगी ही समझता था।

फासिस्ट विचारधारा पर लिखते हुए हैलोवेल कहते है कि फासिस्टवाद व्यक्तिगत स्वाधीनता और समानताकी धारणाओंको अस्वीकार करता है। फासिस्टवाद का कहना है कि व्यक्तिका अस्तित्व राज्यके लिए है। मुसोलिनी ने राज्यको स्वय अपने आपमे एक आत्मिक और नैतिक शक्ति बतलाया है।

फासिस्टवाद प्रेरणा और स्वाभाविक प्रवृत्ति (instinct) से काम करता है, विवेकसे नही। वह समस्त मूल्य महत्त्वको आपेक्षिक ही मानता है। अपने आपमे किसीका कुछ मूल्य महत्त्व नही है। सत्य वही है जिसे तानाशाह सत्य कह दे। अधिकार वही है जिसे तानाशाह अधिकार मान ले। यदि नाजीवाद जातिकी कल्पित गौरव-गाथा गाता है तो फासिस्टवाद राष्ट्रकी दुहाई देता है। दोनो ही के मूलमें प्रतिकार (vengeance) की भावना है।

आज दिन भारतकी कुछ राजनीतिक पार्टियोंमे भी फासिस्ट प्रवृत्तियाँ पायी जाती है।

फासिस्टवाद की सफलताए (Achievements of Fascism)

मुसोलिनी और उनके अनुयायियोंने सत्तारूढ होनेके बाद कुछ वर्षो तक अपने देशके लिए निस्सन्देह बहुत कुछ किया। उन्होने देशकी वित्तीय स्थिति ठीक की। राष्ट्रीय जीवनके प्रत्येक पक्षकी कमजोरियाँ दूर करनेके लिए उसे फिर से सगठित किया गया। कृषिकी उन्नति की गयी। सुदृढ आधार पर उद्योगोंकी स्थापना की गयी। दलदलोंको साफ किया गया और जहाँ पहले मच्छर भनभनाते थे वहाँ एक नया शहर बसाया गया। यातायातके साधनोंका इतना विकास किया गया कि उनका स्वरूप ही बदल गया। सुन्दर आकार की आकर्षक इमारतें बनायी गयी।

पर बादके वर्षोंकी कहानी बिल्कुल भिन्न है। एक ओर वस्तुओंका मूल्य बढता गया और दूसरी ओर वेतन तथा मजदूरी जानबूझ कर घटायी गयी। औद्योगिक मजदूरोंकी अपेक्षा जमीदारो और किसानोंकी भलाईके लिए अधिक प्रयत्न किये गये। अबीसीनिया युद्धके पहले बेकारीकी समस्या गम्भीर हो गयी थी और बेकारी दूर करनेके लिए सैनिक तैयारियाँ प्रारम्भ की गयी। जनताका जीवन स्तर गिर गया। इटली वालोंका अपौष्टिक भोजन फासिस्ट कालमे और भी निकृष्ट हो गया। बडे पूँजीपतियोंकी अपेक्षा छोटे व्यापारियोंको अधिक हानि पहुँची। पूँजीवादकी भाँति फासिस्टवादमे भी व्यापारमे मन्दी और तेजीका क्रम चला और मन्दीका जमाना

लौट-लौट कर आता रहा। जैसा सेबाइन लिखते है "आत्मबलिदान, आज्ञा-पालन और राष्ट्रीय युद्धमे प्राण अर्पण करनेके आदर्शोंकी शिक्षा उनके नैतिक महत्त्वके कारण नहीं दी जाती थी। जनतासे हमेशा यह कहा गया कि वर्तमान बलिदानके बदले उसे भविष्यमे आर्थिक लाभ होगा। और यह लाभ उन्हींका होगा जो सबसे अधिक बलिदान करेंगे। धर्मान्धता अथवा कुटिल स्वार्थ सीधे-साधे लोगोंको लाभका प्रलोभन देता है। पर भविष्यका यह फासिस्टवादी स्वप्न भावनात्मक है (१२ ७७४-५)।"

निगमित राज्य (The Corporative State) फासिस्टवाद का दावा है कि आर्थिक क्षेत्रमे उसकी सबसे अधिक मौलिक और महत्त्वपूर्ण देन निगमित राज्य है। फासिस्टवाद बड़े गर्वसे कहता है कि निगमित राज्य न तो पूजीवाद है और न समाजवाद। यह नवीन और उच्च कोटिकी व्यवस्था है। मुसोलिनी के शब्दोमे निगमवाद (corporatism), समाजवाद और उदारवाद दोनोसे ही ऊँचा है। इसने एक नयी व्यवस्थाको जन्म दिया है। एक अन्य स्थान पर उन्होने लिखा है कि उनके समस्त कार्योंमे से निगमित राज्यका 'निर्माण सबसे अधिक साहसपूर्ण और मौलिक कार्य है या दूसरे शब्दोमे सबसे अधिक क्रान्तिकारी कार्य है।' यद्यपि हम फासिस्टवादके इस लम्बे-चौडे दावेको माननेके लिए तैयार नही है पर हम यह विश्वास करने को तैयार है कि निगमित राज्यमे तो नही पर निगमित समाजकी धारणामे अवश्य हमे आधुनिक राज्यके पुनर्गठनका आधार मिल सकता है।

फासिस्टवादी निगमित राज्यकी धारणामे मध्यकालीन श्रेणीवाद (guild) और आधुनिक श्रमिक सघवाद (syndicalism) दोनो ही का मेल है। कुमारी विल्किसन का यह कथन सही है कि फासिस्टवाद कोरी पूजीवादी प्रतिक्रिया ही नही है। इसमे अपने समाजवादी तत्व भी है। जैसा कि एक अन्य लेखकने कहा है, फासिस्ट समाजवादी और पूजीवादी दोनो ही हैं। क्योंकि उसमे पूजीवादी और समाजवादी दोनों ही प्रवृत्तियाँ यथार्थ रूपमे पायी जाती है।

फासिस्टवाद वर्तमान पूँजीवादकी आलोचना करते हुए कहता है कि वर्तमान पूजीवादी व्यवस्थामे मालिक और मजदूर दो परस्पर विरोधी दलोमे सगठित रहते है और सामान्य जनहितकी अवहेलनाकी जाती है। फासिस्टवाद मजदूरो, मालिको और उपभोक्ताओ इन तीनोके हितोकी रक्षा समानरूपसे करनेका प्रयत्न करता है। राष्ट्रीय उत्पादनमे वृद्धि और सार्वजनिक कल्याणकी सिद्धि फासिस्टवादके मुख्य लक्ष्य हैं। फासिस्टवादका दावा है कि मजदूर, मालिक और उपभोक्ता तीनो ही समाजके अग है और इसलिए तीनो ही के हित एक दूसरेसे बँधे हुए हैं।

सिद्धान्त रूपमे यह सब चाहे सत्य भी हो पर असली प्रश्न तो यह है कि फासिस्टवादी राज्य अपने इस उद्देश्यको कहाँ तक पूरा कर पाया है। इटली के निगमित राज्य होते हुए भी १९३४ तक देशमे एक भी निगम नही था यद्यपि

मंत्रिमण्डलमे निगम विभाग कई वर्षोंसे था। ५ फरवरी, १९३४ की विधि द्वारा ही सरकारी तौर पर निगमोंकी स्थापना की गयी।

इटलीके निगमित राज्यके संगठनसे यह स्पष्ट है कि राज्य और फासिस्ट दलको प्रमुख स्थान दिया गया है। इसका कारण यह मान लेना है कि राज्य और फासिस्ट दल उपभोक्ताओंके हितोंका प्रतिनिधित्व करते है। पर यह दावा आसानीसे सिद्ध नही किया जा सकता कि मालिकों और मजदूरोंकी अलग अलग समान्तर संस्थाएं होती हैं। राज्य और फासिस्ट-दल दोनोंके बीच पंच और संयोजकका काम करता है। निगमोंको मान्यता प्रदान करनेके लिए सरकारने कुछ शर्ते निश्चित कर दी है। जो संस्थाएं इन नियमोंको पूरा नहीं करती उनकी कोई वैधिक स्थिति नही होती। कच्चे मालसे लेकर तैयार मालतक उत्पादनका सारा काम निगमके अधीन होता है। प्रत्येक निगमका नियंत्रण एक समिति करती है जिसका अध्यक्ष मंत्रिमण्डलका कोई सदस्य, राज्यका उपसचिव या फासिस्ट दलका मंत्री होता है।

निगमित राज्यका संगठन असाधारण तौर पर जटिल होता है। विभागोंमे कामोंका बटवारा इस प्रकार किया गया है कि एक ही काम एक से अधिक विभाग किया करते है। १९२५ मे इटली मे २२ निगम और ९ राष्ट्रीय संघ थे। राष्ट्रीय संघोंकी संख्या बादमे तेरह हो गयी थी। राष्ट्रीय संघोंका संगठन मालिकों और मजदूरोंके यथाक्रम सम्बन्धके आधार पर और निगमोंका संगठन समान आधार पर होता है।

निगमित संस्थाओंके अधिकार अधिकतर परामर्शमूलक है। वे संस्थाएं मजदूरोंके झगड़ोंका निपटारा करते है, सामूहिक श्रम अनुबन्धनोंको पूरा करते है, शिक्षा और समाज सम्बन्धी कार्य करते है और राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ाते है। वे ही वेतन, कामके घण्टे, उत्पादन और वितरण निर्धारित करते है। शिक्षार्थी मजदूरोंका नियंत्रण भी वे ही करते है।

निगमित राज्यका दावा है कि उसकी योजनाका आधार व्यक्तिवादी न होकर सामूहिक है, पर असलियत यह नही है। उत्पादन अब भी व्यक्तिगत उद्योग पर निर्भर करता है। व्यक्तिगत उत्साह (initiative) और व्यक्तिगत सम्पत्तिका अन्त नही किया गया है। मुसोलिनी के कथनानुसार व्यक्तिगत सम्पत्ति मानव व्यक्तित्वको पूर्णता प्रदान करती है। यह एक अधिकार है, और अगर यह अधिकार है तो एक कर्त्तव्य भी है। निगमित राज्यके कटु आलोचक जॉन स्ट्रैची का कहना है कि फासिस्टवादी योजना पूंजीपतियोंकी सहमतिसे बनती है और इसे बनाते समय इस बातको महत्त्व दिया जाता है कि योजना ऐसी हो जिसमें सबसे कम अड़चनें आवें।

देश भरके मजदूर-संघों और मालिकोंके संगठनोंको समाप्त कर उनके स्थान पर निगमोंकी स्थापना की गयी। ये निगम पूरी तरहसे राज्य पर आश्रित थे। निगमोंमे मजदूरों और मालिकोंको समान प्रतिनिधित्व दिया गया था। पर जैसा सेबाइन कहते है "यह मानना भूल होगी कि समान प्रतिनिधित्वका अर्थ समान अधिकार या

मन्त्रिमण्डल तक समान पहुँच था। यह मानना भी गलत है कि निगमके माध्यममें ही प्रभाव डाला जाता था या काम कराया जाता था।" हड़ताल या तालाबन्दी पर वैधिक रोक लगा दी गयी थी।' हड़ताल करने वालोंका सात वर्ष तककी कैदकी सजा दी जा सकती थी। यदि तीनसे अधिक मजदूर एक साथ हड़ताल करते थे तो उन्हें दण्ड देनेका अधिकार विशेष मजदूर अदालतोंका दे दिया गया था। मालिकों और मजदूरोंके झगड़ोंको मजदूर अदालत राष्ट्रके हितोंको ध्यानमें रखते हुए निपटाती थीं। ये अदालतें स्वयं अपनी ओरसे झगड़ोंमें हस्तक्षेप कर सकती थीं। वे इस बातकी प्रतीक्षा नहीं करती थीं कि झगड़ोंसे सम्बन्धित कोई पक्ष आकर उनका दरवाजा खटखटाये। जॉन स्ट्रैची का कहना है कि ऐसा मालूम होता है कि इस व्यवस्था द्वारा इटलीके पुराने 'कॉम्बिनेशन' कानून (Combination Act) को पुनः लागू कर दिया गया। मजदूरोंके लिए मजदूर अधिकार पत्रकी घोषणा कर उन्हें कुछ अधिकार दिये गये। इन अधिकारोंमें सवेतन छुट्टियां, नाम-मात्रके खर्च पर डाक्टरी सहायता, विभिन्न प्रकारके मुआवजे, बुढ़ापे और मृत्यु सम्बन्धी बीमाके अधिकार प्रमुख थे। जोड ने इस अधिकार पत्रको 'मजदूरोंका महाधिकार पत्र' (Magna Carta of Labour)' कहा था और इसका स्वागत किया था।

हड़तालोंके साथ ही सट्टेबाजी और अत्यधिक मुनाफे पर भी वैधिक रोक लगा दी गयी थी। १९३० और १९३३ में सरकारी आज्ञाओं द्वारा चीजोंके दाम कम कर दिये गये थे। मालिक अपनी मन मानी नहीं कर सकते थे।

निगमित राज्यने उत्पादन तो अवश्य बढ़ाया पर वह वास्तविक वेतनोंमें कोई खास सुधार नहीं कर सका। १९२६-२७ के बाद इटलीके बैंकों पर नियन्त्रण कर लिया गया। बैंक ऑफ इटली ही समस्त ऋणका नियमन करता था। सरकारकी स्वीकृति के बिना कोई नया बैंक नहीं खोला जा सकता था। लोहा आदि कुछ उद्योगों को एकमें मिला दिया गया। जहाज उद्योग आदि कुछ उद्योगोंको सरकारी सहायता दी गयी।

इस सम्पूर्ण योजनाका उद्देश्य इटली और जर्मनी दोनों ही में साम्राज्यवादी विस्तार और युद्ध था। उद्योग धन्धे ही नहीं, खेती भी बहुत कुछ सरकारी सैनिक नियन्त्रणके अधीन थी। सारा सगठन सैनिक आधार पर ही किया गया था। क्रमबद्ध अधिकारियोंकी शृंखला नेतृत्वकी एकता तथा अनुशासन इस सगठनके मूल सिद्धान्त थे। सारा सगठन शतप्रतिशत फासिस्ट दल पर निर्भर करता था। फासिस्ट दल आर्थिक व्यवस्था और राजनीतिक शासन दोनोंका ही एक समान मुख्य आधार और स्तम्भ था।

यद्यपि हम उन सब कार्योंका समर्थन नहीं करते जो इटलीमें निगमित राज्यके नाम पर किये गये पर निगमित समाजका विचार एक ऐसा विचार है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। जैसा कि रेवरेण्ड पी० कार्टी ने कहा है समाजका सार्वजनिक कल्याण, राज्यके अधिकार और व्यक्तियोंके अधिकार इन तीनोंका एकसा

सम्मान और विकास हा ना चाहिए। इटलीके निगमित राज्यके साथ खराबी यह थी कि इसका सगठन ही युद्धके लिए किया गया था। हमे आवश्यकता एक ऐसे निगमित समाजकी है जिसका सगठन शान्तिके लिए हो। निगमोंका निर्माण राज्य द्वारा न होकर स्वतत्र व्यक्तियो द्वारा हो। व्यक्ति राज्यकी सहमतिसे अपना सगठन करें। निगमित राज्य और निगमित समाजमे यही मुख्य अन्तर है। निगमका कार्य-क्षेत्र आर्थिक और सामाजिक होता है राजनीतिक नही, अत इस राजनीतिक दलके नियत्रणसे मुक्त होना चाहिए। इटली और जर्मनी दानाम मजदूरो और मालिकोंके पृथक्-पृथक् सगठनाको समाप्त कर दिया गया था। होना यह चाहिए कि इन दोनोका निगमित समाजका अभिन्न अग बना दिया जाय।

प्रा० कार्टी आगे कहते है कि निगमित समाजम निश्चित समुदायके स्थायी हिताका प्रतिनिधित्व करनेवाले प्रत्येक निगमको सार्वजनिक विधि द्वारा मान्यता प्रदानकी जाती है और विधि द्वारा ही उसका नियत्रण किया जाना है। अधिकार पत्र द्वारा दिये गये अधिकारोकी सीमाके भीतर निगमका प्रशासन लाकतन्त्रीय आधार पर होता है। निगम अपने सदस्योके प्रति व्यवस्थापिका, कार्यकारिणी, और न्यायपालिका सम्बन्धी तीनो प्रकार के कर्तव्योका पूरा करता है। इसके अर्थ यह नही है कि राज्यकी सम्प्रभुता समाप्त हा जाती है। इसका अथ केवल इतना है कि राज्य द्वारा दिये गये अधिकाराकी सीमाके भीतर और सामान्य सार्वजनिक कल्याणके अनुकूल निगमका स्वशासनका अधिकार प्राप्त रहता है (११ १५६)। मजदूराको समान प्रतिनिधित्व दिया जाता है। 'अच्छी तरह विचार-विमर्श करनेके बाद निगम एक ऐसी नियमावली तैयार करता है जा सारे व्यावसायिक समदाय पर एक निश्चित अवधि तक लागू रहती है (११ १५५)।' यह नियमावली राज्य द्वारा स्वीकृत हा जाने पर ही लागू होती है। राज्य नियमावलीका स्वीकार करनके पूर्व सामान्य सार्वजनिक हितकी दृष्टिस जाँचता है। राज्य विभिन्न नियमावलियोंको समन्वित करके एक मानव अर्थ व्यवस्था तैयार करता है।

यह नियमावली सम्बन्धित व्यावसायिक समुदायकी आर्थिक कारवाइयोका नियमन करती है। नियमावली ही निश्चित करती है कि कौन वस्तु कितनी और किस प्रकार तैयार की जाय—उसका व्यापार कैसे किया जाय और नियमावली (Code) ही वस्तुओंका कोटा निश्चित करती है। तैयार मालका मूल्य, यातायात कर और सम्बन्धित व्यावसायिक समुदायाके साथ होनेवाले सौदाका तथा तैयार माल के विज्ञापनो और बाजाराका नियत्रणभी नियमावली द्वारा ही किया जाता है (११ १५५)। इसके अतिरिक्त नियमावली व्यवसायके भीतर सामाजिक व आर्थिक सम्बन्धाका नियत्रण करती है। वेतन, कामके घण्टे और परिस्थितियाँ, मुआवजा, सवेतन छुट्टी, पारिवारिक भत्ते लाभ और विभिन्न प्रकारके बीमोंमे प्रबन्धकाके भाग आदिका नियत्रण भी नियमावली द्वारा ही होता है (११ १५५)।

देशमें इस प्रकारके निगमोंकी स्थापना हा जाने पर जनताके आर्थिक और

व्यावसायिक हितोकी देखभाल य निगम ही करते ह। राज्य आर्थिक और व्यावसायिक समस्याओमे निश्चिन्त होकर अपना सारा समय राजनीतिक और सैनिक कार्योंमे लगाना है। प्रत्येक निगमके उद्देश्य, कार्य-प्रणाली और अधिकार पर विस्तृत प्रकाश डालना कठिन है। निगमका उद्दश्य तो यह हो सकता है कि अधिकसे अधिक उत्पादन हो, वेतनके अनुकूल वस्तुओके दाम रहे, प्रतियोगिता समाप्त हो, राष्ट्रीय शक्ति अधिकमे अधिक बढे, और अधिकमे अधिक सामाजिक शान्तिकी स्थापना हो। उद्देश्य चाहे जो कुछ हो, और यह देश और कालके अनुसार भिन्न होगा ही, विवेकपूर्ण और व्यावहारिक मानव उद्देश्यकी सिद्धि ही मुख्य लक्ष्य होना चाहिए।

जर्मनीका नाजीवाद (Nazism in Germany)

१ नाजीवादका उदय (The Emergence of Nazism)

जर्मनीम नाजीवादका उदय जिन परिस्थितियोमे हुआ था वे अनेक बातोमे उन परिस्थितियोसे मिलती-जुलती थी जिनमे इटलीमे फासिस्टवादका उदय हुआ था। पर जर्मनी और इटलीकी परिस्थितियोमे कुछ महत्वपूर्ण अन्तर भी थे।

१९१८ मे जर्मनी विश्व युद्धमे पराजित हो चुका था और उसकी आख खुल चुकी थी। इसके पूर्व जनताको विश्वास दिलाया गया था कि जर्मनीकी सेना अजेय है पर जब जर्मनी की इस तथाकथित 'अजेय' सेनाको मित्रराष्ट्रोकी सेनाके आगे घुटने टेक दे पडे तेतब देश भरमे व्याकुलता छा गयी। युद्धके अन्तमे हुई वार्साइकी सन्धिको जर्मनी की जनताने कभी पसन्द नहीं किया। शीघ्र ही इसे विजेताओ द्वारा जबर्दस्ती लादी गयी शान्ति कहा जाने लगा। सन्धिकी अनेक बाते बहुत कठोर थीं। उनका उद्देश्य जर्मनीको अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमे द्वितीय या तृतीय श्रेणीका राष्ट्र बना देना था। जर्मनीकी सैनिक प्रतिष्ठा कम करनेके लिए निश्शस्त्रीकरणकी एक बहुत बडी योजना बनायी गयी। सन्धिके फलस्वरूप जर्मनी कई वर्षो तक अपनी हवाई सेना न रख सका। जर्मनीमे क्षतिपूर्तिके रूपमे इतनी बडी रकमे मॉगी गयीं जिनका अदा करना जर्मनीके बूतेके बाहर था। यह सही है कि बादमे ये रकमे कम कर दी गयी—विशेषकर डॉज (Dawes) और यग (Young) योजनाओ द्वारा, और अन्तमे एक दिन वह भी आया कि जर्मनीने हर्जाना देनेमे बिल्कुल इन्कार कर दिया। पर जब तक मित्रराष्ट्रो द्वारा जर्मनीसे हर्जानेकी मॉगकी जाती रही तब तक जर्मनीकी जनताका खून खौलता रहा और नवयुवक यह समझ कर बेचैन होते रहे कि उन्हे बहुत दिनो तक मित्रराष्ट्रोके वेतन भोगी दास बनकर रहना है।[1] राइन नदीके पश्चिमके प्रदेशका विसैन्यीकरण कर दिया गया। जर्मनीको पुन सैनिक

---

[1] एक जर्मन नवयुवकने १९३२ मे लिखा था "हम एक ऐसे युवक समाजके सदस्य हैं जिसे न तो भविष्यमे कोई आशा है और न वर्तमान कालमे कोई सुख।"

शक्ति न बनने देनेके लिए उस पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिये गये। क्षतिपूर्तिकी रकमें अदा न होने पर सन १९२३ मे फ्रास और बेल्जियम ने रूर पर आक्रमण कर दिया और वे कई वर्षो तक उस प्रदेश पर अधिकार किये रहे।

इन सब बातोके अतिरिक्त जर्मनीसे उसके उपनिवेश छीन लिये गये। मित्रराष्ट्रोके चतुर राजनीतिज्ञोने अमेरिकाके राष्ट्रपति विल्सन की आखोमे धूल झोक कर जर्मनीसे छीन गये उपनिवेशोको समादेशित प्रदेशो (mandated territories) के रूपमे आपसमे बाट लिया। समानाधिकार प्रणालीके नाम पर एक भारी भरकम योजना बनायी गयी। इस बातका दावा किया गया कि समादेशी राष्ट्रोका प्रधान उद्देश्य अपने सरक्षणमे आने वाले क्षेत्रोको यथासम्भव शीघ्रातिशीघ्र इस योग्य बना देना है कि वह अपना शासन स्वय कर सके। मित्रराष्ट्रो की कथनी और करनीमे अन्तर इतना स्पष्ट है कि उस बारेमे कुछ कहना अनावश्यक है। एक-आध अपवादको छोडकर सारे विजेता समादेशित प्रदेशोको अपने उपनिवेश ही मान बैठे।

जर्मनीकी आन्तरिक आर्थिक स्थिति दिवालिया हो चुकी थी। जर्मनीके सिक्के मार्कका मूल्य तेजीसे घटता जा रहा था और मुद्रास्फीति हो रही थी। फलत व्यावसायिक वर्गोका करीब करीब विनाश हो गया। एक ओर मध्य वर्ग दरिद्र हो गया था और दूसरी ओर वे लोग अपने वैभवका प्रदर्शन कर रहे थे जो युद्धके दौरान और उसके बाद मुनाफाखोरीसे धनी बन बैठे थे। इस द्वितीय वर्गमें यहूदियोकी सख्या कम नही थी। देशमे बेकारी दिन प्रति दिन बढ रही थी। १९३२ मे ६० लाख व्यक्ति बेकार थे। देशकी नयी सीमाओके कारण जर्मनीके भारी उद्योग बर्बाद हो गये थे। इन नयी सीमाओने केन्द्रीय यारोपके नकशेको ही बदल दिया। जर्मनीके कुछ प्रदेश उससे छिन गये, उसके कुछ नागरिक दूसरे देशोमे बिखर गये।

इस दयनीय दशाके कारण जर्मनीमे साम्यवादका प्रसार तेजीसे होने लगा। ऐसा मालूम पडता था कि जर्मनी इस तेजीसे बढनेवाली साम्यवादी विचारधारा और पद्धतिका शिकार हो जायगा। पश्चिमी लोकतन्त्रकी परम्पराके अनुरूप जर्मनीके लिए लोकतन्त्रीय सविधान बनाना ही इससे बचनेका एकमात्र उपाय था। फलत वीमर गणतत्र (Weimer Republic) की स्थापना हुई। पर जनताने इसे कभी पसन्द नही किया। वीमर गणतन्त्रका सविधान पडिताऊ और शास्त्रीय सविधान था। इसमे जर्मनीकी विशिष्ट परम्पराओ और जर्मन जनताकी प्रवृत्तियोका बिल्कुल ध्यान नही रखा गया था।

एकतत्र निरकुश सत्ताके बजाय, जिसके जर्मन लोग उपासक है, उन्हें एक राष्ट्रपति, एक अध्यक्ष, ससदके प्रति उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल और मौलिक अधिकारो की एक लम्बी सूची दी गयी। एक बात और हुई कि जो लोग वीमर-सविधान बनानेके लिए जिम्मेदार थे उन पर यह आरोप भी लगाया गया कि वे विजयी मित्रराष्ट्रोसे जर्मनी

के लिए यथासम्भव अच्छीसे अच्छी शर्तें नही मनवा सके। राष्ट्रीय गौरवके इस अपमानका पुराने शासक वर्ग, नौकरशाही और मध्यवर्गके हृदयमे बडा गहरा आघात लगा। जर्मन जनताने वारसाई की सन्धि और जर्मनगणतन्त्रका मजबूर होकर अनिवार्य बुराई ही समझा। केवल औद्योगिक मजदूरोमे ही इनके प्रति उत्साह था।

वीमर-सविधानके अन्तर्गत बननेवाली विभिन्न सरकारोको अनेक असाध्य कठिनाइयोका सामना करना पडा। एक ओर जनतामे असन्तोष बढ रहा था और वह निरुत्साहित हो रही थी और दूसरी ओर मित्रराष्ट्र अपनी उन असम्भव शर्तोका जर्मनीमे पूरा करानेका प्रयत्न कर रहे थे जो जर्मनी पर जबर्दस्ती लादी गयी थी। १९१९ और १९३३ के बीच १० अध्यक्षोके नेतृत्वमे २१ मन्त्रिमण्डल बने। देशमे अनगिनत राजनीतिक पार्टियाँ थी। इन पार्टियोके उद्देश्य एक दूसरेके विरोधी थे। १९३२ मे जर्मन ससद (Reichstag) का जो चुनाव हुआ उसमे ३८ राजनीतिक पार्टियोने भाग लिया था। सामाजिक लोकतन्त्रवादी (Social Democrats) पार्टीके अनुयायियोकी सख्या बहुत बडी थी। यह पार्टी यदि अपनी घोषणाओंके प्रति सच्ची होती, और देशके आर्थिक पुनर्निर्माणके लिए व्यापक रचनात्मक कार्यक्रम अपनाती तो वह देशको बचा सकती थी। पर साम्यवादके भयके कारण यह पार्टी साहसपूर्ण कदम उठानेमे डरती रही। यही नही, इस पार्टीने उद्योगपतियो और भूस्वामियोसे समझौता कर लिया। फलत राजनीतिक शक्तिके विभाजनके मामलेमे युद्धके पूर्वके जर्मनीमे युद्धके बादका गणतन्त्रीय जर्मनी अधिक भिन्न नही था। जॉन स्ट्रैची का कहना है कि सामाजिक लोकतन्त्रवादियोकी इस कायरतापूर्ण और समझौता-परस्त नीतिके कारण ही नाजियोका राजनीतिक सत्ता हथियानेका अवसर मिला।

मित्र राष्ट्र जर्मनी को कमजोर बनाकर उसकी लोकतन्त्रवादी सरकारको अपने नियन्त्रणमे रखना चाहते थे। शान्तिके प्रारम्भिक वर्षोमे मित्रराष्ट्र क्षतिपूर्तिका एकोएक पैसा जर्मनीसे वसूल कर लेना चाहते थे। वारसाई सन्धिकी अन्यायपूर्ण धाराओको हटानेके लिए दिये गये सुझावोकी एकदम उपेक्षा की जाती थी। जर्मन राजनीतिज्ञोके अनेक नम्र निवेदनाको भी तिरस्कारके साथ ठुकरा दिया गया। बाद में जर्मनीके साथ कुछ रियायतेकी गयी पर वे खेती सूख जाने पर वर्षाके समान थी। १९३० मे निश्चित समयसे पाँच वर्ष पूर्व राइन प्रदेश खाली कर दिया गया। १९३२ मे क्षतिपूर्ति की माँगे समाप्त कर दी गयीं। पर इनमे से किसी भी कार्यके लिए न तो जर्मनीकी गणतन्त्र सरकारको कोई शाबाशी दी गयी जिसने यह कूटनीतिक सफलता प्राप्तकी थी और न जर्मनी ने रियायते करनेवाले मित्रराष्ट्रोकी ही कोईकृतज्ञता मानी।

इस राजनीतिक और आर्थिक पृष्ठभूमिमे ही हमे नाजी आन्दोलनकी राजनीतिक सफलताको समझना है। इसका प्रारम्भ एक अत्यन्त सामान्य आन्दोलनके रूपमे हुआ जो कुल २८ व्यक्तियो तक ही सीमित था। इस आन्दोलनका जन्मदाता ताले बनानेवाला एक लोहार था जिसका नाम एटन ड्रैक्सलर था। प्रारम्भमे आन्दोलनका कोई निश्चित कार्यक्रम नही था। यह जर्मन सेनाओकी पराजयको अस्वीकार करता

था। इसका कहना था कि जब जर्मन सेनाएं विजयके निकट थी तभी विजयके ऐनमौके पर जर्मन सेनाओंको 'पीठमें छुरा भोंका गया'। २८ प्रारम्भिक सदस्योंमे से केवल ६ सदस्य सक्रिय थे। ऐडाल्फ हिटलर इस दलमें सातवें सदस्यके रूपमे शामिल किये गये। उस समय हिटलर एक बिल्कुल ही अज्ञात व्यक्ति थे। वह आस्ट्रियामे उत्पन्न जर्मन थे और १९१२ मे जर्मनी चले आये थे। वह युद्धमे लडे थे और घायल हुए थे। उन्हे सेवाओंके उपलक्षमे एक लौह पदक दिया गया था। सेनामें उनकी तरक्की कारपोरलके पद तक हुई थी। इसके विपरीत मुसोलिनी इटलीका राष्ट्रीय नेता था। मुसोलिनी फासिस्टवादी तानाशाही स्थापित करनेके पहले भी युद्धमे महत्त्वपूर्ण कार्य कर चुके थे।

हिटलर और मुसोलिनी म एक अन्तर और था। मुसोलिनी एक प्रतिभावान विचारक तथा दर्शनशास्त्र और राजनीतिक सिद्धान्तीकरणमे रुचि रखनेवाला व्यक्ति था। पर हिटलर की शिक्षा अपूर्ण थी, यद्यपि उसमें व्यक्तिगत गुण थे। हिटलर अत्यधिक भावुक और अपनेको अत्यधिक महत्व देनेवाला व्यक्ति था। सम्भवत उसने हीगेल और आस्टिन चेम्बरलेनके मूल ग्रन्थोको कभी नही पढा था यद्यपि उसने इन दोनो विचारकोके अनेक विचारों को अपनी आत्मकथा (*Mein Kampf*) मे स्थान दिया।

प्रारम्भमे नाजी पार्टीका नाम जर्मन मजदूर पार्टी (German Worker's Party) था। पर जीवनके दूसरे ही वर्ष यानी १९२० मे इसका नाम राष्ट्रीय समाजवादी जर्मन मजदूर पार्टी (National Socialist German Workers' Party) रखा गया। फिर कुछ वर्ष बाद उसका नाम केवल राष्ट्रीय समाजवादी पार्टी (National Socialist Party) हो गया। नाम का यह अन्तिम परिवर्तन महत्वपूर्ण था। क्योंकि इस नामके कारण वे बहुतसे लोग इस पार्टीमे शामिल हो गये जो अपनेको राष्ट्रीयतावादी और समाजवादी कहते थे। इस पार्टीके कार्यक्रमकी मुख्य बातें जिसे प्रारम्भमें गाटफ्रीड फेडर ने २५ परिच्छेदो मे लिखकर तैयार किया था, बहुत क्रान्तिकारी थी। उनमें से कुछ ये थी—अनर्जित आयका उन्मूलन, युद्धकालके मुनाफाका जब्त करना, न्यासोका और भूमिका राष्ट्रीकरण आदि। किसी ने भी प्रारम्भमे इस आन्दोलनका अधिक महत्व नही दिया यद्यपि यह बिल्कुल स्पष्ट था कि मित्रराष्ट्रो द्वारा किये गये जर्मनीके राष्ट्रीय अपमानके कारण ही इस आन्दोलनका जन्म हुआ था। निम्न मध्यवर्गीय जनता, सैनिक संगठनोंके सदस्य और छात्र ही इस आन्दोलनकी ओर आकर्षित हुए। अधिकांश उद्योगपति और उच्च मध्यवर्गीय व्यक्ति इस आन्दोलन से दूर ही रहे। जो लोग इस आन्दोलनकी ओर आकर्षित हुए भी वे उसके क्रान्तिकारी कार्यक्रमके कारण उसकी ओर उतना नही झुके जितना उसकी सैनिक प्रवृत्तिके कारण। घृणा और बदलेके आधार पर ही इस पार्टीकी स्थापनाकी गयी थी। इस पार्टीने 'असल जर्मनी' के सभी शत्रुओंसे, विशेषकर मार्क्सवादी उदारपन्थियो, साम्यवादियो और यहूदियोसे लोहा लेनेकी ठानी थी।

१९२३ तक आन्दोलनका विकास धीरे-धीरे हुआ। उस वर्ष हिटलर ने जनरल लुडेनडॉर्फ के साथ म्यूनिखके धावेमे भाग लिया। धावा असफल रहा। हिटलर गिरफ्तार हो गया, उस पर मुकदमा चला और उसे पाँच वर्षकी कैदकी सजा दी गयी। पर उसे आठ महीने बाद छोड़ दिया गया। जेलमे ही हिटलर ने अपनी आत्मकथा 'मेरा सघर्ष' (*Mein Kampf*) लिखी। यह पुस्तक आगे चलकर नाजीवादियोकी गीता बन गयी। इसके बादसे आन्दोलनकी लोकप्रियता बढ़ने लगी। दिन प्रतिदिन अधिकाधिक लोग इस आन्दोलनमे शामिल होने लगे। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों आन्दोलनकी शक्ति बढ़ती गयी। धनी वर्गका भय दूर करनेके लिए आन्दोलनके प्रारम्भिक कार्यक्रममे आवश्यक सुधार किये गये। उदाहरणके लिए 'बिना मुआवजेके भूमिके राज्याधिकरण' सम्बन्धी धाराकी व्याख्या कुछ इस प्रकार की गयी कि वह भूमिका सट्टा करनेवाले यहूदियो पर ही लागू हो सके। सेनाके कुछ भूतपूर्व अधिकारी इस पार्टीमे शामिल हो गये। उन्होने 'तूफानीदल (Storm Troopers)' के सगठनमे सहायता दी। यह दल नाजी पार्टीका मेरुदण्ड बन गया। सैनिक प्रदर्शन, सैनिक वर्दियाँ, स्वस्तिक जैसे दलके चिह्न, साम्यवादियो और पुलिस के साथ मुक्के बाजी आदि जर्मन युवकोको लड़ाकू और स्वच्छन्द प्रवृत्तिका बहुत आकर्षक लगे। नाजी नेताओके कुशल प्रचारने, हिटलर की बहुत अधिक जोशीले भाषण देनेकी शक्ति ने, और सगठित महान् जर्मनीके नाम पर बलिदान और अनुशासनकी नाजी नेताओकी अपीलोने इस आन्दोलनको लोकप्रिय बनानेमे बड़ा काम किया।

जैसे-जैसे समय बीतता गया वैसे वैसे उद्योगपति, सम्पत्तिशाली वर्ग और नौकरशाही अधिकाधिक रूपमे नाजी आदर्शके प्रति सहानभूतिपूर्ण होते गये। उग्र राष्ट्रीयताका उन पर अधिक प्रभाव पडा। ऐसा विशेषकर इसलिए भी हुआ कि उन्हें इस बातका विश्वास हो गया था कि हिटलर की मशा उन क्रान्तिकारी योजनाओको कार्यान्वित करनेकी नही है जिन्हें नाजी पार्टीने शुरू-शुरूमे अपने कार्यक्रममे रखा था।

नाजीवादने शुरू शुरूमें कोई उल्लेखनीय प्रगति नही की। पर १९२९ में इसने जोर पकडा। तत्कालीन विश्व-व्यापी मन्दी और चारों ओर फैली बेकारी ने इस आन्दोलनको और भी बल दिया। १९३२ मे राष्ट्रपतिका चुनाव हुआ। इस चुनाव मे हिटलर हिण्डेनबर्ग के विरुद्ध खडा हुआ। हिटलर को प्रथम मतदान (ballot) मे १ करोड १३ लाख और दूसरे मतदानमे १ करोड ३४ लाख मत मिले। इसके बाद से बराबर नाजी पार्टी व्यवस्थापिकामे सबसे बडा पार्टी रही। यद्यपि समय-समय पर इसकी स्थिति अस्थायी तौर पर बिगडी भी। नाजी पार्टीको जितनी सीटें मिली थीं उसकी आधीसे कुछ अधिक ही सीटें सामाजिक लोकतत्रवादियोको मिली। नवम्बर १९३३ मे हिण्डेनबर्ग ने हिटलर से सयुक्त सरकार बनानेको कहा। पर हिटलर ने सयुक्त सरकार बनाना अस्वीकार कर दिया। लगभग दो महीने बाद

३० जनवरी, १९३३ को हिण्डेनबर्ग ने फिर हिटलर को सयुक्त सरकार बनानेके लिए आमन्त्रित किया। इस बार हिटलर ने निमत्रण स्वीकार कर लिया। इसके बादमे हिटलर और उसके नाजी साथियोका ही जर्मनीमे बोलबाला रहा।

हिटलर की प्रथम मत्रिपरिषद नरम और अक्रान्तिकारी ही थी। पर नाजी पार्टीका देश पर पूरा प्रभुत्व था। इस प्रभुत्वका कारण नाजी पार्टीका अपना आन्तरिक सुदृढ सगठन और राजनीतिक व्यवस्था और पुलिस पर उसका नियत्रण था। ५ मार्च, १९३३ को जर्मन ससद (Reichstag) भग कर दी गयी। इसके कुछ दिन पूर्व रहस्यमय ढगसे ससद भवनमे आग लगी थी। जिससे ससद भवन बुरी तरह जल गया था। इस आगको साम्यवादी क्रान्तिका सकेतचिह्न ठहराया गया। इसके बाद देशमे अव्यवस्था फैल गयी। इस स्थितिमे सविधान द्वारा दिये गये नागरिकों के अनेक मौलिक अधिकारोको राष्ट्रपति ने रद्द कर दिया। इसी उत्तेजनापूर्ण वातावरणमे ससदका चुनाव हुआ और नाजियोको ५२ प्रतिशत सीटें मिल गयी। यह चुनाव सक्षम कानून (Enabling Act) के प्रश्न पर लडा और जीता गया था। इस कानूनने नाजी सरकारको चार सालके लिए करीब-करीब अपरिमित शक्ति दे दी।

अब नाजी पार्टीके विशेष कार्यक्रमोका कार्यान्वित किया जाने लगा। प्रशासन सेवा और न्यायपालिकासे 'अनार्या' को निकाल बाहर किया गया। एक जन न्यायालयकी स्थापना की गयी। यह अदालत सरकारके हाथकी कठपुतली थी। समाचार पत्र, रेडियो थियेटर, और सिनमा—प्रचार मत्री डा० गायबल्स के अधीन कर दिये गये। इसी प्रकार स्कूलों और विश्वविद्यालयोका शिक्षा मत्रीके सरक्षणमे रख दिया गया। एक कानून द्वारा नाजी पार्टीको देशकी एकमात्र वैधिक पार्टी घोषित किया गया। किसी अन्य पार्टीकी स्थापना वैधिक अपराध हो गया। मजदूर सघो को भग कर मजदूर वर्गको नाजियोके नियत्रणमे लाया गया। नवम्बर, १९३४ मे ससदका निर्वाचन हुआ। इस चुनावमे नाजी पार्टीको ९२ प्रतिशत मत मिले, पर यह सफलता काफी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दबावके बिना नही मिली। पहली दिसम्बर को नाजी पार्टीको राज्यके शासन यत्रमे सम्मिलित कर लिया गया।

सघ-प्रणाली समाप्त कर दी गयी। राज्योको जिलोका रूप दे दिया गया। हर जिलेको हिटलर के एक निजी प्रतिनिधिके अधीन कर दिया गया। उसे वस्तुत तानाशाही अधिकार प्राप्त थे। इसके बाद सघके इकाइयोका प्रतिनिधित्व करनेवाले दूसरे सदन (Reichsrat) का भग कर दिया गया। १९३४ मे हिण्डेन वर्ग के निधन के बाद हिटलर ने राष्ट्रपति और अध्यक्ष दोनोके सारे अधिकारोको अपने हाथमे कर लिया। यही नही, हिटलर ने कार्यपालिका और व्यवस्थापिकाके सर्वोच्च अधिकारो को भी अपनी मुट्ठीमे कर लिया। वह जर्मनीमे अध्यक्ष, सर्वोच्च नेता और एक छत्र शासक अर्थात् सर्वेसर्वा बन गये। ससदकी बैठके कभी-कभी बुलायी जाती थी—कोई निर्णय करनेके लिए नही, हिटलर की कारगुजारियोंकी प्रशसा करनेके लिए।

२. नाजीवादकी विचारधारा (The Ideology of Nazism)

नाजीवादकी विचारधारा बतलाना आसान नहीं है। क्योंकि नाजीवाद राज्य या सरकारका कोई व्यवस्थित सिद्धान्त नहीं है। वह केवल एक आन्दोलन है जो व्यापक भावना पूर्ण आवश्यकताके कारण उठ खड़ा हुआ था। युद्धोत्तर जर्मनीकी और विशेषकर हिटलर की बौद्धिक और भावनात्मक विशेष परिस्थितियोंके कारण इस आन्दोलनका उदय हुआ था। यह सही है कि नाजीवादी राजनीतिक सिद्धान्तके कुछ तत्व जर्मन जातिकी विशेषताओंके अनुरूप है। पर साथ ही इस सिद्धान्तके अनेक तत्वोंको युद्धके बादकी जर्मनीकी परिस्थितियोंकी पृष्ठ भूमिमें ही समझा जा सकता है। हिटलर का व्यक्तित्व और जाति तथा समाजमें स्त्रियोंका स्थान जैसे प्रश्नोंके बारेमें उसकी विशिष्ट मनोवैज्ञानिक धारणाएं नाजी सिद्धान्तके साथ इस प्रकार घुली-मिली है कि नाजीवादको 'हिटलरवाद' कहना अधिक ठीक होगा। नाजी आन्दोलनके आध्यात्मिक जन्मदाताओंमें जर्मनीके काण्ट, फिक्टे, हीगेल, गोबिन्यु, और एच० एस० चेम्बरलेन जैसे महान् आदर्शवादी और इटलीके मुसोलिनी थे।

जर्मन परम्पराके अनुसार ही नाजीवाद राज्यको सातवें आसमान पर पहुँचा देता है। पर राज्यको इतना ऊंचा स्थान देनेका कार्य किसी उच्च दार्शनिक तरीकेसे नहीं किया गया। यह कार्य जर्मनीकी वास्तविक आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिए बहुत ही व्यावहारिक ढंगसे किया गया। देशके खोये हुए राष्ट्रीय गौरवको फिरसे वापस लानेके लिए राष्ट्रीय एकताका मंत्रमें अधिक आवश्यक समझा गया। इसलिए राष्ट्रीय एकताके स्थापनार्थ नाजियोंने राज्यको मानवोपरि सत्ता (Superhuman entity) का रूप दिया। 'समाज (Vock)' को कच्चे मालके समान माना गया जिससे राज्यका निर्माण होता है। समाजको मजबूत बनानेके लिए नाजियोंने देशके सामने लगातार यह आदर्श रखा कि 'एक व्यक्तिके हितोंकी अपेक्षा समाजके हित' अधिक महत्वपूर्ण होते है। हिटलर के सिद्धान्तके अनुसार "व्यक्ति कुछ नहीं है, समाज ही सब कुछ है।" अधिकारोंकी अपेक्षा कर्तव्यों पर अधिक जोर दिया जाता है।

अंग्रेजी परम्पराके अनुसार राज्य एक सेवकके समान है। प्रशाकी परम्परा राज्यको स्वामी मानती है। इन दोनों परम्पराओंका पारस्परिक विरोध दिखाते हुए, स्पेंगलर लिखते है कि "अंग्रेजी परम्परामें हमें व्यक्तिगत उत्तरदायित्व, आत्मनिर्णय, संकल्प और पहलकदमी मिलती है। जर्मनी परम्परामें राज्य भक्ति, अनुशासन, आत्मबलिदान और आत्मप्रशिक्षण पर जोर दिया जाता है। व्यक्तिका कोई महत्त्व नहीं होता। उसे अपनेको समाजके लिए बलिदान करना चाहिए। किसी एक व्यक्तिका जीवन स्वयं उसके लिए नहीं है। सबका जीवन सबके लिए है। और आज्ञापालनमें मिलने वाली आन्तरिक स्वाधीनता सबको प्राप्त है।" इसका अर्थ यह हुआ कि व्यक्तिको अपने मनका काम करनेकी या पहलकदमीकी स्वाधीनता नहीं है। एक सुव्यवस्थित राज्यकी आज्ञाओंका पालन करनेमें ही उसे अपने जीवनका महत्त्व

और सुख मानना चाहिए। राज्यकी अनिवार्य सत्ता ही पूर्ण स्वाधीनता है। नाजियो के इस सिद्धान्तमे हम हीगेल के सितलिखकाइट (Sittlichkeit) सम्बन्धी सिद्धान्तोकी प्रतिध्वनि ही सुनायी देती है। एक सूक्ष्मदर्शी पर्यवेक्षकके कथनानुसार इस शिक्षाके फलस्वरूप जर्मनीके लोग अपने देशको महान, पर अपनको तुच्छ बनाने लगे।

नाजी पार्टी समाज और राज्यको जोडने वाली कडी था। उसने जनताको एक सूत्रमे बाँधकर उसे एक सामान्य नेतृत्वके अधीन काम करनेका अवसर दिया। राज्य तो केवल नाजी पार्टीके कार्यक्रम और कार्यकलापको अपनी सम्प्रभु सत्ताका बल प्रदान करता था। फलत राज्य और नाजी पार्टी एक रूप हो गये। किसी भी दूसरी पार्टीका अस्तित्व सहन नही किया जा सकता था क्योंकि उससे राज्य कमजोर होता और शक्तियोका अपव्यय होता। जुलाई, १९३३ के कानूनके अनुसार (१) 'जर्मनी मे केवल एक ही राजनीतिक दल है और वह है राष्ट्रीय सामाजिक जर्मन मजदूर दल, (२) जो कोई किसी दूसरे राजनीतिक दलका स्थापना करनेका प्रयत्न करेगा या किसी अन्य राजनीतिक दलको कायम रखेगा उसे तीन वर्ष तककी कैदकी सजा दी जा सकेगी।' कोई आश्चर्यकी बात नही है कि हिटलर और उसके साथी लोकतन्त्र और लोकतन्त्रीय संस्थाओसे घृणा करते रहे। वे तो राष्ट्रीय एकता और सुदृढ़ता चाहते थे। वे किसी प्रकारका विरोध सहन नहीं कर सकते थे।

नाजियाने अपनी परम्पराओंके अनुसार अपनी पार्टीका सगठन नेतृत्वक आधार पर किया था। नेताओकी एक शृखला पार्टीका सचालन करती थी। उसकी कार्य-पद्धति नीचेसे ऊपरकी ओर न होकर ऊपरसे नीचेकी ओर थी। नाजियाने जिस नेतृत्वकी कल्पनाकी थी वह व्यापक आधारवाला ऐसा लोकतन्त्रीय नेतृत्व नही था जो जनताकी इच्छाओंका ध्यान रखता है और जनताके प्रति उत्तरदायी होता है। नाजियोके नेतृत्वका आधार शक्ति था। शक्तिसे ही नेतृत्वको स्थापना की गयी थी और शक्तिसे ही उसे कायम रखा गया था। नाजी विचारधाराके अनुसार कुछ लोगो का जन्म नेता बननेके लिए होता है। और शेष लोगोंका जन्म इन नेताओके पीछे चलनेके लिए होता है। हिटलर राज्य, सरकार और सेना सभीक प्रधान थे। वह जो कुछ कहे वही विधि था। शासनका सञ्चालन करने वाले जितने लोग होते थे उन सबका हिटलर ही मनोनीत करता था। वे सब हिटलर के प्रति पूर्ण रूपेण वफादार थे। तूफानी दल और काली कुर्ती वालोंका सगठन सैनिक ढगसे किया गया। शुरूमे इन दोनो सगठनोकी स्थापना नाजी पार्टीकी रक्षा करने और सार्वजनिक शान्ति व्यवस्था कायम रखनेके लिए की गयी थी। इन दोनो सगठनाके बल पर ही नाजियोने सत्ता हथियाई थी। नाजियाके सत्तारूढ हो चुकनेके बाद अपने नेता हिटलरकी रक्षा करना ही इन दोनो सगठनोका मुख्य काम था। जर्मनीमे आत्मघाती टुकडिया (suicidal squads) भी थी जो राज्य और पार्टीके नाम पर हिटलरकी आज्ञा पाते ही तुरन्त शरीर बलिदान करनेको तैयार थी। जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमे नाजीदलने अपना अधिकार जमा रखा था। प्रान्त और जिला अधिकारी नाजीदलके प्रमुख सदस्य होते

थे। इन्हे गृह मत्रालयकी सिफारिशों पर हिटलर नियुक्त करता था। पुराने ट्रेड यूनियनोके स्थान पर मजदूराके बीच नाजियोंने अपने अड्डे बना रखे थे जो मजदूरोमे जारोसे नाजीवादका प्रचार करते थे। मजदूर मोर्चा पूरा-पूरा नाजी सगठन बन गया था। नाजी एजेण्ट सब कही पाये जाते थे। परिवारोकी अन्तरतम गोष्ठिया तक में नाजी एजेण्ट मौजूद रहते थे। ऐसी घटनाए कम नही होती थी जब नाजी उद्देश्यके प्रति उत्साह कम होन पर लडके माँ बापके विरुद्ध या माँ-बाप लडकोके विरुद्ध गवाही देते थे। देशके युवकाका सगठन 'हिटलर युवक दल' नाजी पार्टीका शक्तिशाली सहायक था।

नाजी पार्टीके सत्तारूढ होने और मानव जीवनके सभी क्षेत्रो पर उसके छा जाने के फलस्वरूप जन-जीवनका निम्न कोटिका सैन्यीकरण हो गया। यद्यपि यह सैन्यीकरण जर्मन परम्परा और प्रवृत्तिके अनुकूल ही था। राजकुमार बुला (Bulow) का यह कहना गलत नही था कि उनके देशवासी इस अथमे 'अराजनीतिक' है कि उनमे नागरिक अधिकारा और नागरिक साहस की कमी है। जर्मन युद्ध क्षेत्रमे चाहे जितना साहसी हो पर उसमे अपने शासकोके विरुद्ध खडे हो सकनेकी नैतिक शक्ति नही होती। वह शासकके सामने चुपचाप घुटने टेक देता है। युद्ध और आक्रमणमे जर्मन की मौन स्वीकृति और उनकी सन्दिग्ध राजनीतिक नैतिकताका भी यही कारण है। अपनी इसी कमजोरीके कारण जर्मन नागरिक बडी आसानीसे कडे सवाद नियत्रण (censorship) को और बिना मुकदमा चलाये ही कारावासकी व्यवस्थाको स्वीकार कर लेता है। एक प्रसिद्ध जर्मन समाचार पत्रने १९३६ मे लिखा था कि 'बन्दी शिविर किसी प्रकारसे भी अपमानकी बात नही है बल्कि वे सस्कृतिके आभूषण है। इन शिविरोमे उपेक्षित व्यक्तियोका दृढ दयालुताके साथ सच्चे जीवनकी शिक्षा दी जाती है।' जर्मनीमे शत्रु देशोके रेडियोको सुनना भारी अपराध माना जाता था। पर इसके विपरीत बर्लिनसे होनेवाली लार्ड हॉ हॉ की रेडियो पर चिल्ल-पोंसे ब्रिटेनमे अग्रेज अपना काफी मनोरजन करते थे।

नाजियोंके अनुसार राज्यकी प्रधान विशेषता शक्ति और ओज है, न्याय और नैतिकता नही। नाजीवाद इस जर्मन सिद्धान्त पर जोर देता है कि शक्ति ही न्याय है। फिक्ते ने १९वी सदीमें लिखा था कि राज्योंके बीच शक्तिका सिद्धान्त ही लागू होता है। नाजीवाद 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के सिद्धान्तका प्रचार करता है और इसी पर अमल करता है। हिटलर के शब्दोंमे 'जिसे जीना है उसे युद्ध करना होगा। जो इस ससारमे युद्ध नही करना चाहता उसे जीनेका अधिकार नही है। यह कथन भले ही कठोर मालूम हो पर असलियत यही है।' मैनहीम सार्वजनिक स्कूलके प्रधानाध्यापक डॉ० क्रीक का कहना था कि 'विश्वविद्यालयोका काम सैनिक युद्ध सम्बन्धी विज्ञान पढाना है, न कि पदार्थ-मूलक विज्ञान पढाना।' राइखस्वेर के भूतपूर्व प्रधान जनरल फ्रॉन सीक्त ने लिखा था कि युद्ध मानव सफलताकी पराकाष्ठा है। युद्ध मानव जातिके इतिहासमें विकासकी अन्तिम स्वाभाविक अवस्था है। युद्ध

ही समस्त वस्तुओंका जनक है। जीवनके अस्तित्वका सबसे अधिक सरल तत्व युद्ध ही है। युद्धको रोकनेका प्रयत्न प्रकृतिकी विधिको रोकनेका प्रयत्न है। यह भयानक बात है।

युद्धके लिए जोरदार तैयारियाँ करते हुए भी नाजियोंने संसारको यह विश्वास दिलाया कि वे शान्तिके परम प्रेमी हैं और वे जो भी सैनिक तैयारियाँ कर रहे है वे सबके हितके लिए है। हिटलर ने अपने दलकी एक बैठकमे १९३५ मे कहा था कि हमारे व्यवहारको परखनेकी केवल एक ही कसौटी हो सकती है और वह है शान्तिके लिए हमारा महान अडिग प्रेम। नाजी सिद्धान्तके अनुसार शान्तिमूलक घोषणाए शत्रुओंको असावधान बनाये रखनेके लिए की जाती रही। पर जैसे ही हिटलर ने अपनेको सामरिक शक्तिका प्रदर्शन करने योग्य समझ लिया वैसे ही उसने पडोसी क्षेत्रोंको एक न एक बहानेसे हडपना प्रारम्भ कर दिया।

शक्तिका प्रयोग करनेके लिए प्रारम्भमे दो बहाने निकाले गये—वारसाई की सन्धि द्वारा किये गये अन्यायोंको मिटाना और समस्त जर्मन जनताको एक झण्डेके नीचे एकत्र करना। नाजीवाद एक शुद्ध राष्ट्रीयतावादी आन्दोलनसे बदलकर बहुत जल्द सर्व जर्मनवादी (pan-Germanic) आन्दोलन बन गया।

विदेशोंमे रहनेवाले अल्पसंख्यक जर्मनोंको उकसाया गया कि वे झगडे पैदा करें और यह आवाज उठायें कि उनके साथ विदेशी मालिकों द्वारा अमानुषीय व्यवहार किया जाता है ताकि नाजियोंको सम्बन्धित प्रदेश हथिया लेनेका अवसर मिले। ऑस्ट्रिया, जेकोस्लोवाकिया और पोलैण्डमे यही हुआ।

जिन क्षेत्रोंमे काफी संख्यामे जर्मन अल्पसंख्यक थे उन्हे जर्मनीमे सम्मिलित कर लेने पर भी जब हिटलर को सन्तोष नही हुआ तब वह संसारको अपने अधीन करनेमे लग गया। उसने नार्वे, डेन्माक, बेल्जियम, हॉलैण्ड, फ्रास, यूनान और बाल्कन राज्योंको अपने कब्जेमे ले लिया।

द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ होनेके महीनों पहले ही से हिटलर ने जोरदार शब्दो में यह शिकायत करना प्रारम्भ कर दिया था कि जर्मनीके जो उपनिवेश वारसाई सन्धिके अनुसार उससे ले लिये गये थे वे अभी तक उसे लौटाये नही गये है। वह बराबर यह मॉग करते रहे कि 'चुराई हुई सम्पत्ति वापस की जानी चाहिए'। हिटलर ने यह मॉग करते समय इस बातका विशेष ध्यान रखा कि चुराई हुई सम्पत्तिके असली मालिकोंके अधिकारोंकी यानी उन देशोंके अधिकारोंकी जिनसे पहले जर्मनीने स्वय ये उपनिवेश छीने थे चर्चा तक न होने पावे। अपनी आक्रामक योजनाओंको छिपानेके लिए और अपने अनुयायियोंकी भावनाओंको उत्तेजित करनेके लिए वह यह प्रचार करते रहे कि जर्मनोंको जीनेके लिए स्थान चाहिए तथा जर्मनोंके शत्रु उसे चारों ओरसे घेर लेना चाहते है। शुद्ध राष्ट्रीय आन्दोलनके रूपमे प्रारम्भ होकर नाजी आन्दोलनने शीघ्र ही सर्व जर्मनवादी आन्दोलनका रूप धारण कर लिया। और फिर यह एक बर्बर साम्राज्यवादी आन्दोलन और ससारकी शान्तिके लिए एक संकट बन गया।

नाज़ी आन्दोलनका लक्ष्य जमन जातिको शक्तिशाली तथा ओजपूर्ण और जर्मन राज्यको युद्धके लिए ऐसा तैयार करना था कि वह सारे ससार पर हावी हो सके। इसीलिए नाजीवाद बहुत अधिक जातीयतावादी था। नाज़ियोने यहूदियोका सहज ही मे बलि का बकरा बनाकर उन्हें उन सारी विपत्तियाका उत्तरदायी ठहराया जिनका सामना जर्मनीको पिछले बीस वर्षोमे करना पडा था। आर्य जातिकी महानताकी कल्पित गाथा गढ़ी गयी। तथाकथित अनार्य लोगोको जर्मन भूमिसे बाहर खदेड देनेके लिए कठोर कार्रवाइया की गयी। जनतामे यहूदियो के विरुद्ध घृणा और क्रोध फैलानेके लिए अनेक एकदम झूठी बातोका प्रचार किया गया। हिटलर ने एक बार कहा था "आश्चर्य है! तुम जर्मन लोग जो ससारमें सबसे उत्तम हो, तुम जिनकी नसोमे जर्मन, नॉर्डिक आर्योका रक्त बह रहा है, तुम दीन हीन बना दिये गये हो, दरिद्र बना दिये गये हो! तुम्हे यह भी पता नही कल तुम्हे तुम्हारी रोटी कैसे मिलेगी! ऐसा क्यो है? क्या इसलिए कि तुम्हारी सेनाए युद्धमें पराजित हो गयी थी? नही, वे कभी पराजित नही हुई, कभी नही। वे सब जगह विजयी रही थी। पर जब अन्तिम विजय उन्हें मिलने वाली थी तब यहूदी मार्क्सवादी देश द्रोहियोने हमारी पीठमे छुरा भोक दिया।" जर्मनी की जनतामे यह कहावत प्रचलित थी, "यहूदी हमारा दुर्भाग्य है, हिटलर हमारा त्राता है।" यहूदियो और अपने राजनीतिक विरोधियोके प्रति नाजियोने निर्दयताके इतने घृणित कार्य किये कि जिन पर बीसवी सदीमे विश्वास नही किया जा सकता।

नाज़ी सिद्धान्त यह था कि आर्य लोग सभ्यताके महान् निर्माता है और शेष ससार निम्न कोटिकी जातियोसे भरा हुआ है। हरमैन गॉच का कहना था कि अनार्डिक या अनार्य लोग आर्यो या नॉर्डिक लोगो और पशुओके बीचकी स्थितिमे है। वे बनमानुषसे कुछ ही अच्छे है। इन जातियोका व्यक्ति पूर्ण मनुष्य नही है। वह पशु और मनुष्यके बीचका प्राणी है। इसलिए उसके लिए उपमानव (sub-human) की उपाधि ही ठीक है। इन्ही लेखकका यह भी कहना है कि 'यह सिद्ध नही किया गया है कि अनार्डिक लोग बनमानुषोमे सहवास नही कर सकते।' शिक्षा अथवा बदले हुए वातावरणसे लाभ उठानेमे वे असमर्थ है।

नाजियोको इस वैज्ञानिक सिद्धान्तसे कोई परेशानी नही हुई कि ससारमे सम्भवत कहीं भी कोई जाति शुद्ध नही है। नाजियोने इस तथ्यकी भी परवाह नही की कि जर्मन जनताका आधेसे कम हिस्सा ही नार्डिक है, शेषका अधिकाश अल्पाइन जातिका है। जातीय शुद्धताके नाम पर जातीय मिलावट पर कडी रोक लगा दी गयी। उन सरकारी अधिकारियो और कर्मचारियोको बरखास्त कर दिया गया जिनमे स्वय, या दो या तीन पीढी तकके जिनके पूर्वजोमे यहूदी रक्त था। वह सरकारी कर्मचारी भी नौकरीमे नही रह सकता था जिसकी पत्नी की नसोमे यहूदी रक्त होनेका सन्देह होता था।

इस अतिवादी जर्मन जातीयतावादके साथ ईसाई धर्मके एक विकृत रूप अर्थात्

जर्मन ब्राण्ड के धर्ममे आस्था दिलायी गयी। और इस सिद्धान्तमे भी निष्ठा बैठायी गयी कि जर्मन स्त्रीका महत्त्व केवल इस बातमे है कि वह शुद्ध नॉर्डिक बच्चे पैदा करे और नार्डिक जातिकी सत्ता कायम रखे। कैथालिक और प्राटेस्टेण्ट दोना ही धर्मोकी निन्दा की गयी। दोनो ही के विरुद्ध अन्तर्राष्ट्रीयतावाद और नैतिक दासता के आरोप लगाये गये। प्रा० अर्न्स्ट बरगमान ने लिखा था "जर्मन धर्मके मानने वाले हम लोग आज इस प्राचीन नॉर्डिक भारती जर्मन (Indo-Germanic) ज्योति-पुज प्रतिमाको अपनाते है और मानव जातिका हानि पहुचाने वाली इसाई धर्म तथा झूठी और रुग्ण ईसाकी प्रतिमासे छुटकारा पाते हं। नवीन जर्मन मूर्ति पूजावादका महापुराहित स्वय हिटलर ही है। वही सच्ची पवित्र आत्मा है। हिटलर एक है। ईश्वर भी एक है। हिटलर ईश्वर के समान है। हिटलर एक नवीन, एक महत्तर और अधिक शक्ति सम्पन्न ईसा है।" जर्मनी की ईसाई चर्चका मुह बन्द कर दिया गया। बन्दी शिविरोके भयके कारण उन्हे अपना मुँह खालनेका साहस नही होता था।

हर फॉन पापन का कहना था कि नाजीवादी योजनाके अनुसार 'माताओका बच्चे पैदा करनेमे अपने आपको अर्पित कर देना चाहिए। पिताओंको अपने बच्चो का भविष्य सुन्दर बनानेके लिए युद्ध क्षेत्रमे लाहा लेना चाहिए।' 'लाल स्वस्तिक महिला सघ' की घाषणामे कहा गया था कि एक महिलाके लिए अपने बच्चोंको युद्धमे भेजनेसे बढकर और कोई ऊचा आर सुन्दर सम्मान नही है। हिटलर के अनुसार, जा स्वय अपनी मृत्युसे थाडे समय पहले तक अविवाहित था, 'महिलाओकी शिक्षामे मुख्यत उनके शारीरिक विकास पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए। उसके बाद ही आध्यात्मिक महत्ताओ पर और सबसे बादमे मानसिक विकास पर जोर दिया जाना चाहिए। निश्चित रूपसे मातृत्व ही स्त्री शिक्षाका उद्देश्य है।'

कुछ नाजी लेखकोन अधिकसे अधिक सख्यामे शुद्ध नॉर्डिक बच्चे पैदा करनेके लिए यौन अनैतिकताका खुले आम समर्थन किया था। डा० विलीबाल्ड हैन्शेल ने लिखा था, "शुद्ध रक्तवाली एक हजार जर्मन लडकियोको पकड लो। उन्हें एक शिविर मे अलग रख दो। फिर शुद्ध रक्तवाल सौ जर्मन पुरुषोका उनके बीचमे छाड दा। यदि इस प्रकारके एक सौ शिविर भी खोले जा सकें तो हमे एक सायमे एक लाख शुद्ध रक्तवाले बच्चे मिल जायगे।"

नाजी राज्यने अपनी कर नीति द्वारा तथा अन्य अनेक उपायोसे अधिक बच्चे पैदा करनेको प्रोत्साहित किया। सन्तति निरोधका राष्ट्रके प्रति पाप माना जाता था। घर ही स्त्रियोका स्वाभाविक स्थान था। पर बादमे आगे चलकर युद्धकी आवश्यकताओके कारण स्त्रियोको घरा तक ही सीमित न रखा जा सका। निस्सन्देह नाजीवादकी इन सब बातोंमे एक उच्च कोटिका आदर्श है, पर इसका मार्ग गलत है। बाहरी लोगाके लिए इसमे भाई चारेकी भावना नही है। राज्य और समाज सम्बन्धी नाजी सिद्धान्त नेतृत्व, अनुशासन, अधिकार सत्ता, एकता, और कठोर एकरूपता

पर बहुत जोर देना है। व्यक्तिवाद, उदारवाद, शान्तिवाद, अन्तर्राष्ट्रीयतावाद, समाजवाद और साम्यवादका नाज़ीवाद घोर शत्रु है। नाजीवाद उदारवादको आरामतलब सिद्धान्त बतलाता है। उसका कहना है कि उदारवाद एक ऐसी विलासिता है जिसका बोझ जर्मनी की तरह जीवन संग्राममें लगा कोई राष्ट्र नहीं उठा सकता। नाज़ीवाद मार्क्सवादी वर्ग युद्धको राष्ट्रकी आत्मिक एकताको नष्ट करनेवाला मानता है। वह अन्तर्राष्ट्रीय शान्तिको कायरका स्वप्न मानता है। श्री बुच ने १९३७ में कहा था कि जो कोई भी व्यक्ति जर्मनी में महत्त्वपूर्ण काम करना चाहता है वह किसी भी ऐसे दलका सदस्य नहीं हो सकता जो अन्तर्राष्ट्रीय गठबन्धन मे हो।

जब हम नाजियोंके राजनीतिक सिद्धान्तोको छोडकर उनके आर्थिक सिद्धान्तो पर विचार करते है तो हमे मालूम होता है कि इनमें भी राष्ट्रीय एकता और दृढ़ता पर उतना ही जोर दिया गया है। सार्वजनिक कल्याणको व्यक्तिगत स्वार्थोंसे ऊंचा स्थान दिया जाता है। जर्मनीका आर्थिक तौर पर आत्म-निर्भर बनानेके लिए आर्थिक स्वतन्त्रताकी नीतिका व्यवस्थित और नियोजित तौर पर अनुगमन किया गया है। शुद्ध पूंजीवाद और समाजवाद दोनोंका इसलिए अस्वीकार कर दिया गया है क्योंकि इनसे जनता दो परस्पर विरोधी और लडनेवाले वर्गोंमें बट जाती है। जनताके कल्याणके नाम पर पूंजीपति और मजदूर दोनो पर राज्यका नियन्त्रण रहता है। निगमित इटलीके विपरीत जर्मनीमे मालिको और मजदूरोके पृथक-पृथक संगठन नही थे क्योंकि नाज़ीवाद मालिको और मजदूरोके हितोंमे किसी प्रकार का संघर्ष नहीं मानता। मालिको और मजदूरो दोनोको मज़दूर मार्चेमें शामिल किया गया। मज़दूर मार्चे के दरवाजे अनार्यो के लिए बन्द रखे गये। बड़े उद्योगो का कायम रहने दिया गया। पर इन उद्योगो पर राज्य ने अपना कठोर नियन्त्रण रखा। कोई भी जर्मनीसे बाहर धन नही ले जा सकता था। राज्यकी अनुमतिसे ही नयी पूंजी प्राप्त की जा सकती थी। वित्त-मंत्री के अधीन काम करनेवाली अर्थ समिति का उद्योग, व्यवसाय, बैंको, बीमा, सार्वजनिक उपयोगिताओं और हस्त शिल्प कला पर नियन्त्रण था पर व्यक्तिगत उद्योग पर रोक नही लगायी गयी थी। १९३३ के बाद जर्मन सरकार देशके बैंको पर पूरा-पूरा नियन्त्रण रखने लगी। वस्तुओके आयात और निर्यातके लिए सरकार से अनुमति लेनी होती थी। हड़तालो और ताला बन्दियो पर रोक लगा दी गयी थी। 'सामाजिक सम्मान' के भंग होने पर अर्थात् मज़दूरोके आत्म सम्मान के विरुद्ध किये जाने वाले अपराधो पर विचार करने के लिए मजदूर न्यायालय कायम किये गये। वेतन और मूल्य निर्धारित किये गये। हिटलर छोटे व्यक्तियोको अवसर देने की नीतिका समर्थक था। राजनीतिक ढांचेकी भांति सम्पूर्ण आर्थिक ढांचा भी नेतृत्वके सिद्धान्त पर सैनिक ढग से तैयार किया गया था। फासिस्टवादी इटली की अपेक्षा नाज़ी जर्मनीमे निजी सम्पत्ति और व्यक्तिगत उद्योग के अधिकारो पर अधिक प्रतिबन्ध लगाये गये थे।

जाती थी। हिटलर ने जो स्वय ही प्रचार कलामे दक्ष थे, अपनी आत्म कथा 'मेरा सघर्ष' (*Mein Kampf*) मे सफल प्रचारके लिए निम्नलिखित सुझाव दिये है 'जनता पर व्यापक प्रभाव, कुछ बातो पर अधिक जोर देना, उन्ही बातो का बार-बार कहना, आत्म निश्चय और आत्म विश्वास के साथ निश्चयात्मक घोषणाओके रूपमे भाषण की रचना, प्रचार मे अधिकतम् परिश्रम, और फल प्राप्तिमे धैर्य"। हिटलर का सूत्र यह था कि "प्रचार का बौद्धिक स्तर जितना ही नीचा होगा, उतनी अधिक सख्यामे लोगोको अपने पक्षमे करने मे सफलता मिलेगी"। हिटलर के इस सूत्रको गोयबेल्स ने एक वाक्यमे इस प्रकार प्रकट किया है 'प्रचार सामान्यीकरण (simplification) की कला है।" जर्मन जनताके सीधेपनके सम्बन्धमे हिटलर ने लिखा है "जर्मन लोगोको इस बातका पता ही नही है कि जनताका समर्थन प्राप्त करनेके लिए लोगोको कितना धोखा दिया जाना चाहिए।" उनका कहना था कि प्रचारका सच्चाईसे कोई सम्बन्ध नही है। उनका मत था कि "यदि एक झूठ बात साहसके साथ कही जाती है और वह बडी झूठ होती है तो लोग उसके बडी होनेके कारण ही उसमे विश्वास करने लगते है।"

भाषणमच, विद्यालय, रगमच, सिनेमा, रेडियो, समाचार पत्र, कला, विज्ञान और साहित्य सभीको नाजीवादकी उद्देश्य-सिद्धिमे सहायक बनना पडा। स्कूलोमे पढाये जाने वाले प्रत्येक विषयको नाजी प्रचारका साधन बनाया गया। अकगणितमे बमोके आकार और उनकी विध्वसक शक्तिकी नाप-तौल सिखायी जाने लगी। हिटलर की पूजा ही धर्म मानी जाने लगी। जब बच्चा भोजनके लिए स्कूलसे घर लौट कर आता था तब उसके माँ बाप 'हेल हिटलर' (हिटलर की जय) कह कर उसका स्वागत करते थे। हर जर्मन प्रति दिन ५० से लेकर १५० बार तक 'हेल हिटलर' कहा करता था। प्रत्येक पुरुष, स्त्री और बच्चेके लिए किसी न किसी नाजी सगठनका सदस्य होना जरूरी था। प्रत्येक जर्मन बच्चे द्वारा पढी जाने वाली नाजी पाठ्य पुस्तकमे हिटलर के प्रति निम्नलिखित बहुमूल्य भावना प्रकटकी गयी थी

'हमारे नेता, एडाल्फ हिटलर,
हम तुम्हे प्यार करते है,
हम तुम्हारे लिए प्रार्थना करते है,
हम तुम्हारी बात सुनना पसन्द करते है,
हम तुम्हारे लिए काम करते है,
तुम्हारी जय हो।'

६ नाजीवादका मूल्याकन (Estimate of Nazism)

इस शताब्दीके तीसरे और चौथे दशकमे नाजीवाद मानव-जातिके लिए उस समय तक सबसे बडा सकट बना रहा जब तक १९४५ मे वह पूरी तरह पराजित न

कर दिया गया। पराजित होने पर भी नये रूपोंमें पुनः जीवित और सक्रिय हो उठनेकी शक्ति उसमें है। नाजीवादके उत्थानसे पता चलता है कि निम्नतर भावनाओं और प्रेरणाओंका सहारा लेकर किस प्रकार साधारणतया बुद्धिमान जनताको गलत मार्ग पर ले जाया जा सकता है।

नाजीवादने युद्धमें थकी हुई जनताकी शिकायतोंका अधिकसे अधिक लाभ उठाया। उसने समस्त बुराइयोंके लिए उत्तरदायी बलिका एक बकरा खोज निकाला और जनता को बतलाया कि उसकी सारी तकलीफें किस प्रकार दूर की जा सकती हैं। नाजीवाद का प्रारम्भ पूंजीवादके अन्तिम रक्षकके रूपमें हुआ। एक बार सत्तारूढ़ हो जानेके बाद उसने पूंजीवादसे स्वतंत्र होकर काम करना प्रारम्भ किया। यही नहीं, उसने पूंजीवादको समाप्त कर देनेके लिए कदम उठाये। उसने समाजवादी पद्धतियों और समाजवादी संस्थाओंका उपयोग किया—समाजवाद और सामाजिक न्यायकी स्थापना के उद्देश्यसे नहीं अपितु सर्वाधिकारवादके आधार पर सैनिक राज्यकी स्थापनाके लिए। आर्थिक आवश्यकताओं पर सैनिक सुविधाओंको प्राथमिकता दी गयी। एक व्यापक लोकप्रिय आधार पर तानाशाहीकी स्थापनाकी गयी। नेताको धरती पर देवता समझा जाने लगा। उदार परम्पराएं होशियारीके साथ उखाड़ फेंकी गयीं। जनता पर जादू का सा असर हुआ। बर्बरता और हिंसा दिन चर्या बन गयी। मानव इतिहासका सब से बड़ा युद्ध छेड़ दिया गया। इस युद्धने लगभग ६ वर्षों तक प्रलय मचा दी। जाति सम्बन्धी कपोल गाथा कुछ इस प्रकार रची गयी कि यहूदी लोग समस्त बुराइयोंके मूलरूप माने जाने लगे। हैलोवल के शब्दोंमें 'नाजीवाद आध्यात्मिक, बौद्धिक, सामाजिक, और राजनीतिक अराजकताकी राजनीतिक अभिव्यक्ति' था।

नाजीवाद और फासिस्टवादकी इस तेजीके साथ हुए उन्नति और पतन—दोनोंसे बहुत-सी शिक्षाएं मिलती हैं। मनुष्य अब भी एक विचारवान प्राणी होनेकी स्थितिसे बहुत दूर है। इसलिए यह जरूरी है कि उसकी अन्धी लालसाओं और प्रेरणाओं पर समुचित नियंत्रण रखा जाय। यदि उदारवाद घुटने टेक देता है, और जनताके नागरिक और राजनीतिक अधिकारोंकी रक्षा करनेसे डरता है तो वह फासिस्टवाद के लिए दरवाजा खोल देता है। लोकतंत्र राजनीतिक रूपमें तब तक व्यर्थ है जब तक कि वह आर्थिक और सामाजिक न्यायके रूपमें दैनिक प्रयोगमें न लाया जाय, उसके पीछे ईश्वर पर अडिग विश्वासका बल न हो, और उसमें व्यक्ति रूपमें मनुष्यों पर और उनके ऊँचे भाग्य पर भी उतनी ही अडिग आस्था न हो।

अविवेकवाद और सैनिकवादकी प्रतिक्रिया भी देर-सवेर होती है। फासिस्टवादी मनोवृत्तिमें विचार और चिन्तनकी गुंजाइश नहीं है क्योंकि वह तो तर्क-वितर्ककी अस्वीकृति है। सैनिकवाद स्वयं अपना पतन शीघ्र लाता है। तलवार उठाने वाले तलवारके घाट स्वयं उतर जाते हैं। जातीय विद्वेषवाद एक बर्बरता है जिसे समाज यदि अपनी रक्षा चाहता है तो अब उसे अधिक सहन नहीं कर सकता। राजनीतिक और आर्थिक राष्ट्रीयता बड़ी तेज़ीसे समयके अनुपयुक्त होती जा रही है और इसलिए लोगों

को अब अपनेको विश्व लोकतंत्र और विश्व-नागरिकताकी नवीन धारणाओके अनुकूल बनाना चाहिए।

SELECT READINGS

Works of KARL MARX, LENIN, TROTSKY, AND STALIN
BRADY, R A —*The Political and Social Doctrine*
CROSSMAN, R H S —*Government and the Governed*
DRUCKER, B —*End of the Economic Man*
FINER, H —*Mussolini's Italy*
FLORINSKY, M T —*Fascism and National Socialism*
GOAD AND CURRY—*The Corporative State*
GOBINEAU, ARTHUR LEE—*The Inequality of Human Races*
HALLOWELL, J H —*Main Current in Modern Political Thought*—Chs 11-17
HECKER, J —*The Communist Answer to the World's Needs*
HITLER, A —*Mein Kampf*
LASKI, H —*Communism*
LIGHTENBERGER, H —*The Third Reich*
MUSSOLINI, B —*The Political and Social Doctrine of Fascism*
OAKESHOTT, M —*The Social and Political Doctrines of Contemporary Europe*
ROBERTS S H —*The House that Hitler Built*
ROUCEK, J S E —*Twentieth Century Political Thought*
SABINE, G H —*A History of Political Theory*
SALVEMINI, G —*Under the Axe of Fascism*
SCHUMAN, F L —*Hitler and the New Dictatorship*
SLOAN, PAT—*Russia Without Illusion*
STRACHEY, J —*The Menace of Fascism*
WILKINSON E & CONYA, E —*Why Fascism?*

BIBLIOGRAPHY

1 APPADORAI, A —*The Substances of Politics, Madras, Oxford University Press*

2 BARKER, ERNEST—*Greek Political Theory Plato and his Predecessors, London, Methuen*

3 BARKER, ERNEST—*Political Thought in England Spencer to Present Day (H U L), London, Oxford University Press*

4 BARNES, LEONARD—*Future of Colonees London, Hogarth*

5 BOSANQUET, B —*The Philosophical Theory of State, London Macmillan*

6 BROWN, IVOR—*English Political Theory, London Methuen*

7 BRYCE, VISC—*International Relations, London, Macmillan*

8 BUELL, R L —*International Relations, London, Pitman*

9 BURNS, C D —*Democracy (H U L), London, Oxford University Press*

10 BURNS, C D —*Political Ideas, London Oxford University Press.*

11 CAREY, P —*Economics A Social Science*

12 CROSSMAN, R H S —*Government and the Governed History of Political Ideas and Political Practice, London, Christophers*

13 DAVIDSON, W L —*Political Thought in England Bentham to Mill (H U L), London, Oxford University Press*

14 DEWEY, J —*German Philosophy and Politics*

15 DICEY, A V —*Introduction to the Study of the Law of Constitution, London, Macmillan*

16 DUGUIT—*Modern French Legal Philosophy*

17 DUNNING, W A —*History of Political Theories (3 Vols), New York, Macmillan*

18 ELDRIDGE—*The New Citizenship*

19 ELLIOT—*Lecture at Harvard*

20 FINER, H —*Theory and Practice of Modern Government, London, Methuen*

21 FORD, J —*Social Problems and Social Policy, London, Ginn*

22 GARNER, J W —*Introduction to Political Science, London, American Book Supply Co Limited*

23 GARNER, J W —*Political Science and Government*

24 GETTELL R G —*Political Science, London, Ginn*

25 GETTELL, R G —*History of Political Thought, London, Allen & Unwin*

26 GETTELL, R G —*Problems of Political Evolution*

27 GIERKE, O —*Political Theories of the Middle Ages, Tr Maitland, London, Cambridge University Press*

28 GILCHRIST, R N —*Principles of Political Science, London, Longmans*

29 GREEN, T H —*Lectures on Principles of Political Obligation, London, Longmans*

30 HARRISON, FREDERIC—*On Jurisprudence and the Conflict of Law*

31 HALLOWELL, J H —*Main Currents in Modern Political Thought*

32 HAYES C J H —*Essays on Nationalism, London, Macmillan*

33 HEARNSHAW, F J C —*Democracy at the Cross-ways*

34 HEGEL, G W F —*Philosophy of History*

35 HOBBS, THOMAS—*Leviathan, Ed Pogson Smith, London, Oxford University Press*

36 HOCKING, W E —*The Philosophy of Law and of Rights, New Haven, Yale University Press*

37 HOCKING, W E—*Lectures at Harvard*

38 HOLLAND, T E —*Elements of Jurisprudence, London, Oxford University Press*

39 JENKS, EDWARD—*The State and the Nation*

40 JOAD, C E M —*Liberty Today, (Thinker's Library), London, Watts*

41 JOAD, C E M —*Modern Political Theory, London, Oxford University Press*

42 JONES, SIR HENRY—*Idealism as a Practical Creed*

43 JOSEPH, BERNARD—*Nationality London, Allen & Unwin*

44 KRABBE—*Modern Idea of State*

45 KRANENBURG, R —*Political Science, London, Oxford University Press*

46 LAHIRI & BANERJEE —*An Introduction to the Principles of Civics*

47 LASKI, H J —*A Grammar of Politics, London Allen & Unwin.*

48 LASKI, H J —*Introduction to Politics, London, Allen & Unwin*

49 LASKI, H J —*Liberty in Modern State, London Allen & Unwin*

50 LASKI, H J —*The State in Theory and Practice, London, Allen & Unwin*

51 LEACOCK, STEPHEN—*Elements of Political Science, London, Constable*

52 LINDSAY, A D —*I Believe in Democracy*

53 LINDSAY, A D —*Parliament or Dictatorship*

54 LORD, A R —*Principles of Politics, London, Oxford University Press*

55 MacIver, R M—*The Modern State, London, Oxford University Press*
56 McIlwain, C H—*Political Science Quarterly, March, 1935, Pages 98 100*
57 Maine, Sir H—*Early History of Institution*
58 Marriott J A R—*Machanism of Modern State, London, Oxford University Press*
59 Mazzini Guiseppi—*Life and Writings*
60 Merriam, C E—*History of the Theory of Sovereignty since Rousseau*
61 Mill, J S *On Liberty (Thinker's Library), London, Watts*
62 Mill, J S—*Utilitarianism, (N Univ Series) London, Routledge*
63 Moon P T—*Imperialism in World Politics, London, Macmillan*
64 Raleigh, T—*Elementary Politics, London, Oxford University Press*
65 Ramaiyer—*Politics*
66 Ritchie, D G—*Natural Rights (Philos. Series), London, Allen & Unwin*
67 Rousseau J J—*Social Contract (Ev'man Series), London, Dent*
68 Ruthnaswamy, M—*Making of the State, London, Williams & Norgate Ltd*
69 Sastri, S—*Rights and Duties of the Indian Citizens, Calcutta, University Press*
70 Schuman, F L—*Imperialism and World Politics*
71 Seth, James—*Study of Ethical, Principles, Edinburg, William Blackwood & Sons, Limited*
72 Sidgwick, Henry—*Elements of Politics, London, Macmillan*
73 Spectator Booklets—*Parliament or Dictatorship, London, Methuen*
74 Spencer, H—*Social Statics, London, Watts*
75 Stephen, Sir, Leslie—*Science of Ethics, London, John Murray*
76 Tawney, R H—*Equality London Allen & Unwin*
77 Taylor & Brown—*Human Relations*
78 Toynbee, A J—*A Study of History, London, Oxford University Press*
79 Vaughan, G E—*Studies in the History of Political Philosophy Before & After Rousseau, Manchester University Press*
80 Ward, J—*Sovereignty*
81 Wilde, N—*Ethical Basis of the State, London, Oxford University Press*
82 Willoughby, W W—*Social Justice.*

83 WOOLF, LEONARD—*Imperialism and Civilisation*, *London*, *Hogarth*
84 ZIMMERIN, A E —*The Third British Empire*
85 THE LEAGUE OF NATIONS—*Aims*, *Methods & Activity*, *London*, *Allen & Unwin*

83 WOOLF, LEONARD—*Imperialism and Civilisation*, London, Hogarth
84 ZIMMERIN, A E —*The Third British Empire*
85 THE LEAGUE OF NATIONS—*Aims, Methods & Activity, London, Allen & Unwin*